प्रकाशकीय



सुधानिधि के हजारों पाठकों, असख्य सहयोगियो तथा विद्वत्जनो के असीम सहयोग से इस वनौषधि रत्नाकर चतुर्थ भाग के साथ सुधानिधि के प्रकाशन को २० वर्ष पूरे हो रहे हैं। किसी भी पत्रिका के लिये निरन्तर २० वर्षों तक प्रकाशित होना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि ही मानी जावेगी लेकिन सुधानिधि की यह २० वर्षों की यात्रा कितने कण्टकमय पथ से गुजरी है यह सुधानिधि के जन्मकाल से जुडे हुए पाठक भली प्रकार जानते हैं। सुधानिधि के प्रकाशित होने के १ वर्ष बाद ही इसके सस्थापक तथा हमारे पूज्य पिता जी सुधानिधि और हमे अनाथ छोडकर देवलोक प्रयाण कर गये थे। उसके बाद भी अनेक सकटो के दौर से सुधानिधि को गुजरना पडा। गतवर्ष ऐसा ही एक भीषण सकट उस समय आया जब अपनी मूल प्रकाशन संस्था धन्वन्तरि कार्यालय से सुधानिधि पृथक् हो गया। आर्थिक स्थिति से सुदृढ लगभग १०० वर्ष पुरानी सस्था से पृथक् होकर सुधानिधि को गत वर्ष जिन आर्थिक कठिनाइयो से गुजरना पडा उसका उल्लेख हम यहा उचित नही समझते। एक वर्ष गुजरने के बाद अभी भी सुधानिधि को हम आर्थिक सकट से मुक्त नही कर पाये हैं और सम्पूर्ण प्रयासो से इसे विषम परिस्थितियों से उबारने मे लगे हैं।

आपका भी कुछ कर्तव्य है



पिछले २० वर्षों से निरन्तर आयुर्वेद की सेवा मे रत सुधानिधि के इस सकट के दौर मे सुधानिधि के सजग पाठको का भी यह कर्त्तव्य है कि वे इसकी मदद करें। सुधानिधि के पाठक यह सहायता दो तरह से कर सकते हैं (१) सुधानिधि के अधिक से अधिक नवीन ग्राहक बनाकर (२) सुधानिधि की सहयोगी सस्था गर्ग वनौषधि भण्डार के उत्पादनों को अपनी चिकित्सा मे प्रयोग कर। सुधानिधि के नवीन ग्राहक बनने से सुधानिधि के प्रकाशन में हो रहे घाटे की पूर्ति हो सकेगी तथा गर्ग वनौषधि भण्डार की बिक्री बढने से उसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ होगी और उसकी मदद से सुधानिधि भी फलने फूलने लगेगा। पाठको से हमारा अनुरोध है कि वह हमारे इस सकट के समय में हमारी मदद अवश्य करें।

प्रस्तुत विशेषांक



"वनौषधि रत्नाकर" नामक अभिनव श्रृङ्खला का यह चतुर्थ भाग आपके हाथो मे है। इसके पिछले ३ भागों ने आयुर्वेद जगत् मे जो ख्याति प्राप्त की है वह किसी से छिपी नही है। इसके यशस्वी सम्पादक वैद्य गोपीनाथ पारीक इस वनौषधि श्रृङ्खला को एक ऐतिहासिक ग्रन्थ के रूप मे प्रस्तुत करने हेतु पिछले कई वर्षों से रात दिन जुटे हैं। १-१ वनौषधि के विषय में उन्होने जो अपार सकलन किया है उसकी प्रशन्सा के लिये शब्द नहीं मिलते। इस चतुर्थ भाग मे वर्णित पन्द्रह वनौषधियो के सम्बन्ध मे उन्होने जो विपुल साहित्य प्रस्तुत किया है उसे पढकर पाठक पारीक जी को साधुवाद दिये बिना नहीं रहेगे यह हमारा विश्वास है।

इस वर्ष के लघु अंक

◇

सुधानिधि के लघु अक भी अपनी महत्ता रखते हैं। गत वर्ष प्रकाशित सभी लघु अकों को हमारे पाठको ने बहुत पसन्द किया। "रतिरहस्य अक" तथा "एड्स रोगांक" को तो विशेष ख्याति मिली। इस वर्ष भी हम सुधानिधि के ४ लघु अक प्रकाशित करेंगे जिनका विवरण इस प्रकार है—

[१] **चुम्बक चिकित्सा अङ्क**—यह लघु विशेषाङ्क जून माह मे प्रकाशित किया जावेगा। इसका सम्पादन चुम्बक चिकित्सा विशेषज्ञ डा० आर० के० भारद्वाज द्वारा किया जा रहा है। इसमें अनेक चित्रों द्वारा चुम्बक चिकित्सा के ज्ञान को पाठको तक पहुचाया जावेगा।

[२] **स्थूलता निवारण अङ्क**—यह लघु विशेषाक अगस्त माह मे प्रकाशित किया जावेगा। इस लघु विशेषाङ्क मे स्थूलता (मोटापा) कम करने के उपायो का विस्तार से वर्णन प्रस्तुत किया जावेगा। इसके विशेष सम्पादक आयुर्वेद जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् वैद्य अम्बालाल जोशी, जोधपुर होंगे।

[३] **योगासन अङ्क (द्वितीय भाग)**—यह लघु अङ्क अक्टूबर माह में प्रकाशित किया जावेगा। इसका प्रथम भाग गत वर्ष प्रकाशित हुआ था जिसकी पाठको द्वारा विशेष प्रशन्सा हुयी थी।

[४] **रति रहस्य अङ्क (द्वितीय भाग)**—इसका प्रथम भाग दिसम्बर १९९१ में प्रकाशित किया गया था जिसकी प्रशन्सा मे हमे सैकडों पत्र मिले। अब इसका द्वितीय भाग इस वर्ष दिसम्बर माह में प्रकाशित किया जावेगा। द्वितीय भाग का सम्पादन वैद्य वनवीर सिंह 'चातक' लाडकुई (सिहोर) म० प्र० द्वारा किया जा रहा है।

सुधानिधि के साधारण अङ्कों में परिवर्तन

◇

गत् वर्ष हमने सुधानिधि के प्रतिमाह प्रकाशित होने वाले अङ्कों को भी विशेष उपयोगी बनाने की दृष्टि से उन मे कुछ परिवर्तन किये थे जिन्हे पाठको ने बहुत सराहा। हम सुधानिधि के प्रत्येक अङ्क मे अब ऐसे भी कुछ लेख देने का प्रयास कर रहे हैं जो आयुर्वेद में रुचि रखने वाले साधारण पाठको को भी उपयोगी हो सकें। हमने "सम्पादकीय टिप्पणी" के माध्यम से अपने अनुभवों को भी सुधानिधि के पन्नों पर उतारने का पूरा प्रयास किया है। यह प्रयास इस वर्ष भी जारी रहेगा और हम प्रत्येक अङ्क को "गागर में सागर" भरने की उक्ति को यथार्थ में परिवर्तित करने की पूरी चेष्टा करेंगे। सुधानिधि के लेखकों से भी हमारा अनुरोध है कि वह सुधानिधि के बदलते स्तर से तालमेल बैठाते हुए अपने लेख भेजें। पाठक अब पुरानी घिसी पिटी सामिग्री स्वीकार नहीं करते। उन्हें अनुभव युक्त सामिग्री चाहिए अतः सुधानिधि के विद्वान् लेखक गण सुधानिधि को सामयिक सर्वोत्तम पत्रिका बनाने मे हमारे सहयोगी बनें।

आगामी विशेषाङ्क

◇

आगामी वर्ष १९९३ मे सुधानिधि का "कैंसर रोग चिकित्सांक" प्रकाशित किया जावेगा। इसके सम्पादक आयुर्वेद जगत् के मूर्धन्य विद्वान् डा० महेश्वर प्रसाद नियुक्त किये गये हैं। [illegible]

लगभग सभी पत्रिकायें अपने विशेष अङ्क प्रकाशित कर चुकी हैं लेकिन यह विशेषाक चिकित्सा जगत् में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सके, इस प्रयास मे इसके विशेष सम्पादक महोदय लगे हुये है। सुधानिधि के विद्वान् लेखकों से हमारा अनुरोध है कि वह भी इस विशेषाक हेतु विशेप सम्पादक को अपना सहयोग प्रदान करें।

ग्राहक मूल्य में वृद्धि

◇

इस वर्ष भी सुधानिधि के ग्राहक मूल्य मे हमे ५ ०० की वृद्धि करनी पड़ी है। हर वर्ष ग्राहक मूल्य में वृद्धि करने से पाठको को क्षोभ होता है लेकिन वर्तमान परिस्थितियो में यह अपरिहार्य सा हो गया है कि हर वर्ष ही ग्राहक मूल्य मे वृद्धि करनी पडती है, क्योंकि प्रति वर्ष कागज, छपाई आदि के मूल्य इतने बढ़ जाते हैं कि पुराने मूल्य मे सेवा कर पाना असम्भव हो जाता है। अत. जिस तरह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे हर वर्ष कुछ अधिक व्यय स्वीकार करना पडता है उसी तरह अपनी प्रिय पत्रिका सुधानिधि को भी प्राप्त करने के लिये पाठको को यह मूल्य वृद्धि स्वीकार करनी भी पडेगी। हमे विश्वास है कि सुधानिधि के पाठक हमारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस मूल्य वृद्धि को स्वीकार करेंगे।

सुधानिधि के प्रकाशन में विलम्ब

◇

गत वर्ष अप्रैल में व्यापारिक विभाजन के बाद से हम सुधानिधि को समय पर प्रकाशित नही कर सके हैं। इसके कई कारण रहे हैं, विशेषकर उत्तर प्रदेश में २ वर्षों से बिजली का भीषण अकाल पडा हुआ है। विजयगढ जैसे छोटे कस्बे मे ४-५ घण्टे से अधिक बिजली नहीं मिल पाती। जैनरेटर से जैसे तैसे सुधानिधि की छपाई सम्भव हो पाती है। हमारे विशेष प्रयास करने के बाद हम इस वर्ष यह विशेषाक गत वर्ष से १ माह पूर्व प्रकाशित करने में हम सफल हुए हैं हमे विश्वास है कि इस वर्ष सुधानिधि के साधारण अक भी समय पर प्रकाशित करने मे सफल होगे। गत वर्ष सुधानिधि के निरन्तर विलम्ब से प्रकाशित होने के कारण पाठकों को जो कष्ट हुआ है उसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

आभार प्रदर्शन !

◇

गत वर्ष सुधानिधि के धन्वन्तरि कार्यालय से पृथक् होने के बाद हमारे शुभचिन्तकों का मुझे विशेष सहयोग मिला है उसके लिये मैं उनका हृदय से आभारी हू। मैं रात दिन परिश्रम करके सुधानिधि को अधिक से अधिक उपयोगी प्रकाशित करने में जुटा हुआ हू। मुझे प्रसन्नता है कि मुझे इसमे सफलता भी मिली है और कई वर्षों से स्थिर सुधानिधि की ग्राहक संख्या मे गत वर्ष कुछ वृद्धि हुयी है। मुझे विश्वास है कि आप सब का सहयोग मुझे इसी तरह मिलता रहा तो सुधानिधि को मैं उच्चतम शिखर तक पहुचाने में सफल हो सकूगा। आपके समुज्वल भविष्य तथा सुस्वास्थ्य की कामना करते हुये—

सदैव आपका

गोपाल शरण गर्ग

राम नवमी
११-४-८२

वनौषधि रत्नाकर

[चतुर्थ भाग]

की

विषयानुक्रमणिका



वनौषधि रत्नाकर

[चतुर्थ भाग]

में वर्णित

वनौषधियों के चित्र



वनौषधि–प्रार्थना



ओषधी· प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरी· ।
अश्वाइव सजित्वरोर्वीरुध पारयिष्णव ।।

—शतपथ ब्रा० १-३-४

हे ओषधियो ! आप रोगियो पर प्रसन्न हो । आप पुष्पो व फलो वाली हों । अच्छे अश्व के समान रोगो को जीतते हुए पुरुषों को नीरोग करने वाली हो ।

ओऽम् ! मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो, मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम् ।।

—अथर्ववेद काड २०, सूक्त १४३

हमारे लिये ओषधिया रसो से परिपूर्ण तथा गुणवती हों । सूर्य, चन्द्र एव नक्षत्र आदि मे युक्त द्युलोक तथा जल एव जलीय पदार्थ मधुमय हो । अन्तरिक्ष और उसमे प्राप्त होने वाले पदार्थ हमारे लिए मधुमय हों, हमारा क्षेत्रो का पालक कृषकवर्ग मधुर अन्न आदि पदार्थों से सम्पन्न होकर हमारे लिए सुखदायी हो । हम परस्पर द्वेष और हिंसा भाव से मुक्त होकर सभी शुभ कार्यों मे सहयोगी एव सहायक हो ।



विशेष सम्पादक की लेखनी से

गोपालिकाना करताडनेन
कलसनृत्य प्रचकार बाल ।
सामस्वरो विश्वविनर्तको य-
स्तनोतु श टोडरमल्लभूपे ।।

—आयुर्वेदसौख्यम् से

गोपियों की ताली पर थिरक
किया जिस बालकृष्ण ने नृत्य ।
विश्व को सदा नचाता रहे
करे 'गोपालशरण' कृतकृत्य ।।

आज आठ अप्रैल १९९२ का बुधवार है । पवित्र नवदुर्गा चल रहे हैं । चैत्र शुक्ला पचमी है । मुझे सुधानिधि के सचालक और सम्पादक वैद्य गोपालशरण गर्ग का पत्र मिला है जो उनका सन्देशवाहक विजयगढ़ से कल शाम लाया था । पत्र मे लिखा है—

"वनौषधि रत्नाकर लगभग पूरा छप चुका है । विशेषाक के प्रारम्भ में सामयिक विषयों पर आपकी सम्पादकीय चली जावे यह मेरी इच्छा है । ××× यह कार्य अवश्य करने की कृपा करें ।"

—गोपाल ।

वह तो हर बार मुझ से सम्पादकीय लिखने की जिद करता रहा है पर मैं—मोतियाबिन्द से दोनों नेत्रों में पीड़ित हू । मधुमेह के कारण आपरेशन अभी तक सम्भव नही हो सका इसलिए कुछ भी लिखने पढ़ने में मजबूर हू । नेत्रो मे डायबीटिक रैटिनोपैथी है और पेशियो मे डायबीटिक न्यूरोपैथी है । अर्थात् मैं जिस दुर्दशा से ग्रस्त हू वह वर्णनातीत है । फिर भी मैं इस माध्यम से सुधानिधि के अपने प्रिय पाठको से मिलने का लोभ सवरण न कर सका और सवेरे ४ बजे अपने घर के ऊपर के कक्ष मे पहुंच गया जहा बैठकर मैं पढा करता हू । मैंने कमरे के लैम्प्स और रौड जला दिये पर वोल्टेज इतना कम था कि मुझे नीचे उतर कर श्रीमती जी से मोमवत्ती की माग करनी पडी । मोमवत्ती के प्रकाश में जब थोडा दीखने लगा तो एक टूटे पैन को निकाल पढ़ने वाली चौकी पर रखखा । वह चौकी हिल गई और पैन फर्श पर लुढ़क कर गिर पडा और उसका निब टूट गया और मैं नई समस्या मे घिर गया । फिर नीचे पहुचा । श्रीमती शान्तीदेवी, मेरी पत्नी दुखी हुईं, जगी और मेरी दौहित्री कु० श्रद्धा गौड को जगाकर उसका पैन दिलवाया । ऊपर देखा कि रौड वोल्टेज की कमी से बुझ गई है और मैं हतप्रभ सूर्यदेव के उगने की प्रतीक्षा करने लगा तभी मस्तिष्क में सुधानिधि के जन्म की याद ताजा हो गयी ।

कुछ वर्षों पूर्व जब दो सहोदर—वैद्य देवीशरण गर्ग और श्री ज्वालाप्रसाद अग्रवाल बट गये और श्री देवीशरण जी को नया मासिक निकालना पडा तब हम दोनो की इच्छा हुई कि आयुर्वेद पचानन पुण्य श्लोक श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल जी जिस सुधानिधि को पचास वर्ष से ऊपर तक चलाते रहे पर जो

[illegible]

उनके गोलोकवास के साथ बन्द हो चुका था उसे चालू किया जाय। हम दोनों उनके पुत्रों से इसकी अनुमति लेने इलाहाबाद पहुंचे। उन लोगो से सम्पर्क साधा पर वे ऐसी विपुल राशि की माग करने लगे जिसे देना शक्य नही था। पर तभी हमारी भेंट एक कानूनयाफ्ता सज्जन से हुई। उन्होने कहा कि जो अखबार बन्द हो चुका है उस नाम का प्रयोग कोई भी दूसरा व्यक्ति कर सकता है बशर्ते कि इस नाम के प्रयोग की अनुमति पत्र निबन्धक ने किसी दूसरे को पहले से न दे दी हो। उन्होंने "लीडर" का हवाला दिया जो अगरेजी दैनिक के रूप मे एक पूरी सदी चलकर बन्द हो चुका था तथा कहा कि अगर आप चाहेंगे लीडर नाम से नया पत्र निकाल सकते हैं। कानूनी पोजीशन समझकर हमने सुधानिधि नाम से ही अनुमति मागी और वह मिल गई और सुधानिधि चलने लगा।

वैद्य देवीशरण ने अपने जीवन भर इसे अमृत का समुद्र बनाए रखा। उनके सामने और बाद में भी हमने इस परम्परा को कायम रखा है। अब उसको चलाने का पूरा-पूरा दायित्व गोपालशरण गर्ग का है जो पूर्ण भक्ति, निष्ठा और तत्परता से इसे निभा रहा है।

इस सम्पादकीय के प्रारम्भ में मैंने जिस श्लोक का चयन किया है वह सम्राट् अकबर के वित्त मन्त्री श्री टोडरमल टंडन द्वारा लिखा गया है। इस श्लोक से ज्ञात होता है कि वे कितने कृष्ण भक्त थे, कितने सस्कृतज्ञ थे और थे आयुर्वेद के निष्णात और विद्वान्। यह श्लोक मैटीरिया मेडिका आफ आयुर्वेद में डा० भगवानदास तथा डा० ललितेश कश्यप द्वारा लिखित कन्सैप्ट पब्लिशिंग कम्पनी नई दिल्ली से प्रकाशित पुस्तक से लिया गया है जिसे टोडरानन्द नामक ग्रन्थ के आयुर्वेद सौख्यम नामक भाग के आधार पर सग्रहीत किया गया है। इसके अनुवाद में मैंने कुछ परिवर्त्तन करके टोडरमल के स्थान पर सुधानिधि के सम्पादक गोपालशरण का उल्लेख कर दिया है।

इस परिवर्त्तन की प्रासगिकता महत्त्वपूर्ण है। कुछ दिनों पूर्व विजयगढ़स्थ धन्वन्तरि कार्यालय के सचालक तीनो भाइयो—श्री मुरारीलाल गर्ग, श्री भगवतीप्रसाद गर्ग और गोपालशरण गर्ग के मन में अलग-अलग व्यवसाय करने की बलवती इच्छा प्रकट हुई। मुझे जब इसका पता लगा तो मुझे ऐसा आभास हुआ कि कोई दैवीशक्ति इसके पीछे है क्योंकि तीनों में इतना अधिक अगाध स्नेह था कि इनके बटवारे की कल्पना तक करना सम्भव न था। पुरातन वातावरण से पृथक् गोपालशरण गर्ग सुधानिधि और गर्ग वनौषधि भण्डार लेकर अलग अपने नये विश्व की रचना में सलग्न हो गये। ज्येष्ठ भ्राता मुरारीलाल गर्ग ने उत्तर प्रदेश मे धन्वन्तरि कार्यालय सम्हाल लिया और मध्यम भ्राता भगवतीप्रसाद गर्ग ने अन्य प्रदेशो मे धन्वन्तरि कार्यालय का दायित्व सम्हाला। विभाजन के बाद भी तीनो में वही प्रेम, वही आकर्षण और एकरूपता देखकर मैंने इसे प्रकृति की अनिर्वचनीय घटना मानकर स्वीकार कर लिया।

यह क्यों हुआ—अगरेजी मे एक कहावत है—कमिंग ईवेंट्स कास्ट देयर शैडोज बिफोर—अर्थात् आने वाली घटनाएं आने से पहले अपनी छायाएँ भेज देती हैं। तीनो भाइयो का नाटकीय परिवर्त्तन वे छायाएँ थी जिनके गर्भ में नये इतिहास का सूत्र बधा हुआ था। यह सूत्र था गोपालशरण की धर्मपत्नी के गर्भ में पलने वाला एक जीव। गोपालशरण गर्ग अपनी तीनो कन्याओं (निधि, रुचि और तनु) के साथ प्रसन्न और सन्तुष्ट थे। आठ वर्ष बाद यह जीव इनकी श्रीमती जी की कुक्षि मे आ गया और दिनाक २-३-८२ शिवरात्रि को अवतरित हो गया। जैसे देवकी के गर्भ में कृष्ण के आने पर समस्त ब्रजमण्डल में परिवर्त्तनों की गूंज समा गई नया कुछ होने वाला है उसके लिए रास्ता साफ चाहिए यह नियति की इच्छा और आकांक्षा थी। [illegible]

राशियां गिनने के लिए पण्डित द्वय संलग्न थे उस दिन २०-३-९२ मंगलवार को समस्त धन्वन्तरि प्रथमतल खचाखच भरा हुआ था। विजयगढ़ के लोगों ने उसे भावी टाउनएरिया चेयरमेन कह कर पुकारा। भक्तों ने गोपालशरण को पुत्र रत्न प्राप्ति हेतु की गई तपस्या का प्रत्यक्ष फल बतलाया। जिला अलीगढ़ का पूरा प्रशासन और हाथरस, अलीगढ, तथा अन्य विविध स्थलो से आगत महानुभावों ने इस नव बाल को इतने आशीर्वाद दिये कि धरती प्रमुदित हो गई और आकाश जगमगा उठा। यह अतिशयोक्ति नहीं है। क्योंकि इस पूरे धन्वन्तरि परिवार की वैद्य परम्परा में जो नारायणदास, राधावल्लभ और देवीशरण प्रसूत थी इसमें वैद्य दाऊदयाल गर्ग (सुपुत्र श्री ज्वालाप्रसाद अग्रवाल) और वैद्य गोपालशरण गर्ग के बाद अन्य कोई वैद्य नहीं है। ज्योतिषी ने पहले ही बतला दिया था कि गोपालशरण की भार्या की कुक्षि में एक नव्य धन्वन्तरि पल रहा है। जो घटनाऐं घट रही हैं उससे आभास होता है कि विजयगढ़ प्रसिद्ध वैद्यो की भूमि रही है और इस नये नक्षत्र के साथ आगे भी रहेगी। वैद्य सम्राट् तिवारी जी के वंशजों ने, सुप्रसिद्ध वैद्यराज गुरुदत्त जी के पुत्र ने, वैद्य सत्यार्थी जी ने, वसुजी वैद्य ने इस नवगोपाल के लिये हार्दिक मंगल कामनायें की। इसी बाल गोपाल की स्तुति में मैंने टोडरमल का यह श्लोक उद्धृत किया है। मुझे विश्वास है कि सुधानिधि के प्रेमी पाठक अपने प्रिय सम्पादक गोपाल के घर आये नवगोपाल का समाचार पढ़कर प्रमुदित हुये बिना न रह सकेंगे।

इस बीच देश और प्रदेश में भी आयुर्वेद नभोमण्डल मे एक नये युग का सूत्रपात होता दिखाई पड रहा है। राष्ट्रपति श्री रामास्वामी वेंकटरमन महोदय ने परसो ही अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध वैद्य बृहस्पतिदेव त्रिगुणा जी को पद्मभूषण से अलंकृत किया है। प्रातःस्मरणीय चरक चतुरानन और हमारे गुरुदेव प० सत्यनारायण शास्त्री को राजेन्द्रबाबू द्वारा पद्मविभूषण से सम्मानित करने के बाद यह दूसरी बड़ी घटना है। प्रधानमन्त्री पी० वी० नरसिंहराव की सरकार आयुर्वेद को आगे बढ़ाने को कृतसंकल्प जान पड़ती है। इनके स्वास्थ्य मन्त्री काल में राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ की स्थापना की गई थी। जब वे प्रधानमन्त्री बने तो मैंने नीचे लिखे श्लोक द्वारा उन्हें इस आयुर्वेद अकादमी के लिये दिल्ली में स्थान देने के लिए लिखा—

स्थानशून्या हि दृश्यते ह्यायुर्वेद अकादमी।
रावः, प्रधानमन्त्री त्वं व्यवस्था कुरु सत्वरम् ॥

और राव ने आयुर्वेद की इस अकादमी के लिए स्थान की व्यवस्था करदी और गत १४ अगस्त को इसकी गवनिंग बोर्डी के एक नामित सदस्य के रूप में मैंने इसकी दूसरी बैठक में भाग लिया। बाद में इसके अध्यक्ष रूप में केन्द्रीय सरकार ने त्रिगुणा जी को घोषित कर दिया। यह राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ (नेशनल अकादमी आफ आयुर्वेद) अब चल पड़ी है। इसका उद्घाटन शीघ्र ही स्वास्थ्य और परिवार कल्याणमन्त्री श्री माखनलाल फोतेदार करने वाले हैं। इसमें गुरुशिष्य परम्परा व सूत्रपात किया जा रहा है। देश के ५ मूर्धन्य विद्वानों को राष्ट्रीय आयुर्वेद गुरु के रूप में किया जा रहा है जिन्हें सम्मान स्वरूप मानदेय प्रदान किया जावेगा। प्रत्येक राष्ट्रगुरु के पास ५-५ शिष्य जिन्हें स्टाइपेंड दिया जावेगा आयुर्वेद का अध्ययन और अनुशीलन कर आयुर्विद्या परम्परा को जीवित और जाग्रत रखेंगे। यही राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ इस वर्ष ५० फाउण्डर फैलोशिप भी पचास विद्वानों को प्रदान करने जा रही है जो विश्व में एक अभिनव चमत्कार ही हो रहा है। हर साल ३० नये फैलो घोषित किये जावेंगे जिनकी संख्या कभी १०० से ऊपर नहीं होगी। शिष्य जो इन राष्ट्रगुरुओं से तैयार होंगे अकादमी के सदस्य रहेंगे।

पिछली कुछ सरकारो ने आयुर्वेद के साथ न्याय नही किया। इनमे एक थी चन्द्रशेखर की सरकार। इसके स्वास्थ्यमन्त्री थे श्री शकीलुर्रहमान। इनके समय और उससे पहली सरकारो के समय में सेंट्रल काउन्सिल फौर रिसर्च इन आयुर्वेद एण्ड सिद्ध (CCRAS) को भूखो मार डाला। ४-४ माह तक इस सस्था की इकाइयों के अधिकारियो और कर्मचारियो को वेतन नही बटा। मेडिकल सेक्रेटरी श्री श्रीनिवासन। मैंने इस सस्था के ग्वालियर, झासी, नागपुर, पूना, जामनगर और जयपुर केन्द्रो की यात्रा अपने खर्चे से की और क्योंकि मैं इसकी गवर्निंग बोडी का नामित सदस्यों में एक था प्रतिदिन २-३ घटे इसके लिये दिये। पर शकीलुर्रहमान ने मेरा नाम नामित सदस्यो मे से काट दिया। इससे मुझे तो राहत मिल गई पर जो पुरस्कार मुझे मिला वह इन लोगो के आयुर्वेद प्रेम पर एक सीधा-सीधा तमाचा ही कहा जावेगा। इनकी एक विशेषता यह तो मानी ही जायगी कि इन्होने आयुर्वेद कमिश्नर के एक मृत प्राय पद को जीवित करके आयुर्वेद एडवाइजर पद से विश्राम ग्रहण करने वाले वैद्य प्रवर श्री शिवकुमार मिश्र को इस पद पर सुशोभित कर दिया। इसमे इनका प्रदेश-प्रेम मुख्य था या आयुर्वेद प्रेम यह इतिहासकारों की रिसर्च का विषय है। पर मिश्र जी एक तपेतपाये आयुर्वेद सरक्षक हैं उन्हे वे हमे दे गये यह श्लाघनीय है।

अभी १० अप्रैल को महामहिम राष्ट्रपति महोदय सीरीफोर्ट दिल्ली मे आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा निर्दिष्ट अन्तर्राष्ट्रीय आयुर्वेद कान्फ्रेंस का उद्घाटन करने वाले हैं जिसमे देश विदेश के अनेक निष्णात वैद्य और चिकित्सक भाग लेकर पहली बार आयुर्वेद को अन्तरराष्ट्रीय मच पर प्रतिष्ठित करेंगे। इस सम्मेलन का कोई निमन्त्रण मुझे आज तक नही मिला जब कि वैद्य समाज जानता है कि १९८२,८३,८४ और ८५ मे ४-४ माह दुनिया मे आयुर्वेद का अलख जगाने में मेरी भूमिका को नकारा नही जा सकता जबकि मैं महासम्मेलन की अन्तर्राष्ट्रीय समिति से सम्बद्ध रहा हू और श्री लका, थाईलैण्ड, वियतनाम, क्यूबा, कनाडा, हालेंड तथा यूनाइटेडस्टेट्स आफ अमेरिका में आयुर्वेद का झण्डा फहराता रहा हू।

कभी-कभी हम अपने जोश में कुछ मतभेद मानकर उन्हें नकारते चले जाते हैं जिन्होंने कन्धे से कन्धा मिलाकर आयुर्वेद को विश्व मच पर प्रतिष्ठापित करने में अपनी उपयोगी भूमिका निभाई है। उनमें एक हैं दिल्ली के ही सुप्रसिद्ध वैद्यराज प० जगदीशप्रसाद शर्मा जिन्होंने मारीशस और नेपाल में तथा अन्यत्र भी आयुर्वेद का सम्मान बढाया है। हम उन आयुर्वेद राष्ट्रनायकों से आग्रह करते हैं कि व्यक्तिगत सेवी मन्त्रियो से ऊपर उठकर अपने कद के अनुरूप अपने विरोधियों को भी सम्मान देकर स्वय को गौरवान्वित बनावें। आयुर्वेद के किसी भी क्षेत्र में मैं गुटबन्दी का विरोधी हू और जीवन भर रहा हू। अगर ऐसे लोगो की कलई खोली जाय तो वे कही भी नही रहेंगे यह ऐसे लोग अच्छी तरह जानते हैं।

हमारे परम मित्र श्री बृहस्पतिदेव त्रिगुणा जी जो राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ के अध्यक्ष हैं और जिनका चिकित्सालय सैकडो रुग्णों से निरन्तर भरा रहता है। उनके सम्मान में एक अभिनन्दन ग्रन्थ निकलने वाला है। सुधानिधि उस क्षण की शीघ्र से शीघ्र सम्पन्न होने की कामना करता है और विश्वास दिलाता है कि उन्हें वह पुरा सहयोग आयुर्वेद के सरक्षण के लिये करता रहेगा। मैंने इस अभिनन्दन ग्रन्थ हेतु एक रचना "तस्मै नम. श्री' त्रिगुणेश्वराय" शीर्षक से भेजी है।

आयुर्वेद सवर्धन मे हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकारें भी किसी से पीछे नहीं हैं। उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री कल्याणसिंह ने आयुर्वेद विकास सलाहकार,

समिति की स्थापना प्रदेश के आयुर्वेद यूनानी सेवा निदेशक श्री शिवराजसिंह की अध्यक्षता में की है इसकी पहली बैठक अभी-अभी लखनऊ मे मम्पन्न हुई है। इसमें अनेक सुझाव आये हैं जिनमें —

१ आयुर्वेद के पृथक् मन्त्रालय की स्थापना।

२ आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना।

३ आयुर्वेद के वी फार्मा पाठ्यक्रम का सचालन प्रमुखरूप से उठे हुये मुद्दे थे। अध्यक्ष महोदय ने ४ उपसमितियों की घोषणा भी की है जिसकी आकलन समिति मे मेरा भी नाम है।

गोरखपुर की धान्वन्तरीय परिषद् ने उस दिन ३ अप्रैल को वालरवीन्द्रालय लखनऊ मे समिति के १४ सदस्यों का हार-उपहार और दुपट्टा प्रदान कर सम्मान किया था और आशा की थी कि समिति आयुर्वेदोन्नति के लिये शीघ्र व्यवहार्य और अच्छे सुझाव देकर विविध प्रदेशो के सामने अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करेगी। इस समारोह की सफलता वैद्य श्रीनिवास शर्मा के कारण थी। हमने राजवैद्य सुरेन्द्रनाथ दीक्षित को इस सभा मे दधीचि की सज्ञा दी जिसकी अस्थियो से निर्मित वज्र आयुर्वेद शत्रुओं का मूलच्छेद कर इस ऋषिमुनि प्रणीतविद्या के युगानुकूल उन्नयन का मार्ग प्रशस्त करेगा।

हमारे देश मे आयुर्वेद के प्रति जो ममत्व वढ रहा है और उसे उत्तरोत्तर वृद्धिङ्गत करने के लिए सद्भावो की वाढ तो आ रही है। पर इसने इन डाक्टरो का मन नही वदला जो आयुर्वेद को अगरेजो के जमाने से ही कोसते चले आ रहे हैं। प्राइमरी हैल्थ सेंटरों में आयुर्वेद के जो ग्रेजुएट यू० पी० मे भरती किये गये हैं उनके प्रति उनके ऐलोपैथ आका वडा दूषित भाव रखे हुए हैं। अच्छा काम करने पर भी उनका करैक्टर रैकर्ड विगाडने के लिये वे हर समय उद्यत रहते हैं तथा कुछ अफसर तो उन्हें रिश्वत देने के लिये भी निरन्तर जोर देते रहते हैं। स्वास्थ्य विभाग में आपाधापी चल रही है। इसे सरकार को देखना और सुधारना चाहिए। हमारे मत से तो प्राइमरी हैल्थ सैंटरो तक का पूरा दायित्व आयुर्वेद के स्नातको पर छोड़ देना चाहिए। यदि इनमें कुछ कमी हो तो उसे दूर करने के लिये विविध विषयों में उनकी ट्रेनिंग की व्यवस्था भी अविलम्ब करनी चाहिए। इससे ग्रामीण समाज के स्वास्थ्य की अच्छी देख-रेख सम्भव होगी और ऐलोपैथों के नागपाश से ग्राम समाज की रक्षा हो सकेगी।

हमारे शिक्षक, शिक्षा-व्यवस्था और छात्रों की ओर भी समय रहते समाज का ध्यान जाना ही चाहिए। एक डिमोस्ट्रेटर और एक प्रोफेसर का जो अन्तर विविध फैकल्टीज मे पाया जाता है वह आयुर्वेद फैकल्टी मे नहीं मिलता। प्रोफेसर में विषय अवगाहन के प्रति रुचि नही मिलती यद्यपि उसका स्टेटस बढ़ गया है। छात्र आयुर्वेदीय विषयो को समझने के लिये न प्रोफेसर से, न रीडर से कोई प्रेरणा ही पाते हैं। पढाई स्तर गिरता चला जा रहा है। छात्रावासो में पढाई का वातावरण नही है। शिक्षक गुरुडम अधिक चाहते हैं आज का छात्र उनके प्रति अपेक्षित आदर प्रदान नही करता। इस समस्या को कैसे सुलझाया जाय ? यदि गुरू की आयुर्वेद में अगाध श्रद्धा है और वह निरन्तर तपस्यारत है तो उसके प्रति छात्र की निष्ठा असन्दिग्ध रूप से उत्तरोत्तर वलवती होती ही जायगी आयुर्वेद के लिये मात्र ओष्ठ तक श्रद्धा रखने वाले गुरुओ को आज का छात्र कभी स्वीकार कर नही पायेगा। आयुर्वेद मे ही क्या अन्य डिसिप्लिनों मे भी यही बात सार्थक प्रतीत होती है। गुरू की कसौटी ही यह होगी।

हमारी कच्ची और पक्की दवाओं की कीमतें निरन्तर वढ रही है। वनस्पतियों का निरन्तर रोहण होता चला जाता है। उनका सरक्षण कोई और कही भी भारत में नही करता। निर्दयता से वन

काटे जा रहे हैं। वन की सम्पत्ति नष्ट की जा रही है। इसका प्रभाव वातावरण पर पड रहा है। हमें चाहिए कि हम अपनी आवाज बुलन्द कर वनौषधियों के सरक्षण में जुटें। गाव-गाव की मेड-मेड पर वनौषधिया उग आती हैं उन्हे हम सरक्षण नही दे पाते और उनका बीजनाश हो जाता है। व्रजभूमि में खरैटी (बला) गगेरन (अतिबला) कसौंदी(कासमर्द) सर्वत्र पाई जाने वाली वनौषधिया तिरोहित हो चली हैं। हम वनौषधियो से प्रेम करना सीखें, उनसे चिपक जायें तो शायद कुछ रक्षा हो जावे।

जो योग फार्मेसिया बनाती हैं उनके मूल्य बेशुमार बढ़ रहे हैं। लक्षद्वीप की मिट्टी प्रवाल की भूमि है पर उसका भाव अब २५०/—प्रतिकिलो तक बढ गया है। नार्थार्थं नाऽपि कामार्थं अथ भूतदया प्रति का उद्घोष चरक के पन्ने पर सिमट कर रह गया है। अनेक ऐसे रोग हैं जिनका औषधोपचार केवल आयुर्वेद द्वारा ही सम्भव है पर हमारे आधुनिक रोगी महानुभाव मृत्यु के आलिंगन से पूर्व तक ऐलोपैथी से चिपके रहवे हैं और वे वैद्य के पास तक नही फटकवे। बाद में भाग्य को दोष देते हुए कालकवलित हो जावे हैं।

व्यक्तिग स्वास्थ्य के सरक्षण पर आयुर्वेद में व्यवहार योग्य और सरल साहित्य उपलब्ध रहा है और इसका उपयोग गाव-गाव में हुआ है जिससे अभी भी १०० वर्ष की आयु वाले हट्टे-कट्टे जन मिल जाते हैं। दिनचर्या, ऋतुचर्या, आहार नियमों का पालन, स्नान, शुद्ध जल का प्रयोग, शौचाशौच का विचार, ब्रह्मचर्य, आचाररसायन, यज्ञविधान, व्यायाम, पथ्यापथ्य विवेचन से हम स्वस्थ रहकर दीर्घजीवन प्राप्त कर सकते हैं। स्वस्थवृत्त के नियमो के व्यापक प्रचार प्रसार में वैद्यो का उपयोग सरकार को करना चाहिए जिसे हम निरन्वर छोडते जा रहे हैं। प्राकृतिक जीवन से दूर रहकर हम डायबिटीज और यकृत रोगो के निरन्तर शिकार हो रहे हैं। हमारे वृक्क बिगड रहे हैं। हृदय के रोग समाज मे बढ़ रहे हैं और मानसिक विकारो से समाज त्रस्त होता चला जा रहा है। इन सबसे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है हमारा आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त। इस ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा मनोनीत आयुर्वेद विकास सलाहकार समिति की पहली बैठक मे प्रदेश के महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्य व्रजविहारी मिश्र ने कई उपयोगी सुझाव दिये थे। उनमें से एक का उल्लेख करना मैं आवश्यक समझता हू। और वह है वैद्य विद्या पढ़वे के लिए वैद्यों की सन्तति का आरक्षण। जातिगत आरक्षण के स्थान पर व्यवसायगत आरक्षण की प्रथा सरकार अपना ले तो रोजगार की कई समस्याऐं स्वत. ही सुलझाई जा सकती हैं। मैं ऐसा मानता हू कि प्राचीनकाल में भी बेरोजगारी की समस्या थी। इसे हमारे पुरखों ने रोजगार की स्थायी व्यवस्था करके अशत: तो सुलझा ही दिया था। समाज के कुछ लोगों को नाई, कुछ को स्वर्णकार, कुछ को दुग्ध उत्पादक, कइयों को लोहकार, शाक विक्रेता, वस्त्र बुनने वाला बना दिया गया था। नाई का काम नाई ही करता था ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य नहीं करता था। कृषक का कार्य अन्य कर्मी नही करते थे। युद्ध मे जान खपाने के लिये क्षत्रिय तैयार रहता था। शेष सभी उसकी मदद करते थे। कोई रथ बनाता था कोई हथियार बनाता था। समाज रोजगार के अनुसार बंट गया था और किसी को रोटी की फिक्र नही थी। मुस्लिमो की गुलामी के काल मे जो इस्लामधर्म स्वीकार नही करता था उसे नवाबों के घर का पाखाना उठाने को मजबूर किया जाता था जिसके कारण भङ्गी जाति हमारे उच्च वर्ग के लोगो में से जबर्दस्ती तैयार की गई थी। इस कुप्रथा को व्यवसाय नही माना जा सकता। उन्हें अन्य व्यवसायवरण की आज सुविधा मिलनी ही चाहिए।

बल्कि वर्णाश्रम के नामकरण में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनो मे ही सभी का समावेश करके किसी को शूद्र कहाने का रिवाज हमें खतम कर देना चाहिए। पढाने वाला जहा ब्राह्मण बने वही पुस्तक लिखने वाला, टाइप करने वाला, प्रेस चलाकर छापने वाला, पोथी बाधने वाला और उसे बेचने वाला भी ब्राह्मण वर्ग मे लिया जाना चाहिए। आफिस के सभी कर्मचारी भी इसी वर्ग मे आ सकते हैं। कोई नीच नहीं कोई शूद्र नही सभी द्विज हैं यह भावना भरने से हम समाज के वडे वर्ग की कुठा को मिटा सकते हैं।

मिश्र जी का कथन है—जो वैद्य अपने जीवन के ४०-५० वर्ष रोगियों की सेवा मे व्यतीत करता है और उसकी सन्तान उससे उस ज्ञान को सीखती है उसे सबसे पहले आयुर्वेद कालेज मे पढने के लिये स्वीकार करना चाहिये तथा उसे और अधिक योग्यता सम्पादन का अवसर देना चाहिये। मान लो किसी वैद्य ने १३ वर्ष लगाकर अभ्रकभस्म १००० पुटी तैयार की और फिर वह मर गया तो उसकी वह भस्म कौन इस्तेमाल करेगा और उसकी फसी हुई पूजी न निकल पाने पर उसकी स्त्री और बच्चे बे मौत मर सकते हैं। इस मानवीय पहलू को सामने रखकर ही आरक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये। व्यवसायों में आरक्षण के मुद्दे पर एक वडा कमीशन भारत सरकार को बैठाना चाहिये। इस दृष्टि से लुहारो और बढ़इयों के बच्चों को प्रवेश योग्यता तक पढ लेने के वाद इजिनियरिंग मे लेना ही चाहिये। अन्य चिकित्सा पद्धतियों के चिकित्सकों के वच्चों के आरक्षण पर भी यह नियम लागू हो सकता है। ५० प्रतिशत सीटें इसी आधार पर भरी जाने से इन सब व्यवसायवादियों को बहुत सन्तोष होगा। अपनी आर्थिक नीति के निर्धारण के समय प्राचीनकाल मे इस समस्या से कैसा जूझा गया था उसे भी ध्यान में रखकर सरकारी निर्णय किये जाने चाहिये। दुग्ध शालाओं मे घोसियों का आरक्षण पशुशालाओं मे बघेलों का आरक्षण, हौर्टीकल्चर के पदो में काछियो का आरक्षण, वन विभागों मे वनवासियों का आरक्षण आज समय की माग है, हम भी वैद्यसन्तति के लिए आयुर्वेदीय शिक्षादीक्षा के लिए वैद्यसन्तति हेतु आरक्षण की मांग कर सकते हैं। इस ओर ध्यान दिलाने के लिये मैं मिश्र जी का आभारी हू।

अभिनन्दन ग्रन्थो के समर्पण की प्रथा बहुत पहले से चली आ रही है। व्यक्ति के जीवन काल में जिसे अभिनन्दन ग्रन्थ कहा जाता है पर मृत्यु के उपरान्त वही स्मृतिग्रन्थ वन जाता है। यादवजी महाराज के लिये अभिनन्दनग्रन्थ का सूत्रपात वैद्य रामनारायण शर्मा ने दिया था जो उनकी मृत्यु होने के कारण यादवस्मृतिग्रन्थ के रूप में प्रकट हुआ।

मेरी मेज पर एक १०० पृष्ठों का सुन्दर अभिनन्दनग्रन्थ रखा हुआ है। उसे उनके भक्तों, शिष्यो और गुरुजनों ने लेखबद्ध कर इस्लामपुर (झुझुनू) में रोगी सेवा मे सतत सलग्न आचार्य वैद्य विरचीलाल शर्मा को अर्पित किया गया है। मैं भी इसमे अपना योगदान करना चाहता था पर आलस्यवश या भुलक्कड़पने में नहीं कर पाया। पर अभिनन्दनग्रन्थ निर्माणकर्त्री समिति ने कृपा करके इसकी एक प्रति मुझे भेज दी है। इसमे उन्हे एक स्थितप्रज्ञ महापुरुष की सज्ञा दी गई है। इसकी मगल कामना करते हुए लिखा गया है —

भिषग्वरोऽय विदुषां वरेण्यः पीयूषपाणिर्भक्ताच्छतायुः।

शंकराचार्य स्वामी श्री स्वरूपानन्दजी ने उन्हे एक विलक्षण प्रतिभा लिखा है—तथा वैद्यजी [illegible] के ही नहीं हमारे देश के आयुर्वेद-जगत के गौरव हैं ऐसा बतलाया है।

इसी अभिनन्दनग्रन्थ मे मुझे पुण्यश्लोक श्री मणीराम जी महाराज का ब्रह्मचर्य के विषय मे एक अनूठा सन्दर्भ भी प्राप्त हुआ—

"ब्रह्मचर्य का सच्चा अर्थ है ब्रह्म की खोज" ब्रह्म सबमे बसता है इसलिये यह खोज अन्तर्ध्यान और उससे उपजने वाले अन्तर्ज्ञान के सहारे होती है। अन्तर्ज्ञान इन्द्रियों के सम्पूर्ण सयम के बिना असम्भव है। अत: मन, वाणी और काया से सम्पूर्ण इन्द्रियो का सब विषयो मे सयम ब्रह्मचर्य है।

चौथी शास्त्रचर्चा परिषद् मे जो रतनगढ मे श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की ओर से शारीरिक शब्दावली के चयन के लिये स्व० प० रामनारायण वैद्यजी ने बुलाई थी उसमें पुज्य मणीराम जी के दर्शन और चरणस्पर्श का सौभाग्य मुझे मिला था। वे एक महान् गुरु थे जिनके अनन्य शिष्यो में मूर्धन्य थे सीकर के प्रहलादराय जी तथा वैद्य रामनारायण जी।

वैद्य विरचिलाल के अभिनन्दन के सम्बन्ध मे तुमसर के जोशी जी की ये पक्तिया अभिनन्दनीय हैं :—

खादीवस्त्र सुशोभित प्रतिभया सर्वत्र ममानितम्।
विद्वद्वैद्यमणि विरिञ्चि विदुष प्रेरणाभिनन्दामहे ॥

श्री द्वारका शारदापीठ द्वारा उन्हे 'अभिनन्दन धन्वन्तरि' पदवी प्रदान की गई फाल्गुन कृष्णा १३।१४ स० २०३८ को इसका भी इस अभिनन्दन ग्रन्थ मे उल्लेख है।

मैं इस महान् वैद्य के सक्रिय रूप में निरन्तर जीते रहने की कामना करता हू।

भारत के दक्षिणापथ मे आयुर्वेद बिखरा पडा है शुद्ध और शाश्वतरूप में। केरल, तमिलनाडु, कर्णाटक और आन्ध्रप्रदेश में मानो आयुर्वेद की अनेक खानें हैं। इन खानो को खोदने का दायित्व सम्हाला है हमारे अभिन्न वैद्य रामनिवास शर्मा ने जो आन्ध्रप्रदेश सरकार मे डिपुटी डाइरैक्टर आयुर्वेद के पद से विश्राम लेकर घासी बाजार के अपने स्वनिर्मित सदन मे हाईकोर्ट के सामने वाली गली मे विश्राम कर रहे हैं। उनका साथ दिया है उनके वैद्य पुत्र डा० सुरेन्द्र शर्मा बी० एस-सी, बी० ए० एम० एस ने। इन्होने दक्षिण प्रकाशन नाम से एक प्रकाशन सस्था २१-७-६२ गान्धी बाजार, हैदराबाद—५००००२ में खोली है। इस सस्था का पहला ग्रन्थ है जो मूल सस्कृत और मलयालम भाषा मे अब तक निबद्ध था और जिसका नाम है—सहस्रयोगम्। यह १९८९ मे प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक ने दक्षिण को उत्तर से जोड दिया है। अनवरत परिश्रम करके पिता-पुत्र की इस जोडी ने जो कार्य किया है वह सर्वथा स्तुत्य और निरन्तर श्लाघनीय है। उन्होंने सहस्रयोगम् के योगो के सन्दर्भ ग्रन्थो का उल्लेख कर यह सिद्ध कर दिया है कि उत्तर से दक्षिण तक आयुर्वेद का एक ही बृहत्तर परिवार बसता है जिसकी रग-रग मे ऋषिमुनियो का पवित्र रक्त प्रवाहित होता है। पुस्तक हिन्दी अनुवाद सहित सग्रहणीय और माननीय है।

इन्होंने तमिल भाषा के दुरुह स्थलो का अमृत-मन्थन करके 'तमिलो का सिद्ध चिकित्सा सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ का उद्घाटन किया है। यह १९९० की रचना है। इसमे १६ मूल तमिल ग्रन्थों से योग सग्रहीत करके दिये गये हैं। सिद्धों ने दक्षिण मे जिस मूल आयुर्वेद की कल्पना को साकार किया है उसे इस ग्रन्थ रत्न से प्रस्तुत करके एक बड़े अभाव की पूर्ति की गई है। उनके इस सत्प्रयास को सराहना

प्रत्येक वैद्य का कार्य है साथ इन दोनो ग्रन्थो की १-१ प्रति खरीद कर उनका उत्साहवर्द्धन करना भी अभीष्ठ कार्य है। इन ग्रन्थरत्नो के लिए वैद्य रत्नद्वय को मैं अपने साधुवाद अर्पित करता हू।

मेरी मेज पर एक विशेषाक और पडा है कई बार उसे उलट पुलट चुका हू। मागने पर भी इसके लिए मैं अपना लेख नही जुटा पाया जिसके लिये पश्चात्ताप भी हो रहा है। यह एक आयुर्वेद से अछूते साहित्यकार के सम्पादन का प्रत्यक्ष सफल प्रतिफल है। ऐसा लगता है इस लोह पुरुष को आयुर्वेद-रूपी पारसमणि का सस्पर्श हो गया और वह कचनकाया में खिल उठा। मैं पर्यावरण अक की चर्चा कर रहा हूं जो सचित्र आयुर्वेद के ४४ वें वर्ष का जनवरी १९९२ का विशेषाक है। यह श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन का मुखपत्र है और वैद्यनाथ भवन रोड पटना—१ बिहार से प्रकाशित हुआ है। सम्पादक हैं श्री विमलचन्द्र झा। इन्होने इसके सम्पादन में कलमतोड परिश्रम किया है। और पर्यावरण-प्रदूषण के रौक्ष्य और चलत्वदोष ग्रसित विषय में स्निग्धता तथा स्थिरता भर दी है। उन्होने अखबार की कतरनो से लेकर विश्व के विविध देशो के दूतावासों से सम्पर्क स्थापित कर उन्हे यह समझने को बाध्य कर दिया कि भारत भी प्रदूषण की चिन्ता से व्यथित है और उसे दूर करने मे जो योगदान आधुनिक विज्ञान कर रहा है उससे कही अधिक योगदान आयुर्वेद के द्वारा भी सरलतया किया जा सकता है। इसके लिए मैं सम्पादक को और पटना स्थित श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के पूरे स्वामी परिवार को हृदय से आशीर्वाद और दुलार अर्पित करता हू। सामग्री के चयन, सज-धज और प्रकाशन गरिमा में इस अक ने एक सुन्दरतम स्टैण्डर्ड का प्रणयन किया है। इसकी प्रति को विश्व का कोई भी वैज्ञानिक अपनी टेबिल पर रखने में गर्व का अनुभव करेगा। वैद्यनाथ परिवार के ज्येष्ठतम सदस्य श्री प० बनवारीलाल शर्मा को ऐसे सम्पादक के चयन पर मैं बधाई देने के लिए पूरे शब्द सचित नही कर पा रहा। इस विशेषाक के निर्माण में विविध क्षेत्रो से विद्वानो को लिया गया है जिन्होंने पूरी निष्ठा से विषयो की प्रस्तुति कर अपने मानव प्रेम के साथ आयुर्वेद के प्रति प्रगाढ स्नेह का नैसर्गिक परिचय दिया है। अन्य सभी लेख पठनीय तो हैं ही पर जिस लेख ने मुझे सर्वाधिक आकृष्ट किया है वह है डाक्टर कृष्णदत्त शर्मा का 'पर्यावरण प्रदूषण जन्य जनपदोद्ध्वंस' नामक लेख। चरक सूत्र स्थान में प्रदूषण के परिणामस्वरूप होने वाले जनपदो के ध्वस पर भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने जो मत प्रकट किये हैं उनका व्यापक प्रचार प्रसार विश्वभर में किया जाना चाहिए। डा० कृष्णदत्त जी ने इस ओर इङ्गित कर समाज का बडा उपकार किया है। उनके इस लेख का आङ्गल–स्पेनिश–फ्रेंच–रशियन–अरेबिक भाषा मे अनुवाद कर विविध देशो के दूतावासों को भेजने की आवश्दकता है। स्थान-स्थान पर चित्रों और रेखाकनो ने पलाशकुसुमों में सुरभि का सचित भण्डार ही मानो भर दिया है। आयुर्वेद के हमारे मासिक पत्र और पत्रिकाएँ इसी सज-धज से निकलते रहे यह मेरी भगवान् धन्वन्तरि से हार्दिक कामना है।

एक बात और, गत ४४ वर्ष से लिखने-पढने और चिकित्सा व्यवसाय से जुडे रहने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुचा हू कि आयुर्वेद के नाड़ी विज्ञान की भूमिका को सार्थक करने की आज भी महती आवश्यकता है। एक परिवार के दो बन्धुओं को ३-३ कन्याएँ थी। ये ६ कन्या अपनी दादी के साथ अपने एक ही रोग की चिकित्सा हेतु मेरे पास लाई गई। सभी को ग्रन्थि–यक्ष्मा या प्राइमरी कम्प्लैक्स थी जिसकी चिकित्सा मे आधुनिक ड्रग्ज से बढ़कर आयुर्वेद के योग अधिक लाभप्रद सिद्ध होते हैं। थोडी आधुनिक दवाओं के साथ आयुर्वेद के योग देने से जल्दी और स्थायी आराम आ जाता है। आज भी मैं लगभग ५० बालक-बालिकाओ की चिकित्सा सफलतया कर रहा हू। मैंने इन बालिकाओं की दादी से पूछा—क्या इन बालिकाओं का कोई भाई नही है। वह रो पड़ीं और बोली—हमारे घर में लड़किया ही

पैदा होती हैं। यदि हम गाय भी पालते हैं तो वह भी बछिया को ही जन्म देती है बछड़े को नही। मैंने उससे कहा कि आप अपने दोनो पुत्रो को उनकी वधुओ के साथ भेज दें खाली पेट। मैं उनका नाड़ी परीक्षण कर यह देखूगा कि क्या उनमें से किसी को पुत्र जन्म हो सकता है। एक दिन दो दम्पति आ गये। नाडी ज्ञान किया और मैंने पित्त की नाडी की तलाश की और पाया कि अगर दाहिने हाथ में स्त्री या पुरुष में पित्त प्रवल हो तो वह पुत्र की नाडी होगी। बाये हाथ मे पित्त की प्रवलता पुत्री की द्योतक होगी। मैं इनकी लगातार परीक्षा करने लगा। एक दिन एक व्यक्ति और उसकी पत्नी के दाये हाथ की नाड़ी में पित्त की प्रवलता एक साथ देखी। उन दोनो को खीर में रजतपत्र, स्वर्णमाक्षिक और ताक्ष्यं भस्म का मिश्रण खाकर सम्भोग का दिन और समय वतला दिया जो मासिक के १४-१५ वें दिन पडता था। उसकी पत्नी को गर्भ रह गया बाद में उसकी नाडी मे दक्षिण हाथ में पित्ताधिक्य मिला और उसे कह दिया पुत्र होगा। दूसरे व्यक्ति और उसकी पत्नी में भी शीघ्र ही दक्षिण कर मे पित्त की प्रवलता जाचकर खीर योग देकर सम्भोग का दिन और काल वतला दिया। वाद में गर्भ रहा और नाडी पुत्र की उपस्थिति वतलाने लगी।

इन दोनों दम्पतियो को विश्वास नही हुआ और दोनो ने दिल्ली मे ५-५ हजार खर्च कर गर्भ के लिंग का ज्ञान कराया जिनमें एक स्त्री को पुत्र और दूसरी को पुत्री होना वतला दिया गया। पुत्री जिसे कही गई थी उसने गर्भपात करा डाला पर गर्भ मे पुत्र पाने पर उसे वडी वेदना हुई कि उसने यह क्या अनर्थ कर डाला। उनका फिर उपचार किया गया। और उनसे कोई भी जाच कराने का निषेध कर दिया गया। समय पर पहली के समान इसे भी पुत्र-रत्न की प्राप्ति हो गई। मेरे चिकित्सालय में औषध वितरण कार्य मेरी पुत्र वधुएँ (अ० सौ० रजनी और अ० सौ० मजु) करती हैं। उन्हे भी मैंने यह नाडी विद्या सिखादी जो धडल्ले से गर्भ में पुत्र या पुत्री की उपस्थिति वतलाती हैं। ५० से ऊपर ये सभी भविष्यवाणिया खरी उतरी हैं। नाड़ी और गर्भलिंग ज्ञान का क्या सम्बन्ध हो सकता है उस पर वडी शोध की आवश्यकता मैं अनुभव कर रहा हू। प्रतिदिन २-३ गर्भवती नारिया इस भविष्यवाणी के लिये आ जाती हैं। पाठक इस रहस्य के विषय में गभीरता से विचार कर अपने अनुभव लिखें इसीलिए मैने इस प्रकरण को इस सम्पादकीय में स्थान दिया है।

आयुर्वेद की रक्षा, प्रचार और प्रसार की दृष्टि से हमें वहुत कुछ करना है। आधुनिकता मे रगा समाज जहा आयुर्वेद को भूलना चाहता है और अपनी नई पीढी को अपना दायित्व सम्हालने के पहले आयुर्वेद से सर्वथा अनभिज्ञ वना देना चाहता है वहीं हमारे निष्कर्मण्य और येन केन प्रकारेण अपनी रोटी रोजी मे तल्लीन वैद्यगण समाज मे आयुर्वेद प्रसार के पवित्र दादित्व से किनारा काटते प्रतीत हो रहे हैं। जो आयुर्वेदज्ञ इस दिशा में कुछ कर भी रहे हैं वे आपसी मनोमालिन्य में वुरी तरह उलझे पडे हैं। किसी को एक दूसरे की वास तक नहीं सुहाती। वडे-वडे मूर्ख पण्डित वनकर पुज रहे हैं और वडे-वडे पण्डित नालियो में धूल चाट रहे हैं। जितनी विकृति आज आयुर्वेद समाज में देखी जा रही है उसके पीछे व्यक्तिगत वढने की लालसा और दूसरों की टाग खीचने की प्रवृत्ति अधिक है। नई पीढी के वैद्यो को डाक्टर वताकर फटकारा जा रहा है और उन्हें उनका दायित्व वोध तक नही कराने दिया जा रहा। जो नई पीढी के वैद्यो के नेतागण हैं वे अपनी खिचडी अलग पका रहे हैं और वे वैद्य समाज से एक रस होना ही नहीं चाहते। यह वडी विषम स्थिति है। हम अपने ही हाथों अपने लिए कवर खोदने मे लगे हैं और हमारे साथी उन कवरो में हमें जिन्दा ढकेल कर मिट्टी मे दवाने मे उलझे हुए हैं। हर वैद्य सम्मेलनो के पदाधिकारियों मे अनेक छद्मचर वैद्य घुस गये हैं और वास्तविक आयुर्वेदज्ञ अपने को असहाय मानकर शान्त हो बैठे हैं। और [illegible] के लिए तैयार हो रहे हैं। [illegible] रहे हैं।

अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन के वर्तमान अध्यक्ष वैद्यराज श्रीराम शर्मा ने अपने कुरुक्षेत्र में दिये गये अध्यक्षीय भाषण मे विविध वैद्य वर्गो के मेल के लिए हाथ बढाने का शुभ सन्देश दिया है। हमें इस भाषण में निहित भावना का सम्मान करते हुए वैद्यो के सभी सगठनों को मिलकर एक अभेद्य दुर्ग की रचना करनी चाहिए जिसमे आयुर्वेद पर होने वाले सभी प्रहारो का उत्तर देने की क्षमता हो।

वास्तव मे तथ्य यह है कि आयुर्वेद स्वयं मे एक पूर्ण विज्ञान है जिसकी क्षमता यह है कि वह न केवल मनुष्यो की अपितु सभी जीवधारियो की स्वास्थ्य समस्याओ को अपनी शैली से सुलझाने की पूरी-पूरी सामर्थ रखता है और प्रत्येक को उसका नैसर्गिक स्वास्थ्य सरलतया वापस दे सकता है। उसके इस रहस्य का उद्घाटन तभी हो गया है जब एक वैद्य आजीवन उसके अध्ययन और प्रयोग में अपना जीवन समर्पित कर देता है, उसके सिद्धान्तो को समझने के लिये जुट जाता है और फिर तद-नुकूल अपनी जीवनचर्चा बनाकर कमक्षेत्र में आस्तिक किन्तु हार्दिक बुद्धि से जुटा रहता है। स्वास्थ्य की सभी समस्याओ का समाधान आयुर्वेद से सम्भव है।

औषधि निर्माण कार्य आज एक व्यवसाय बन चुका है। बड़े-बड़े वैद्यो को दवा बनाने का समय निकालना मुश्किल पड़ता है। आयुर्वेद की फार्मेसियो के अधिकतम संचालक आयुर्वेद से अनभिज्ञ और पूर्णत. व्यवसायी होने से उनमे वह क्षमता नही कि वे आयुर्वेद का क्या हित और क्या अनहित है उसे जान सकें। फार्मेसियो मे जो वैद्य वेतन लेकर सेवा करते हैं उनकी कोई आवाज नही होती उनसे मालिकगण उलटे सीधे कार्य कराते रहते हैं। जो ड्रग इन्स्पेक्टर के रूप मे इन फार्मेसियो का निरीक्षण करने जाते हैं वे अपना हिस्सा लेकर लोट जाते हैं। नई दवा बनाने के लिये जो आवेदनपत्र ड्रग अधिकारी को दिये जाते हैं वे ठण्डे बस्तों मे तब तक बन्द पड़े रहते हैं जब तक उन्हे समुचित भेंट पूजा नहीं चढ़ादी जाती। कभी-कभी शास्त्रीय योगो की स्वीकृति मे महीनों लग जाते है। रिश्वत के इस गर्म बाजार में अच्छी औषधि कल्पों के निर्माण की आशा ध्वस्त हो गयी है। हर शहर मे नित नई फार्मेसियां बन रही हैं और हर कोई इस अन्धे व्यापार से चादी कमाने मे लग गया है। उनकी समस्याओं का समाधान ढूढ़ने वाला कोई दीखता नही। सबको जेब भरने की फिक्र है। फिर भी कहीं-कहीं आशा की किरण फूट पड़ती है और कुछ अच्छी और शास्त्रोक्त विधि से बनी दवायें मिल जाती हैं पर वे किसी नियन्त्रण के अधीन नही बनती इसके पीछे किसी कर्मठ वैद्य की साधना ही काम करती है। जिस विज्ञान की रक्षा के लिए बनी दवायें ही यदि नकली या स्पूरियस हों तो उस विज्ञान की उन्नति होगी कैसे ?

काशी मे एक बड़े वैद्य से मैंने पूछा—आपसे आशा थी कि आप उत्तमोत्तम आयुर्वेदिक दवाइया तैयार करके वैद्य समाज को देते। पर ठीक इसके विपरीत आप अङ्गरेजी दवाओ का कारखाना चला रहे हैं। वे मुझे अपने कक्ष मे ले गये और कहा कि आप यहा जो औषधिया देख रहे हैं वे आयुर्वेदीय हैं शास्त्रीय पद्धति से समुचित साधनो से निर्मित ई पर उन्हे कोई खरीदने वाला नही है। क्योंकि उनसे कम दामों पर बडी-बडी कम्पनिया अपनी दवायें बेच रही है। इसके कारण मुझे लाखो का घाटा हुआ है। इसकी पूर्ति के लिये मैंने अगरेज़ी दवा बनाने का कारखाना खोला है जिसने पहले ही साल में मेरा आयुर्वेद दवाओ का घाटा पूरा कर दिया है। अब बताइये हम क्या करें। आप चाहें तो लागत मूल्य पर मेरी आयुर्वेद दवाओ को ले जाइये और सुविधानुसार पैसे भेज दीजिए। मैं निरुत्तर था।

बहुमूल्य और कठिनाई से मिलने वाले द्रव्यो से दवाओ का निर्माण सरकारी फार्मेसियों में

किया जाकर कम से कम मूल्य मे उसे बाजार मे बेचने का प्रयत्न होना चाहिए ताकि वैद्य को आवश्यक दवा आराम से मिल सकें। निर्माण के समय उन पर पूरा नियन्त्रण भी जरूरी है।

जो लोग सामान्य दवाओ का चूर्ण कूट कर पैक कर बेचते हैं उन्हे कुछ सुविधा देनी चाहिए। कच्चा स्टोर, पक्का स्टोर, निर्माण कक्ष, प्रांगण, जल आपूर्ति कक्ष, पैकिङ्ग व्यवस्था, आफिस, श्रमिकों की सुविधा पर तो पूरा-पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए पर बेकार के प्रतिबन्धों से उन्हें मुक्त रखना चाहिए। जटिल योगो के निर्माण मे शोधित द्रव्यो और भस्मो आदि की खरीद की छूट बड़े कारखानो से लेने की सुविधा दी जानी चाहिए। सस्ती दर पर सरकार को छोटी कम्पनियो को पैसा भी उपलब्ध कराना चाहिए। पूरे समय तक कार्य करने वाले निष्णात वैद्यो की नियुक्ति पर जोर देना चाहिए।

आयुर्वेद फार्मेसियो को अच्छे निर्माता मिल सकें इसके लिए आयुर्वेद फार्मेस्युटिकल स्नातक स्तरीय पाठ्यक्रम का सृजन किया जाना चाहिए। ऐसा एक पाठ्यक्रम गुजरात मे राजपीपला में चलता था पर पता नही वह क्यों बन्द कर दिया गया। सरकार को चाहिए कि वह ऐसे पाठ्यक्रम के लिए कम से कम एक-एक वैद्य को भेजने के लिए हर स्वीकृत फार्मेसी के मालिकों से अनुरोध करे और उसके खर्च में भागीदार बनावे। इससे भेषजो के चयन और भेषजकल्पो के निर्माण में उच्चस्तर की उपलब्धि कुछ ही वर्षों में की जा सकेगी। उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेद विकास सलाहकार समिति ऐसे पाठ्यक्रम के लिए अपनी सलाह यू० पी० की सरकार को देगी ऐसा मेरा विश्वास है।

आयुर्वेद रिसर्च के लिए न तो प्रादेशिक सरकार पर और न केन्द्रीय सरकार पर पैसा है। उनका पैसा ऐलोपैथी के लिए है यह सर्वविदित है। वोटो की राजनीति के कारण कुछ सिक्के इस ओर फेंकने वाली सरकारें हैं। राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ का उद्घोष देश भर में हो रहा है। इसके वार्षिक खर्च के लिए रुपये स्वीकार किए गए हैं १० लाख। इससे एक छोटा सा कार्यालय भी चलाना कठिन होगा।

केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसन्धान परिषद् के बजट में कटौती की गई है। आयुर्वेद का बजट सर्वत्र ढीला ढाला है यानी आयुर्वेद के लिए किसी सरकार के पास पैसा नहीं है।

एक और नई बात जो मैं देख रहा हू वह है किसी भी वैद्य के किसी पत्र का उत्तर मन्त्रियो द्वारा न दिया जाना। मध्यप्रदेश की पटना सरकार को मैं कई पत्र दे चुका। किसी का कोई उत्तर नहीं है। कल्याणसिंह जी उत्तरप्रदेश के मुख्य मन्त्री हैं जो किसी भी पत्र का उत्तर देने की स्थिति में नही हैं। केन्द्र के मन्त्रियो का भी यही हाल है। १५ पैसे के पोस्टकार्ड पर प्राप्ति सूचना तो दी ही जा सकती है। आप कोई सुझाव देना चाहे तो भी उसकी पहुच नही मिलती जबकि विदेशो से विदेशी दूतावासो से उत्तर आ जाते हैं। हम अपनी कार्य व्यवस्था को सुधारें ताकि देश को आगे बढ़ाने का कार्य द्रुतगति से किया जा सके। मेरी नेत्रज्योति मन्द पड़ती जा रही है उसे सही करने में प्रयत्नशील हू। प्रतिदिन ५-६ घटो का आयुर्वेद अध्ययन और ४-५ घटो का रोगी सेवा कार्यक्रम शिथिल प्रायः है। समस्त शरीर मे अङ्गमर्द व्याप्त है इसलिए इस सम्पादकीय मे कुछ थोडे से बिन्दुओ पर ही अपनी लेखनी का उपयोग कर पाया हू। आगे हरि इच्छा। वाग्भट के इस उद्धरण के साथ मैं अपनी इस टिप्पणी को समाप्त कर रहा हू—

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम् ।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम् ॥

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी।

शुभ-कामनाएँ

आयुर्वेद वाचस्पति, आयुर्वेद शिरोमणि, पीयूषपाणि चिकित्सक

वैद्य श्री गुलराज शर्मा मिश्र का

शुभ–आशीर्वाद



आदरणीय महोदय,

यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि आप सुधानिधि के वनौषधि रत्नाकर के विशेष सम्पादक हैं। यद्यपि वनौषधि रत्नाकर विशेष औषधियो के ज्ञान केलिए वहुत ही उच्च स्थान रखता है, इसका कार्य इतना सहज नही है, किन्तु आपके सम्पादन कार्य मे यह अनेक विशेषताओं के साथ परिपूर्ण होगा।

"मुडे-मुडे मतिभिन्ना तुण्डे-तुण्डे सरस्वती" के अनुसार यह कार्य बहुत ही कठिन है, किन्तु आप जसे सुयोग्य विद्वान् के हाथ मे पडकर अनेक विशेषताओ को यह अपने अन्दर सग्रहित करके वैद्य समाज को वहुत ही उपकृत करेगा। ऐसी मैं आशा करता हू और आपसे भी विशेष आग्रह व निवेदन करता हू कि समय सूचकता को ध्यान मे रखते हुए "वनौषधि रत्नाकर" इस शब्द को समक्ष रखकर इसकी विशेषता को ध्यान मे रखते हुए आप अपने नाम के अनुरूप इस अक का सम्पादन करेंगे। ऐसी मैं शुभाकाक्षा और आशीर्वाद प्रेषित करता हू। सुधानिधि के सम्पादको ने यह कार्य आप ही को सौंपने का अर्थ भी यही है कि आप इस कार्य को सुन्दर स्वरूप मे सम्पन्न कर सकेंगे यही अभिलाषा उनके समक्ष भी रही है।

—श्री गुलराज शर्मा मिश्र

सरस्वती सदन, नई शुक्रवारी, नागपुर (म० रा०)

वैदुष्य और चिकित्सा मे निष्णात, आयुर्वेद के प्रबल पक्षधर-प्रसारक

वैद्य श्री सुरेश चतुर्वेदी का

शुभ-कामना सन्देश

प्रिय महोदय

आपका दिनाक १३-२-८२ का कृपापत्र प्राप्त हुआ तदर्थ धन्यवाद। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि सुधानिधि का आगामी अक वनौषधि रत्नाकर के रूप मे प्रकाशित हो रहा है।

आज व्यक्ति अनेक आधुनिक औषधियो के दुष्परिणामो से त्रस्त है और नानाविधि नित नवीन रोगो के काल मे ग्रसित होता जा रहा है। ऐसी स्थिति मे अनन्त काल से प्रचलित ये वनस्पतिया जो कि प्रकृति की अनोखी देन है, त्रस्त एव रोग ग्रस्त व्यक्तियो के लिए उपयुक्त सिद्ध हो सकती हैं। आज इन वनस्पतियो की जानकारी भी ठीक प्रकार से न होने के कारण और इनके प्रयोगो का सम्यक् ज्ञान न होने के कारण इस दिशा मे भी एक सकट पैदा हो रहा है।

आप विश्व वनस्पति प्रयोग एव वनस्पति चिकित्सा की ओर जिज्ञासा भाव से आकृष्ट हैं। अत सुधानिधि का यह विशेपाक इस ज्ञान को पुन प्रकाश मे लाने और उसके प्रचार प्रसार में सहायक सिद्ध हो सकता है।

इस सामयिक अंक के लिए मेरी अनेकानेक शुभकामनायें स्वीकार करें।

—वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

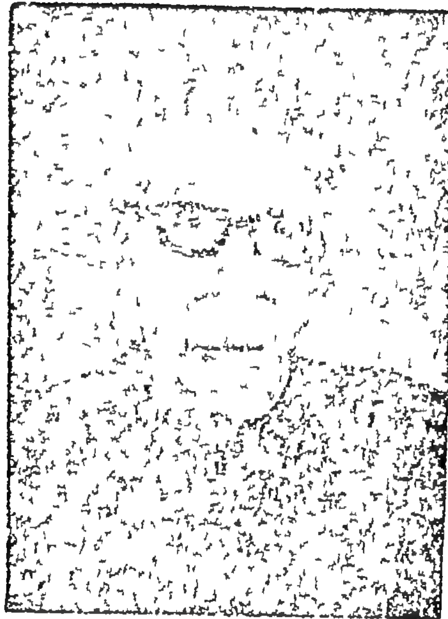
शक्ति चरनसिंह कालोनी, एम० वी० रोड,

अधेरी (पूर्व) वम्बई

आचार्य प्रियव्रत शर्मा

एम० ए० (द्वय) ए० एम० एस० साहित्याचार्य
भू० पू० निर्देशक स्नातकोत्तर आयुर्वेदीय संस्थान
भू० पू० प्रमुख-आयुर्वेद संकाय
भू० पू० विभागाध्यक्ष-द्रव्य गुण विभाग,
भू० पू० अध्यक्ष-चिकित्सा इतिहास परिषद्
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

३८, गुरुधाम कालोनी,
वाराणसी–१०



प्रिय श्री गर्ग,

आपका पत्र प्राप्त हुआ। यह जानकर प्रसन्नता हुयी कि सुधानिधि इस वर्ष वनौषधि रत्नाकर शृङ्खला का चतुर्थ भाग प्रकाशित करने जा रहा है। वैद्य गोपीनाथ पारीक के सम्पादन में प्रकाशित इसके पूर्व ३ भाग बहुत उपयोगी प्रकाशित हुये है मुझे विश्वास है कि उसी परम्परा का निर्वाह करते हुये यह चतुर्थ भाग भी प्रकाशित होगा। सुधानिधि की विशेषांक परम्परा सदैव से अद्वितीय रही है।

मै इस अङ्क की सफलता के लिए हार्दिक शुभ-कामनाए प्रेषित करता हूं।

भवदीय
प्रियव्रत शर्मा

समर्पणम्—



आचार्य डा० श्री नारायणशास्त्रि काकरमहाभागा.

विज्ञेषु प्रथितोऽस्ति योऽवनितले शास्त्रप्रकाशे रविः
वक्तृत्वे कवनेऽथ लेखनविधौ ख्यातोऽद्वितीयश्च यः ।
साहित्याम्बुधिमन्मनोन्नतगतिः सौहार्दहृद्यः सदा
सोऽयं संस्कृतसेवको विजयते श्रीकाकरः मे गुरुः ।।
गुरो ! कृपाकटाक्षात् ते प्रारब्धं लेखनं मया ।
अङ्को वनौषधेः सोऽयम् अर्प्यते ते कराब्जयोः ।।

—चरणारविन्दचञ्चरीक. गोपीनाथ

जटामांसी या जटिला

Nardostachys Jatamansi DC

[नार्डोस्टैकिस जटामांसी डी. सी. फै.—वैलेरियनेन्सी]



जटा, जटामासी, जटिला नाम से विख्यात यह सुगन्धित द्रव्य आयुर्वेद और यूनानी द्रव्यगुण शास्त्र का एक वरद् द्रव्य है। चरक, सुश्रुत और वाग्भट द्वारा रचित ग्रन्थो मे मासी और जटिला दोनो शब्दो का प्रयोग किया गया है। जटामासी भी तीनो मे मिलता है। जटा शब्द जटामासी के पर्याय के रूप मे चरक ने नहीं लिखा। भूतकेशी का उल्लेख सुश्रुतसहिता उत्तरतन्त्र सूत्रस्थान अध्याय ६ मे एक बार किया गया है। चरकसहिता मे यह शब्द नही है। अष्टागहृदय मे इसका दो बार उल्लेख किया गया है।

सुश्रुतसहिता के कल्पस्थान के अध्याय ६ मे श्लोक १४ से १७ तक महासुगन्धि नामक एक अगद-राज का वर्णन किया गया है। अभी कुछ दिन पूर्व हाथरस के पास एक गाव मे एक सोलह वर्ष का किशोर अपने खेत मे पानी लगा रहा था कि उसने देखा कि खेत के अन्दर एक छेद मे पानी जा रहा है। उसने उस पर अपना पैर जमा दिया कि पानी उस छेद मे न जाय। पर कुछ पानी उसमे जा चुका था। छेद के अन्दर काला साप था। वह बाहर निकलने को व्याकुल था। उसने पैर के तलवे मे काट लिया जिससे लडका वही गिर गया और साप निकल गया। उस बच्चे की रक्षा के लिये एक बायगी आया और मन्त्र पढ-पढ कर साप को बुलाने लगा। साप आ गया और खडा हो-हो कर फुसकारने लगा। बायगी ने उससे कहा कि वह लडके का विष चूसे। साप ने उसकी बात नही मानी और उलटा उसे काट लिया जिससे उस बायगी का प्राणान्त हो गया। दूसरा बायगी वहा आया और बोला कि साप से ऐसा कराना कभी खतरे से खाली नही होता। तथा ऐसा करने से पहले उसे एक दवा खा लेनी चाहिये थी। मैं इस दवा केबारे मे सोचने लगा और मेरा ध्यान आयुर्वेद के अगदतन्त्र की ओर गया जिसमे सुश्रुतसहिता के कल्प-तन्त्र के छठे अध्याय मे वर्णित अगद की ओर गया जिसका उल्लेख मैंने ऊपर किया है। इस अगद के गुणो मे एक श्लोक यह भी है—

एषोऽग्निकल्प दुर्वार क्रुद्धस्यामिततेजस ।
विष नागपतेर्हन्यात् प्रसभ वासुकेरपि ॥२५॥

अर्थात् यह अग्निकल्प दुर्वार और क्रुद्ध अमित तेजस्वी और क्रोधी नागो के राजा के विष को भी नष्ट कर देता है। यहा तक कि भयकर वासुकि के विष को भी यह हर लेता है।

इससे पता चलता है कि नागो के काटने से रक्षा के लिये यह विद्या इस देश मे अनन्तकाल से प्रचलित थी। इसके द्वारा चिकित्सा करने वाले चिकित्सक अपने सहायको के द्वारा इलाज करते रहे होगे। कालान्तर मे देश गुलाम बना और यह सहायक ही बायगी बन कर स्वतन्त्र रूप से इस विद्या का उपयोग करने लगे।

उपर्युक्त अगद मे जिन द्रव्यों का उल्लेख किया गया है उनमे एक है नलद इसे डल्हण उशीरभेद लिखता है। परन्तु हमारे गुरुदेव ठाकुर बलवन्तसिह और उनके शिष्य और सहयोगी और हमारे मित्र डा० कृष्णचन्द्र चुनेकर द्वारा लिखित ग्लोसरी मे नलद को मासी ही स्वीकार किया है जो हमारा भी

अभिमत है। उन्होने इसके वैज्ञानिक नाम नार्डस को नलद मे ही लिया हुआ माना है। पूना मे प्रकाशित धन्वन्तरि निघण्टु राजा निघण्टु वर्णानुक्रमिणका मे नलदम् और नलदा को मासी ही माना है। आश्चर्य एक यह भी है कि आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने अपने प्रिय निघण्टु मे जटामासी के पर्यायो मे नलद नहीं दिया—

जटामासी भूतजटा जटिला च पलङ्कपा।
हिमवद् गिरिप्रान्तेषु शीतलेषु प्रजायते ॥३५॥

जटामासी का एक पर्याय प्रियव्रत जी ने पलकपा दिया है जिसे वृहत्तरी ग्लौसरी केवल गुग्गुलु का पर्याय ही देती है। यही नही जहा पलकपा और गुग्गुलु दोनो एक साथ आये है वहा भी वह इसे गुग्गुलु भेद ही स्वीकारती है मासी नही।

उक्त अगद मे एक शब्द जटा तथा दूसरा मासी आया है। जटा को डल्हण द्वितीया मासी लिखकर उसके भेद की ओर इगित करता है। जिसे ग्लौसरीकारो ने गन्धमासी, माना है। इसी अगद मे मासी का पृथक् उल्लेख भी किया गया है। इस प्रकार नलद, जटा तथा मासी ये तीनो एक ही योग मे लिखे जाने से भ्रम तो होता ही है। आजकल हम मासी को तीनगुना डालकर काम चला सकते है। राजनिघण्टु के चन्दनादिवर्ग मे मासरोहिणी के प्रसग मे एक अन्या मासी के जो पर्याय दिये है वे वालछड या जटामासी की ओर भी इगित करते हैं—

विकसा मासरोही च ज्ञेया मासरुहा मुनि।
अन्या मासी सदामासी मासरोही रसायनी॥
सुलोमा लोमकरणी रोहिणी मासरोहिका ॥१३६॥

मांसरोहिणी को आजकल सोयमिडा फैब्रीफ्यूजा ए-जस माना जाता है।

धन्वन्तरीय निघण्टु में पृष्ठ १०४-५ पर मासी (नलदम्) गन्धमासी (मासी विशेष) तथा आकाश-मासी (मासी विशेष) इन ३ का वर्णन चन्दनादिवर्ग के अन्तर्गत किया गया है। नलदा जिसका अन्य नाम है उसके पर्यायो मे कृष्णजटा, जटा, जटिला, पेशी तो है पर पलकपा नही है। गन्धमासी को केशी, भूत-जटा, भूतकेशी, लोमशा, पूतना नाम दिये हैं। आकाशमासी को निरालम्बा मानकर उसे एक पराश्रयी द्रव्य माना गया है।

मासी का एक अन्य नाम भूतकेशी है। यह शब्द चरकसहिता मे नहीं है। सुश्रुत और वाग्भट ने इसका उल्लेख किया है।

गुरुदेव ने एक सिद्धान्त प्रतिपादित कर इन तीनो या अन्य अनेक को जटिला या केशी या पूतनाकेशी या जटा के अन्दर लेना स्वीकार किया है। उनका कहना है कि पहाडो की अनेक वनस्पतिया ग्रीष्मकाल मे उग आती हैं। जाडो मे उन पर वर्फ पडकर उन्हे ढक देता है। इसके कारण उनकी जडे तथा पत्तियो के अवशिष्ट भाग पतले रोमो के रूप मे रह जाते हैं। वर्फ पिघलने पर वे वहुलोमश और जड वाले दीखते हैं जैसे जटामासी, गन्धमासी जटिला आदि। उन्होने इस वर्ग मे नार्डोस्टैकिस, सैली-नियम और कोरीडैल्स को गिनाया है। सम्भवत इस अगद मे उन सभी को लिया जाता हो इसलिये वहा जटिला या जटा, मासी और नलद तीनो साथ-साथ दिये है।

इस टिप्पणी को लिखते समय कई वडे विघ्न आये हैं। उनके उल्लेख करने से शताब्दियो वाद प्रधानमन्त्री पी० वी० नरसिहराव के काल का थोडा दिग्दर्शन भी हो जायगा। इस काल मे आतकवाद जोरो पर है। सिख आतकवादी पजाव मे और मुसलमान आतकवादी काश्मीर मे हिन्दुओ का सहार करने में लगे हुए हैं। अभी कुछ दिन पूर्व ही पजाब में एक ट्रेन को रोककर उसके [illegible] यात्रियों को उतार-

कर ५१ नर-नारी-बाल-वृद्धो को पाकिस्तान से प्राप्त और चीन में निर्मित ए-के ४७ नामक रायफलो से भून दिया गया। काश्मीर से २॥ लाख हिन्दू परिवारो को बाहर फेंक दिया गया।

प्रकृति का कोप भी इस समय कम नही है उत्तरकाशी और चमोली जिलो मे भूकम्प ने हजारो मकान और लाखो आदमियो को धरती के अन्दर सुला दिया है।

आजकल उत्तर प्रदेश मे भारतीय जनतापार्टी का राज है जो राममन्दिर बनाने के लिये लगी हुई है, बाबरी मस्जिद को उखाडकर। मुख्यमन्त्री कल्याणसिंह है। यहा आजकल बिजली का अकाल छाया हुआ है। इसी कारण मे अपने चिकित्सालय का काम रोककर यह टिप्पणी लिखने को बाध्य हुआ हू। बिजली मन्त्री हैं लाल जी टडन जिनको मैं समय-समय पर कविताएं भेजता रहा हू। पहली कविता यह है—

नगर हाथरस पर गिरी अब बिजली की गाज।
मृगनयनी के दरस को तरस गये महाराज॥
ग्यारह तक आवति नही चार बजे नित जाय।
पढिबे लिखिबे के बिना टडन मन अकुलाय॥

थोडा सुधार होकर फिर वही गडबड शुरू होने पर मैंने फिर लिखा—

जल जल के बुझ रहा है यह बिजलिए चिराग।
यह क्या मुजायका है श्री टडन बताइये॥

बाद मे तो हाथरस अन्धकार मे डूब गया और व्यापारी किशोरी लाल की अधेरे मे हत्या करदी गई और श्री दिनेशचन्द्र बौहरे के यहा डाका पड गया। इससे जन-आक्रोश ३ जनवरी १९९२ को इतना बढा है कि बिजली दफ्तर मे आग लगादी गई और रास्ते जाम कर दिये गये। तब कुछ चेत हुआ और मैंने फिर लिखा—

पिट पिट के जलाते हो ये बिजलिये चिराग।
क्या माजरा है किबला कुछ तो बताइये॥

उसी दिन एक और दुर्घटना घटी। अलीगढ मे मेरी बहन भगवानदेवी पाराशर का घनश्यामपुरी मे स्वर्गवास हो गया। वे मुझसे ७ वर्ष बडी थी और ८१वे वर्ष मे चली गई। उन्होने मुझे हाईस्कूल और इण्टर-मीडिएट तक अपने पास रखकर पढाया था और हिन्दूविश्वविद्यालय के मेरे आयुर्वेदाध्ययन मे बहुत मदद की थी जिसे मेरा रोम रोम स्मरण कर रुदन कर रहा है। वे चली गईं एक याद जिन्दा छोड गई हैं। इसी समय सुधानिधि के लिए बुझती आखो से टिप्पणी लिखने का कार्य प्रिय गोपालशरण गर्ग करने को व्यग्र है क्योकि प्रैस मे विशेषाक का कार्य इस टिप्पणी से ही शुरू होता है। पिछले अङ्क के समय तो मैं बहुत बीमार था और कुछ भी नही लिख सका था। आखो मे मोतियाबिन्द है जिसका आपरेशन शीघ्र ही मथुरा के देश प्रसिद्ध नेत्र सर्जन डाक्टर रमेशचन्द्र कुलश्रेष्ठ एम० एस० को करना है जिसके लिए डा० गोपालशरण गर्ग ने व्यवस्था की है। जब अलीगढ से लौटा तो हाथरस को बन्द पाया और अन्धेरे मे डूबा हुआ। अत. भगवान् भास्कर के प्रकाश मे जब पौषी अमावस्या विश्राम ले चुकी है और प्रशान्त-महासागर के देशो मे सूर्यग्रहण समाप्त हो चुका है मैं ६ जनवरी को इस टिप्पणी को पूर्ण कर रहा हू १० बजकर ३८ मिनट पर।

जटामांसी का पादप-रासायनिक ज्ञान—इस विषय पर शेषाद्रि तथा सूद, पैसनेल और आबरी-सन, शम्भाग, शास्त्री एस. डी., रुकर, माहेश्वरी, हाइरोज और होर्स्टर ने अपने अनुसन्धानों से यह बत-लाया है कि नार्डोस्टैकिस जटामासी तथा सेलिनम वैजाइनेटम के मूलो के विश्लेषण से पता चला है कि सेलि-नम वैजाइनेटम (जिसे मासी के प्रतिनिधि के रूप मे प्रयोग किया जाता है) के मूलो मे कुमारिन सैलिना-

इडिन, ओरोसैलौल, और ऐंजिसिलीन पाये जाते हैं। जबकि जटामासी के मूलो मे कुमारिन का अभाव होता है। उसमे जटामासोन तथा ल्यूपिओल (कैमिकल रिसर्च यूनिट दिल्ली) मिलते हैं। पूरे जटामासी के पौधे मे एक ऐसेंशियल तैल पाया जाता है। इस तैल मे एक प्रकार का अल्कोहल तथा उसका आइसो-वैलेरिक ऐस्टर होता है। इसमे एक सतृप्त द्विचक्री सैस्क्वीटर्पीन कीटोन जटामासोन तथा जटामासिन नामक ऐसिड पाये जाते है। ऐरिस्टोलिन, कैलेरीन तथा बीटा–मालियन, एक नवीन टर्पिनोइड जटामासिन, ओरोसिलौल, ओरोसिलोन, डाईहाइड्रोजटामासीन, ऐंजेलिक ऐसिड, जटामासीनोल, सैसेलिन, जटामासी-नोन, आल्फा-पाइनिन, बीटा पाइनिन, Δ^{3}–कैरिन, बीटायूडैस्मोल, ऐलैमोल, बीटा–सिटोस्टरौल, जटा-मासीनौल जटामाससिन तथा तैल से ऐंजेलिसीन प्राप्त होती हैं। और भी अनेक रासायनिक द्रव्य जटा-मासी से मिलते हैं इन्हे केन्द्रीय आयुर्वेद एव सिद्ध अनुसन्धान परिषद् नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित फाइटो कैमिकल इन्वैस्टीगेशन आफ सरटेन मेडिसिनल प्लाण्ट्स यूज्ड इन आयुर्वेद मे विस्तार से देखा जा सकता है। पर इन टेढे तिरछे विविध नामो के ज्ञान से आयुर्वेद का क्या लाभ होगा इसे आज तो समझना मुश्किल ही है। हम यह देख रहे हैं कि इस ज्ञान से जटामासी से कुछ नई ऐलोपैथिक दवाए बनाकर भारत के बाजारो को पाटा जा सकता है। पर उनके प्रयोग पर ड्रग ऐक्ट पाबन्दी लगा कर उन्हे वैद्यो द्वारा प्रयोग से रोक भी सकता है।

अच्छा हो इस कार्य हेतु आयुर्वेद का पैसा न लगा या जावे बलिक उसे निघण्टु-ग्रन्थो दिये गये नीचे लिखे वर्णन को सिद्ध करने या नकारने के लिए आगे रिसर्च की जावें—

भावप्रकाश—मासी तिक्ता कषाया च मेध्या कान्तिबलप्रदा।
स्वाद्वी हिमा त्रिदोषास्र–दाहवीसर्पकुष्ठनुत् ।। ८९ ।।

इसके अनुसार हमारे गवेषक मासी का ब्रेन पर क्या प्रभाव पड़ता है, कौस्मेटिक (शृंगारप्रसा-धक) के रूप मे इसे कैसे दिया जावे और इसकी विसर्प (मैं इसे हर्पीज मानता हू) पर कितना और कैसे लाभ करती है उसकी खोज की जावे। आज हर्पीज की कोई सफल दवा किसी पैथी के पास नही है हम इस पर गौर करें। मैं CCRAS की गवर्निंग बौडी का भारत सरकार द्वारा नामजद सदस्य था और अपना पैसा खर्चकर मैंने झासी, गवालियर, नागपुर, बम्बई, पुणे, जामनगर, अहमदाबाद तथा जयपुर के रिसर्च केन्द्रो का दौरा किया। कई जगह हवाई जहाज से भी यात्रा की तथा इन जगहो पर बड़ी तत्परता से और ४-४ माह से बिना वेतन कार्य करते हुए तपस्वी वैज्ञानिको की सेवाओ का प्रत्यक्ष जायजा लिया। पर इस सबका परिणाम यह निकला कि मुझे अगली गवर्निंग बौडी मे से हटा दिया गया। यह कार्य सचिव श्री निवासन और स्वास्थ्यमन्त्री शकीलुर्रहमान के कार्यकाल मे किया गया था।

धन्वन्तरीय निघण्टु—मासी स्वादुकषायास्यात् कफपित्तास्रनाशनी।
विषमारुतहृद्बल्या त्वचा कान्तिप्रसादनी ।।४६।।

यहा यह खोजना चाहिये कि मासी का विषघ्न रूप क्या है? क्या यह यकृत् की क्रिया को सुधारती है और उसके डिकोजीकेशन के गुण को बढाती है। उसने विषघ्नी तो माना पर वीसर्पनाशिनी नही लिखा। क्या यह हर्पीज के वाइरस पर कार्य नही करती? खोजना होगा।

मदनपाल निघण्टु—मासी हिमा त्रिदोषास्र–दाहवीसर्पकुष्ठजित् ।।३८।।

यहा पर राजा मदनपाल ने इसे कुष्ठजित माना है। क्या त्वचा के फगसजन्य रोगो को दूर करती है या सिध्मादि कुष्ठो को नष्ट कर कान्तिदाता है इसे जानने के लिए प्रयोग किये जाने चाहिए।

कैयदेव निघण्टु—मासी स्वाद्वी हिमा तिक्ता तुवरा बलकान्तिदा।
त्रिदोषविष वीसर्प–दाहलोहितकुष्ठमुत् ।।८७१।।

इस वर्णन से ऐसा लगता है कि उसने अन्य निघण्टुकारो से सकलन कर सारे गुणो को वे जहा कही मिले इकट्ठे करके रख दिये है। और वैज्ञानिको को समन्वित अनुसन्धान के लिये एक योजना तैयार कर इसके प्रत्येक गुण को प्रमाणित करना होगा।

एक अमेरिकन बुकस्टाल पर १९८४ मे कॅलीफोर्निया मे मुझे एक भारत की छपी पुस्तक मिली। नाम है मेडिसिनल प्लाण्ट्स ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान। इसे लिखा है जे० एफ० दस्तूर ने, प्रकाशक हैं डी० बी० तारपुर वाला ऐण्ड सन्स एण्ड कंम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, ट्रैजर हाउस आफ बुक्स २१०, डा० डी नौरोजीरोड, बम्बई-१

इस पुस्तक के पृष्ठ ११८ पर ६५वे क्रमाक पर जटामासी का वर्णन किया गया है।

लेखक ने इसका स्थानीय नाम जटामासी ही दिया है और इसे वैलैरियनेसी VALARIANACEAE फॅमिली के अन्तर्गत माना है। इसके अग्रेजी नामो मे दो दिये हैं —इन्डियन स्पाइकनार्ड तथा इण्डियन वॅलेरीन। इसके विवरण मे इसे बहुवर्षायु क्षुप बतलाया है जो अशत भूमि के अन्दर और अशत भूमि के बाहर रहता है जिसकी मूल का तना भाग काष्ठीय होता है। यह मरी हुई पत्तियो की सूखी शाखा प्रशाखाओ से ढका रहता है। पत्तियो के ये अवशिष्ट भाग इसे लोमश रूप प्रदान करते है। इसके निचले भाग पर ये लोम नही पाये जाते। इन लोमो के कारण ही इसे केशी, भूतकेशी, जटा और लोमशा नाम मिले हैं।

यह हिमालय की हिमाच्छादित ऊचाइयो पर उगती है।

इस पुस्तक मे इसके उपयोग का सग्रह बहुत सुन्दर है। इसका कुछ अश हम नीचे इसलिये दे रहे हैं कि इससे यह आकलन किया जा सके कि उसमे से कितना लेखक ने निघण्टुओ के आधार पर लिखा है।—

१—यह हृद्य (कार्डियक स्टीम्यूलेंट) है।

२—यह श्वासक्रिया को सबल बनाती है (रॅस्पिरेटरी स्टीम्यूलेंट)।

३—यह वातनाड़ियो को बल प्रदान करती है (नर्वाइन टौनिक)।

४—सुगन्धित (ऐरोमैटिक) द्रव्य है।

५—यह वातानुलोमक (कार्मीनेटिव) द्रव्य है,

६—यह पाचक (स्टोमैकिक) द्रव्य है, (५ और ६ मिलकर इसे दीपन-पाचन सिद्ध कर देते हैं),

७—यह पिण्डकोद्वेष्टनहर (ऐण्टीस्पाज्मोडिक) द्रव्य है,

८—यह मूत्रल (डायूरैटिक) द्रव्य है;

९—यह आर्तवस्रावकर (इमेनागोग) द्रव्य है,

१०—यह स्रोतोरोध को दूर करता है (डी-औब्सट्रुऐंट)।

११—यह वैलेरियन (तगर) का प्रतिनिधि द्रव्य है।

१२—यह मानसिक क्षोभ, योपापस्मार, वातिक और आक्षेपकर विकारो को दूर करने मे बहुत ही उपयोगी सामान्य द्रव्य माना जाता है।

१३—स्त्रियो के रजोनिवृत्ति काल (मेनोपौज) के समय होने वाले विकारो मे लाभदायक सिद्ध होती है।

१४—यह डिलीरियमट्रेमेन्स की सौम्य अवस्था मे प्रयुक्त होता है।

१५—सूक्ष्म मात्रा मे यह एक ट्रेंकिलाइजर का भी काम करता है।

१६—इसे कोरिया (कम्प) कष्टार्तव (डिस्मेनोरिया) आध्मान (फ्लैच्यूलेन्स), बहुमूत्रता, कामला, पचन-संस्थान के विकार, हृदय की धुकधुकी (पैलपीटेशन आफ द हार्ट), श्वासनलिका शोथ (ब्रोंकाइटिस) तथा श्वसन-संस्थान के अन्य रोगो मे दिया जा सकता है।

१७—इसकी मात्रा इस ग्रन्थ के लेखक ने ३० से ४० ग्राम बतलाई है जो एक भयंकर भूल है। डा० दलजीतसिंह ने अपने यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान (निर्णयसागर प्रेस) मे इसकी मात्रा ३ से ४ माशे बतलाया है जो ३ से ४ ग्राम मानी जा सकती है। हिन्दुस्तान से बाहर विदेशो मे जाने वाली पुस्तक मे इतनी बडी भूल होना एक भयंकर अपराध ही माना जाना चाहिए। इस पुस्तक के प्रकाशक को किसी अधिकारी विद्वान् से पूरी पुस्तक का शोधन करवाकर ही प्रकाशित करना चाहिए था।

जटामासी के साथ सूक्ष्म मात्रा मे कपूर और दालचीनी डालने के लिये भी लेखक लिखता है।

नादकर्णी ने अपनी मैटीरिया मेडिका मे जो मात्राए दी है वे इस प्रकार है —

जटामासी का तैल–२ से ६ बूद तक, जटामासी का टिंक्चर या जलीय प्रवाही–१/२ से २ ड्राम जटामासी का इन्फ्यूजन–१ से २ औंस उसने इसके इन्फ्यूजन को वातिक शिरोरोग मे १ से २ औंस ३ बार तक देने की संस्तुति की है। कुलकर्णी ने जटामासी के चूर्ण की मात्रा १० से २० ग्रेन अर्थात् ५ से १० रत्ती अर्थात् ५०० मिलीग्राम से १ ग्राम की ही बतलाई है। दस्तूर को यह सब देखकर ही कलम चलानी चाहिए थी। उसने (कुलकर्णी ने) इसे सिर के बालो की वृद्धि और उनका पलितपन दूर करने के लिए भी उपयोगी माना है। वह इसका प्रयोग ग्रन्थिक्षय या प्राइमरी कम्प्लैक्स तथा बिच्छू के काटने पर भी करने के लिये लिखता है।

१८—दस्तूर की पुस्तिका मे इसे एक कृमिघ्न (एँथेलमिटिक) रूप मे प्रयोग करने को भी लिखा है। बच्चो के सूत्रकृमियो (थ्रैडवर्म्स) को नष्ट करने के लिए किसी विरेचन द्रव्य के साथ इसके इन्फ्यूजन को दिया जाता है।

१९—जटामासी का प्रयोग दस्तूर केश तैलो मे या केशप्रक्षालन के जल मे डालकर प्रयोग करने की सलाह भी देता है।

२०—दस्तूर की दृष्टि मे जटामासी के चूर्ण के स्थान पर उसके मूल से प्राप्त तैल को २ से ५ बूंद की मात्रा मे देना उचित बतलाया गया है।

जैसे हिन्दी मे आजकल घर का वैद्य और घरेलू दवाइयो पर ढेर सारी किताबे बाजारो मे उपलब्ध है वैसी ही अनस्टैंण्डर्डाइज्ड पुस्तिका के रूप मे ही यह पुस्तक लेनी चाहिए तथा शोध करके देखना चाहिए कि कहा तक इसके तथ्य शोध की तराजू पर खरे उतरते है।

२१—कुलकर्णी ने इसे लैप्रसी (कुष्ठ) नाशक माना है। पर आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने अपने प्रिय निघण्टु मे इसे कुष्ठहारिणी तो लिखा है पर इसका अनुवाद चर्मरोगो को दूर करने वाली बतलाया है। स्थिति भी यही है क्योंकि यह अभी तक मण्डूकपर्णी (सेंटेलाएशियाटिका) की तरह लैप्रसीहर सिद्ध नही हुई चर्मरोगो पर इसका स्थानिक प्रयोग कर देखना भी अभी शेष है।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी।

शारीराज्जायते व्याधिर्मानसो नात्र संशय ।
मानसाज्जायते वापि शारीर इति निश्चय ॥

—महा० शान्ति० १६/६

शरीर और मन का परस्पर गाढ एव प्रभावी सम्बन्ध होता है जिसे भगवान् चरक ने इस प्रकार व्यक्त किया है—"शरीर ह्यपि सत्त्वमनुविधीयते, सत्वञ्च शरीरम् ।" (चरक शा० ४/३६) । आधुनिकों ने इस मन एव शरीर के पारस्परिक क्रियावाद को "Inter action of body and mind" नाम दिया है । जीवन का आधार मन और शरीर की क्रियात्मक शक्ति का समन्वित रूप है । नोबल पुरस्कार विजेता एलेग्जी केरेल का कथन है कि "ससार मे जितने मनुष्य शारीरिक विकृतियो मे मरते है उससे कही अधिक की अकाल मृत्यु मनोविकारो के कारण होती है ।" आयुर्वेदीय वाङ्मय मे मनोवह स्रोतो का वर्णन संज्ञावह स्रोत, मनोबुद्धिवह सिरा, चेतनावह स्रोत, चित्तवह स्रोत, धीवह स्रोत इत्यादि अपरपर्याय शब्दो द्वारा किया गया है । अनेक मानसिक व्याधियो मे मनोवह तथा सज्ञावह स्रोतो की विकृति के लक्षण उपलब्ध होते है । इन विकृतियों को दूर करने वाले द्रव्यों में बहुत से सज्ञास्थापन द्रव्य भी है—"सज्ञा-ज्ञान स्थापयतीति सज्ञास्थापनम् ।" जो द्रव्य सज्ञा (चेतना) को स्थिर रखने वाले किंवा सज्ञानाश (बेहोशी) का नाश कर सज्ञा को पुन लाने वाले है सज्ञास्थापन कहलाते हैं । इन ऐसे द्रव्यों मे जटामासी प्रमुख हैं ।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह मासीकुल (वेलिरियनेसी) की वनौषधि है । भावप्रकाशनिघण्टु के कर्पूरादिवर्ग मे इसका वर्णन मिलता है । द्रव्यगुण-विज्ञान (प्रि० व्र०) के सज्ञास्थापन द्रव्यो मे इसका वर्णन किया गया है ।

नाम—

संस्कृत—जटामासी (जटायुक्त मासल कन्द वाली), भूतजटा, तपस्विनी (जटायुक्त होने के कारण), सुलोमशा (अधिक रोमो वाली), नलदा (नलगन्ध दहति—सुगन्धित) ।

हिन्दी—जटामासी, बालछड, बालछर, कनुचर ।

गुजराती—जटामासी, बालछडा ।

मराठी—जटामासी ।

तामिल—जटामासी ।

तेलगु—जटामासी, जटामासमु ।

कन्नड़—जटामासी, बहुतगध ।

मलयालम—जटामासी ।

कश्मिरी—भूतिजट्ट, कुकिलपोट ।

नेपाली—हसवा, नसवा, जटामासी ।

भूटानी—पम्पे, जटामासी ।

अरबी—सुबुलुनिब, सुबुले हिन्दी ।

फारसी—नारदे हिन्दी ।

अंग्रेजी—स्पाइकनार्ड (Spikenard) ।

लैटिन—नार्डोस्टैकिस जटामासी (Nordostachys Jatamansi) ।

प्राप्ति स्थान—यह ठडे जलवायु मे उत्पन्न होती है—"शीतस्थलेषु जायते ।" सुतरा यह हिमालय की प्रसिद्ध औषधि है । उत्तराखण्ड (हिमालय) मे यह ३००० मीटर की ऊचाई से लेकर ३८०० मीटर की ऊचाई तक पहाडी ढलानो पर प्राय ताली, किनकोलियारवाल पवालीकाटा, केदारनाथ, तुगनाथ आदि स्थानो पर सुलभ है । सिक्किम, भूटान, नेपाल, कुमाऊ आदि स्थानो पर यह पाई जाती है । कश्मीर मे भी यह उत्पन्न होती है ।

रासायनिक सघटन—मूल मे मुख्य सत्व के रूप मे पीताभ हरित, उडनशील, कर्पूरगन्धी २ प्रतिशत तैल होता है जो जल से हलका, हवा मे जमने वाला कटु-तिक्त होता है । इसके अतिरिक्त जटामासिक और जटामासोन नामक कार्यकारी तत्व पाये जाते है ।

वानस्पतिक परिचय—यह सरल बहुवर्षायु क्षुप है । इसका काण्ड ४-२४ इञ्च लम्बा होता है । मूलीय पत्र—६-८ इञ्च लम्बे और एक इञ्च चौडे होते हैं जो पत्रवृन्त की ओर सकुचित रहते हैं जिन पर अनुलम्ब नाडिया होती हैं । काण्डीय पत्र—१-२ जोडे होते हैं जो १-३ इञ्च लम्बे, अवृन्त, आयताकार या उपलट्वाकार होते हैं । पुष्प मुण्डक—१, ३ या ५ जिन पर इनके

गुलाबी या नीले फूलो के गुच्छे होते हैं। फल—छोटे (१/६ इञ्च लम्बे) गोल, उर्ध्वगामी श्वेत रोमो से आवृत होते है तथा जिन पर अडाकार, तीक्ष्णाग्र, दन्तुर वहिर्दल लगे होते हैं। मूल—काष्ठीय, लम्वे, दृढ, गहरे भूरे और शीर्ण पत्रवृन्तो के रक्तिम भूरे सूत्र गुच्छो से आच्छादित रहते हैं।

परीक्षा—

ससूक्ष्मकेशरा स्निग्धा मासी पिङ्गजटाकृति.।

जटामासी का बाजार मे मिलने वाला द्रव्य जटामासी के काण्ड का परिवर्तित मूल है। यह लम्बा शिफाकृति, भूसर वर्ण एव रोमावृत होता है। काण्ड मे पुष्पदण्ड भी पाये जाते हैं। आभ्यन्तर रचना मे यह सुषिर नलिकाकार प्रतीत होता है। यह वर्ण मे ईषत् पाडु वर्ण होता है। इस पर थोडी-थोडी दूर पर चक्राकार आवर्त दिखाई पडते हैं। जो पत्र वृन्तावरण के चिन्हावशेष के प्रतिरूप हैं। इस प्रकार इसमे छोटे-छोटे पर्व वनते गये है। पत्रवृन्त विशेष लगे रहने से यह स्थूल होता जाता है। जैसे-जैसे यह आगे-आगे वढता है आगे को पतला वनता जाता है। इसके चारो तरफ घने रोमावरण लगे होते हैं। ये लोम घने मोटे केश के आकार के होते हैं। रोम मृदु रूक्ष व वहु सख्या मे होते हैं।

काण्ड पर से लोमाकृति रचना को पृथक् करने पर इसका काण्ड मिलता है जो कि क्रमश प्रारम्भ से आगे को पतला होता है। ऊपर काण्ड पर पत्रावशेष के चिह्न पाये जाते हैं। व्यतस्तच्छेद लेने पर ऊपर पीला आवरण मिलता है उसके वाद कुछ मज्ज भाग होता है। आगे को सुषिरता रहती है। इसका प्राकृत वर्ण पीत धूम्राभ्र होता है। भग्न करने पर पीताभ दिखाई पडता है। —क्रियात्मक औषधि परिचय विज्ञान।

भेद—आयुर्वेद साहित्य मे तीन प्रकार की मासी का वर्णन मिलता है। वहुत से विद्वान् इन दो मासियो को जटामासी का ही भेद मानते हैं और वहुत से पृथक्। ये तीनो मासिया हैं—१ जटामासी—यह मासी के नाम प्रसिद्ध है। २. गन्धमासी और ३ आकाशमासी। जटामासी, गन्धमासी और आकाशमासी का पृथक्-पृथक् उल्लेख मिलने से तीनो को मासी का पर्याय मानना उपयुक्त नही ठहरता है। सुतरा ये तीनो द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं। जटामासी का वर्णन किया गया है। शेष दोनो का किंचित् वर्णन यहा किया जा रहा है—

गन्धमांसी—

संस्कृत नाम—गन्धमासी, केशी, भूतकेशी।

हिन्दी नाम—भूतकेशी।

लैटिन नाम—Selinum Vaginatum।

वानस्पतिक स्वरूप—यह सुगन्धित २ से ३ फुट तक लम्बी क्षुप जाति की वनौषधि है। काण्ड सीधा रोमश एव भगुर होता है। पत्र आद्यन्त कटे हुये वारीक गाजर के पत्र के समान होते हैं। पुष्प श्वेत वर्ण के गुच्छो मे शाखा एव प्रशाखाओ के अग्रभाग पर खिलते है। वीज वारीक चपटे सोया वीज समान होते है। मूल उग्र सुगन्धित एव भूमिगत काण्ड रोमश होता है। मूल ६ इञ्च से लेकर एक फुट तक होता है।

पुष्पकाल—जुलाई, अगस्त।

फल काल—पुष्पकाल के वाद।

प्रयोज्याङ्ग—भूमिगत काण्ड।

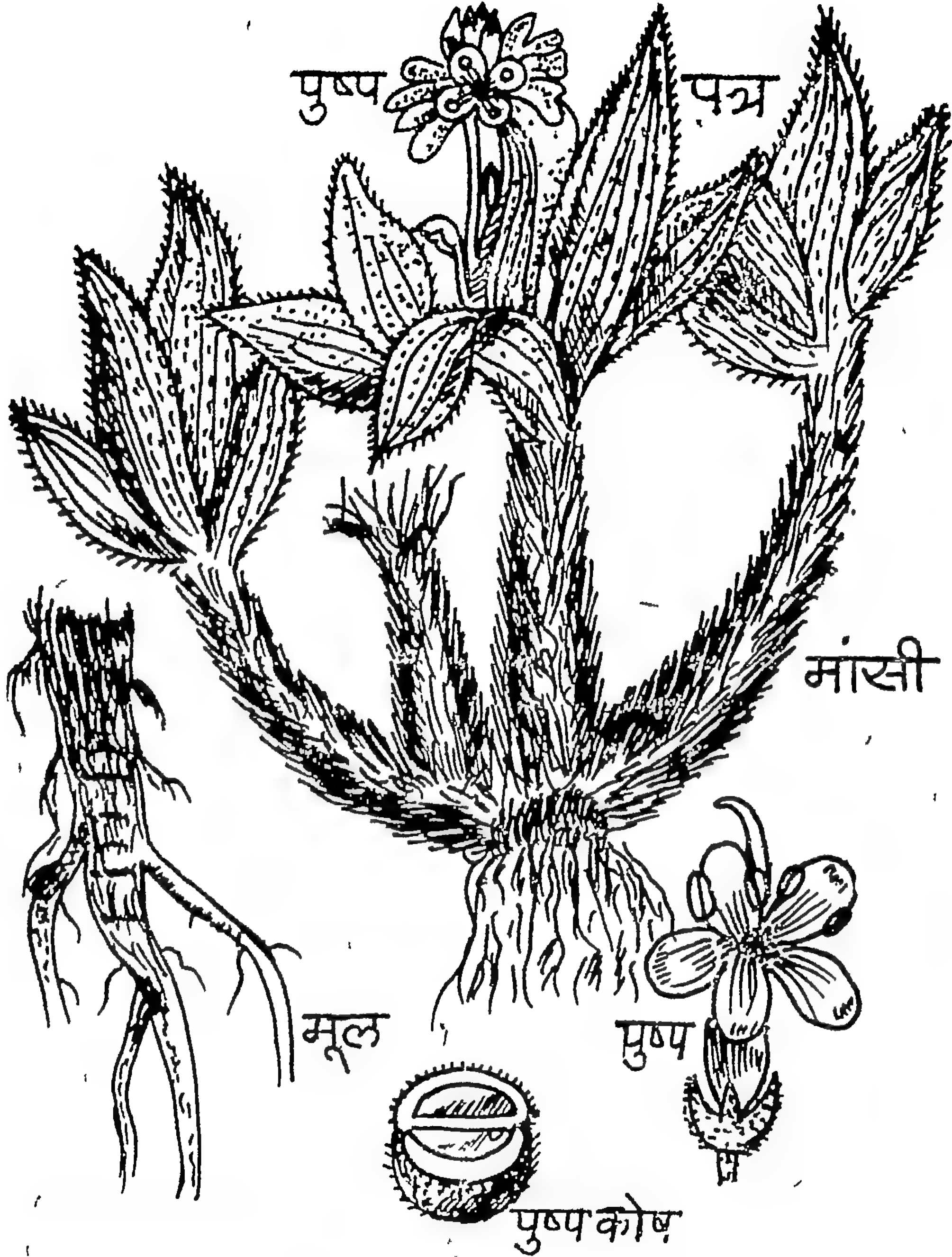
उत्पत्ति स्थान—उत्तराखण्ड हिमालय, यह क्षुप २,४०० मीटर की ऊचाई से लेकर ३,६०० मीटर की ऊचाई तक मैदानी घासो की ढलान् पर प्राय पवाली काठा, गगोत्री, केदारनाथ, जमनोत्री, मदमहेश्वर, तुगनाथ एव हिमाचल प्रदेश के उहल घाटी, बड़ा भगाल, पलाचक एव पर्वती घाटी (कुल्लू वनखण्ड) तीसारेंज (चम्वा वनखण्ड) आदि स्थानो पर सुलभ है।

उपयोग—तिक्त, शीतल, कफनाशक, रक्तपित्त को मिटाने वाली और विष, भूतवाधा और ज्वर मे लाभ पहुचाने वाली है। यह भी सौन्दर्यवर्धक है। इसकी क्रिया मज्जातन्तुओ पर विशेष होती है। भूतवाधा निवारणार्थ इसका धूपन एव नस्य के रूप मे प्रयोग किया जाता है।

आकाशमांसी—

संस्कृत नाम—आकाशमासी, मुरामांसी।

हिन्दी नाम—आकाशमासी।



जटामांसी [Nardostachys Jatamansi]

विभिन्न नाम : सं०—जटामासी, हि०, म०, गुज०—जटामासी, लैटिन—नार्डोस्टैकिस जटामासी ।

प्राप्ति स्थान : सिक्किम, भूटान, नेपाल, कश्मीर, कुमाऊ आदि ।

उपयोगी अङ्ग : मूल । **दोषशमन**—त्रिदोषहर ।

उपयोग : योषापस्मार, उच्चरक्तदाब, अनिद्रा, उन्माद आदि ।

प्रमुख योग : मांस्यादि क्वाथ, मास्यादि शार्कर, मास्यादि तैल आदि ।

लैटिन नाम—Selinum Tenuifolium ।

वानस्पतिक स्वरूप—यह सुगन्धित २ से ३ फुट तक लम्बी क्षुप जाति वनौषधि है। काण्ड सीधा शाखा प्रशाखाओ से युक्त होता है। पत्र अवृन्त सोफ पत्र के समान होते है। भूमिगत काण्ड रोमश एव मूल उग्र सुगन्धित होते हैं। पुष्पकाल–जुलाई-अगस्त।

प्रयोज्याङ्ग—मूल, पचाग।

उत्पत्ति स्थान–उत्तराखण्ड हिमालय मे यह क्षुप २७०० मीटर की ऊचाई से लेकर ३,८०० मीटर की ऊचाई तक प्राय किनकोलियारवाद (मिलगना घाटी) केदारनाथ, तुङ्गनाथ, गगोत्री आदि स्थानो पर सुलभ है।

—वैद्य श्री मायाराम उनियाल
(स० आयुर्वेद अप्रैल ७२)।

उपयोग—यह शीतल, शोथ को मिटाने वाली और सौन्दर्यवर्द्धक है। यह वातनाशक तथा भूतबाधा, रक्तपित्त, मसूरिका, नाडीव्रण और विस्फोट रोग मे लाभदायक है।

जटामासी का एक विदेश मे विशेष प्रचलित भेद Valeriana Officinalis है। जो भारत मे भी उत्तरी कश्मीर के सोनामुर्ग नामक स्थान मे ■ से ९ हजार फीट की ऊचाई पर तथा सिन्ध, वर्मा व सीलोन मे पाया जाता हे। इसे सुगन्धवाला, मुश्कवाला कहते हैं। यह तगर का ही एक प्रकार है। जिसका तगर के प्रकरण मे वर्णन किया जायेगा। इस मुश्कवाला और जटामासी को ही कई व्यक्ति बिल्लीलोटन कहते हैं। वस्तुत बिल्लीलोटन भिन्न है। यह बादरजबूया है जिसका लैटिन नाम मेलिसा आफिसनेलिस है। यह तुलसी कुल (Labiatae) की वनौषधि है।

जटामांसी के रस गुणादि

रस—तिक्त, कषाय, मधुर
+ + +
(कटु, तिक्त, कषाय-भाव॰, मधुर, कषाय-धन्व॰)

गुण—लघु, स्निग्ध- तीक्ष्ण।

वीर्य—शीत।

विपाक—कटु।

प्रभाव—भूतघ्न (मानसदोषहर), मेध्य।

दोषकर्म—त्रिदोषहर, विशेषत पित्तकफ शामक यह स्निग्ध होने से वात का, शीत व तिक्त, कषाय, मधुर होने से पित्त का एव तिक्त कषाय होने से कफ का शमन करती है।

प्रयोज्य अङ्ग—रोमशमूल, काण्ड, तैल।

मात्रा—२-४ ग्राम।

गुणप्रकाशक संज्ञा—नलदा।

हानिप्रद—समुचित मात्रा मे सेवन करने से यह पाचन-सस्थान, नाडी-सस्थान और मूत्रवह-सस्थान आदि पर उत्तम प्रभाव करती है किन्तु अधिक मात्रा मे सेवन करने पर विष प्रभाव प्रकट करती है। इसकी अधिक मात्रा से वमन, विरेचन होते है। पेट मे असह्य शूल होता है और वृक्को मे क्षोभ उत्पन्न होता है। इसकी अधिक मात्रा विशेषत. वृक्को को अधिक हानि पहुचाती है।

उपचार—विष प्रभाव को समाप्त करने के लिये निम्नाङ्कित उपाय करने चाहिये।

१ विष प्रभाव के लक्षण उत्पन्न होने से पूर्व मालूम होते ही आमाशय की शुद्धि एव रेचक औषधि को उपयोग मे लाना चाहिए।

२ शुद्ध, ताजी हवा का सेवन करना चाहिए।

३ हृदय को उत्तेजना देने के लिये कुपीलु व स्वर्ण के योगो का सेवन आवश्यक है।

४ इसके दर्पनाशक (हानि निवारक) द्रव्य-यथा-वशलोचन, कतीरा किंवा गुलरोगन हैं। इन्हें उपयोग मे लाना चाहिए।

प्रतिनिधि—तेजपात।

गुण-धर्म विवेचन—

सुरभिस्तु जटामासी कषाया कटुशीतला।
कफहृद् भूतदाहघ्नी पित्तघ्नी मोदकान्तिकृत्॥
—रा० नि०।

मांसी तिक्ता कषाया च मेध्या कान्तिवलप्रदा ।
स्वाद्वी हिमा त्रिदोषास्रदाहविसर्पकुण्ठनुत् ।।
—भा० प्र० नि० ।

जटामासी तु तुवरा शीतला कान्तिकारिका ।
वल्या कट्वी स्वादुतिक्ता कफान्तर्दाहपित्तहा ।।
विसर्प कुष्ठत्वग्दोषभूतवाधाज्वरापहा ।
दाह त्रिदोष वात च रक्तदोष विष हरेत् ।।
—नि० स० ।

मासी मेध्या तु तिक्ता स्यादनुष्णा वर्णकारिणी ।
रक्तवातहरी निद्रा जननी कुष्ठहारिणी ।।
—प्रि० नि० ।

मासी शीता कषाया द्युतिमतिवलदा
दोषविसर्प कुष्ठे । —सि० भे० म० मा० ।

तपस्विनी तिक्तकषायका हि
वीर्ये च शीता कटुका विपाके ।
त्रिदोषकुष्ठोदरशूलहन्त्री
मेध्या च वृष्या वलवर्द्धिनी च ।

आधुनिक आयुर्वेद जगत् के वादरायण श्री यादव जी महाराज का अनुभव है कि यदि रक्ताभिसरण ठीक न हो तो ऐसी स्थिति मे इसका उपयोग अतीव लाभप्रद है । हृदय की अनियमितता के कारण उत्पन्न हृद्द्रव (हृदय का अधिक धडकना) मे यह उपयोगी है । दिल्ली मे विद्युत द्वारा केन्द्र को उत्तेजित करके उत्पन्न की गई हृद्गति की अनियमितता पर इसके क्षाराभ का अध्ययन किया गया, यह इस अनियमितता को रोकने मे समर्थ है (वा० अनु० दर्शिका) । रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) पर, इसके सत्व का प्रभावशाली प्रयोग रोगियो पर उपादेय सिद्ध हुआ है । तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से अन्य कतिपय द्रव्यो की अपेक्षा, जटामासी और शखपुष्पी का रक्तचाप मे अधिक प्रभाव देखा गया है । एतावता यह कहा जा सकता है कि जटामासी वनौषधि हृदय चेतना स्थान से सम्वन्धित सर्वविध रोगो पर विजय प्राप्त कर तीनो दोषो को साम्यावस्था प्रदान करने मे सदैव समर्थ रहती है ।

सहस्राकुरशाखाग्र फलपल्लव शालिन ।
अस्य ससारवृक्षस्य मनो मूलमिति स्थितम् ।।

दश इन्द्रिया, प्राण, मन बुद्धि से सगठित सूक्ष्म शरीर ही स्थूल शरीर का नियन्ता किंवा प्रवर्तक है । इस सूक्ष्म शरीर मे भी मन का विशिष्ट स्थान होने से इसे मूल कहा गया है । इस मन के सम्पूर्ण व्यापारो का सम्वन्ध शरीर से है और यह शरीर त्रिदोपमय है सुतरा मन के व्यापारो मे भी त्रिदोष की कामुर्कता सिद्ध होती है । भगवान् चरक ने वातकलाकलीय नामक अध्याय मे मन का नियन्ता और प्रणेता वायु को कहा है । इसके अतिरिक्त पित्त और कफ का भी सम्वन्ध प्रदर्शित किया गया है । इनमे भी विशेपरूपेण प्राण, उदान और व्यान नामक वायु का, साधक, आलोचक नामक पित्त का एव अवलम्वक तर्पक नामक कफ का सम्वन्ध मन से अधिक है । जटामासी त्रिदोषहर होने से शारीरिक व्याधियो के साथ मानसिक व्याधियो मे भी उपयोगी सिद्ध हुई है । सर्वविध मानस रोगोपचार मे इसकी उपादेयता होते हुए भी यह विशेषरूपेण सज्ञानाश लक्षण युक्त रोगो मे अधिक प्रभावी है । यह कहना अधिक उपयोगी होगा कि यह मानस रोगो की प्रमुख औषधि है । अपस्मार, अपतन्त्रक, मूर्च्छा आदि रोगो मे जिनमे भूतावेश समान चेष्टा होती हैं यह भूतघ्न, रक्षोघ्न, सज्ञास्थापन होने से लाभप्रद सिद्ध हुई है । जामनगर के एक स्नातक ने जटामासी का मानसरोगो मे विशेषत अपस्मार मे प्रयोग का अध्ययन किया । प्रथम सप्ताह मे इससे दौरे कम होते है । दूसरे सप्ताह मे दौरो के साथ शिरोवेदना कम होती है और तीसरे-चौथे सप्ताह मे पूर्ण आराम हो जाता है । एतावता यह कहा जा सकता है कि क्षुब्ध हुए मनोवहस्रोतस को शान्त करने वाली औषधियो मे इसकी प्रधानता है ।

वाह्य परिस्थितियो से अप्रभावित, अत्यन्त सूक्ष्म, प्रगाढ़ तथा शास्त्रज्ञान को धारण करने वाली वुद्धि मेधा कही जाती है—मेधा सर्वतोऽव्याहता सूक्ष्मतया प्रगाढ़ा वुद्धि श्रुतधारिणी (डल्हण) । इस मेधा के लिए हितकारी द्रव्यो को मेध्य कहा जाता है मेध्य औषधिया वस्तुत मस्तिष्क किंवा नाडी-सस्थान वल्य कही जा सकती है । महर्षि सुश्रुत ने शारीरस्थान

अध्याय दश मे दूध पीने वाले (क्षीराहाराय) बालक के लिए जो घृत कहा है उसमे गौर सर्षप वचा, कुष्ठ, ब्राह्मी आदि के साथ जटामासी की भी योजना की है और इस घृत की प्रशस्ति मे कहा गया है कि—

तेनारोग्य वलमेधायूषि शिशोर्भवन्ति।

इस प्रकार मेध्य होने से यह स्मृतिह्रास आदि मस्तिष्क दौर्वल्य जनित लक्षणो मे उपयोगी है। सज्ञास्थापन, मेध्य, वल्य के अतिरिक्त यह उत्तम वेदना स्थापन भी है। धन्वन्तरि मासिक के अप्रेल ७६ के अङ्क मे विद्वद्वरेण्य श्री कनकप्रसाद व्यास आयुर्वेद वृहस्पति का एक महत्वपूर्ण लेख 'वेदना शामक की खोज मे विशिष्ट अध्ययन" प्रकाशित हुआ है। इस लेख मे आपने जटामासी घन के प्रयोग का उल्लेख करते हुए कहा है कि "यह घन आमवातिक शूल, गर्भाशयिक शुल, तनावपूर्ण मन स्थिति, अरति, अनिद्रा, आमवातिक ज्वर और अन्नद्रव शूल का उल्लेखनीय रूप से शमन करता है।" शिर-शूल की यह प्रसिद्ध औषधि है। इस निमित्त इसका वाह्य प्रयोग भी किया जाता है—

हरेणुनतशैलेयमुस्तैलागुरुदारुभि ।
मासीरास्नोरुवूकैश्च कोष्णोलेप कफार्तिनुत् ।।

—यो० र०

यह निद्राजनन होने से अनिद्रा मे भी अच्छा कार्य करती है। साराशत यह मनोदोषघ्न होने से मनोवहस्रोतो विकार को दूर कर स्थायी लाभ प्रदान करती है। इस निमित्त श्री जे० के० ओझा नागा द्वारा किया गया परीक्षण ध्यान देने योग्य है—'इसका प्रयोग मानसिक रोग जैसे-अपस्मार, मूर्च्छा, उन्माद एव कम्प से पीडित पर रोगियो मे किया गया। यह न्यूनतम मात्रा मे उत्तेजक तथा अधिक मात्रा मे अवसादक है इसमे कोई विषैला परिणाम नही दिखलाई दिया। धृति, स्मृति, निद्रा, भ्रम मूर्च्छा आदि के विकारो मे यह लाभ करती है (वा० अनु० दर्शिका)'।

दीपन, पाचन और अनुलोमन होने से यह अग्निमाद्य, आनाह, उदरशूल और आमाशय शोथ आदि रोगो मे लाभप्रद है। पित्तसारक होने से यकृच्छोथ और कामला को भी नष्ट करती है। पित्तामयजन्य अजीर्ण या मानसिक कारणो से उत्पन्न छर्दि में इसका उपयोग हितावह है। पित्तजन्य छर्दि मे इसकी उपादेयता व्यक्त की गई है—

कल्क तथा चन्दन सेव्यमासी—
द्राक्षोत्तमावालकगैरिकाणाम्
शीताम्बुना (पैत्तिक छर्दिरोगे) ।।

—चरक चि० २०।३२

यह तिक्त होने से कफनिसारक है सुतरा यह कास-श्वास मे लाभप्रद है। इस निमित्त इसका पानक या क्वाथ हितकारी है। आशुकवि प० श्री हरि शास्त्री जी ने भी इसे श्लेष्म व्याधियो मे उपयोगी कहा है—

वामे ! वहूना कफ जामयाना
विनाशनायास्ति विधानमेतत् ।
विधाय सत्पानरस जरायाः
सजीवनी तेन सहोपसेव्या ।।

—संजी० साम्राज्यम्

शर्वत जूफा (सि० यो० स०) मे भी इसकी योजना की गई है। इसके अतिरिक्त यह धूम्रपान के प्रयोगो मे भी उपयोग मे लाई जाती है। इस धूम्रपान से कफ का नि सरण होकर श्वास-कास के रोगी को लाभ मिलता है। चरकसहिता के चि० स्थान अध्याय १६ मे वर्णित "हरिद्रादि धूम्रवर्ति" "मन.-शिलादि धूम्र" आदि धूम्रयोगो मे इसका मिश्रण किया गया है।

यह वृक्को को उत्तेजित करती है जिससे मूत्र अधिक निकलता है अत. यह मूत्रकृच्छ्र एव बस्तिशोथ मे लाभप्रद है। इसके अतिरिक्त वाजीकरण होने से क्लैव्य मे और आर्तवजनन होने से रज. कृच्छ्रता व गर्भाशय शोथ मे भी यह उपयोगी है। रज कृच्छ्रता जन्य अपतन्त्रक (हिस्टेरिया) में यह विशेष लाभप्रद है। काम शास्त्रो मे शिश्न को स्थूल बनाने वाले प्रयोगो के अन्तर्गत भी इसका वर्णन मिलता है—

अश्वगन्धा च कुष्ठ च मासीशावरकन्दकम् ।
एतदुद्वर्तित शेफ स्थूलीभवति शाश्वतम् ।।

—कुचि० उ० १।१३

यह कुष्टघ्न होने से विभिन्न चर्म रोगो मे एव विसर्प आदि मे प्रयुक्त होती है। एक कुष्ठनाशक लेप है—

मासी मरिचं लवणं रजनी सुधा गृहाद्धूम.।
मूत्रं गोपित्तञ्च क्षार पलाश कुष्ठहा लेप ॥
—चरक चि० ७।८६

कण्डूहर योग—

मासी चन्दनसम्पाककरञ्जारिष्टसर्षपम्।
यष्टीकुटजदार्व्यब्द हन्ति कण्डूमय गण ॥
—च० द० ५०।४६

विसर्पहर लेप—

मासी सर्जरसो लोध्रं मधुक सहरेणुकम्।
मूर्वा नीलोत्पल पद्म शिरीषकुसुमानि च ॥
एतं प्रदेहः कथितो वन्हिवीसर्पनाशन ॥
—यो० र०

शोथ, शूल एव दाह मे भी इसका प्रलेप किया जाता है। व्रणशोथ पर लेप करने से लाभ होता है। वर्ण्य होने से वर्ण विकारो मे हितकर है और स्वेदाधिक्य व स्वेददौर्गन्ध्य को मिटाने के लिए अवचूर्णन के रूप में प्रयुक्त होता है। केशवर्धन होने से इन्द्रलुप्तादि रोगो मे भी हितकारी है। इस निमित्त इसका लेप एव तैल दोनो को ही उपयोग मे लाया जाता है—

मासीबलाकुवलयामलकं सकुष्ठै
पुस. प्रलिप्तशिरसो न पतन्ति केशा।
स्निग्धायताश्च कुटिलाकृतयो भवन्ति
ते प्रत्युतास्य तरुणालिकुल प्रकाशा ॥
—रा० मा० १।१०

दन्त मंजनो मे इसके उपयोग से दन्तशूल, दन्तपूय एव मुख दुर्गन्ध का शमन होता है—

जटामास्या विदधता रजसा दन्तघर्षणम्।
मुखे वैशद्यसौगन्धमुखाः स्युर्गणशोगुणा ॥
—सि० भे० मणि० ४

तिक्त होने से यह ज्वरघ्न भी है। सन्निपात ज्वरों मे विशेषण उपयोगी है। इससे ज्वर शान्त होता है, नाड़ी को शक्ति मिलती है, मस्तिष्क शान्त रहता है और दाह आदि उपद्रवो का भी शमन होता है। बल्य होने से रोगोत्तर दौर्बल्य में भी इसका उपयोग हितावह हो सकता है। जहा शारीर बल्य और मानस बल्य औषधियो की आवश्यकता समझी जाय वहा जटामासी को अवश्य याद करना चाहिए।

यह भी ध्यान रहे कि यह विषघ्न होने से विष शामक प्रयोगो मे इसकी योजना की गई है—

मासी कुकुमपत्रत्वग्रजनीनतचन्दनै.।
मन शिलाव्याघ्रनखसुरसैरम्बुपेषितैः॥
पानस्याञ्जनालेपा. सर्वशोथ विषापहा. ॥
—चरक० चि० २३।१६०

सुश्रुतसहिता के कल्प स्थान मे वर्णित "दूषीविषारि" और "ऋषभ" नामक योगो मे जटामासी का उल्लेख मिलता है।

यूनानी मतानुसार—यह दूसरे दर्जे मे गरम और रूक्ष है। यह मस्तिष्क, यकृत् और आमाशय के लिये बलकारी है। यह पौष्टिक, उत्तेजक, मूत्रनिस्सारक, ऋतुस्रावनियामक, पेट के अफरे को दूर करने वाली, अग्निवर्धक और विरेचक है। यह आखो की ज्योति बढाती है, बालो को काला करती है। खासी, पुराना प्रमेह, सीने के रोग, अतडियो की सूजन और मूत्राशय व कटि सम्बन्धी रोगो को दूर करती है। यह मुख को सुगन्धित बनाती है। यह हृदय की व्याकुलता को नष्ट करती है। घाव को सुखाती है। शोथ, जलोदर, पीलिया, मृगी, गुल्म और आक्षेप रोगो को मिटाने मे श्रेष्ठ दवा है।

आधुनिक मतानुसार—इस वनौषधि मे वेलेरिन (Valerion) नामक औषधि के सब गुण मौजूद हैं। यह आक्षेप निवारक और उदरशूल मे हितकारी है। इसका सम्मेलन उन औषधियो के साथ किया जाता है जिनका उपयोग वायुनलियो के प्रदाह मे धूम्रपान करने मे देते है। कोमान का कथन है कि इसका उपयोग उदरशूल और कोष्ठवद्धता मे किया गया उसमें यह उपयोगी पाई गई।

रावर्ट के अनुसार यह बेहोशी मे आखो पर लगाई जा सकती है। कर्नल चौपड़ा के मतानुसार इसका

सत्व गुल्म, आक्षेप, हृदय की धडकन और कम्पवात मे विशेष रूप से लाभदायक है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार जटामासी भूख बढाने वाली, पाचनक्रिया को ठीक करने वाली और विबन्ध को दूर करने वाली है। इसको खाने से पेट मे कुछ गरमी मालूम होती है। सेवन से उद्गार आती है, स्वद आता है, मूत्र बढता है और नाडी सुधर जाती है। उचित मात्रा मे इसको अधिक दिनो तक लेने से मन शान्त होता है। काम करने मे मन लगता है और नाडी की गति व्यवस्थित रहती है।

मस्तिष्क और मज्जा तन्तुओ के रोगो पर यह बहुत अच्छा लाभ पहुचाती है। अतिशय मानसिक परिश्रम के कारण अथवा अन्य किसी कारण से यदि मन क्लान्त हो तो थकावट महसूस होती और नाडी तेज चलने लगती है ऐसी स्थिति मे जटामासी के देने से नाडी सुव्यवस्थित होकर मन शान्त होता है। किसी भी प्रकार का मानसिक आघात लगने से अथवा अत्यधिक मानसिक परिश्रम के कारण उत्पन्न चित्त-भ्रम मे जटामासी बहुत शीघ्रता से प्रभाव करती है। ऐसे रोगो मे हीग, कस्तूरी आदि औषधियो की अपेक्षा जटामासी की क्रिया अधिक शीघ्र, अधिक सुनिश्चित और अधिक उत्तम होती है। भूत और प्रेत की बाधा मे भी यह ब्राह्मी और वचा के साथ लाभ पहुचाती है।

रक्ताभिसरण क्रिया की खराबी मे भी जटामासी बहुत उत्तम औषधि है। मस्तिष्क मे रक्ताभिसरण क्रिया की अधिकता से रक्त भरा हुआ सा दीखने लगता है और उन्माद (पागलपन) के लक्षण दिखाई देने लगते है। ऐसी स्थिति मे इसे देने से प्रत्यक्ष लाभ दिखाई देता है। इसी प्रकार रक्ताभिसरण की कमी से जब चक्कर आना, मूर्च्छा, आखो के आगे अन्धेरा आना इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते है तब जटामासी को देने से रक्ताभिसरण की गति सुधर कर ये सब लक्षण मिट जाते है। सुतरा यह औषधि रक्ताभिसर की अधिकता एव न्यूनता दोनो को मिटा कर सुव्यवस्थित कर देती है। हृदय की शिथिलता, हृदय की धडकन व हृदय रोग के कारण पेट मे वायु का सचय हो जाता है। ऐसी स्थिति मे जटामासी का रक्ताभिसरण पर होने वाला यह प्रभाव विशेषत. हृदय पर, रक्तवाहिनियो पर, मज्जातन्तुओ पर और रक्ताभिसरण के केन्द्र स्थान पर होता है। इसके सेवन से रक्तवाहिनियो का सकोच होता है जिससे रक्तपित्त, विसर्प और अन्य रक्तस्राव मे यह लाभदायक हुई है।

बालको के उदरशूल और पेट फूलने पर और सुशिक्षित व नाजुक स्त्रियो को होने वाले सूक्ष्म उदर-शूल पर तथा पाचन क्रिया के रोगो पर जटामासी को नौसादर और दूसरे सुगन्धित द्रव्यो के साथ देने से पित्त का सचालन व्यवस्थित हो जाता है और पाचन-प्रणाली सुधर जाती है।

ज्वर मे अथवा शोथज्वर मे जब त्रिदोष कुपित हो जाते हैं और सन्निपात के लक्षण प्रकट होने लगे, ऐसे समय मे जटामासी मन्त्रशक्ति की तरह काम करती है। इससे कफ छूटने लगता है, दाह कम होता है और सूजन उतरने लगती है।

चर्मरोगो मे भी यह लाभप्रद है। विसर्प, कुष्ठ, आदि रोगो मे इसके बाह्याभ्यन्तर प्रयोग से रोग दूर होकर त्वचा की कान्ति सुधरती है। कष्टप्रद मासिक-धर्म मे जटामासी को देने से कष्ट की कमी होकर मासिकधर्म शुद्ध होने लगता है। स्त्रियो का मासिक-धर्म बन्द होने के समय या बन्द होने के पश्चात् जो उपद्रव होते है, उन्हे दूर करने मे जटामासी बहुत उपयोगी है। जब पेशाब मे शक्कर या एलब्यूमन आने लगे तो जटामासी को देने से लाभ होता है।

वनौ० चन्द्रो०।

सामान्य प्रयोग

बाह्य प्रयोग—

१. अर्श—जटामासी और हरिद्रा को मिला पीसकर अर्शांकुरो पर लेप करने से वेदना का शमन होकर अर्शांकुर मुरझाने लगते हैं।

२. त्वग्दोष—त्वचा पर चन्दन की भाति प्रलेप करें। इससे त्वचा की रूक्षता, व्यग, दाह आदि नष्ट होकर त्वचा कोमल होती है।

३. **व्रणशोथ**—जटामासी के चूर्ण का लेप करने से शोथ और वेदना का शमन होता है।

४. **शिरःशूल**—ललाट पर इसका लेप करने से शिर.शूल मिटता है।

५. **हृदयरोग**—हृदय के स्थान पर जटामासी का लेप करने से हृद्द्रव (दिल का अधिक धडकना) मिटता है।

६. **नासास्रावाधिक्य**—जिस व्यक्ति की किंवा बच्चे की नासिका से स्राव होता रहता हो उसे—जटामांसी चूर्ण का नस्य लेना चाहिये।

७. **मूर्च्छा**—मूच्छित रोगी के नेत्रो पर जटामासी के चूर्ण का पतला लेप करने से रोगी को होश आ जाता है।

८. **पित्तज्वर**—जटामासी चूर्ण का कल्क बनाकर शरीर पर लेप करने से पित्तज्वरजन्य दाह का शमन होता है।

९. **स्वेदाधिक्य**—जटामांसी का सूक्ष्म चूर्ण कर इसका अवधूलन करने से स्वेद कम आने लगता है।

१०. **विस्फोट**—इसके लेप से विस्फोट मे भी दाह और शूल का नाश होता है।

११. **व्रण**—फोडे-फुन्सियो पर इसके चूर्ण का लेप करने से दाह दूर होकर वे ठीक होने लगते हैं।

१२. **दन्तरोग**—जटामासी का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर इसका कुछ दिनो तक मजन करने से मसूढो का फूलना, मसूढो से पूय आना, दातो मे दर्द होना और मुख की दुर्गन्ध आदि नष्ट होकर दात स्वच्छ होते हैं।

१३. **प्रतिश्याय**—विशेषत जीर्ण प्रतिश्याय मे नस्य हेतु उस्तखद्दूप एव इसके चूर्ण को उपयोग मे लाना चाहिये।

१४. **शिश्नस्थूलीकरण हेतु**—(क) जटामासी, कूठ, असगन्ध, वाराहीकन्द को पानी मे पीसकर लेप करें।

(ख) जटामासी, कूठ, वच और सरसो को जल मे पीसकर लेप करें।

१५. **अपस्मार**—जटामासी का नस्य लाभप्रद है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

१. **योषापस्मार**—(क) जटामासी चूर्ण को मधु के साथ सेवन करे।

(ख) जटामासी, तुलसीपत्र और शखपुष्पी के क्वाथ का सेवन हितावह है।

(ग) जटामासी, और अश्वगन्धा के चूर्ण को सेवन करना भी हितकारी है।

(घ) जटामासी २ ग्राम, वचा चूर्ण १ ग्राम के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करना लाभप्रद है।

(ङ) जटामासी वचा और ब्राह्मी के चूर्ण को गोघृत के साथ सेवन करे।

(च) जटामासी, और पिप्पलीमूल का क्वाथ बनाकर सेवन करें।

(छ) जटामासी, वचा और काले नमक का चूर्ण बनाकर सेवन करे।

(ज) जटामासी, अश्वत्थमूलत्वक्, अश्वगन्धा और तुलसीपत्र (नवीन) के क्वाथ मे मधु मिलाकर कुछ दिन (न्यूनतम ग्यारह दिन) सेवन करे।

२. **कष्टार्तव**—जटामासी और पाषाणभेद के चूर्ण को उष्ण जल से सेवन करे।

३. **मक्कलशूल**—जटामासी, भार्गी और पिप्पलीमूल का क्वाथ बनाकर सेवन करे।

४. **श्वेतप्रदर**—जटामासी चूर्ण को अशोक और बला के क्वाथ से सेवन करे।

५. **उन्माद**—(क) जटामासी, शतावरी चूर्ण को ब्राह्मी स्वरस के साथ सेवन करें।

(ख) जटामासी, वचा और ब्राह्मी के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करे।

६. **अनिद्रा**—(क) जटामासी, खुरासानी अजवाइन और भृङ्गराज चूर्ण को भैस के दूध के साथ सेवन करें।

(ख) जटामासी, ब्राह्मी, शखपुष्पी के चूर्ण को दूध के साथ सेवन करना भी लाभप्रद है।

७. **हृदयरोग**—(क) जटामासी, अर्जुनछाल, बला, रोहितक की छाल का क्वाथ हृदयरोगो मे विशेषतः हृद्द्रव मे लाभप्रद है।

(ख) जटामासीफाण्ट का ४-५ घण्टो के अन्तर मे पान कराना भी लाभप्रद है।

८. उच्च रक्तदाब—(क) जटामासी का फाण्ट बनाकर पीवें।

(ख) जटामासी १० ग्राम, दालचीनी २ ग्राम को मधु से २-३ बार चाटें।

(ग) जटामासी, अश्वगन्धा और सर्पगन्धा के चूर्ण को आमलकी स्वरस से सेवन करना भी हितकारी है।

(घ) जटामासी, ब्राह्मी और कुलिंजन के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करें।

(ङ) जटामासी, वचा, कूठ और शुद्ध कुचिला को शीत जलानुपान से सेवन करें।

(च) जटामासी, खुरासानी अजवाइन, सर्पगन्धा और मिश्री बराबर लेकर चूर्ण बनाकर १-१ ग्राम चूर्ण को दिन मे दो बार धारोष्ण दुग्ध से देने से उच्च रक्त-दाब कम होता है।

९. अर्श—जटामासी, नीलोफर, सुगन्धवाला, लालचन्दन, नागकेशर और शर्करा के चूर्ण को सेवन करें।

१०. आक्षेप—जटामासी और बला का क्वाथ हितकारी है।

११. रक्तविकार—(क) जटामासी के शीत-कषाय मे मधु मिलाकर सेवन करें।

(ख) जटामांसी २ भाग और मजीठ १ भाग लेकर क्वाथ बनाकर सेवन करें।

(ग) जटामासी, खदिर, चोपचीनी, अनन्तमूल और बकायन की छाल का अर्क बनाकर सेवन करें।

१२. यक्ष्मा—जटामासी, चन्दन, खस, पर्पट, मोथा, कमलपुष्प और सुगन्धवाला का क्वाथ बनाकर पान करें।

१३. तृष्णा—जटामासी, मुस्तक, पर्पट, सौंफ, खस और चन्दन का क्वाथ सेवन करें। यह ज्वर के दाह को भी दूर करता है।

१४. रक्तातिसार—जटामासी, अतीस, विल्व, लोध्र, कुटजत्वक् का क्वाथ सेवन करें।

१५. छर्दि—जटामासी, चन्दन, खस, द्राक्षा, सुगन्धवाला और गेरू इनके कल्क को ठंडे पानी से सेवन करने से पैत्तिक छर्दि का शमन होता है।

१६. आध्मान—इसके चूर्ण को गरम जल से सेवन करें।

१७. अग्निमांद्य—जटामासी, कालाजीरा और सोठ के चूर्ण को सेवन करें।

१८. उदरशूल—जटामासी, कालानमक, सोंठ और हरीतकी चूर्ण सेवन करें।

१९. वस्ति शोथ—जटामांसी, हाउबेर, गोखरू और शीतलचीनी चूर्ण को गोमूत्र से सेवन करें।

२०. कास-श्वास—जटामांसी, लौंग, बड़ी इला-यची, पिप्पली और मिश्री के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करें।

२१. क्लैव्य—(क) जटामासी, अकरकरा और सिता चूर्ण सेवन करें।

(ख) जटामासी, जायफल, लौंग, सोंठ व सिता चूर्ण को दुग्ध से सेवन करें।

विविध कल्पनाएं

१. मांस्यादि क्वाथ—(क) जटामासी १२ ग्राम, असगन्ध ३ ग्राम और खुरासानी अजवायन के बीज १॥ ग्राम इसको जोकुट कर १२० ग्राम जल मे पका, ४८ ग्राम जल बाकी रहने पर कपड़े से छानकर पिलावें।

उपयोग—इस क्वाथ का हिस्टीरिया, आक्षेप और बालकों का आक्षेपक—इन रोगों मे अकेले या अपतन्त्रकारि वटी, बृहद् वातचिन्तामणि, ब्राह्मी वटी, सर्पगन्धा योग इनके अनुपान के रूप मे प्रयोग करें।

—सि० यो० स०।

यह क्वाथ मस्तिष्क की धमनी मे रक्तावरोध (Cerebral Artereal Thrombosis) मे सबसे उपयोगी सिद्ध हुआ है।

—श्री विश्वनाथ द्विवेदी वाराणसी।

(ख) जटामासी ३ ग्राम तथा दशमूल (बेल, कुभेर, पाटल, अरनी, अरलू, सरिवन, पिठवन, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी और गोखरू) के प्रत्येक मूल का चूर्ण ३-३ ग्राम लेकर एकत्र करें। उसमें अश्वगन्धा

जल डालकर क्वाथ विधि से अष्टमाश क्वाथ तैयार कर लें। इसे किंचित् मधु के साथ नित्य दो बार सेवन करने से १५ दिनो मे सब प्रकार के वात-विकार दूर होते हैं। —अभि० बू० द०।

(ग) जटामासी, लाल चन्दन, अमलतास, करज की छालें, नीम छाल, सरसो, मुलहठी, कुडाछाल और दारुहल्दी समभाग लेकर क्वाथ करें। इस क्वाथ के पान से कण्डू, पामा आदि चर्मरोगो का नाश होता है। —भा० भै० र०।

(घ) जटामासी १० भाग, दालचीनी, इलायची ८-८ भाग, कूठ या पुष्करमूल, लोग, कुलजन, श्वेतमिर्च, नागरमोथा, सोठ ६-६ भाग, रोगन-बलसा ५ भाग, केशर ४ भाग और चिरायता १० भाग इन सबका अस्टमांश क्वाथ सिद्ध करें। इसकी मात्रा २५-५० मि० लि० तक सेवन करने से अशक्ति एव शुक्र की कमजोरी दूर होती है। —धन्व० वनौ वि०।

२. मांस्यादि फाण्ट—जटामांसी, द्राक्षा और रुद्राक्ष के १२ ग्राम चूर्ण को मिट्टी के पात्र मे ५० मि० लि० खौलते हुये पानी मे डालकर ढक कर रख दें। कुछ ठण्डा हो जाने पर छान कर पीने से रक्तचाप का नियम न होता है और अच्छी नींद आती है। —षोडशाङ्गहृदय।

३. मांस्यादि शीतकषाय—जटामासी के १० ग्राम चूर्ण को ६० मि० लि० खौलते हुये पानी मे डालकर ढाककर रख दें। प्रात जल छानकर पीने से अपस्मार, योषापस्मार, उन्माद, चितभ्रम आदि मानसिक विकारो मे लाभ होता है।

(क्वाथ से इसका तैलांश उड जाता है अत क्वाथ की अपेक्षा,फाण्ट किंवा, शीतकषाय अधिक प्रभावी है।

४. चूर्ण—(क) जटामासी, दालचीनी, अगर, हव्वेवल्सा-तज, रूमीमस्तङ्गी, नेत्रवाला केसर और एलुआ इन ९ औषधियो को समभाग मिला कपडछन चूर्ण करें।

मात्रा—१॥ से ३ ग्राम तक दिन में २ बार जल के साथ या रात्रि को ३ ग्राम मात्रा देवें।

उपयोग—यह चूर्ण मस्तिष्कगत (उर्ध्वजत्रुगत-साम दोष) विकार को शमन वा अधोगत करने मे अच्छा उपयोगी है। विशेषकर मस्तिष्क मे कफ या द्रव वृद्धि हो तो उसे पिघलाकर बाहर निकालता है और लीन द्रव को जला डालता है। मस्तिष्क पीडा, अर्धावभेदक, अर्दित, वायटे आना, जिह्वा का लड-खडाना आदि पर लाभदायक है।

इसको उपयोग स्वतन्त्र रूप से अथवा विशेषकर हुब्बे अयारिज या अन्य शिरो रोगो यथा उन्माद आदि रोगो के लिये बनी औषधियो के मिश्रण मे आता है। जो साम रोगों का शमन भी करता है।

—करावादीन जुकाई।

(ख) जटामांसी ४ भाग के साथ दालचीनी, कबाबचीनी, सौंफ, सोठ १-१ भाग तथा शक्कर या मिश्री २ भाग लेकर सबका चूर्ण करें। मात्रा २ से ४ ग्राम तक मेदरोग, वातशूल (भयकर शूल) उदरशूल तथा आक्षेपक व्याधियो मे प्रयोजित है।

(ग) जटामांसी का चूर्ण १ ग्राम १२० मि०ग्राम कपूर १८० मि० ग्राम, दालचीनी ३०० मिलीग्राम इन सब चीजो का चूर्ण बनाकर भोजन से पहले लेने से अपस्मार और गुल्मवायु मे बहुत लाभ पहुचाता है। यह इसकी एक मात्रा है। —वनौ० चन्द्रो०

५. वटी—(क) जटामासी चूर्ण ४८ ग्राम, भुनी हींग २८ ग्राम और लौहभस्म १२ ग्राम मिला जल के साथ अच्छी तरह खरल कर २४०-२४० मिलीग्राम की गोलिया बना १-२ गोली जटामासी के फाण्ट या अर्क के साथ या केवल जल के साथ दिन मे २ बार २-३ मास तक सेवन करने से मानसिक उदासीनता मे लाभ होता है। यदि रोगी को मलावरोध हो तो आवश्यकतानुसार बादाम तैल, रत्नज्योति तैल या अन्य सौम्य रेचन देकर या वस्ति देकर उदरशुद्धि करते रहना चाहिए व मानसिक आघात से बचाना चाहिए। —गा० औ० र०।

(ख) जटामासी १५ ग्राम, सर्पगन्धा (धवल बरुआ) १२ ग्राम, ब्राह्मी १५ ग्राम, खुरासानी अजवायन १५ ग्राम। इन सबको कूटकर बारीक चूर्ण कर खरे।

फिर भृङ्गराज (भागरे) के रस की १ भावना दो। बाद मे २४०-२४० मि० ग्राम की गोलिया बना लो। मात्रा २ से ४ गोली तक। प्रात-साय दूध के साथ दो। इसके प्रयोग से नीद न आना, दिमागी विकृतिया, पागलपन आदि अनेको विकार सरलता से मिट जाते हैं। जब भी कोई दिमाग की खराबी प्रतीत हो तो तभी देना चाहिए। पूर्ण विश्राम दीजिए। रोगी सुविधा से ठीक हो जायेगा।

—धन्व० ४१/१०।

(ग) जटामासी २४ ग्राम, गाजा, कपूर, वच १२-१२ ग्राम खुरासानी अजवायन ४८ ग्राम और केशर ३ ग्राम। सबको मिलाकर कूट कपडछन चूर्ण बना ६ घण्टे तक अद्रक के रस मे खरल कर चने बराबर गोलिया बना लें।

मात्रा—२-२ गोली दिन मे ३ बार जटामासी के फाण्ट या जल से।

उपयोग—इस वटी का सेवन करने से हिस्टीरिया रोग २१ दिन मे दूर होता हैं। यह वटी मस्तिष्क को शान्त बनाती है। और निकम्मे विचारो को दूर करती है। पुरुषार्थ देती है तथा पाचन-क्रिया सुधारती है।

—र० त० सा०।

६ आसव या टिंचर—जटामासी के १ भाग चूर्ण को मद्य (४० से ६० प्रतिशत वाली) ५ भाग मे मिला काच या चीनी मिट्टी के पात्र मे भर अच्छी तरह मथान करें। ७ दिन बाद खूब निचोडते हुये छानकर शीशियो मे भर रखें।

मात्रा—आधे ग्राम से ६ ग्राम तक। उन्माद, अपस्मार, अपतन्त्रक, क्षीणस्मृति आदि मस्तिष्क विकारो मे लाभप्रद है। उक्त रोगो मे उपयुक्त ब्राह्मी आदि औषधियो के मद्यासवो (टिंचर) मे मिलाकर सेवन करने से उसकी और भी गुण-वृद्धि हो जाती है।

—ध० वनौ० वि०।

(ख) जटामासी २।। किलो जौकुट कर ४० किलो जल मे पकावें। आधा जल शेष रहने पर छानकर शुद्ध चिकने मटके मे भर, ठण्डा हो जाने पर, उसमे शहद ७ किलो, मिश्री ५ किलो तथा वन और सब का चूर्ण १९२-१९२ ग्राम मिला अच्छी तरह सन्धान कर १५ दिन सुरक्षित रखें।

मात्रा—१२ से ४८ मि० ग्राम तक। यह योषापस्मार को शीघ्र ही नष्ट करता है। तथा प्रतिश्याय मे भी लाभकारी है। —धन्व० वनौ० वि०।

७. जटामांसी पाक—जटामासी चूर्ण १९२ ग्राम को समभाग गोघृत मे सेंककर, ३ किलो दूध मे पकावें। जब खोवा हो जाय और उसमे से जो घृत निकले उसमे ९६ ग्राम बबूल का गोंद भून लें तथा चूर्ण कर उसी खोवा मे मिला दें और उसमे नागरमोथा, सोठ, मिर्च, पीपल, पाखानभेद, जायपत्री, लोध, धाय के फूल, सितावर, मजीठ माजूफल, बेलगिरी १२-१२ ग्राम, मोचरस ४८ ग्राम—इन सबका चूर्ण अच्छी तरह मिला दें। पश्चात् १ किलो खाड की चाशनी मे सबको गेरकर पाक जमा दें या मोदक बनालें।

मात्रा और गुण—३० ग्राम की मात्रा मे नित्य प्रात सेवन करने से भयकर प्रदर-विकार दूर होता है। रक्तवृद्धि होती है। बल तेज कान्ति और पुष्टि की वृद्धि होती है।

—वृ० पा० स०

८. मांस्यादि घृत—जटामासी, हरड, भूतकेशी ब्राह्मी, कोच के बीज, वचा, त्रायमाण, जयन्ती, क्षीरकाकोली, चोटपुष्पी, कुटकी, छोटी इलायची, बाराहीकन्द, सौंफ, सोया, गुग्गुलु, विष्णुकान्ता, गुडूची, रास्ना, गन्धरास्ना, मालकागनी, वृश्चिकाली शालपर्णी को समानभाग लेकर इन्ही द्रव्यो के क्वाथ और कल्क के साथ घृत का पाक करें।

यह चातुर्थक ज्वर, उन्माद, ग्रह और अपस्मार को नष्ट करता है। यह बालको की बुद्धि स्मृति और देह की वृद्धि करता है।

—चरक सहिता

९. मांस्यादि शार्कर—(क) जटामासी १ किलो मे ८ किलो पानी मिला क्वाथ करें। १।। किलो तक जल शेष रहने पर छानकर उसमे शक्कर ३ किलो मिला शहद जैसी चाशनी बनाकर बोतलो मे भर रखें।

मात्रा—एक बडा चम्मच। यह शर्वत श्वास गलदाह, कण्ठशूल, शुष्क कास, उर पार्श्वशूल आदि मे अधिक लाभदायक है। —धन्व० वनौ० विशे०

(ख) जटामासी १६० ग्राम, असगन्ध नागोरी ४० ग्राम, खुरासानी अजवाइन ३० ग्राम, ब्राह्मीबूटी १० ग्राम, खाड २ किलो। शर्वत विधि से शर्वत बना कर प्रयोग करें।

मात्रा—३० मि० लि० पानी मे मिलाकर केवल यह किवा अन्य प्रयोगो के साथ अनुपान के रूप मे प्रयुक्त करने से योषापस्मार मे लाभ होता है।

—धन्व० गु० सि० प्र० मा० ४

१०. मांस्यादि लेप—(क) जटामासी, राल, लोध्र, मुलहठी, निर्गुण्डी के बीज, मूर्वा, नीलकमल, पद्माख और सिरीस के पुष्प इन ९ द्रव्यो का चूर्ण बनाकर सौ बार धोये हुये घृत मे मिलाकर लेप करने से पित्तज वातरक्त रोग नष्ट होता है। —शा० स०

योग रत्नाकरकार ने इसे विसर्प के प्रकरण मे लिखा है।

(ख) जटामासी, काली मरिच, सैन्धव लवण, हल्दी तगर, थूहर, घर से प्राप्त धूम, मूत्र, गाय का पित्त और पलाशक्षार इनका लेप कुष्ठ नाशक होता है।

—च० स०

(ग) जल से पिष्ट जटामासी, केशर कश्मीरी, तेजपत्र, दालचीनी, हल्दी, तगर, चन्दन इनके साथ मैनसिल, व्याघ्र के नख, तुलसी के साथ लेप करना सब शोथ तथा विष नाशक हैं। —च० स०

(घ) जटामांसी, खरैटी, बबूल, कमल, आवला, कूठ इनको जल मे पीसकर शिर मे लेप करने से बाल नहीं गिरते बलिक भौरो के समान स्याह, लम्बे, घुघराले हो जाते हैं। —रा० मा०

(ङ) जटामासी, लोध्र, मुलहठी, सम्भालू (निर्गुण्डी) के बीज, पित्तपापडा, मसूर, मूग और साली चावल लेकर सबको मिश्रित पीसकर १०० बार धोये हुए घृत मे मिलाकर लेप करने से विसर्प नष्ट होता है। —ब० से० स०

११. मास्यादि तैल—(क) जटामासी का क्वाथ १ लीटर, सम्भालू के पत्रो का रस १ लीटर, सहिजन के पत्तो का रस १ लीटर और इमली के पत्तो का रस १ लीटर मे तिल तैल १ लीटर मिलाकर यथा-विधि पाक करे। तैल सिद्ध हो जाने पर इसे सुरक्षित रखे। इस तैल के अभ्यङ्ग से अण्डकोष की वृद्धि नष्ट होती है। —व० राजीयम्

(ख) जटामासी, सिंहफल, कूठ, सितावर और असगन्ध का चूर्ण समान मात्रा मे लेकर उसे चौगुनें दूध के साथ मिलाकर तिल के तैल मे (चूर्ण बराबर) धीमी आच मे पकाये। इस तैल के मर्दन से शिश्न स्थूल होता है। —कामसूत्र

(ग) जटामासी २५० ग्राम के मोटे चूर्ण को एक लीटर पानी मे रात के समय भिगो प्रात मन्द आच पर पकावें। चतुर्थांश पानी शेष रहने पर छानकर उसमे २५० ग्राम तिल तैल मिला दें। फिर ६० ग्राम जटामासी का कल्क कर उसमे मिलाकर पुन पकावे। तैलमात्र शेष रहने पर छान कर रखें।

इस तैल को दिन मे दो बार लगाते रहने से बाल झडना रोग शीघ्र ही दूर होता है। जुए भी नष्ट हो जाती हैं। इस तैल के प्रयोग से केश बढते है, मुलायम रहते हैं तथा काले और चमकीले होते हैं। शरीर पर लगाते रहने से सिध्म, स्याह दाग, झुरिया आदि दूर होकर शरीर का रङ्ग निखरता है।

—अभि० बू० द०

(घ) जटामासी १२० ग्राम, फूल प्रियगु, कपूर-कचरी २४-२४ ग्राम, तगर, अगर, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, इलायची, देवदारु और दोनो चन्दन प्रत्येक १२-१२ ग्राम लेकर सबको थोडे जल के साथ लेकर महीन पीस कल्क बना लें। फिर इसमे तिल तैल, आवले का अष्टावशेषित क्वाथ व गोदुग्ध २-२ किलो मिला कढाई मे मन्दाग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर शीशी मे भर रखे। इसमे पकते समय यदि रतनजोत की छड ६० ग्राम का चूर्ण कर मिला दें तो उत्तम लाल रग को हो जाता है। यह मस्तकशूल

नेत्रविकार को दूर करता है। केशो की वृद्धि कर उन्हे काले चिकने करता है।

जटामांसी के कतिपय आधुनिक प्रयोग

१. जटामांसी मिक्श्चर—टिंचर बॅलेरियन १५ बूद, पोटेशियम ब्रोमाइड १५ ग्रेन, टिंचर ऐसाफिटीडा (हीग) १५ बूद। तीनो मिलाकर दिन मे २ बार देने से योषापस्मार आदि मे लाभ होता है।

ब्रोमाइड के साथ मिश्रित जटामासी की बहुत सी आधुनिक पेटेण्ट औषधिया बाजार मे मिलती हैं, जो अपस्मार, योषापस्मार, दिल की धडकन आदि मे प्रयुक्त होती है। इन औषधियो से लाभ तो सत्वर होता है किन्तु चिरस्थायी नहीं होता है।

२. जटामांसी घनसत्व (एक्सट्रेक्ट)—जटामासी का घनसत्व वातगुल्म, आक्षेप, हृदय की धडकन एव कम्पवात आदि रोगो मे व्यवहृत होता है। इन रोगो मे यह विशेय लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसकी मात्रा ६० से १२० मि० ग्राम है।

३. जटामांसी का तैल (विलेरियम आयल)—यह तैल पाचक और अग्निदीपक है। यह अत्यन्त उष्ण होने से स्वल्प मात्रा मे सेवन करने पर भी अन्तर्दाह उत्पन्न करता है। इसका नाडी-मण्डल पर शीघ्र प्रभाव पडता है, परिणामस्वरूप नाडी की गति मे वृद्धि होती है। अधिक मात्रा मे सेवन करने से नाडी मन्द होने लगती है। मात्रा १/२ बूद तक ही है।

पेटेण्ट प्रयोगो मे जटामांसी—शारीर रोगो के साथ यह मानसरोगो पर अधिक प्रभावी होने से मानसरोगोपयोगी प्राय सभी प्रयोगो मे इसकी योजना की जाती है। मस्तिष्क के उच्च केन्द्रो पर मुख्य रूप से असर करने वाली चरक फार्मेस्युटिकल्स की गोलिया है—"ट्राक्वीनील।" इसमे शखपुष्पी, वच, ब्राह्मी के अतिरिक्त जटामासी का मिश्रण किया जाता है। यह मनसताप, रजो निवृत्तिकाल तथा मासिकधर्म के पूर्व के तनाव को कम करने मे श्रेष्ठ है। इसी प्रकार के तनाव को दूर करने वाला एक दूसरा प्रयोग भी इसी निर्माणशाला का है "विकामिन" इसमे जटामासी और शखपुष्पी का घनसत्व है। इसके अतिरिक्त जहर-मोहरा, रुद्राक्ष, सर्पगन्धा एव स्वर्णमाक्षिक भी है। रक्तचाप शामक "सपेरा" नामक गोलिया भी प्रसिद्ध हैं। इसका भी जटामासी मुख्य घटक है। गर्ग वनौषधि विजयगढ के "रक्तचापान्तक कैपसूल" ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ के 'रक्तचापहारी कैपसूल", एव निर्मल आयुर्वेद सस्थान अलीगढ के 'रक्तचापारि" कैपसूल मे जटामासी का मिश्रण किया जाता है। अलारसिन के "आर्जिन", देणरक्षक के "निद्रायणी", आर्य औषधि के "स्लीपिल्स" मे भी जटामासी है। ये कैपसूल एव वटिया रक्तचापवृद्धि मे बहुत उपयोगी है। ये मानसिक उद्विग्नता, अनिद्रा, तनाव, अवसाद की स्थिति मे भी दिये जाने चाहिये।

मेडिकल इथिक्स की "इकीनोर टेबलेट" अपस्मार योषापस्मार मे लाभप्रद है। यूनेक्सो की "कलम्रो टेबलेट" अपस्मार, अनिद्रा मे उपयोगी है। शर्मा मेडिको के "हिमपुष्प कैपसूल" योषापस्मार की समस्त स्थितियो मे तत्काल लाभदायक हैं। अपस्मार एव हृदयरोगो में भी यह हितकारी है। चरक फार्मा की "अशार टेबलेट, गर्ग वनौषधि भण्डार के 'हिस्टीरियान्तक कैपसूल", निडोरिन इन्जेक्शन (मार्तण्ड), हिस्टीरियाहर कैपसूल (ज्वाला आयुर्वेद भवन) आदि मानसिक रोगो के उत्तम प्रयोग हैं। इन सबमे न्यूनाधिक जटामासी डाली जाती है।

कौशिक आयुर्वेद भवन सालासर (राज०) जो ओजवर्धक रजतपत्रयुक्त "रसायन कल्प" का निर्माण करता है। इसमे बहुत से महत्वपूर्ण शारीरिक एव मानसिक रोगनाशक द्रव्यो को समाविष्ट किया गया है। इसमे अष्टवर्ग, शखपुष्पी, ब्राह्मी आदि के साथ जटामासी भी है। यह निर्माणशाला "श्वास धूमवर्तिका" नामक धूम्रवर्त्ती का भी निर्माण करती है। यह वर्तिका धूम्रपान हेतु उपयोगी है। इसके धूम्रपान से श्वास, कास, हिक्का के वेगो का निवारण होता है। श्लेष्मा के निरहरणार्थ इसे उपयोग मे लाना चाहिये।

शर्मा मेडिको का "मूर्च्छारि कवच" सब प्रकार की मूर्च्छा मे हितकर है, इसमे जटामासी भी होती है जो मूर्च्छा, भ्रम, सन्यास की प्रत्येक अवस्था मे प्रभावी बनकर रोग निवारण मे सहायक बनती है। इसी रसायनशाला की बनी हुई 'शान्तम् वटी" मे भी जटामासी है। यह वटी छर्दि, वमन, अम्लपित्त मे परमोपयोगी है। अम्लपित्त रोग मे अत्यन्त लाभप्रद अलारसिन की "शुक्तिन" वटी मे भी जटामासी है। यह वटी अजीर्ण, अन्नद्रवशूल परिणामशूल को भी मिटाती है। अर्थात् उदर म किसी भी प्रकार की अम्लता के आधिक्यवश होने वाले विविध विकारो मे यह लाभदायक है।

चरक फार्मेस्युटिकल्स की "ब्लिपेक्स सीरप" कफ वाली कास मे बलगम निकालने वाली स्वादिष्ट ओषधि है। यह कफ और बलगम को पतला करने मे मदद करती है। इसके उपयोग से जकड़न व ऐंठन दूर होकर सास लेने मे आसानी होती है। यह सीरप श्वासनली शोथ, श्वसनकज्वर, श्वास, कुकरकास मे अति लाभप्रद है। इसमे भी जावित्री, लवग, पिप्पली, नास, कुमारी, यवक्षार, आदि उपयोगी द्रव्यो के साथ जटामासी का भी मिश्रण किया जाता है।

अनुभूत प्रयोग

१. रक्तचापारि कैपसूल—जटामासी घनसत्व १२० मि० ग्राम, सर्पगधा घनसत्व ६० मि० ग्राम, जल पीपली रस घनसत्व १२० मि० ग्राम की मात्रा मे लेकर कैपसूल मे रख लें।

मात्रा—१-१ कैपसूल दोनो समय जल के साथ दे।

लाभ—यह योग रक्तचाप अनिद्रा, सिरदर्द, भ्रम हृदय की दुर्बलता, पागलपन, भूतोन्माद आदि मस्तिष्क सम्बन्धी दोष को शान्त कर देता है। परीक्षित एव आशुफलप्रद है। धारोष्ण दूध के साथ लेने से और शीघ्र लाभ होता है।

—कवि० श्री रुद्रनारायणसिंह जी
(सुधा० जुलाई ७५)

२. शामक पीयूष—जटामासी ९६० ग्राम, अभया-त्वक् ३० ग्राम, खुरासानी अजवायन ३० ग्राम, जल १६ किलो।

इन सब मे प्रथम तीन दवाओ को जवकुट कर क्वाथ करें, जब ४ किलो जल शेष रहे तब शर्करा ४ किलो डालकर शर्बत बना लें।

उपयोग—इसमे से १५ ग्राम से ३० ग्राम तक लेने से शान्त निद्रा लाता है।

—वैद्य श्री चन्द्रशेखर गोपाल जी ठक्कर
(ध० गु० सि० प्र० भाग ४)

३. योषापस्मारहर प्रयोग—जटामासी, रास्ना, पीपरामूल, एरण्डमूलत्वक्, सोठ, अजवाइन, गुग्गुल, मुसब्बर सब ३-३ ग्राम लेकर आधा किलो पानी मे मिट्टी की हाडी मे पकावे ५० ग्राम शेष रहने पर छानकर पीवें। इससे योषापस्मार (हिस्टीरिया) तथा इससे उत्पन्न उपद्रव शान्त होते हैं।

—प० श्री लीलाधर शर्मा
(धन्व० नारीरोगाक)

४. हृदयशूल नाशक उत्तम प्रलेप—जटामासी, वच, नागरमोथा, दालचीनी, लौंग, गुलाब के फूल, समभाग लेकर तुलसी स्वरस मे पीसकर प्रात. ६ बजे और साय ४ बजे आवश्यकतानुसार छाती मे जहा दर्द हो वहा इसका चन्दन की तरह लेप करें और ऊपर से बासी कागज या लिण्ट चिपकाकर १५-२० मिनट तक सिकाई करे तथा बाद मे रुई रखकर पट्टी बाध दे।

उपयोग—कई बार छाती की मासपेशियो में शोथ या खिचाव आने से शूल होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि दर्द हृदय मे है। ऐसी अवस्था में इस लेप से दर्द ठीक हो जाता है।

—श्री चादप्रकाश मेहरा
(सुधा० हृदय फुफ्फुसरोग चि०)

५. शीतपित्तजन्य रक्तचाप पर—किसी को शीतपित्त विकार होने पर रक्तचाप (ब्लडप्रेसर) बढ़ जाता है उस स्थिति मे—जटामासी चूर्ण १२५ ग्राम, जहरमोहरा खताई पिष्टी १२५, सर्पगन्धा चूर्ण

१२५ ग्राम शर्करा मिलाकर दिन मे ३ वार देना चाहिये। इससे शीतपित्त एव उससे उत्पन्न उपद्रव-स्वरूप रक्तचाप का शमन होकर रोगी सुख अनुभव करता है। रक्तचाप का शमन हो जाने पर इसे बन्द कर देना चाहिये।

—वैद्य श्री महावीरप्रसाद मिश्र
(सचित्र आयु० अगस्त ८६)

६. योषापस्मारहर धूपन प्रयोग—जटामासी का प्रयोग कर अनुभव प्राप्त किया है कि जटामासी हिस्टिरिया (योषापस्मार), वातरोग के मानसिक रोग मे उपयोगी है। हिस्टिरिया से पीड़ित रुग्णा को जटामासी मे कर्पूर देकर धूनि देने पर सज्ञा प्राप्त करने मे लाभ होता है।

—वैद्यरत्न श्री द्वारिका मिश्र
(वनौ० रत्ना० के लिये प्रेषित प्रयोग)

७. वेदनाशामक प्रयोग—जटामासी घन का विभिन्न वेदनाओ से पीडित दस रोगियो पर प्रयोग किया जा चुका है। उन दसो रोगियो के वेदनाकारक लक्षणो पर जो परिणाम प्राप्त हुये उनको आगे सारणी मे दर्शाया गया है।

वेदना	परिणाम
१ क्षारसूत्र वन्धन जन्य वेदना	+
२ आमवातिक शोथ जन्य वेदना	+ + +
३ गृध्रसी शूल	+
४ विश्वाची शूल	+
५ रक्तभाराधिक्य जन्य शिर शूल	+
६ अन्नद्रवशूल	+ + +
७ गर्भाशयिक शूल	+ + +
८. तनावपूर्ण मन स्थिति	+ + +
९ दौर्वल्यजन्य शिर शूल, अरति, अनिद्रा, पिण्डकोद्वेष्टन	+ + +
१०. अनिद्रा	+ +
११. आमवातिक ज्वर	+ +

इस सारिणी को देखने से ज्ञात होता है कि इसके उपयोग से आमवातिक शूल, अन्नद्रवशूल, गर्भाशयिक शूल, तनावपूर्ण मन स्थिति, अनिद्रा, आमवातिक ज्वर का उल्लेखनीय रूप से शमन होता है। क्षारसूत्र वन्धन जन्य वेदना मे जटामासीघन + पीपरामूल + खुरासानी अजवायन का प्रयोग लाभप्रद पाया गया है।

—श्री कनकप्रसाद व्यास
(धन्व० अप्रैल ७६)

८. मासिकस्राव विकारहर प्रयोग—स्त्रियो के मासिकस्राव के विकारो पर जटामासी का चूर्ण तथा काले जीरे का चूर्ण १-१ ग्राम और कालीमिर्च चूर्ण ५०० मि० ग्राम एकत्र कर मिश्रण को दिन मे दो बार जल के साथ अथवा गोमूत्र के साथ सेवन करने से १०-१५ दिन मे ही गुण प्रगट होता है। इस चूर्ण को जटामासी के फाण्ट से भी दिया जा सकता है। मासिकधर्म के समय रज.स्राव होते समय पीडा होती है, तथा स्त्रियो मे रजोनिवृत्ति के काल मे जो कुछ विशिष्ट मानसिक व शारीरिक अवसाद के लक्षण होते है। ऐसी स्थिति मे भी उक्त प्रयोग लाभप्रद है।

—आयुर्वेदसूरि श्री प० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी
(अभि० बूटी दर्पण)

जातीफल

Myristica fragrans Houtt

माइरिस्टीका फ्रैग्रेन्स हाउट; फैमिली–माइरिस्टीकेसी (MYRISTICACEAE)



इसका उल्लेख चरक महिता के सूत्र–स्थान के पाचवें अध्याय मे तथा सुश्रुतसहिता सूत्रस्थान के छियालीसवें अध्याय मे हुआ है एव अष्टागहृदय चिकित्सा अ० २ मे भी इसका वर्णन है।

- यह पूर्वी द्वीपसमूह तथा श्री लका में उगने वाले वृक्ष के फल का बीज है। इसके फल के ऊपर एक हलकी पतली त्वचा जैसी जावित्री लगी होती है।

जायफल को अगरेजी में नटमैग तथा जावित्री को मेस कहा जाता है।

इसके कुटुम्ब (फैमिली) का नाम जो माइस्टेकेसी या मिरिस्टेकेसी कहा जाता है वह मिरिस्टीकोन नामक शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है सुगन्ध या अच्छी गन्ध।

जायफल इसी कारण इस वर्ग में रखा गया है। भावमिश्र का कर्पूरादि वर्ग जिसमें जायफल आता है वह भी सुगन्धित द्रव्यो का ही पिटारा है।

कुछ लोगो ने इसका उत्पत्ति स्थान वैस्ट इण्डीज (पश्चिमी भारतीय द्वीपसमूह) भी माना है। पर, क्यूबा के महान् वनस्पतितत्ववेत्ता डाक्टर जुआन थामस रॉइग ई मेसा के ५ किलो भार वाले प्लाण्टास मेडिसिनेलिस ऐरोमैटिकम ओ वैनेनोमस डी क्यूबा में इसका कोई उल्लेख नही है। मेरे क्यूबा गमन पर यह पुस्तक वहा की सरकार ने मुझे भेंट करते हुये वहा के अधिकारी ने जो शब्द लिखे थे वे भारत के प्रति क्यूबा के लोगो के ममत्व का एक आदर्श प्रस्तुत करता है। वे शब्द है—टू अव्रर काइड ऐडवाइजर एण्ड ब्रदर डा० त्रिवेदी विद अवर बैस्ट विशेज एण्ड फ्रेंडशिप्स फौर यौर हैल्प इन द बिगनिंग आफ अवर कोलैबोरेशन। ह०/ . . . .

अपने साथ सहयोग करने के शुभारम्भ काल में सहायता के लिये यह पुस्तक हमारे दयालु परामर्शदाता और बन्धु डाक्टर त्रिवेदी को अपनी श्रेष्ठतम शुभ कामनाओ और मित्रता के लिये भेंट की जाती है। —हस्ताक्षर–अपठनीय।

इस वाक्य मे एक शब्द ब्रदर या बन्धु आया है। इसके पीछे एक बडी घटना का महत्त्व है जिसने मुझे क्यूबा वासियो के हृदय मे अपार श्रद्धा को जन्म दिया और भारत के प्रति उनमे आदर की भावना जगी।

हुआ यो कि मैं जब क्यूबा पहुचा। मुझे सुप्रसिद्ध बिडला कन्सर्न सिम्को इन्टरनेशनल की ओर से क्यूबा मे आयुर्वेद को प्रविष्ट करने के शुभ उद्देश्य से परामर्शदाता के रूप मे भेजा गया था। तो वहा उन्होने क्यूबा की राजधानी हवाना मे २१ मजिला मेडिकल कालेज के स्वागत कक्ष मे भाषण देने के लिये कहा। वह एक बडा हाल था जो खचाखच भरा हुआ था। सबसे पहले उन्होने मुझसे धीरे-धीरे भाषण देने को कहा क्योकि वे सब स्पैनिश भाषाविद थे और अगरेजी से अधिक परिचित नही थे। उनका कहना था कि वे धीरे-धीरे बोली हुई अगरेजी समझ सकते थे और दुभाषिये की जरूरत नहीं पड़ती जिसके कारण

वे मेरा आधा ही भाषण सुनते तथा आधा समय उनका अनुवाद सुनने मे बीत जाता। मैंने उनकी बात मान ली। उसी समय, पता नही क्यो, एक मजाक सूझी। मैंने वहा अगरेजी म तीन बार एक वाक्य बोला जिसका अर्थ था कि मैं इस बडे हाल मे अपना कोई भी मित्र नही देख रहा। इस पर, उनमे कई लोग खडे होकर बोलने लगे कि हम भारत को अपना मित्र देश मानते है और उस नाते से आप हमारे निश्चित रूप से मित्र है। मैंने उन खडे हुये सज्जनो मे बैठने को कहा और उसके बाद मैं बोला—

"भद्रजनो, आप मे से कोई भी यहा मेरा मित्र नही है क्योकि हम सब एक ही कुटुम्ब के सदस्य हैं अर्थात् भाई-भाई हैं। आपके महामहिम राष्ट्रपति फिडैल कैस्ट्रो हमारी प्रधानमन्त्री माननीया श्रीमती इन्दिरा गाधी के भाई हैं और इन्दिरा जी कैस्ट्रोजी की बहन है। और यह नाता NAM के कारण बना है इसलिए मैं फिर कहता हू कि आप मुझे अपना मित्र न मान कर भाई मानो यही हमारा आपसे रिश्ता है।" यह सुनते ही वहा उपस्थित सारे श्रोतागण उठ कर खडे हो गये हर्षध्वनि करने लगे और पाच मिनट तक खडे होकर तालियो की गडगडाहट (स्टैंडिंग ओवेशन) मे सम्मान प्रदान करने लगे। उसके बाद भाषण शुरू हुआ। १-१॥ घण्टे के बाद अनेक लोग मच पर चढ आये और हाथ न मिलाकर गले मे मिलने लगे। क्यूबा के मन्त्रीगण और देशवासी फिर तो गले ही मिले क्योकि यह मिलन भाई से भाई का था। सुधानिधि जिसके जन्म से लेकर आज तक मेरा अटूट और अक्षुण्ण सम्बन्ध रहा है उसमे यह घटना मैं न लिखता तो कहा लिखता इसीलिये जायफल से असम्बन्धित होते हुये भी मैं इसे लिखने को रोक नहीं पा रहा। इस टिप्पणी के लिखते समय मोतियाबिन्द के कारण असह्य पीडा हो रही है फिर भी मैं अपने सुहृद पाठको से जुडने का सत्प्रयत्न करना नही रोक पा रहा।

मैं कुछ समय पूर्व तक भारत सरकार की सेण्ट्रल काउन्सिल फौर रिसर्च इन आयुर्वेद एण्ड सिद्ध (CCRAS) की सर्वोच्च प्रशासनिक निकाय (गवर्निंग बौडी) के ५ नामाकित सदस्यो मे से एक था। गत धन्वन्तरि त्रयोदशी के अवसर पर इन्द्रप्रस्थ वैद्य सभा दिल्ली ने मुझे बुलाकर सम्मानित किया था। सी सी आर ए ऐस के स्वनामधन्य डाइरेक्टर श्री डाक्टर विवेकानन्द पाण्डेय ने मुझे एक पुस्तक सहर्ष भेंट की। इसका नाम है—कतिपय आयुर्वेदीय वनस्पतियो का पादप रासायनिक विश्लेषण। यह पुस्तक अगरेजी मे है—फाइटोकैमिकल इन्वैस्टीगेशन्स औफ सरटेन मैडीकल प्लाण्ट्स यूज्ड इन आयुर्वेद। इस पुस्तक को प्रदान करते समय जो शब्द लिखे वे हैं—

"विद बैस्ट कौम्प्लीमेण्ट्स फ्रौम द अण्ड रसाइण्ड टू रैस्पैक्टैड वैद्य आर० पी० त्रिवेदी।

—ह० वी० ऐन पाण्डेय ४-११-१९९१

डाइरैक्टर सी० सी० आर ए ऐस न्यूदिल्ली।"

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक मे विविध पौधो के विश्लेषण से प्राप्त ज्ञान का सग्रह किया गया है। क्यूबा के विद्वानो ने ऐसी एक पुस्तक भेजने के लिए १९८५ मे मुझे लिखा था। पर मेरे लिए ऐसी किसी पुस्तक को भेजना सम्भव नही था। आज मै इसकी प्रति उनको भेजने के लिए गर्व से निदेशक डाक्टर पाण्डेय को कह सकता हू। इस पुस्तक मे केन्द्रीय आयुर्वेद एव सिद्ध अनुसन्धान परिषद् की देखरेख मे एक आदर्श, अद्भुत और यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि का श्रेष्ठतम सकेत किया गया है। इसमे २२० पादपो का फाइटोकैमिकल विश्लेषण है। यह आयुर्वेद मे सलग्न शोधकर्त्ताओ के हाथ मे अमोघ अस्त्र का काम करेगी और अयुर्वेद को और अच्छी तरह समझ कर पादपो के गुणदोष निर्धारण मे महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने मे अपनी सार्थकता सिद्ध करेगी।

जातीफल और जावित्री का जो पादप विश्लेषण दिया गया है उसमे १४ इकाइयो तथा व्यक्तियो के [illegible] का सार दिया हुआ है। इसके अनुसार इसमे निम्नाकित तथ्य दर्शाये गये हैं :—

१–एरिल (जावित्री) सुगन्धित उडनशील तैल डिहाइड्रोडाइमो यूजीनौल, लाइकेरिन–बी तथा तीन और निओलिग्नन्स पाये जाते हैं।

—यह तथ्य कैप्टेन श्रीनिवासमूर्ति ड्रग रिसर्च इन्स्टीच्यूट फौर आयुर्वेद, मदरास के अनुसन्धानो से प्राप्त हुआ है।

२–जायफल के अन्दर जो मुख्य-मुख्य पादपरासायनिक घटक पाये जाते है वे ये हैं.

i. एक स्थाई तैल

ii एक उडनशील तैल–इसमे मिलते हैं—

डी– माइसीन	पी साइमीन
डी–कैम्फीन	डी लीनैलूल
बीटा–पाइरीन	ऐल–टर्पेनिन–४–० ऐल
डाई पेंटीन	डोरील–आल्फ टर्पिनिऔल
जिरैनियौला	माइरिस्टीसीन
सैफ्रोल यूजिनौल	माइरिस्टिक ऐमिड और उसके ऐस्ट
आइसो यूजिनौल एक ऐल्डीहाइड	माइरिस्टीसीन

इनमे कुछ फैटीऐमिडे भी मिलती हैं जैसे—

लौरिक, माइरिस्टिक, पामीटिक स्टियरिक, हैक्साडैसीनौइक, ओमीइक तथा लीनौलीइक जो जायफल के स्निधांश (वटर) मे प्राप्त होती है।

iii. ऐमाइलोडैक्स्ट्रीन —पैक्टीन तथा एक रालीय वर्ण द्रव्य जो जावित्री से प्राप्त होते हैं।

iv इसकी पत्तियो से आल्फा पाइरीन तथा माइरिस्टीसीन की प्राप्ति होती है।

v जायफल वृक्ष की छाल से एक उडनशील तैल मिलता है। यह तथ्य वैल्थ आफ इण्डिया रौ पैटीरियल्स (CSIR) के छठे वौल्यूम पृष्ठ ४७४ से लिया गया है जो किसी गुमनाम व्यक्ति की खोज है।

vi इसके बीजो से ओलीनोलिक और माइरिस्टिक ऐसिडें मिलती हैं यह तथ्य इण्डियन जर्नल आफ से प्राप्त हुआ है।

vii. आल्फायूजिन △कैरीन, मैन्थाडाईन, सैबिनीन हाइड्रेट ट्रान्स और सिस दोनो, डाइमैरिक फिनाइल प्रोपैनीड्स, ये सब बीज की मीगी मे मिलते हैं।

viii और भी अनेक रासायनिक द्रव्य जायफल और जावित्री मे पाये जाते हैं जिनकी भाषा कैमिष्ट्री की देन तथा दुरूह होने से देना सम्भव नही देखा जा सकता है।

हमने इन सब का दिग्दर्शन इसलिए कराया है कि इन ऋषि-मुनियो द्वारा भेषज मे पूरा एक विश्व ही समाया हुआ है इमे वैद्यगण जान सके।

इस पुस्तक मे जातीफल के पर्याय और गुण देकर जो भावप्रकाश का श्लोक उद्धृत किया गया है वह बहुत उपयोगी है —

जातीफल रसे तिक्त तीक्ष्णोष्ण रोचनं लघु।
कटुक दीपनं ग्राहि स्वर्यं श्लेष्मानिलापहम्॥
निहन्ति मुखवैरस्य मुखदौर्गन्ध्यकृष्णता।
कृमिकास दमि श्वास शोषपीनस हृद्रुजः॥

इसके अनुसार जातीफल का उपयोग शरीर के नीचे लिखे अङ्गों और संस्थानों पर शास्त्र में लिखे रोगों को दूर करने के लिए किया जाना चाहिए —

१ ऊर्ध्वश्वसन मार्ग तथा फुफ्फुस—स्वरभेद, कास, श्वास, पीनस।

२ महास्रोत या आमाशयान्त्रिक संस्थान—मन्दाग्नि, अतीसार, अरुचि, मलदौर्गन्ध्य, कृमिरोग, वमन।

३ हृदय—हृदय की वेदना

४ त्वचा—मुख की कृष्णता

जातीफल को जो तिक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, कफवातनाशक आदि गुण दिये हैं उनके पीछे इसमें निहित विविध रसायनिक द्रव्य है जिनका उल्लेख पादप-रासायनिक विश्लेषण को उपर्युक्त पुस्तक में दिया गया है। आगे की खोजें इन रासायनिक द्रव्यों में निहित गुणों पर प्रकाश डालेंगी अवश्य। जायफल और जावित्री के सभी विश्लेषणात्मक द्रव्यों के उपयोग के ठीक-ठीक परिज्ञान के लिए युगयुगों तक असंख्य मानवमस्तिष्कों के उपयोग की सूचना देती हैं।

यह वक्तव्य मैंने कल प्रियवर गोपालशरण गर्ग त्रिवेदीनगर स्थित शान्तीसदन पर आने के उपलक्ष्य में रात्रि ३ बजे से ५ बजे तक २३-१२-१९८१ को लिखा। उससे पहले जो नोट लिखा था यह यथावत् नीचे दिया जा रहा है जिसे पाठक पढ़कर फिर हमारे विशेष सम्पादक श्री गोपीनाथ पारीक "गोपेश" द्वारा महीनों परिश्रम कर जुटायी सामग्री के रूप में पढ़कर अपनी ज्ञानराशि की श्रीवृद्धि कर सकेंगे।

अकबर के वित्तमन्त्री राजा टोडरमल टंडन ने टोडरानन्द नामक बृहत्काय ग्रन्थ के आयुर्वेद सौख्यम् का ८९वां अध्याय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की इस प्रकार स्तुति करते हुए प्रारम्भ किया है जो हमारे इस विशेषांक के पहले द्रव्य के साथ का मंगलाचरण माना जा सकता है। देखिये कितनी ललित शब्दावली का प्रयोग किया गया है —

ब्रह्माण्डनाथो वसुदेवसूनु र्व्रजाङ्गनावाक्यवशो मुकुन्द।
वसुन्धराया प्रभुता समस्ता श्रीटोडरे सर्वसुखं विधत्ताम्॥

हे समस्त ब्रह्माण्ड के नायक, वसुदेव के पुत्र, व्रज की गोपियों के वाक्यों के अनुसार लीला करने वाले मुकुन्द श्रीकृष्ण श्री टोडरमल्ल को इस धरती की सारी प्रभुता और समस्त सुख प्रदान कीजिए।

यह ८९वां अध्याय ऐसा किसी आधार पर हमारे परम प्रिय और विद्वान् मित्र वैद्य भगवानदास और परम विदुषी वैद्या ललितेश कश्यप् ने अपनी मैटीरिया मेडिका आफ आयुर्वेद जो टोडरानन्द के आयुर्वेद सौख्यम् के आधार पर लिखी गई है उसके बत्तीसवें अध्याय में नोटों और सन्दर्भों के अन्त में जो अध्याय का अन्तिम वाक्य दिया है उसके अनुसार यह ८९वां अध्याय बनता है —

"इति श्री महाराजाधिराज टोडरमल्लविरचिते टोडरानन्दे आयुर्वेदसौख्ये कर्पूरादिवर्गनिघण्टौ षडशीतितमेहर्ष।"

इस वर्ग में अनेक सुगन्धित द्रव्यों के पर्यायों का उल्लेख किया गया है जिनमें एलवालुक के बाद जातीफल और जातिपत्री के पर्याय इस प्रकार दिये गये हैं —

जातीफलं जातिसुतं शालूकं मालती सुतम्। तथा—
जातीपत्री जातिकोशी मालतीपत्रिका तथा॥६॥

पूरा वैद्यसमाज डा० दाश तथा वैद्या कश्यप का तो ऋणी रहेगा ही हम कन्सैप्ट पब्लिशिंग कम्पनीऐच-१३ बालीनगर नई दिल्ली ११००१५ के भी आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित कर अकबर के काल में हुई आयुर्वेद की प्रगति को भी प्रस्तुत कर दिया है।

जायफल, जावित्री और लोग तथा दालचीनी के पादपो या वृक्षो से मेरा परिचय श्रीलका के कैंडी नामक मनोरम स्थान के सरकारी उद्यान मे हुआ तब जब मैं वहा के पोस्ट ग्रेजुएट इन्स्टीच्यूट आफ आयुर्वेद का सस्थापक निदेशक था और मेरे साथ वनौषधि विद्यापति वैद्यराज श्री मायाराम उनियाल साथ थे जो आजकल सेंट्रल काउन्सिल रिसर्च इन आयुर्वेद और सिद्ध में असिस्टेंट डाइरेक्टर के पद पर विराजमान है। हुआ यो कि मैं एक विशाल पेड के नीचे खडा था। उनियाल जी मुझे पास मे उगी हुई छोटी इलायची के पौधो को अपने अगुलि निर्देश से बतला रहे थे तभी मैने उस उद्यान के एक अधिकारी से प्रश्न किया कि जायफल का पेड कहा है? उसने कहा कि आप जायफल के पेड के नीचे ही खडे है। और एक कर्मचारी को इगित कर उस वृक्ष का एक फल तोड कर मुझे दे दिया। मैने कोलम्बो के अपने निवास स्थान होटल मेरिडियन मे उसे रख दिया। २-३ दिन बाद उसके ऊपर का छिलका अलग हो गया जिसे जावित्री कहते हैं और जायफल अपनी ताजी आकृति मे खिलखिला रहा था मानो कह रहा हो यह मैं जायफल हू जिसे आप कैंडी से लेकर आये है। कैंडी मे ही मैने लोग के पेड के बारे मे जिज्ञासा की तो एक जामुन के पेड जैसा पौधा मुझे दिखाया जो लोग का पेड था। इसी समय मैंने दालचीनी के पौधे से परिचय किया और पूछा कि जो दालचीनी हम बाजार मे देखते है वह तो बहुत पतली छाल होती है पर इसकी तो छाल छुडाना मुश्किल है तब एक अधिकारी ने बतलाया कि अब यह पेड बडा हो गया है इसकी छाल नही उतारी जा सकती। जब यह नया पौधा बनता है तब इसकी छाल के पर्त के पर्त अलग किए जाते हैं।

द्रोणाचार्यवत् एकलव्य जैसे मेरे गुरुदेव वैद्य जादवजी त्रिकमजी आचार्य जिनकी अब मात्र याद ही शेष रह गई है और उनके द्वारा प्रदत्त या लिखित अनेक ग्रन्थ उनकी विशद विरुदावली का गान कर रहे हैं ने द्रव्यगुण विज्ञान नामक बृहद ग्रन्थ का वर्णन कई खण्डो मे किया है। उसके दूसरे खण्ड मे जिसका प्रकाशन श्री शर्मा आयुर्वेद मन्दिर, दतिया (म० प्र०) से अब हो रहा है मे बोटनीकल वर्गो के अन्तर्गत द्रव्यो का वर्णन किया गया है उनमे माइरिस्टीकेसी (Myristicaceae) वर्ग के अन्तर्गत उन्होने मात्र जातीफल का वर्णन किया है जिसमे जावित्री का भी समावेश हो गया है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई ने जायफल और जावित्री दोनो को ही वेदनास्थापन माना है। वैद्यराज हकीम दलजीतसिंह इसे स्वापजनन और गर्भाशय सशोधक लिखते हैं।

भिषग्वर श्री गोपीनाथ पारीक ने जो इस विशेषाक शृङ्खला के स्वनामधन्य सम्पादक हैं इन दोनो द्रव्यो के विषय मे सर्वांगसम्पूर्ण तथ्य प्रस्तुत कर वैद्य समाज का महान् उपकार किया है। धन्वन्तरि कार्यालय से अलग होकर सम्पादक वैद्य गोपालशरण गर्ग बी ए एम एस आयुर्वेदाचार्य ने अब सुधानिधि का पूर्णदायित्व सम्हालते हुये वैद्यराज श्री राधावल्लभ, श्री बाकेलाल गुप्त प्राणाचार्य, वैद्य श्री देवीशरण गर्ग की परम्परा को अक्षुण्ण रखने का निश्चय किया है जो और भी श्रेयस्कर है हम लेखको और पाठको को पूर्ण मनोयोग के साथ और उत्साहपूर्वक उनका सहयोग करना चाहिए तथा सुधानिधि परम्परा को अक्षुण्ण रखने मे उनको पूरी-पूरी मदद करनी चाहिए।

मुझे अपने क्यूबा प्रवास मे ज़ार्डिन बोटैनिको नेशियोनल डी क्यूबा मे विचारण के दौरान जायफल वृक्ष के दर्शन नही हुए।

मेरे पास जो दक्षिण अमेरिका के देश ब्राज़ील के अमेझन नदी के बेसिन मे उगने वाली जडी-बूटियो की जो सूची है उसमे भी जातीफल का उल्लेख नही है। इन तथ्यो से विदित यही होता है कि यह महत्वपूर्ण द्रव्य मात्र पूर्वी द्वीपसमूह मे ही उपलब्ध होता है पश्चिमी द्वीपसमूह या अमेरिकाओ मे नही।

वियतनाम के वैद्य जायफल (न्हूक हौ खो वर्ग) और जावित्री दोनो का ही अपनी चिकित्सा मे उपयोग करते हैं।

माधवकृत द्रव्यगुण मे जातीफल के गुणो को कंकोल के समान लिखकर छोड दिया है पर जातीकोष का वर्णन पूरे श्लोक मे यो दिया है :—

जातीकोषो लघुस्तृष्णाक्लेददौर्गन्ध्यजिन्मत ।
सतिक्तकटुकश्चैव वलासस्य विनाशन ॥ १२६॥ —विविधौषधवर्ग

चातुर्जात की नाम-प्रकृति के अनुसार ही मै अपनी चिकित्सा मे दाशजात के नाम से एक चूर्ण बनाता हू जिसे शैत्यनिवारण हेतु और कफ को नष्ट करने एव क्षुधावृद्धि के लिये देता हू। इसमे जिन द्रव्यो का समावेश किया जाता है वे हैं —

१ दालचीनी, २. लवग, ३ छोटी इलायची, ४. बडी इलायची, ५ तेजपत्र, ६ शीतलचीनी (ककोल), ७. नागकेशर, ८ कालाजीरा, ९ जायफल और जावित्री।

धन्वन्तरीय निघण्टुकार ने जातिपत्री को विषहृत कामशान्तिदा लिखकर इसे विषघ्नी और सैडेटिव भी बतलाया है। जातीफल को उसने कण्ठामयार्तिजित् लिखकर टोसिलाइटिस और फैरिजाइटिस मे उपयोगी लिखा है।

नरहरि ने राजनिघण्टु मे जावित्री को जाड्यदोषनिकृन्तनी लिखा है उसने जायफल के गुण नही लिखे।

एक छोटे बालक को सर्दी लगकर ज्वर हो गया और न्यूमोनिया बन गया। बच्चे का ताऊ इगलैड मे बडा डाक्टर है। लड़के की मा आयुर्वेद भक्त है। रोगी मेरे पास लाया गया मैंने उससे मना किया कि किसी बडे डाक्टर को दिखा ले मैं सिर्फ जीर्ण केसो को ही लेता हू नये ऐक्यूट केसो को लेने के लिये मेरा स्वास्थ्य काम नही देता। पर उसके माता पिता नही माने। मैंने उन्हे नीचे लिखा नुस्खा लिख दिया —

टकण भुना १५ मि०ग्रा०, जावित्री ३० मि० ग्रा०, जायफल १० मि० ग्रा०, शृगभस्म ५० मि० ग्रा०, केशर कश्मीरी १५ मि०ग्रा०—मिलाकर ४ मात्रा बना ले और अदरक के रस और शहद से दे। प्रतिदिन ४ मात्रा देते रहे। कल (२२ अक्टूबर १९८१) को बच्चा स्वस्थ्य था सर्दी, खासी, ज्वर नही था और उसके माता-पिता प्रसन्न थे। पारीकजी द्वारा प्रस्तुत विवरण पाठकगण बड़े मनोयोग से पढ़ कर हृदयगम करेंगे।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी।

न्याय, वैशेषिक दर्शन के अनुसार ही आयुर्वेद ने भी ९ द्रव्यो का प्रतिपादन किया है—"खादिन्यात्मा मन कालो दिशश्च द्रव्यसग्रह"। इन ९ द्रव्यो मे निरिन्द्रिय (अचेतन) की उत्पत्ति मे पचमहाभूत तथा सेन्द्रिय (चेतन) जगत की उत्पत्ति मे पचमहाभूत और मन व आत्मा समवायि कारण होते हैं। दिक् और काल उभयविध सृष्टि की उत्पत्ति मे निमित्त कारण होते है। इन सभी द्रव्यो का कारण असमवायि कारण होता है। आरम्भवाद के अनुसार पचमहाभूतो के परमाणु की कल्पना की गई है। ये पचमहाभूत के परमाणु परस्पर मिलकर द्व्यणु तथा त्रसरेणु का रूप धारण करते है। पुन इन त्रसरेणुओ के सयोग से यथाक्रम पचमहाभूतो की उत्पत्ति होती है और इन पचमहाभूतो से पाच भौतिक जगत का निर्माण होता है। साख्यदर्शन मे यद्यपि स्थूल महाभूतो से समस्त निरिन्द्रिय सृष्टि की उत्पत्ति मानी गई है तथापि स्थूल महाभूतो की उत्पत्ति में गुण परिणाम के अतिरिक्त अधिक वर्णन नही मिलता। स्थूल महाभूतो की उत्पत्ति का विशेष

विवरण वेदान्त दर्शन मे मिलता है, जो पञ्चीकरण कहलाता। कहा है—'पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतानि तत्कार्यं च सर्वविरादित्युच्यते'—श्री शङ्कराचार्य। पचमहाभूतो मे एक-एक की उल्वणता के अनुसार द्रव्य पाच प्रकार का होता है—पार्थिव, आप्य, तैजस, वायव्य और नाभस। प्रत्येक द्रव्य इन महाभूतो के सगठन के अनुसार ही अपने कर्म सम्पादित करते हैं। ग्राहि द्रव्यो के सगठन मे वायु एव पृथ्वी तत्व की प्रधानता होती है। महर्षि सुश्रुत ने वायु के गुणों की अधिकता वाले द्रव्यो को साग्रहिक कहा है जबकि आचार्य नागार्जुन ने वायु और पृथ्वी के गुणो की अधिकता वाले द्रव्यो को साग्राहिक कहा है। आचार्य शार्ङ्गधर ने मल शोषण क्रिया का हेतु उष्णता माना है। शार्ङ्गधरसहिता के विद्वान् व्याख्याकार आढमल्ल ने आमपाचक सग्राही द्रव्यो को आमसग्राहक एव पक्वमलस्तम्भक द्रव्यो को पक्वसग्राहक कह कर इसका उपयुक्त समाधान प्रस्तुत किया है। अर्थात् जो द्रव्य ग्रहणी मे आम को पका जठराग्नि को प्रदीप्त कर और वहा स्थित द्रव मल का शोषण करके सग्रहण करता है, उसे उष्ण सग्राहक कहते है। जो द्रव्य अतिसारादि मे पक्व मल आदि का स्तम्भन करके सग्रहण करता है, उसे शीत सग्राहक कहते है। डा० श्री वामन गणेश देसाई के वर्णन की भाति आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने अपने प्रिय-निघण्टु मे उष्ण सग्राहक द्रव्यो को ग्राहि तथा शीत सग्राहक द्रव्यो को साङ्ग्राहिक नाम दिया है। जातीफल एक उत्तम उष्ण सग्राहक द्रव्य है सुतरा आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने अपने द्रव्यगुण-विज्ञान मे ग्राही द्रव्यो के अन्तर्गत जातीफल का वर्णन किया है। ग्राही द्रव्यो की परिभाषा मे कहा गया है कि जो द्रव्य भुक्त अन्न का पाचनार्थ धारण करने मे सहायक होता है तथा इस प्रकार ग्रहणी के बल को बढाता है, वह ग्राही कहलाता है ऐसे द्रव्य उष्णवीर्य और कटु होते हैं—

भुक्त गृण्हाति सपक्तु ग्रहणीवलवर्धनम्।
ग्राहि तदुष्णकटुक जीर जातीफल यथा ॥
—प्रियनिघण्टु ४।५६

यह जातीफल कुल (मिरिस्टिकेसी) की वनौषधि है।

विभिन्न नाम जातीफल—

संस्कृत—जातीफल, जातिकोष, मालतीफल, जाति.—"जाति. सामान्यगोत्रयो। मालत्यामामलक्या च चुल्ल्या कापिल्लजन्मनो.। जातीफले छदसि च"
—हेमचन्द्र.

हिन्दी—जायफल।
गुजराती—जायफल।
मराठी—जातीफल।
बंगला—जातीफल।
तामिल—जाजिकई।
तेलगु—जाजिकई।
मलयामल—जाजिकई।
कन्नड—जाजिकई।
अरबी—जौजब्बुवा।
फारसी—जौजबुया।
अंग्रेजी—नटमेग (Nutmeg)।
लैटिन—मिरिस्टिका फ्रेगरेन्स (Myristica Fragrans)।

जातिपत्री नाम—

सस्कृत—जातिपत्री, जातिफलत्वक्।
हिन्दी—जायपत्री, जावित्री।
मराठी—जायपत्री।
गुजराती—जायपत्री।
बंगला—जायत्री।
तेलगु—जाजिपतरी।
अरबी—विसवासाह।
फारसी—बजवाज।
अग्रेजी—मैस (Macc)।
लैटिन—दी एरिल आफ मिरिस्टिका फ्रेगरेन्स।

उत्पत्ति स्थान—यह मोलक्का द्वीपसमूह का मूल निवासी है। कहा गया है—"जातीफलस्य वृक्षास्तु द्वीपान्तरनिवासिन"। इसके अतिरिक्त सुमात्रा, जावा, सिंगापुर, पेनांग एव मलाया द्वीपसमूह मे भी

इसके जगली वृक्ष पाये जाते हैं। आजकल इसके वृक्ष लका तथा दक्षिणी भारत मे नीलगिरी तथा अन्य पहाडी स्थानो मे भी उगाये जाते है। ये वीज या कलम से उगाये जाते है। जायफल और जाविश्री का वाहर से आयात होता है।

रासायनिक सघटन—जायफल मे ५ से १५% उडनशील तैल (Volatile Oil), जो इसका प्रधान सक्रिय तत्व होता है। यह पीताभ होता है। इसमे मिरिस्टिसीन और मिरिस्टिक अम्ल (Myristic Acid), डी–पाइनीन डी–कैम्फीन, जिरेनिआल सफ्राल, युजिनाल आदि पदार्थ पाये जाते है। फल के अतिरिक्त पत्र और छाल मे भी थोडा यह उडनशील तैल होता है। २५ से ४० प्रतिशत एक स्थिर तैल (Fixed Oil) पाया जाता है। यह स्थिर तैल "जातीफल नवनीत" (Butter of nutmeg) कहलाता है। इसमे ग्लिसराइड राल तथा एक सुगन्धित तैल होता है। इस जातीफल-नवनीत की पीले रग की सावुन जैसी वट्टिया वाजार मे उपलब्ध होती हैं। जायफल मे इन तैलो के अतिरिक्त ७ ५ प्रतिशत प्रोटीन १४ ६ से २४ २ प्रतिशत स्टार्च एव १ ७ प्रतिशत खनिज द्रव्य होते हैं। जाविश्री मे जायफल के समान उडनशील तैल ४–१४ प्रतिशत, स्थिरतैल २६ प्रतिशत, रालीय रजक द्रव्य, पेक्टिन एमाइलाडेक्स्ट्रिन २३ प्रतिशत होते है। इसके पीताभ सुगन्धित तैल मे जाविश्री की गन्ध आती है।

इतिहास—आयुर्वेदीय सहिताओ एव निघण्टु-ग्रन्थो मे प्राचीन काल से इसका उल्लेख मिलता है। इनमे सुगन्धित, ग्राही और वाजीकरण के रूप मे विशेषतया उपयोगी कहा गया है जिसका आगे विस्तृत वर्णन किया जायेगा। औषधि के अतिरिक्त यह मसालो मे भी उपयोग मे लाया जाता है। सर्व प्रथम इसका प्रवेश भारतवर्ष मे पूर्वी द्वीपसमूह से हुआ। भारत से इसका प्रचार फारस एव फारस से अरव तथा यूरोपीय देशो मे हुआ। १२वी शताब्दी के अन्त मे जायफल व जाविश्री का प्रचार यूरोप मे हुआ। यूरोप मे औषधि एव मसाले के रूप मे अव भी इन दोनो की वहुत खपत है। सावुन को सुगन्धित वनाने के लिए भी इनका तैल काम मे लिया जाता है।

वानस्पतिक परिचय—मिरिस्टिका फ्रेगरेन्स नामक इसका वृक्ष सदा हरित सुहावना, सुगन्धित ३०-४० फुट क्वचित् ८० फुट तक ऊचा होता है। इसकी शाखाये कोमल और नीचे की ओर झुकी हुई होती है। पत्र जामुन पत्र के समान किन्तु छोटे ३-४ इञ्च लम्वे, डेढ इञ्च चौडे चमकदार, सुगन्धित, दृढ होते है। इनका ऊपरी पृष्ठभाग पीताभ धूसर वर्ण का होता है। निम्न भाग पर लाल-भूरी सिराये होती है। पत्रवृन्त चौथाई–आधा इञ्च लम्वा होता है। पुष्प-एकलिंगी, छोटे, सुगन्धित और पीतवर्ण, छत्राकार मञ्जरियो मे होते है। फल—गोलाकार या अण्डाकार डेढ–तीन इञ्च लम्बे चिकने, छोटे नासपाती किवा अमरूद के समान नीचे लटकते हुए होते है। ये वर्षाऋतु के वाद लगते है। इसके फल मे तीन स्तर होते है—

[१] प्रथम स्तर (फलावरण)—यह स्थूल तथा मासल होता है जो परिपक्व हो जाने पर पीतवर्ण हो जाता है। यह फल को घेरे हुए रहता है। इसमे एक सीता (Furrow) वनी रहती है। फल के परिपक्व होने पर सीता चिन्ह के विदीर्ण होते ही यह फलावरण (Pricarp) द्विधा विभक्त हो जाता है।

[२] द्वितीय स्तर (अन्तस्त्वक्)—विदीर्ण होने पर देखा जाता है कि पलाशपुष्प वर्ण की मासल त्वचा फलावरण को आवरित किये हुए है जो गुच्छो के स्वरूप मे उससे चिपकी रहती है। यह रक्ताभ पीत कवच सूखने पर फल से पृथक् हो जाता है। इसे ही जातिपत्री (जाविश्री) कहा जाता है।

[३] तृतीय स्तर (फलावरण)—यह वीज के ऊपर का स्थूल भाग है। इस आवरण सहित वीज को ही जातीफल (जायफल) कहते है। यह जाविश्री दलो के चिन्हित कठिन दारुमय, सुगन्धित अण्डाकार दिखाई देता है। वाजार मे जायफल वीजावरण के साथ व वीजावरण के रहित दोनो प्रकार का पाया जाता है।

फल के पकने पर स्वय जब वह फट जाता है तब उक्त जावित्री और बीज (जायफल) पृथक्-पृथक् हो जाते हैं।

भेद—इसके वर्ग की कुल ८५ जातियाँ हैं जिनमे से भारत मे लगभग ३० जातियाँ पाई जाती है। इसकी एक प्रजाति जगली जायफल (मिरिस्टिका मलाबारिका) है। यह दक्षिण भारत के कोकण, कर्नाटक तथा उत्तरी मलाबार मे पाई जाती है। इसका फल जायफल की अपेक्षा मोटा और लम्बा होता है। इसमे सुगन्ध नही या अत्यल्प होती है तथा तैल भी थोड़ा है। इसे कोई रामफल कहते हैं। बम्बई के बाजार मे यह देशी जायफल के नाम से जाना जाता है अत इसे बम्बइया जायफल (Bombay nutmeg) भी कहते हैं। फल या बीज के ऊपर जो पीताभ कृष्ण वर्ण का कोषावरण होता है जो सूखने पर पृथक् हो जाता है—रामपत्री या बम्बइया जावित्री (Bombay Mace) कहलाता है। इस पत्री मे भी सुगन्ध या स्वाद नही होता। एक दूसरी प्रजाति M beddomei King भी है।

व्यापार मे इसकी दो मुख्य जातियाँ स्वीकृत हैं—[१] पूर्व भारतीय (East Indian)। [२] पश्चिम भारतीय (West Indian)। इनमे प्रथम इण्डोनेशिया से तथा द्वितीय ग्रिनाडा द्वीप मे प्राप्त किये जाते है। इनमे प्रथम—पूर्व भारतीय भी तीन प्रकार का आता है—(१) बादा जायफल, (२) सियाव जायफल, (३) पेनांग जायफल। इसमें प्रथम बादा जायफल उत्तम होता है जिसमें ८ प्रतिशत सुगन्धित तैल होता है। एक चौथी जाति पैपुआ जायफल भी M argentea नामक वृक्ष से आता है। यह अल्प-गन्धि होता है।

संग्रह विधि—लगभग सात वर्ष आयु मे ७०-८० वर्ष तक फल देते है। वृक्ष मे प्राय वर्ष भर फल लगे रहते हैं किन्तु मुख्य फसल जून-अक्टूबर मे ली जाती है। पक्व फल जब विदीर्ण होकर भूमि पर गिर जाते जाते हैं तब उन्हे चुन लिया जाता है या वृक्ष पर से अकुशयुक्त छडी के सहारे उतार लिया जाता है। फलों से बीजों को पृथक् कर तथा ऊपरी कवच हटा सुखाते हैं जब हिलाने मे भीतर आवाज होने लगती है तब हथौडी से मार कर बीजावरण को पृथक् कर गिरी को निकाल लेते हैं। यही जायफल है। कवच को अलग मे छायाशुष्क कर जावित्री बनाते है।

रस—कटु, तिक्त, कषाय

++ + +

अभिधानरत्नमाला (षट्रस निघण्टु) मे कटुकस्कन्ध नामक पञ्चम स्कन्ध के अन्तर्गत इसका उल्लेख मिलता है, सुतरा प्रधान रस कटु है एव तिक्त, कषाय अनु रस है।

गुण—तीक्ष्ण, स्निग्ध, लघु।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—तीक्ष्ण, उष्ण होने से कफवात शामक है।

उत्तम जातीफल लक्षण—

जातीफल सशब्दञ्च स्निग्ध गुरु च शस्यते।
लघुक शब्दहीन च रुक्षाङ्गमतिनिन्दितम् ॥

—भैं० र०

सशब्दमिति सगे शब्दवत् —रत्नोज्वला

उत्तम जायफल २ से ३ सेण्टीमीटर लम्बा तथा लगभग २ सेण्टीमीटर चौडा और आकार मे अण्डाकार होता है। बाहर मे रग मे खाकस्तरी भूरे या भूरे रग का होता है। इसके बाहरी तल पर इतस्तत गाढे रग के छोटे चकत्ते या बिन्दु पडे होते है। इसके अतिरिक्त हल्की खातोदर रेखाओ का जाल सा दिखाई देता है जायफल के एक सिरे पर हल्के रग का चकत्ता (Light Coloured area) होता है जो जो मूलाकुर भाग का परिचायक है।

अपमिश्रण—बाजार मे असली जायफल के साथ किंवा स्वतत्र रूप से जगली जायफल—M Malabarica या M Argentea भी बेचे जाते हैं इसके अतिरिक्त सडे गले जायफल के बीज और उसके छिलके का चूर्ण साचो मे ढालकर पालिश कर चूना के रस मे लपेट सुखाकर बेचे जाते है जो असली जायफल के समान ही दिखाई देते है।

परीक्षण—वर्णित प्रशस्त जायफल की रचना, गन्ध एव स्वाद की परीक्षा करनी चाहिए। नकली जायफल मे असली जायफल के समान तीव्र सुगन्ध नही होती। इसमे उडनशील तैल भी न्यून होता है। इसे जलाने पर इसकी भस्म असली जायफल की अपेक्षा अधिक बनती है। इसको तोडने पर असली जायफल के समान परिभ्रूण मज्जा भ्रूणपोष भ्रूण-रचना नही दिखाई देती है। असली जायफल का चूर्ण जल, घृत, तैल मे गर्म करने पर बादामी वर्ण का विलयन बनता है। जल एव तैल मे यह स्वल्प विलेय है।

जगली जायफल (M Malabarica) के फल असली जायफल की अपेक्षा अधिक लम्बे किन्तु चौडे कम व किंचित् मुलायम होते हैं। ये निर्गन्ध होते हैं। M Argentea भी असली जायफल की अपेक्षा अधिक दीर्घ, चौडा कम होता है। स्वाद मे यह अति तिक्त व स्वल्पसुगन्धयुक्त होता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक। जायफल को घृत मे रखने से यह कई वर्षों तक सुरक्षित रहता है, बिगडता नही है।

गुणप्रकाशक संज्ञा—जातिकोष।

प्रयोज्य अङ्ग—बीज(जायफल),कोष (जावित्री)

मात्रा—चूर्ण ५०० मि० ग्रा० से १ ग्राम तक।
तैल—१-३ बूद।

हानिकारक—अधिक मात्रा मे या बार-बार इसके उपयोग से मादक प्रभाव प्रगट होता है इसकी अधिक मात्रा का प्रभाव मस्तिष्क पर कर्पूर के समान होता है अर्थात् चक्कर आना, प्रलाप और मूढता उत्पन्न करता है। इसकी अधिक मात्रा यकृत् और फुफ्फुसों को भी हानि पहुचाती है। अधिक मात्रा वीर्य स्थान मे उष्णता उत्पन्न कर वीर्य को पतलाकर नपुसकता उत्पन्न करती है।

ज्वर, प्रदाह, रक्तचापवृद्धि एव उष्ण प्रकृति वाले व्यक्ति को इसका प्रयोग हितावह नही है।

हानिनिवारणार्थ (दर्पनाशक)—धनिया, चन्दन, बनफ्सा और मधु का सेवन अधिक मात्रा से उत्पन्न लक्षणो का शमन करता है।

इसके तैल की अधिक मात्रा भी उक्त मादक प्रभाव करती है और उसके शमन हेतु भी उक्त द्रव्यो का सेवन हितकारक है। तैल मे उत्पन्न मादकता को नष्ट करने हेतु चन्दन और सितायुक्त नवनीत का सेवन लाभप्रद होता है।

जातिपत्री (जावित्री)—

जावित्री के गुणधर्म प्राय जायफल के समान ही है किन्तु यह विशेषत रोचन, वर्ण्य और वेदना स्थापन है। यह जायफल की अपेक्षा ग्राही कम है। इससे विपच्न गुण अधिक है।

मात्रा—२५० मि० ग्रा० से १ ग्राम तक।
तैल—१-३ बूद।

हानिकारक—इसकी अधिक मात्रा मादकता, शिर शूल एव मूर्च्छा को उत्पन्न करती है।

हानिनिवारक (दर्पनाशक)—अधिक मात्रा के सेवन से उक्त मादक प्रभाव को नष्ट करने के लिये नवनीत के चन्दन चूर्ण एव मिश्री मिलाकर सेवन करना चाहिए।

इसके तैल की अधिक मात्रा के उपयोग से उत्पन्न हानिप्रद लक्षण भी चन्दन मिश्री एव मक्खन के सेवन से शान्त हो जाते है।

अच्छा हो, कि इनके उपयोग से पूर्व प्रकृति एव रक्तचाप की परीक्षा करली जाय।

गुणधर्म विवेचन—

जातीफल रसे तिक्त तीक्ष्णोष्ण रोचन लघु।
कटुक दीपन ग्राहि स्वयं श्लेष्मानिलापहम्।
निहन्ति मुखवैरस्य मलदौर्गन्ध्यकृष्णता।
कृमिकासवमिश्वासशोषपीनसहृद्रुज ॥
जातीफलस्व त्वक् प्रोक्ता जातिपत्री भिषग्वरै।
जातिपत्री लघु स्वादु कटूष्णा रुचिवर्णकृत्॥
कफकासवमिश्वासतृष्णाक्रिमिविषापहा ॥

—[illegible]

जातीफल लघु स्वादु हृद्य दीपन पाचनम् ।
उष्णं कफानिलच्छर्दिक्रिमिवीसर्पकासजित् ॥
जातीपत्री लघूष्णा स्यात् कफक्रिमिविपाऽपहा ॥
—म० वि० नि०

जातीफल कटुकतिक्तलघूष्णतीक्ष्ण—
स्वर्यप्रदीपनसुगन्धिमनोज्ञरुच्यम् ।
कुर्यात्तृपाविपवमिक्रिमिशोपकास—
श्वासार्तिमारुतकफानभिधानशेपान् ॥
जातिन्त्रिका लघु स्वाद्वी कटूष्णा रुचिवर्णदा ।
कामश्वासक्रिमिवमिनाशिनी सुरभि सरा ॥
—सि० भे० म० मा०

कोषकं तुवर तीक्ष्णोष्णा कटुक लघु ।
रोचन दीपन ग्राहि स्वर्यं वातकफापहम् ॥
निहन्ति मुखवैरस्यमद्यदौर्गन्ध्यकृष्णता ।
कामशोपवमिश्वामक्रिमिपीनसहृद्रुज ॥
—महौ० नि०

जातीफल कटुतिक्तञ्चोष्ण वातकफापहम् ।
सुगन्धि दीपन ग्राहि वृष्य वैस्वर्यनाशम् ॥
पीतवर्णावृतिर्वीजे जातिपत्रीति कथ्यते ।
शस्यते वृष्ययोगे तु मुखदौर्गन्ध्यनाशिनी ॥
—प्रि० नि०

जातिकोशोऽथ कर्पूर जातीकटुकयो फलम् ।
• • • • तिक्त कटु कफापहम् ॥
लघु तृष्णापह वस्त्रक्लेददौर्गन्ध्यनाशनम् ॥
—सु० सू० ४६

जातीफलन्तु वीज द्वीपान्तर-
वासिनो द्रुमाज्जातम् ।
सग्राहि दीपन स्याज्जाती-
पत्री तदावरणम् ॥
—षोडशाङ्गहृदयम्

तैल जातीफलोद्भूत समुत्तेजनमग्निदम् ।
जीर्णातिमारशमनमाध्मानाक्षेपशूलनुत् ।
आमवातह वल्य दन्तवेष्टव्रणार्तिनुत् ॥
—आ० वि०

वात के नानात्मज रोगो में "विरसमुखत्वम्" भी कहा गया है। इस रोग को दूर करने मे जातीफल उपयोगी है। वैरस्य के अतिरिक्त मुखदौर्गन्ध्य को भी मुखदौर्गन्ध्यनाशन होने से दूर करने मे समर्थ है। इसकी पञ्चसुगन्धिक द्रव्यो मे गणना है—

ककोल पूगफल लवङ्गकुसुमानि च ।
जातीफलानि कर्पूरमेवत्पञ्चसुगन्धिकम् ॥
—यो० र०

रोचन, दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक, वातानुलोमन, ग्राही और कृमिघ्न होने से यह अरुचि, अग्निमाद्य, अजीर्ण, यकृद्विकार, विष्टम्भ, अतिसार-ग्रहणी और कृमिरोग मे प्रशस्त कहा गया है। वातादि चार शारीरिक कारणो से उत्पन्न अरुचि मे जातीफल का उपयोग हितावह है, मानसिक कारणो से उत्पन्न अरुचि मे तो मानसोपचार ही करना होगा। आम, विष्टब्ध और विदग्धाजीर्ण से जो विसूचिका उत्पन्न होती है उसके समस्त लक्षणो का शमन करने मे यह प्रशस्त है। विसूचिका के अतिरिक्त स्वतन्त्ररूपेण उत्पन्न छर्दि, तृष्णा आदि मे भी यह उपयोगी है। पुन-पुन छर्दि होने से जलक्षय (Dehydration) होकर वातवृद्धि होती है, उसे दूर करने के लिये जातीफल, छर्दिघ्न व बृहण द्रव्य होने से विशेष उपयोगी है।

नानात्मज एव सामान्यज भेद से रोग दो प्रकार के होते है। एक ही दोष से उत्पन्न होने वाले विशिष्ट रोगों को नानात्मज कहते हैं। एक दो या तीनो दोषो मे उत्पन्न होने वाले विविध रोगों को सामान्यज कहते हैं। जातीफल कफवात शामक होने से कफ व वात के नानात्मज रोगो मे तथा इनके सामान्यज रोगों में लाभप्रद है। तृष्णा को पित्त के नानात्मज विकारों में कहा गया है। इस प्रकार के तृष्णा रोग में जातीफल लाभदायक नही किन्तु जब यह सामान्यज रूप मे हो यह उपयोगी है। तृष्णा वस्तुत स्वतन्त्र रोग न होकर अनेक रोगो का एक विशिष्ट लक्षणमात्र है, सुतरा भगवान् चरक ने "घोर व्याधिकृशाना प्रभवत्युपसर्गभूता सा" कहा है। जहां भी कृश हुए रोगियो में उपद्रवस्वरूप तृष्णा उत्पन्न होती है जातीफल उपयोगी सिद्ध हो सकता है। धातुगत जल की न्यूनता

के० र० भा० है

ही तृष्णा का मूल कारण कहा जा सकता है। यह जल की न्यूनता जलवाही स्रोतो की दुष्टि से होती है। वातपित्त दोष स्वय प्रकुपित होकर जलवाही स्रोतो को दुष्ट करते हैं किंवा जलवाही स्रोत दुष्ट होकर वातपित्त दोष को दुष्ट बना तृष्णा को उत्पन्न करते हैं। जहा पर अन्न, कफ और आम प्रथम जलवाही स्रोतो को दुष्ट करने के पश्चात् वात पित्त की दुष्टि कर तृष्णा को उत्पन्न करते हैं वहा प्रारम्भ मे ही जातीफल दीपन-पाचन होने से रोग की सम्प्राप्ति मे बाधा उत्पन्न करने मे सहायक होता है। कफ-वात जन्य तृष्णा को दूर करने मे जातीफल उपयोगी है। एव विध तृष्णा मे अन्य पित्त शामक द्रव्यो के सयोग से यह आरोग्यप्रद है। ये द्रव्य गुडूची स्वरस, उशीर, लाजोदक आदि लिये जा सकते हैं।

कफ, पित्तशामक और पित्तसारक होने से यह पुरीषवहस्रोतस् की सर्वोत्कृष्ट औषधि सिद्ध हुई है। पुरीषवहस्रोतस् के विकारहेतुओ को देखने से यह ज्ञात होता है कि इनमे वात कफ की वृद्धि ही प्रमुख है। पित्तसारक होने से पुरीष की अत्यधिक दुर्गन्ध को यह दूर कर शूल, आटोप आदि को भी दूर करता है। विषयान्तर होते भी छात्रो के लिये पुरीषवह स्रोतस् का यहा वर्णन करना उचित समझता हू।

पुरीषवहस्रोतस्

अवयव	विकृति	कारण
१ पक्वाशय —	उत्सेध	पुरीषसचय, वातवृद्धि
	आनाह	वातवृद्धि
	आटोप	वातवृद्धि
२ उण्डुक —	शूल	वातवृद्धि
३ मलाशय —	पुरीषसंग	मलक्षय
	पुरीषातिप्रवृत्ति	मलवृद्धि
४ गुद —	अर्श	रक्तप्रदोष
	मलविसर्जन काले वेदना	—
५ पुरीष	शुष्कता	वातवृद्धि
	द्रवता	पित्तवृद्धि
	[illegible]	रक्तपित्त प्रकोप
	निरक्त	—
	साम	कफ, आम
	निराम	—
	विस्रगन्धी	आम
	स्निग्धता	कफवृद्धि
	रूक्षता	वातवृद्धि
	कृष्णता	वातवृद्धि

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि पुरीषवह स्रोतस् मे वातवृद्धि, कफवृद्धि से ही प्राय रोग होते हैं। इन विकारो को जातीफल अपने उपर्युक्त कर्मो के द्वारा नष्ट करने मे समर्थ होता है। जठराग्नि और समानवायु कोष्ठ से जल के प्रचूषण मे सहायता करती है। अग्निमाद्य होने पर यह प्रचूषणी क्रिया भी मन्द हो जाती है जिससे न केवल कोष्ठगत जल जो पेय पदार्थों द्वारा प्राप्त होता है अपितु क्लेदक कफ भी जो कोष्ठ मे रहता है यही सचित होकर वायु द्वारा नीचे उतार कर मलाशय को पहुचा दिया जाता है जो मल को पतला कर बार-बार दस्तो के रूप मे प्रगट होता है। जातीफल इस अग्निमाद्य को मिटाता है और प्रचूषणी क्रिया मे सहायता पहुचाता है। इसीलिये इसकी पुरीषवह स्रोतस् मे उपादेयता सर्व प्रसिद्ध है।

वातकफजन्य अतिसार या ग्रहणी मे यह प्रशस्त औषधि मानी जाती रही है। ये रोग अग्नि के स्वाभाविक कार्य मे व्याघात होने से होते हैं। अतिसार मे यह व्याघात अस्थाई किन्तु ग्रहणी मे यह व्याघात स्थाई होता है। इन रोगो मे जब भी जायफल का प्रयोग किया जाय तक्र का अनुपान अवश्य रखें। वात की प्रधानता मे ताजा तक्र एव कफ की प्रधानता मे सर्वथा स्नेहरहित रूक्ष तक्र हितावह है। अतिसार मे जायफल की उपादेयता इन श्लोको मे व्यक्त की गई है—

जातीफल त्रिदश पुष्पसमन्वितञ्च।
जीरञ्च टकणयुत मुनिभि प्रणीतम्॥
एतानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा।
आमातिसारमखिल गुरुमाशु हन्ति॥

—भै० र०

यदि ते सरणाशकि शरीर पिब जातीफल नागर नीरम् । —सि० भै० मञ्जूषा

यदि क्षणे-क्षणे शरीरे मलप्रवृत्तिशका जायते तर्हि तत्र जातीफलशुण्ठ्यौ जलेन घृष्ट्वा शीतलमेव तज्जल पेयम् । —कुञ्चिका

जातीफलमहिफेन मोचरसाख्य सविल्वमित्येतत् ।
पुटपाकरीतिपक्व सकलातीसारसूदने सत्यम् ॥
—मञ्जूषा

इनके अतिरिक्त एक वाह्य प्रयोग भी वर्णित है—

तथा जातीफल पिष्ट्वा नाभौ दद्यात् प्रलेपनम् ।
दुर्निवारमतीसार वारयत्यनिवारितम् ॥
—भै० र०

ग्रहणी मे अग्नि के क्षीण होने से धातुओ का पोषण नही हो पाता जिससे धातुक्षय होकर वात की वृद्धि होकर विविध लक्षण उत्पन्न होते हैं। ग्राही, पौष्टिक, दीपन-पाचन एव वातशामक होने से यह सभी स्थितियो मे लाभप्रद है। ग्रहणीरोगोपयोगी प्रयोगो की बहुत लम्बी सूची है जिसमे जातीफल मुख्य घटक के रूप में व्यवहृत होता है। इनमे प्रमुख है—जातीफलादि, ग्रहणीकपाट, जातीफल रस, पीयूषवल्ली रस, ग्रहणीशार्दूल रस, नृपतिवल्लभ रस, महाराजनृपतिवल्लभ रस, राजवल्लभ रस, जातीफलादि वटिका, ग्रहणीगजेन्द्र वटिका, जातीफलादि चूर्ण आदि। श्लैष्मिक ग्रहणी मे एक परमोपयोगी प्रयोग है—

जातीफल यवमुस्तविल्वरजस्तक्रलोलित पीतम् ।
सन्धुक्षयति ज्वलन ग्रहणी सद्यो निगृण्हाति ॥
—सि० भै० म० मा०

अतिसार-ग्रहणी के पश्चात् उत्पन्न दौर्वल्य मे यह अत्युपयोगी है। वालको की सामान्य दुर्वलता में भी लाभप्रद है—

सञ्चूर्ण्य सर्पिषि शनै परिभर्ज्य जाती-
मायाफलानि कवलग्रह सम्मितानि ।
दृष्टेन्दुतिन्दुकमिताशवलानि दुग्धै-
र्दद्यात् प्रगे वलचमत्कृतये शिशुभ्य ॥
—सि० भै० म० मा०

यह उत्तेजक होने से हृदयरोगो मे तथा वेदनास्थापन, आक्षेपहर होने से वातरोगो मे उपयोगी है। मस्तिष्क पर इसकी क्रिया कर्पूर के समान होती है। पक्षाघात पर इसका वाह्याभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है। ऐसे योगो का वर्णन आगे किया जायेगा। अनिद्रा मे भी यह लाभप्रद है। शोथशामक व वेदना स्थापन होने से सन्धिशोथ व शिर शूल आदि मे भी इसका वाह्याभ्यन्तर प्रयोग हितावह कहा गया है—

जातीदलफलदरदोच्चटाक्रपाधातकीसुमाफूकम् ।
सितकरवीरसुमाद्भिर्विमर्थ गुटकीकृत शिरोर्तिहरम् ॥
—सि० भै० म० मा०

कविराज श्री जयदेव जी ने अपस्मार ग्रस्त रोगी के गले मे इसको बाधना हितकारी कहा है—

जातीफल गले वद्धमेव हिंगु वृकास्थि वा ।
कोलमूत्रार्द्रमृद्वापि वद्धागे, हन्त्यपस्मृतिम् ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

कफघ्न एव कफानिसारक होने से यह कास, श्वास, पीनसादि मे उपयोगी है। श्वासरोगी के लिए मञ्जूषाकार मे एक तैल लिखा है—

जातीपत्री जातिकोष लवग-
मल्लो गन्धो गुग्गुलुश्चेति तुल्यम् ।
तैल पातालाख्ययन्त्राच्युत स्याद्-
घोर श्वास त्रासनाशाय सद्य ॥

"वायु कफेनानुगत पञ्चहिक्का करोतिहि" इस सुश्रुतोक्त कथन से हिक्का मे वायु और कफ की हेतुता सिद्ध होती है। जातीफल इन हिक्काओ मे इसीलिए उपयोगी है। प्रतिश्याय जनित शिर.शूल मे निम्नाकित औषधियो की पोटली बनाकर सूघना हितकारी है—

सुजातजातीफलपुष्पविश्वाकस्तूरिकाभिर्युगरक्तिकाभि ।
प्रकल्पिता पोट्टलिका हिनस्ति घ्राता प्रतिश्यायभवा-
शिरोर्तिम् ॥ —सि० भै० म० मा०

अग्नि पर इसका चूर्ण डालकर सूघना भी हितकारक है। इस धूम्र से कीटो का नाश होता है। केमिकल प्रापरटीज के अन्वेषण से यह सिद्ध हुआ है

कि जायफल, जाविश्री, बडी इलायची, चन्दन आदि को अग्नि मे जलाने से उनका लाभदायक भाग ज्यो का त्यो रहते हुए सूक्ष्म हो जाता है। जिससे इन द्रव्यो के गुण बढ़ जाते हैं और ये आसानी से कीटाणुओ का नाश करते है। तब ही तो यह चर्मरोगो मे भी उपयोगी है। व्रणो के शोधन एव रोपण हेतु इसका उपयोग हितावह कहा गया है।

जातीफलविडङ्गानि रसक देवपुष्पकम्।
समभागानि सर्वाणि नवनीतेन मर्दयेत्॥
स्फोटानामुपदशाना व्रणशोध नरोपणा।

—यो० र०

जातीपत्राभयायष्टीमधुदार्व्या च लेपयेत्।
नाभिपाके प्रलेप्तव्य सिक्ततैलेन भूरिश॥

—र० र० स० उ० ३२

मणिमालाकार ने उपदश मे इसके आभ्यन्तरीय प्रयोग का भी वर्णन किया है। शास्त्रीय प्रयोगो मे इसका वर्णन किया जायेगा। जातीफलकल्क का लेप नीली और व्यङ्ग आदि को भी नष्ट करता है।

जातीफलकल्कलेपो नीलीव्यङ्गादिनाशन।

—च० द० ५५

दन्तरोगो मे जातीपत्री अधिक उपयोगी है। कहा गया है—

जातीपत्र पुनर्नवागजकणाकोरण्टकुण्ठ वचा।
चव्य शुण्ठिहरीतकीसमकृत चूर्णं मुखे धारयेत्॥
वातघ्न कृमिदन्तशूलकफज सर्वामय नाशयेद्।
दुर्गन्धादिसमस्तदोषशमन दन्तश्च वज्रायते॥

—व० राजीयम्

जायफल आर्तवजनन होने से रजोरोध व कष्टार्तव मे भी उपयोगी है। इसके अतिरिक्त वृष्य होने से कामोत्तेजना किंवा स्तम्भन हेतु वाजीकरण योगो मे इसकी योजना की जाती है। ग्राही योगो की भाति वृष्य योगो की भी लम्बी सूची है जिनमे जातीफल या जातीपत्री किंवा दोनो ही डाली जाती हैं। वीर्यस्तम्भन वटी का योग है—

जातीफल लवग च जातीपत्र सकुङ्कुमम्।
सूक्ष्मैला चाहिफेन च त्वाकारकरभ तथा॥
प्रत्येक कर्षमात्राणि कर्पूर शाणमात्रकम्।
नागवल्लीदलरसैर्वटी चणकसन्निमा॥
वीर्यसस्तम्भनी ह्येषा बलवर्णाग्निदीपनी।

—यो० र०

जातीफलस्य फणिफेनमृतोदरस्य-
लिप्तस्य सत्पुटमदा परिपाचितस्य।
एलाकुरङ्गसुमकुङ्कुमहिङ्गुलाढ्या-
रेतो रुणद्धि गुटिका पयसा निपीता॥

—सि० भे० म० मा०

कामाग्निसदीपन मोदक (भै० र०), पूर्णचन्द्र रस (भै० र०), रतिवल्लभातक (यो० र०), रसराज रस (सि० भे० म० मा०), कन्दर्प वटी (सि० भे० म० मा०), श्रीमन्मथ रस (र० सा० स०), चन्द्रोदय रस (र० सा० स०) आदि मे जातीफल और जातीपत्री है। कुछ प्रयोग आगे वर्णित किये जायेंगे। वृष्य होने के साथ यह उत्तम बल्य भी है। बहुत से बल्य पाकादि का वर्णन इसी आलेख मे किया गया है। एक पाक यहा उद्धृत है—

जातीफलाना शतपचक च
द्रोणेन दुग्धेन विपाच्य सम्यक्।
सिता तुला चात्र घृतं तुलाश
दद्यात्तुगाया कुडवैकमेव॥
कर्पूरककोल लवग चूर्णत्रिजातक
त्रिजातक मोचरस पृथक् पलम्।
भक्ष्य च कर्षं निखिलामयघ्न
स श्वासकास ग्रहणी प्रमेहम्॥
दुर्नामक क्षैण्यमतिक्षय च
निहन्ति कुर्याद्बलवीर्य पुष्टिम्।

—पाक प्रदीप

यूनानी मतानुसार—यह दूसरे दर्जे के आखिर मे गरम और तीसरे दर्जे मे खुश्क है इसलिए सर्द और तर मिजाज वालो के लिए मुफीद है। इसको खाने से सर्द मिजाज वालों की कामशक्ति बढ़ती है। स्तम्भन सम्बन्धी औषधियो मे यह एक प्रधान औषधि है। इससे स्तम्भन लायक कई नुस्खे तैयार होते हैं। इसके लगाने से आखो की खुजली और धुधलका मिट-

कर आंखों की ज्योति बढ़ती है। मेदे और जिगर के लिए यह अधिक लाभप्रद है। तिल्ली, यकृत् की सूजन, जलोदर, गठिया, लकवा, अनैच्छिक मूत्रस्राव, मुख की दुर्गन्ध, अफरा, अपचन, आदि रोग इसके सेवन से मिटते हैं। इसके अलावा अतिसार मे यह बहुत मुफीद है।

जायफल की तरह जावित्री भी मूत्रल, स्तन्य-वर्धक, निद्राप्रद, पाचक, पौष्टिक और कामोत्तेजक है। विसूचिका, अतिसार, यकृत्प्लीहा के विकार, शिर्दर्द, पक्षाघात और नेत्र-व्यथा मे यह मुफीद है।

आधुनिक मतानुसार—डा० वा० ग० देसाई के कथनानुसार यह सुगन्धित दीपन, वातहर, वेदना-स्थापक, आक्षेपनिवारक, उत्तेजक, मादक, पौष्टिक और वृष्य है। यह आमाशय के लिये उत्तेजक होने से आमाशय मे पाचक रस बढ़ाता है, जिससे क्षुधा प्रतीत होती है। आन्त्र मे जाने पर वायु का अनुलोमन होता है। बड़ी मात्रा मे यह मादक है। बडी मात्रा मस्तिष्क पर कर्पूर के समान प्रभाव प्रदर्शित करती है।

डा० आ० एन० खोरी के मतानुसार जायफल और जावित्री दोनो सुगन्धित, पाचक और उष्ण होते हैं। सेवन करने पर जायफल पाचक कार्य को शीघ्र स्थिर करता है और भूख को बढ़ाता है। उदराध्मान, ग्रहणी व शूल शामक भी है। पाचक, स्तम्भक और वेदनाहर होने के कारण अतिसार, रक्तातिसार, उद्वेग व वमन मे उपयोगी है। अल्पमात्रा मे मूत्र-कृच्छ्र व रक्तमेह मे हितकर है। अति मात्रा मे यह मूढता एव प्रलाप उत्पन्न करता है। शिर शूल, वात-व्याधि व हस्तपदसकोच (Cramp) मे इसका लेप किया जाता है। इसका तैल उष्ण, वायु नाशक है। यह ग्रहणी मे व अन्यान्य उत्तेजक औषधियो के साथ दिया जाता है। अतिमात्रा मे सेवित होने से मद-कारक होता है। इसे सर्षप आदि के तैल के साथ मिलाकर वातव्याधि आदि रोगो मे मर्दनार्थ प्रयोग करते हैं।

डा० रामसुशीलसिंह के कथनानुसार जायफल के उत्पन्न एव स्थिर तैलो का व्यवहार पामेड तथा हेयर लोशन मे मिलाने के लिए किया जाता है। जैतून के तैल तथा सोपालिनिमेंट मे मिलाकर इसका प्रयोग चिरकालीन आमवात मे मालिश के लिए किया जाता है। जल के साथ इसको पीसकर प्रलेप के रूप मे शिर-शूल तथा नाडीशूल में प्रयुक्त करते हैं। आभ्यन्तर प्रयोग से यह दीपन-पाचन तथा वातानुलोमन है। अत. अग्निमाद्य तथा उदराध्मान मे उपयोगी है। दन्तशूल मे जायफल का तैल दन्तकोटर मे स्थापित करना चाहिए। अधिक मात्रा मे प्रयुक्त होने पर तीव्र उत्तेजक प्रभाव (Cerebral Stimulant) करता है।

डा० रामनाथ वर्मा के कथनानुसार आमाशयिक रस को बढ़ाने वाला यह जायफल आध्मान, अजीर्ण और पेट की ऐठन मे उपयोगी है। इसका तैल अति-सार, पेचिश, अजीर्ण, दन्तशूल को शान्त करता है।

सामान्य प्रयोग

बाह्यप्रयोग—

१. **युवानपिडिका**—जायफल, लाल चन्दन और काली मिरच समभाग लेकर पानी मे पीसकर लेप करे।

२. **व्यङ्ग**—(क) जायफल मे जल मे घिसकर लगावें।

(ख) जायफल को दूध मे पीसकर लगावे।

(ग) मधु के साथ या अफसन्तीन के साथ मिलाकर लगावें।

३. **नाड़ीव्रण**—(क) जायफल के सूक्ष्म चूर्ण का अवधूलन करें।

(ख) जायफल, हरिद्रा, नीम की छाल, मजीठ इन्हे घृत मे पकाकर लेप करें।

४. **अतिसार**—(क) जायफल को जल मे घिस कर नाभि पर लेप करें।

(ख) जायफल, अफीम, आम की गुठली, बेलगिरी को पानी पीसकर नाभि पर लेप करें।

५. **अपस्मार**—जालफल मे छिद्रकर उसे धागे मे बाध कर गले मे बाधें।

६ **प्रतिश्याय**—जायफल, जावित्री, सोठ तथा कस्तूरी ५००-५०० मि० ग्रा० लेकर जल के साथ खरल कर रूमाल मे रख पोटली सी बनाकर सूघते रहने से प्रतिश्याय एव उससे उत्पन्न शिर शूल का शमन होता है।

७. **शिर:शूल**—जल मे या सुरा म घिसकर ललाट पर लेप करे। जल मे घिस कर गर्म कर लेप करे।

८. **विसूचिका**—विसूचिका म हाथ-पैरो मे ऐठन होने पर एक जायफल को १२५ मि० लि० सरसो के तैल मे मिलाकर गरम कर सुखोष्ण की मालिश करें।

९. **कटिशूल**—सुरा मे घिसकर कटि पर लेप करे।

१०. **अनिद्रा**—जायफल को गोघृत मे घिसकर पलको पर लगावें।

११. **कर्ण बाधिर्य**—इसे तैल मे पीसकर कान मे टपकावें।

१२. **सर्वसर**—जायफल का क्वाथ बनाकर क्वाथ का गण्डूप धारण करें।

१३. **कर्णमूलशोथ**—शोथ स्थान पर इसे जल में पीसकर लेप करें। इससे वेदना एव शोथ का शीघ्र शमन होता है।

१४. **उत्फुल्लिका**—बच्चो के डब्बारोग मे इसका लेप करना हितकारी है। सजल लेप के पश्चात्। सेक करना चाहिए।

१५. **नपुसकता**—(क) अकेले जायफल चूर्ण की मालिश करने से शिश्न मे उत्तेजना आती है।

(ख) जायफल, मजीठ, और सरसो को पीसकर शिश्न पर लेप करने से उसमे उत्तेजना आती है। यह प्रयोग शिश्न स्थूलीकरण हेतु भी उपयोगी है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग

१. **अतिसार**—(क) जायफल और सोठ समानभाग लेकर पानी मे पीसकर पानी के अनुपात से ही सेवन करें।

(ख) जायफल, लवग, इन्द्रयव, कर्पूर और सौभाग्य (सुहागा) आमातिसार मे उपयोगी है।

(ग) जायफल चूर्ण अजादुग्ध के साथ ग्रीष्मकालीन अतिसार मे दे।

(घ) जायफल, नागरमोथा, सौभाग्य और अफीम का सेवन पक्वातिसार मे लाभप्रद है।

(ङ) जायफल १२० मि० ग्राम, शुद्ध विषमुष्टि चूर्ण ६० मि० ग्रा० और शुद्ध अफीम ३० मि० ग्रा० शीत जल से सेवन करें।

(च) जायफल को भूनकर तण्डुलोदक के अनुपान से रक्तातिसार मे सेवन करना हितकारी है।

(छ) जायफल, पोस्त, लोध्र, सोठ और खाड का समभाग चूर्ण शीतल जल से सेवन करना सब अतिसारो मे लाभप्रद कहा गया है।

२. **सग्रहणी**—जायफल, इन्द्रजो, नागरमोथा और बिल्वफल मज्जा का चूर्ण बनाकर तक्र से सेवन करना हितकारक है।

३. **अर्श**—जायफल, सोठ १-१ ग्राम, अनार का छिलका ३ ग्राम लेकर चूर्ण बनाकर दही के साथ सेवन करें।

४. **ज्वर**—जायफल, नीम की अन्तर्छाल, पिप्पली, नागरमोथा और गिलोय का चूर्ण सब प्रकार के ज्वर को मिटाता है।

५. **ज्वरातिसार**—जायफल, सोठ, बिल्वफल-मज्जा एव नागरमोथा का चूर्ण ज्वरातिसार मे हितकर है।

६. **बहुमूत्र**—जायफल और मूसली का चूर्ण हितकारी है।

७. **आध्मान**—(क) जायफल व सोठ ३००-३०० मि ग्रा तथा जीरा ६०० मि ग्रा. लेकर चूर्ण बनाकर भोजन के पूर्व सेवन करने से आध्मान नही होता है।

(ख) जायफल को नीबू के रस मे घिसकर पीने से भी आध्मान दूर होता है।

८. **हृद्रोग**—हृदयरोग मे जायफल चूर्ण का मधु के साथ सेवन करना हितकारी है।

९. अजीर्ण—जिन बालको को या बड़ो को दूध पचता नहीं हो उन्हें दूध में पानी मिलाकर जायफल डाल उबाल छानकर पीना चाहिये। इससे दूध भी पच जाता है तथा मल भी बधा हुआ आता है।

१०. अग्निमांद्य—जायफल चूर्ण को मधु के साथ सेवन करना चाहिये।

११. उदरशूल—भुने हुये जायफल का चूर्ण उष्ण जल से सेवन करना उदरशूल को मिटाता है।

१२. विसूचिका—(क) जायफल का शीतल जल थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहने से विसूचिका जन्य वान्ति एव तृषा का शमन होता है।

(ख) भुने हुए जायफलका चूर्ण बनाकर १-१ घण्टे के अन्तर से सेवन करना भी हितकारी है।

१३. कटिशूल—प्रसव पश्चात् की कटिवेदना को मिटाने के लिये ताम्बूल में जायफल और कस्तूरी रखकर खिलाना लाभप्रद है।

१४. प्रतिश्याय—गोघृत मे जायफल और सोंठ को घिसकर बालकों को चटाने से उनका प्रतिश्याय मिटता है। यह बडो के लिये भी लाभप्रद है।

१५. छर्दि—जायफल, अजमोद, वेल का मूल और विडग का क्वाथ पिलाने से विशेषत बालको की छर्दि का शमन होता है।

१६. अनिद्रा—भैंस के दूध मे जायफल को उबालकर मिश्री मिलाकर सेवन करने मे नींद आती है।

१७. कास—जायफल, यवक्षार को मधु के साथ चाटें।

१८. श्वास—जायफल चूर्ण को ताम्बूल मे रखकर सेवन करें।

१९. हिक्का—तण्डुलोदक मे जायफल को घिसकर सेवन करने से हिक्का मिटती है।

२०. स्वप्नमेह—जायफल, लौंग, कर्पूर और अफीम चूर्ण को शीतलचीनी के कषाय के साथ सेवन करें।

२१. शुक्रगतवात प्रकोप—(क) जायफल चूर्ण को भगा स्वरस के साथ सेवन करे।

२२. शीघ्रपतन—(क) जायफल चूर्ण का उष्ण जल से सेवन करना कष्टार्तव मे हितावह है।

(ख) जायफल ३ ग्राम, रूमीमस्तगी ६ ग्राम, लौंग ६ ग्राम, छोटी इलायची के दाने ६ ग्राम सबको कूट कपडछन चूर्ण बना, मधु मिलाकर जङ्गली वेर के बराबर गोली बनाकर खाने से वीर्य स्तम्भन होता है। इसके सेवन-काल मे केवल दूध-भात का ही भोजन करना चाहिए।

(ग) जायफल चूर्ण को जल से भी निरन्तर ४० दिन तक सेवन किया जा सकता है।

२३. कष्टार्तव—जायफल चूर्ण का उष्ण जल से सेवन करना कष्टार्तव मे हितावह है।

जावित्री के बाह्याभ्यन्तरीय प्रयोग—

१. हस्तिमेह—जावित्री को जल मे पीसकर, नाभि और पेडू पर लेप करना चाहिए। साथ मे ही इसके चूर्ण का सेवन भी करना चाहिए।

२. अतिसार—जावित्री चूर्ण तक्र के साथ सेवन करें। बच्चो को मधु के साथ सेवन कराया जा सकता है।

३. अनिद्रा—दूध मे उबालकर मिश्री मिलाकर पीवें।

४. श्वास—ताम्बूल (पान) मे इसका चूर्ण रख कर खावें।

५. रक्तप्रदर—जावित्री ३० ग्राम लेकर अर्क केवडा, अर्क गुलाव १००-१०० ग्राम, खाड २०० ग्राम मिलाकर बोतल मे भर ले। इस बोतल को फिर पानी मे रख दें। १० दिन के बाद छानकर रख लें और मात्रानुसार सेवन करने से रक्तप्रदर मे लाभ होता है।

६. बहुमूत्र—जावित्री और सिता १-१ ग्राम पीस कर सेवन करें।

७. मसूरिका—१२५ मि० ग्रा० जावित्री चूर्ण दिन मे २-३ बार सेवन करने से रुकी हुई मसूरिका निकल आती है।

८. **आमवात**—जाविश्री और मोठ चूर्ण को उष्ण जल के साथ सेवन करें।

९. **व्यङ्ग**—जाविश्री और नारङ्गी के छिलकों को दूध मे पीसकर लेप करें।

१०. **दौर्बल्य**—जाविश्री जायफल और अश्वगन्धा का चूर्ण दूध के साथ सेवन करना दौर्बल्य को दूर करता है।

जायफल का तैल—यह तैल जायफल से परिस्रवण द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह रगहीन किंवा हल्के पीले रग का होता है, जिसे जायफल की सी स्वाद व गन्ध आती है। इसकी १ भाग ३ भाग अल्कोहल (९० प्रतिशत) मे विलेयता होती है।

यह तैल अन्य औषधियो के अर्क, मलहम, साबुन, सुगन्धित तैल, मिठाई आदि मे मिलाने के लिए उपयोग मे लाया जाता है। वातरोगो मे यह मालिश के लिए भी प्रयुक्त होता है।

आभ्यन्तर प्रयोग मे यह दीपन-पाचन तथा वातानुलोमन होता है। विरेचक औषधियो को देने के पश्चात् ऐंठन–मरोड आदि उपद्रवो को दूर करने के लिए और उत्तेजक तथा वातानुलोमक औषधियो को बनाने के लिये इसके तैल का प्रयोग किया जाता है। अधिक मात्रा मे प्रयुक्त होने पर यह मस्तिष्क पर तीव्र उत्तेजक प्रभाव करता है।

जायफल के तैल की भाति जाविश्री का तैल भी वेदनास्थापन, उत्तेजक, उष्ण और वातहर है। इसमे विषघ्न गुण अधिक होता है—

सामान्य प्रयोग—

१. **दन्तवेष्ट**—जायफल के तैल मे रुई का फोया भिगोकर दन्तकोटर मे स्थापित करना चाहिए।

२. **शिरःशूल**—जल के साथ तैल को अच्छी तरह मिलाकर लेप करना चाहिए।

३. **व्रण**—तैल से लिप्त फोया रख व्रण बन्धन करने से व्रण का शोधन, रोपण होता है।

४. **शीताङ्गता**—तैल से मालिश करनी चाहिए।

५. **आमवात**—इस तैल को जैतून के तैल मे मिलाकर मालिश करनी चाहिए।

६. **सन्धिवात**—सरसों के तैल मे यह तैल मिलाकर मर्दन करने से प्रस्वेद आकर विकार मे लाभ होता है। यह अभ्यग आमवात एव सन्धिवात मे लाभप्रद है।

७. **मोच**—सरसो के तैल के साथ मिलाकर इस तैल की आक्रान्त स्थान पर मालिश कर रुई रखकर बन्धन कर देना चाहिए। इससे शोथ एव शूल का शमन होता है।

८. **अग्निमांद्य**—अग्निमाद्य को दूर करने के लिए इस तैल को बताशे मे रखकर सेवन करना चाहिए। इससे उदराध्मान (पेट फूलना) तथा उदरशूल भी मिट जाते हैं। इन रोगो मे यह दीपन-पाचन कर वायु का अनुलोमन, करता है, जिससे रोगी लाभ प्राप्त करता है।

विविध कल्पनाएं

१. **जातीफलादि चूर्ण**—(क) जायफल, सोंठ, राल और खजूर के फल २४-२४ ग्राम तथा उपलो (अरण्य) की राख सबके समान लेकर महीन चूर्ण बना लीजिए। इसे प्रतिदिन २॥ ग्राम की मात्रानुसार चावलो के धोवन मे प्रात-सायम् सेवन करने से जीर्णातिसार, रक्तातिसार और अति वेगवान शूल युक्तअतिसार का नाशहोता है। —वृ० नि० र०

(ख) जायफल, लौंग, छोटी इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर, कपूर, श्वेत चन्दन, धोये हुए तिल, बशलोचन, तगर (यूनानी असारून), आवले का दल, तालीसपत्र, छोटी पीपल, हर्रे दल, कलौंजी, चित्रक के मूल की छाल, सोंठ, वायबिडग और कालीमिर्च प्रत्येक १-१ भाग जल से धोके सुखाई हुई भाग २० भाग और मिश्री ४० भाग लेकर सबका कपडछान चूर्ण करें।

मात्रा—१-२ ग्राम। दिन मे ३-४ मात्रा यथावश्यक दें।

अनुपान—मधु या जल।



जातीफल [Myristica fragrans]

विभिन्न नाम : स० जातीफल, जातिकोष, मालतीफल ।

हिन्दी : जायफल, गुज० जायफल, लेटिन० मिरिस्टिका फ्रेगरेन्स ।

प्राप्ति स्थान : मोलक्का द्वीपसमूह, सुमात्रा, जावा, सिंगापुर ।

उपयोगी अङ्ग : फल ।

उपयोग : अतिसार, उदर विकार, कास, श्वास, प्रमेह ।

प्रमुख योग : जातीफलादि वटी, जातीफलादि चूर्ण ।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण दीपन, पाचन ग्राही और अन्न पर रुचि उत्पन्न करने वाला है। अतिसार, ग्रहणी रोग, खासी, दमा, वातरोग, कफरोग और प्रतिश्याय (जुकाम) मे इसका उपयोग करें। —शा० स०

(ग) जायफल, इन्द्र जो, नागरमोथा, बील की इन सबको समानभाग लेकर कपडछान चूर्ण बनावें, यदि यह चूर्ण ३-३ ग्राम छाछ के साथ प्रात-साय देवें तो जठराग्नि प्रज्वलित होकर ग्रहणी रोग का प्रशमन होगा। —सि० भे० म० मा०

(घ) जायफल, जावित्री, तेजपत्र, इलायची, वायविडग, चोवचीनी, लोध, पिप्पली, कालीमिर्च, सोठ, पीपलामूल, नागकेशर, बहेडा, देशी अजवायन, खुरासानी अजवायन, कत्था, अभ्रक भस्म, चिरायता, पोस्त की जड और लोह भस्म, मीठा तेलिया सब वस्तुए एक समान लेकर बारीक पीस ले जब एक जान हो जावे तो आधा ग्राम से एक ग्राम तक यथाशक्ति शहद के साथ सुवह शाम चटावें। इसके सेवन से प्रलापक सन्निपात, देह की पीडा, ज्वर, दमा, खासी सब रोग दूर होते हैं। —मेघविनोद

(ड) जायफल १० ग्राम, माजूफल १० ग्राम इन दोनो का यवकुट चूर्ण बनाकर थोडे घृत से मन्दाग्नि मे किंचित् भूनें, अनन्तर १२ ग्राम मिश्री के साथ कपडछन चूर्ण बना लें। यह चूर्ण माता के दूध मे मिलाकर बालक को प्रात.काल के समय देने मे बालक सशक्त होता है। मात्रा ६० मि ग्रा से २४० मि ग्रा अवस्थानुसार दी जानी चाहिए।—सि० भे० म० मा०

(च) जायफल, अफ़ीम, सुहागा, शुद्ध गन्धक और जीरा तथा कच्चे अनार के बीज समानभाग लेकर पानी में पीसकर पिठ्ठी सी बना लीजिये और एक अनार को भीतर से खाली करके उसमे पिठ्ठी को भरकर उसका मुह बन्द करके उसके ऊपर चारो तरफ गेहू का भीगा आटा लपेटकर इसे अगारो मे दवा दीजिए। जब आटे का रग सुर्ख हो जाय तो अनार को ठण्डा करके उसके भीतर से औषधि निकालकर पीस लीजिए। यह अतिसार को रोकता है और अग्नि को दीप्त करता है। —यो० र०

(छ) जायफल, वायविडग, चीता, तगर, तालीसपत्र, सफेद चन्दन, सोंठ लौंग, कलौंजी, कपूर, हरड, आमला, कालीमिर्च, पीपर, वशलोचन, तज, तमालपत्र, सफेद इलायची और नागकेशर इन सबको १२-१२ ग्राम लें। शुद्ध भुनी भाग ३३६ ग्राम और मिश्री ५६४ ग्राम लें। सबको कूट-पीसकर छानकर रखलो। तीन या चार ग्राम चूर्ण मट्ठे के साथ सेवन करें। इससे सग्रहणी नष्ट हो जाती है।

—चि० चन्द्रोदय भाग ३

(ज) जायफल, लवग, जीरा और शुद्ध सुहागा इन्हें समभाग लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण बनालें। यह लवग चतु सम चूर्ण है। १-३ ग्राम मधु और शक्कर के साथ देवें। रोग की तीव्रता मे ४-४ घण्टो से अन्यथा दिन मे २ बार दे। बालको को ६० मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० तक देने से अतिसार, आमातिसार एवं तज्जन्य उदरशूल आदि का शमन होता है।

—भै० र०

(झ) जायफल ४ ग्राम, अगर, गदहपुन्ना की जड, छोटी इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेसर, पीपल, पुष्करमूल, लवग और शतावर १२-१२ ग्राम, लाल चन्दन २४ ग्राम। इसका चूर्ण दूध, मधु के साथ २-३ बार सेवन कराने से बालको की खासी तथा शीतकफ मे उत्पन्न हुए रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। यह चूर्ण सन्निपात के प्रारम्भ काल मे लाभ प्रकट करता है। —बाल रोग चिकित्सा

२. फाण्ट—जायफल के १२ ग्राम चूर्ण को २ लीटर उबलते पानी मे मिलाकर ढक देवें। शीतल हो जाने पर उसमे थोडा-थोडा जल मिलाते रहने से अजीर्ण जन्य तृषा एव वान्ति (वमन) की निवृत्ति होती है।

—गावो में औषधरत्न

३. जातीफलादि वटी—(क) जायफल, छुहारा, अफीम बराबर भाग लेकर पान के रस मे घोटकर १६०-१६० मि० ग्राम की वटी बना लें। इन्हें तक्र के

साथ सेवन करने से भयङ्कर अतिसार भी नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१ वटी। बच्चो को आधी गोली।

—वृ० नि० र०

(ख) जायफल, सेंधानमक, शुद्ध सिंगरफ, कौडी भस्म, सोठ, शुद्ध अफीम, धतूरे के शुद्ध बीज और पीपल सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। नीबू के रस, धतूरे के बीज का क्वाथ और भाग के क्वाथ की एक-एक भावना देकर ६०-६० मि० ग्राम की गोलिया बनावे।

मात्रा—१-१ गोली, दिन मे तीन वार, मट्ठे अथवा जल के साथ। वमन सहित अतिसार मे नीबू के रस और मिश्री के साथ। अपचन जनित विसूचिका पर हीग और सेंधानमक मिले मट्ठे के साथ।

उपयोग—यह औषधि पक्वातिसार, तिराम सग्रहणी, अजीर्ण जन्य विसूचिका और शूल को दूर करती है। यह शामक, स्तम्भक और पाचक है। अजीर्ण जन्य विसूचिका मे छोटी आयु वालो को थोडी मात्रा दी जाती हैं। नूतन सग्रहणी में आमानुवन्ध न हो तो इसका उपयोग होता है। इसके सेवन से अजीर्ण अन्य शूल, अतिसार मे होने वाले तीव्र शूल और मध्यम कोष्ठस्थ शूल शीघ्र शमन होते हैं।

—र० त० सा०

(ग) जायफल, लौंग, पीपल, सेधानमक, सोठ धतूरे के शुद्ध बीज, हिंगुल, और सुहागे का फूला समभाग मिला जम्मीरी, नीबू के रस मे १२ घण्टे खरल करके १२०-१२० मि० ग्राम की गोलिया वनावे।

मात्रा—१ से २ गोली दिन मे २ बार ६ ग्राम तिल और १२ ग्राम मक्खन या मट्ठे के साथ या जल के साथ देवे।

उपयोग—इस वटी के सेवन से ववासीर का खून गिरना और जलन दूर होते है, मलशुद्धि होने लगती है तथा पाचन क्रिया वलवान वनती है। कुछ दिन तक इसका सेवन पथ्य-पालन सह करते रहने से मस्से मुरझा जाते है। अर्श रोग प्राय मलावरोध होने, अपथ्य और अधिक मिर्च मसालो का अधिक सेवन करने और उदर मे अधिक वात प्रकोप होने पर होता है। अत अर्श रोगी के मूल कारण को दूर करें तो इसे सौम्य औषधि से रक्त स्तम्भन हो जाता है। यह वटी उदरस्थ दुर्गन्ध और उग्रता को दूर करती है। अन्त्र प्रदाह को शान्त करती है तथा पचन क्रिया को वल प्रदान करती है। यह विलकुल निर्भय औषधि है। इसका प्रयोग सव प्रकृति के मनुष्यो पर सव ऋतुओ मे हो सकता है।

—र० सा० स०

(घ) जायफल, जाविन्त्री, लौंग, केसर, धतूरे के शुद्ध बीज, शुद्ध अफीम समभाग लें। शुद्ध शिलाजीत सबके समान और लौह भस्म शिलाजीत से आधी लें। सबको यथाविधि मिला, शिलाजीत के जल मे खरल कर ६०-६० मि० ग्राम की गोलिया बना लें।

मात्रा—१ से २ गोली। दिन मे २ बार, गुडमार के अर्क या चूर्ण और गाय के दूध के साथ देवें।

उपयोग—यह वटी मधुमेह मे पेशाब की शक्कर और प्यास कम करके दर्द को दूर करती है। अतिसार और मूत्रातिसार मे भी हितकर है। इसका कार्य बढ़ी हुई तृष्णा को शमन करने इक्षुमेह और मधुमेह मे मूत्र के साथ जाने वाली शर्करा को कम करने और मूत्र को नियमित बनाने का है। मूत्रातिसार मे बार-बार आध-आध घण्टे पर पेशाव आता है। उसे नियमित बनाती है। वृद्धावस्था मे मूत्राशय की निर्वलता के कारण बार-बार थोडा-थोडा मूत्र आना, मधुमेह होना, ४० वर्ष से बडी आयु वालो को मधुमेह जीर्ण होने पर बार-बार जलपान और बार-बार लघुशंका होना, शरीर निस्तेज, निर्बल और कृश हो जाना, मानसिक उत्साह भी नष्ट हो जाना आदि लक्षण होते हैं, उन पर यह अच्छा असर करती है। मधुमेह जीर्ण होने पर प्रमेह पिटिका उत्पन्न हुआ हो तो उसे भी यह नष्ट करती है।

—र० त० सा०

(ङ) जायफल, जाविन्त्री शुद्ध हिंगुल, ऊटीगण के बीज, गगरेन की छाल, धाय के फूल, लौंग, अफीम इन आठो द्रव्यो का चूर्ण बनाकर सफेद कन्नेर के फूलो

के स्वरस की १ भावना देते हुए खरल करके १२०-१२० मि० ग्राम की गोलिया बनावे।

मात्रा—१ से २ गोली।

प्रयोग विधि—रात्रि के समय शक्कर के हलुए के प्रथम ग्रास मे रखकर गोली खिलावे तथा ऊपर से पुन हलुवे के ४-५ कौर खिलावें, अम्लरस, ठण्डे पदार्थ फल आदि का वर्जन करें। शिर शूल की उत्तम औषध है। इसे शिरोर्तिहरी वटी कहा जाता है।

—सि० भे० म० मा०

(च) जावित्री, जायफल, फूलकस्था, तुत्थ भस्म, लौग तथा केसर ये छहो द्रव्य १०-१० ग्राम, कस्तूरी ५ ग्राम, २ नग सुपारी के कोयले—इन सबको लोहे की खरल मे निम्बुस्वरस की भावना देते हुए चार दिन तक लोहे की मूशली से ही घोटे, तदनन्तर चने के बराबर गोलिया बनालें। प्रथम दिन प्रात-साय दोनो समय ताजा जल के साथ १-१ गोली निगलवावे, दूसरे दिन २-२ तथा तीसरे दिन ३-३ गोलिया निगलवावें, इस प्रकार बढ़ाते हुए ५वें दिन ५ गोलिया प्रात तथा ५ गोलिया ही साय-काल देने से उपदश का शमन होता है। पथ्य मे लवण आदि वर्ज्य पदार्थ न देवे।

—सि० भे० म० मा०

(छ) उत्तम बडे जायफल को कुरेद कर उसके गर्भ मे अफीम भरकर कपडमिट्टी कर दे और मन्दाग्नि मे पुटपाक करें। उस अफीम सहित जायफल, तथा जायफल के बराबर इलायची दाने, कस्तूरी, लवग, केसर तथा शुद्ध हिंगुल मिलाकर वटदुग्ध के साथ खरल कर १२० मि० ग्राम की गोलिया बनाले। एक गोली रात्रि मे सोते समय सेवन करने से वाजीकरण होगा।

—सि० भे० म० मा०

(ज) जावित्री ३० ग्राम, लोहवान २० ग्राम, अफीम १० ग्राम मिला कर ६०-६० मि० ग्रा० की गोलिया बनावें। १-१ गोली दिन मे ३ बार जल या मट्ठे के साथ देने से प्रवाहिका, रक्तातिसार, सग्रहणी आदि रोग दूर होते हैं। प्रवाहिका की भयङ्कर पीडा एक ही दिन मे शमित हो जाती है।

—र० त० सा० भाग २

(झ) जायफल, लौग, जावित्री, केसर, छोटी इलायची, शुद्ध अफीम और अकरकरा—प्रत्येक ६-६ ग्राम भीमसेनी कपूर २ ग्राम।

विधि—केसर, अफीम और कपूर को अलग रख-कर जायफलादि को पीस-छानकर और तोलकर खरल मे डालो। उसी मे केसर वगैरा को भी मिला दो। फिर नागरपानो का रस दे-दे कर खूब घोटो और चने समान गोलिया बना लो। यह गोली वीर्य को रोकती, बल, वीर्य और जठराग्नि को बढ़ाती है। रात को सोते समय एक गोली खाकर मिश्री मिला दूध पीने से मैथुन मे बड़ा आनन्द आता है।

—चि० चन्द्रोदय भाग ४

(ञ) जायफल १० ग्राम, सुहागा १० ग्राम, अभ्रक भस्म १० ग्राम, शु० धत्तूर बीज १० ग्राम और अफीम २० ग्राम लेकर सबको एकत्र कर गध प्रसारणी के पत्तो के रस से मर्दन कर चने के समान गोलियां बना लें। एक गोली सग्रहणी मे शहद के साथ देवें और दोषानुसार अनुपान कल्पना करें। यह रस सग्रहणी को मिटाता है। इसे ग्रहणीकपाट कहा जाता है।

—र० रा० सुन्दर

(ट) जावित्री, जायफल, नागकेशर, लौग, अफीम इन सबको ४-४ ग्राम ले महीन पीस पानी से १२५ मि० ग्रा० की गोली बाधकर छाया मे सुखा लेवें फिर सफेद जीरा ५०० मि० ग्रा० और सोठ ५०० मि० ग्रा० दोनो को पीसकर उसी मे एक उक्त गोली रखकर फाक लेवें और ऊपर से ठडा पानी (४-५ घूट) पीवें तो दाह व तृष्णायुक्त अतिसार भी शीघ्र ही मिटता है। इसे लघु लीलावती वटी कहा गया है।

—र० रा० महोदधि भाग ४

(ठ)—जायफल १२ ग्राम, अकरकरा १२ ग्राम, सोठ १२ ग्राम, शीतलचीनी १२ ग्राम, केसर १२ ग्राम, पीपल १२ ग्राम, लौंग १२ ग्राम, सफेद चन्दन १२ ग्राम, शुद्ध अफीम ४८ ग्राम लेकर प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यो को सूक्ष्म चूर्ण करें, पश्चात् केसर और अफीम मिला, जल के साथ मर्दन करे। गोली बनने

योग्य होने पर २४०-२४० मि० ग्राम की गोलिया बना, छाया में सुखाकर रख लें।

वक्तव्य—शार्ङ्गधर सहिता मध्यम खण्ड अध्याय ६ में आकारकर आदि चूर्ण नाम से उपरोक्त योग है। इसी योग को हमने वटी के रूप मे बनाकर अनुभव किया है, बहुत उत्तम गुणकारी सिद्ध हुआ है।

मात्रा और अनुपान—रात को सोने से पूर्व १ गोली खाकर गोदुग्ध पीना चाहिए या मधु अथवा घृत के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—वीर्य स्तम्भन करने वाली जितनी दवाइया होती है वे प्राय स्नायु सकोचक हुआ करती हैं। इसका प्रभाव वातवाहिनी और शुक्रवाहिनी नाडियो पर विशेष होता है। इसी कारण यह वीर्य को जल्दी क्षरण नहीं होने देती हैं। वीर्य स्खलन उसी हालत मे होता है जब स्नायु ढीली पड़ जाती है। इस दवा के प्रभाव से जब तक स्नायु कडी रहती है, तब तक वीर्य रुका रहता है और इसका प्रभाव दूर हो जाने पर शुक्र निकल जाता है।

नोट—इस दवा का प्रयोग बहुत होशियारी के साथ करना चाहिए, क्योंकि इसमे अफीम की मात्रा अधिक है। दूसरी बात—इस दवा के सेवन करने के बाद तीन रोज तक दूध, मलाई, रबडी आदि स्निग्ध पदार्थों का खूब सेवन करना चाहिए। अन्यथा क्षणिक आनन्द के लोभ मे पडकर बहुत बडा नुकसान उठाना पड़ता है। खुश्की बढ जाती है, कमजोरी तथा शक्ति की कमी, किसी कार्य मे मन नही लगना, शरीर की कान्ति नष्ट हो जाना, किसी की बात का अच्छा न लगना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। कारण यह होता है कि जितनी देर से वीर्य निकलता है उतने ही ज्यादा परिमाण मे वीर्य निकलता है जिसकी पूर्ति तुरन्त होना कठिन हो जाता है। यह पूर्ति दूध, मलाई आदि स्निग्ध तथा पौष्टिक पदार्थों से शीघ्र हो जाती है। —आयु० सा० सग्रह

(ड) एक बडा जायफल जो ७ ग्राम से कम न हो, लेकर पोला करके उसके अन्दर अफीम भर दें। फिर उसके मुह को आटे से बन्द करके ऊपर से आटा लगाकर गोली बनाकर आग पर सेके। जब सुर्ख हो जाय तब ऊपर से आटा छुडाकर सारे जायफल को पीसकर शहद मे मिला लें और झरबेरी के बेर के बराबर गोलिया बना लें। इनमे से एक गोली सहवास के पूर्व दूध के साथ लेने से बहुत स्तम्भन होता है। —वनौ० चन्द्रो०

(ढ) जावित्री, जायफल, शीतल मिरच, केसर, अफीम, मस्तङ्गी, कपूर, अकरकरा, उटगन के बीज इनको बिना पानी से गोली बनाकर (झरबेरी के बेर के समान) सहवास से पूर्व सेवन करने से स्तम्भन होता है। —सुजन प्रकाश

(ण) जायफल, आक की जड का छिलका, कालीमिरच, भुना सुहागा, अफीम, धतूरे के बीज सब समानभाग ले, सूक्ष्म चूर्ण कर अदरख के रस से २४० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले। एक गोली पानी के साथ दिन मे दो बार देने से अतिसार तथा सग्रहणी मिटती है। —स० सि० यो० सग्रह

४. जातीपत्रादि घृत—जावित्री, पटोलपत्र, नीम की छाल, कुटकी, दारुहल्दी, सारिवा, मजीठ, नीलाथोथा, खपरिया, मोम, मुलहठी, कजे के बीज इनका यथाविधि घृत सिद्ध कर लगाने से सब प्रकार के व्रण, नाडी व्रण नष्ट होते हैं। —वृ० नि० र०

५. अवलेह—(क) जावित्री १४४ ग्राम, सोंठ ६२ ग्राम, गोद बबूल, छोटी इलायची के बीज, प्रत्येक ४२ ग्राम, सबका चूर्ण कर ४०८ ग्राम खाड की चाशनी मे मिला देवे।

मात्रा—६ ग्राम भोजन के पश्चात् अर्क सोफ या जल से देवें। यह भोजन को पचाता, वात तथा कफ दोष नष्ट करता व आध्यमान, अजीर्ण और विसूचिका मे लाभप्रद है। —यू० चि० सा०

(ख) जायफल, पुष्करमूल, काकडासिगी, त्रिकटु धमासा, काला जीरा—प्रत्येक समानभाग लेकर कूट कपडछन चूर्ण बनाकर रख लें।

मात्रा—१-२ ग्राम सुबह शाम सेवन करें। कफाधिक्य मे अदरख रस के साथ तथा पित्ताधिक्य मे दूध के अनुपान से दें। इसका उपयोग कफजनित रोगो में

विशेप होता है। कफज्वर, श्वास, कास, श्वसनक ज्वर का यह शमन करता है। इनमे जव कफ सरलता से नही निकलता हो इसका उपयोग हितावह है। यह अष्टागावलेह के नाम से प्रसिद्ध है। —यो० र०

(ग) जावित्री, पीपल, धान की खील, विजोरे नीवू के पत्ते और इलायची समभाग पीसकर शहद मे मिलाकर चाटते रहने से स्वर अत्यन्त मधुर हो जाता है। —भा० भ० र०

६. जातिफलासव—जायफल के चूर्ण १ भाग मे ५ गुना मद्यसार (६० प्रतिशत) मिलाकर वोतल मे अच्छी तरह कार्क वन्द कर रखें।

मात्रा—२०-६० वूद तक जल मे मिलाकर लें। इससे अतिसार, वमन, विसूचिका का शमन होता है। —धन्व० वनौ० वि०

७. हलुवा या माजून—जायफल चूर्ण, लोग, लोहवान, नागरवेल की जड, शीतलचीनी, सोठ और अकरकरा प्रत्येक का चूर्ण २४-२४ ग्राम, दालचीनी चूर्ण ४८ ग्राम लेकर ३६ ग्राम मधु मे एकत्र खूव खरल करे फिर उसका हलुवा वनाकर उसमे ५० नग चादी के वर्क मिलावें। ६ ग्राम से २४ ग्राम तक दिन मे दो वार गोदुग्ध से सेवन करें। यह हृदय व मस्तिष्क के लिए वलप्रद, वीर्यस्तम्भक एव प्रमेह, दौर्वल्य व नपुसकता नाशक है। —धन्व० वनौ० वि०

८. जायफलादि पाक—(क) आध किलो जायफल लेके उसके ४ टुकडे वनावे, पीछे गो के २ लीटर दूध मे इन टुकडो को टाल के खोया सा कर लेवे उसमे गो का घृत १२५ ग्राम डालकर उस खोवे को सेक लेवे, फिर वशलोचन १० ग्राम, शालममिश्री १० ग्राम, इन्द्रजौ १० ग्राम, खरैटी के वीज १० ग्राम, मोचरस १० ग्राम, वेला गूदा १० ग्राम, चिरौंजी, १० ग्राम, गोला १० ग्राम, वादाम १० ग्राम, अखरोट की गिरी १० ग्राम, किसमिश १० ग्राम, मुनक्का (दाख) १० ग्राम, तालमखाना २० ग्राम, छुहारा ६० ग्राम, चोवचीनी ४० ग्राम, सेमल की मूसली ४० ग्राम, असगध ४० ग्राम, स्याह मूसली २० ग्राम, सफेद मूसली २० ग्राम, लाल चन्दन १० ग्राम, सफेद चन्दन १० ग्राम, देवदारु १० ग्राम, सौफ १० ग्राम, धनिया १० ग्राम, दोनो जीरे २० ग्राम, तज १० ग्राम, मैदा लकडी १० ग्राम, तेजपात १० ग्राम, अकरकरा १० ग्राम, रास्ना १० ग्राम, खुरासानी अजवायन १० ग्राम, वच १० ग्राम, कुलीजन १० ग्राम, कूठ १० ग्राम, कालीमिर्च १० ग्राम, पीपल १० ग्राम, हर्रे की छाल १० ग्राम, वहेडा १० ग्राम, छोटी हर्रे १० ग्राम, आवला १० ग्राम, केसर १० ग्राम, अजवायन २० ग्राम, लोध्र १० ग्राम, ईसवगोल १० ग्राम, सनाय १० ग्राम, सेमल के वीज १० ग्राम, ब्रह्मदण्डी १० ग्राम, मुलहठी १० ग्राम, अमलतास १० ग्राम, शतावरी १० ग्राम, मुसक १० ग्राम, इन सवको कूट कपडछान कर पीछे शहद ४ किलो लेकर कढाही मे डालकर इन सव औषधियो का चूर्ण उस शहद मे डालकर मन्द-मन्द अग्नि से पकाकर हलुआ सा वना लेवे, और पूर्वोक्त उस खोवे को भी मिला देवे इस प्रकार इस किये हुए पाक को ५ ग्राम प्रमाण मे हमेशा खिलावें अथवा जठराग्नि के वलवलानुसार कम ज्यादा खिलावे इसको नित्य सेवन करे तो अर्धांगवात, हाथ-पैरो की शूल, अकटवाय, कम्पवाय, आमवाय, शीतागवाय, हडफूटन, ८ प्रकार के ज्वर, १३ प्रकार के सन्निपात ये सव दूर होवें और पाण्डु रोग सग्रहणी, कामलारोग, अतिसार, नेत्ररोग, शिरोरोग, दिलहौलपना, खासी, क्षय रोग, उदर रोग, नासारोग, कर्णरोग, दात रोग, स्त्री के योनि के रोग ये सव रोग दूर होवे और इसके खाने से वाझ स्त्री के पुत्र होवे और ४ प्रकार के नपुसक अच्छे होवें।

—अजीलफरासीस

(ख) जायफल ५०० नग लेकर चूर्ण करें और १३ किलो दूध मे पकाकर खोया सा हो जाने पर उसे १। किलो घृत मे भून लेवें और उसमे वशलोचन १८० ग्राम, कपूर ककौल, लौग, इलायची, तेजपात दालचीनी, मोचरस प्रत्येक ४८-४८ ग्राम, महीन चूर्ण कर मिलावे। पश्चात् मिश्री की चाशनी मे सवको मिला पाक जमा देवे।

मात्रा और गुण—३ ग्राम से १२ ग्राम तक की मात्रा मे सेवन करने से श्वास, कास, सग्रहणी, प्रमेह,

अर्श, क्षीणता, क्षय आदि कई रोगो को नष्ट कर देता है। तथा बल और वीर्य को पुष्ट करता है।

—पाक प्रदीप

(ग) जायफल २० नग, लौंग, बडी इलायची के बीज, तेजपात, नागकेशर, असली कपूर, श्वेत चन्दन, बुरादा, तिल काले, वशलोचन, तगर, आवला, तालीसपत्र, बडी पीपल, हरी चित्रक की जड, सोठ, मिर्च और वायविडग का चूर्ण १२-१२ ग्राम। इन सबके चूर्ण को कपडछन करें और इन सबके बराबर भाग (विजया) का महीन चूर्ण मिलावें। कुल चूर्ण के बराबर मिश्री या खाड की चाशनी को मिलाकर पाक जमा दें या मोदक बना लें।

मात्रा और गुण—३ ग्राम प्रात-साय माष (तक्र) के अनुपान से लें। ४० दिन तक सग्रहणी नष्ट होती है।

—वृ पा स

(घ) नवीन जावित्री ७६८ ग्राम लेकर महीन चूर्ण कर ५ किलो गोदुग्ध मे मन्दाग्नि से पाक करे। खोवा हो जाने पर १९२ ग्राम घी मे भून लेवें और उसमे सोठ मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आवला, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग, मस्तगी तगर, मोचरस, स्याह मूसली, सफेद मूसली, कौंच के बीज, गोखरू, सुपारी, केशर, कपूर, शीतलचीनी, खस, सुगन्धवाला, खुरासानी अजवायन, करज की गिरी, समुद्रशोषबीज, अफीम स्वर्णभस्म, वगभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म १२-१२ ग्राम महीन कर मिलावें। पश्चात् २।। किलो खाड की चाशनी मे सबको मिला पाक जमा देवें।

मात्रा और गुण—३ से ६ ग्राम तक या १२ ग्राम तक अग्नि बलानुसार वीर्यवृद्धिकारक, स्त्रियो को आल्हादित करने वाला, बुद्धि कान्ति, स्मृति कारक सब प्रकार के प्रमेहो, श्वास, कास, जीर्णज्वर, यक्ष्मा, अग्निमाद्य और अरुचि को नष्ट कर देता है।

—पाकावली

(ङ) जावित्री चूर्ण ४०० ग्राम, गोदुग्ध २ लीटर ३०० मि० लि० दोनो का खोवा करें और ४०० ग्राम घृत में भून लें पश्चात् १ किलो ५५० ग्राम खांड की चाशनी कर उसमें मिला दें। दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, लौंग, दोनो जीरे, चव्य, सोठ, मिर्च, पिप्पली, कपूर, जटामांसी, आवला, जायफल, हरड, धनिया, तगर, वगभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, मोतीभस्म सब १२-१२ ग्राम, केशर कश्मीरी २४ ग्राम, कस्तूरी असली १२ ग्राम, शहद असली ७७५ ग्राम सबको अच्छी तरह मिलाकर चिकने पात्र मे रख छोडें। इसमे से ५ ग्राम तक नित्य खाये तो मन्दाग्नि और अरुचि दूर होती है। शरीर पुष्ट होता है, वीर्य बढता है, स्तम्भन होता है। अतिसार, ग्रहणी, श्वास, कास, शोथ, योनिरोग को दूर करता है।

—मेघविनोद

९. जातीफलादि लेप—(क) जायफल, लालचन्दन, मरिच, सरसो, वच, लोध्र और सेंधानमक समभाग लेकर गोदुग्ध मे पीसकर लेप करने से युवानपिडिकायें मिटती है।

(ख) जायफल चूर्ण २५ ग्राम, सोठ चूर्ण २५ ग्राम, पिप्पली चूर्ण २५ ग्राम, प्याज का रस १०० ग्राम, रैक्टीफाइड स्प्रिट १०० ग्राम लेकर किसी पात्र मे घोल लें।

प्रयोग विधि तथा उपयोग—रोगी के शरीर पर इस घोल का लेप करते हुए नारियल के मृदु ब्रुश से १ घण्टे तक मर्दन करे। इस लेप के मर्दन से हृदयावसाद दूर होता है। और नाडी की गति बलवान हो जाती है। यह लेप शीतल सन्निपात और विसूचिका के हृदयावसाद मे शीघ्र लाभप्रद है।

—सुधा० प्र० स० भाग ४

१० जातीफलादि तैल—(क) जायफल १२ ग्राम, काले धतूरे के बीज १२ ग्राम, अकरकरा १२ ग्राम, लौंग १२ ग्राम, आक के पत्ते ११ नग, पारा ६ ग्राम, सरसो का तैल १ किलो। पारे को छोड़कर शेष सूखी चीजो को तैल मे डालकर पकावें। जब पकते-पकते सारी औषधिया काले रग की हो जाय तब कढ़ाही को उतार लें और ठडा हो जाने पर तेल को छान ले। फिर तेल मे पारा डालकर खरल मे खूब घोलकर मिला लें। रोगग्रस्त स्थान पर इस तेल

की मालिश कराइये। लकवा तथा पक्षाघात में बहुत ही बढिया काम करता है। इस तैल की मालिश के बाद आधे घण्टे तक रोगी को धूप मे रखो। अत्यन्त सफल योग है। —धन्व० भाग ४१ अक १०

(ख) जायफल, सुहागा, सखिया १२-१२ ग्राम लेकर चिकने खरल मे खूब रगडे। तदनु इसमे चमेली-पत्र स्वरस २ किलोग्राम और तिल तैल ३ किलोग्राम मिलाकर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर शीशी मे अच्छी तरह बन्द कर रखें।

इस तैल को शिश्न पर धीरे-धीरे मर्दन कर ऊपर से पान (ताम्बूल) बाध दें। २१ दिन तक यह प्रयोग करने से शिथिल शिश्न मे उत्तेजना प्राप्त होती है। नपुसक रोगी के लिये यह उत्तम तिला प्रयोग है।

—धन्व० व० वि०

११. मलहर—जावित्री चूर्ण २४ ग्राम, पारा ६ ग्राम, गन्धक ६ ग्राम, मुरदासग ६ ग्राम, मोम १२ ग्राम, मीठा तेल ६० ग्राम लेकर पहले चारो दवाओ को खरलकर पीछे मोम अग्नि पर गरम कर तैल मिलाकर सब दवा डालकर मलहम बना लेवें। इसे दाद (दद्रु) पर दिन मे दो वार लगाने से लाभ होता है। —रसराज महोदधि–२

१२. वर्तिका—जावित्री को केसर के साथ घोट-कर वर्तिका (वत्ती) बनाकर गर्भाशय के मुख तक प्रविष्ट करने से गर्भाशय के विकृत द्रव्यो का शोषण होकर गर्भाशय का शोधन होता है। इससे गर्भाशय सम्बन्धी दुर्बलता दूर होती है।—धन्व० वनौ० वि०

एलोपैथिक योगो में जायफल—जायफल का चूर्ण (पाउडर्ड नटमेग) पल्विस क्रेटी एरोमेटिकस (Pulvis Cretae Aromaticus) और पल्विस क्रेटी एरोमेटिकस कम ओपिओ (Pulvis Cretae Aromaicus C Opio) आदि आफिशल योगो मे तथा स्पिरिटस् मिरिस्टिकी (Spiritus Myristicae) नामक नॉट–ऑफिशल योग मे डाला जाता है। स्पिरिटस् मिरिस्टिकी मे आइल आफ नटमग (जायफल का तैल) १ औंस व अल्कोहल (९० प्रतिशत) ९ औंस होता है। इसकी मात्रा ५ से २० बूद है। इसका उपयोग अफारा, अजीर्ण और शूल आदि मे होता है।

स्प्रिट अमोनिया एरोमेटिक और टिंक्चर क्लेरि-आनी अमोनिएटा नामक एलोपैथिक योगो का भी जायफल का तैल उपादान है।

पेटेण्ट प्रयोगो में जायफल जावित्री—अतिसार के प्रयोगो मे प्राय जायफल जवित्री का मिश्रण किया जाता है। त्रिमूर्ति फार्मेसी बीकानेर के "निडायरो" नामक वटी प्रयोग मे जयफल, जावित्री दोनों हैं। इसके अतिरिक्त आमफलमज्जा, लोहबान आदि भी इसमे डाले जाते हैं। यह सब प्रकार के अतिसार मे परमोपयोगी है। चरक फार्मास्युटिकल्स के प्रसिद्ध "दीपन" नामक प्रयोग (वटी) मे इन्द्रयव, कुटज, सोंठ, मुस्तक, सोफ आदि के साथ जायफल का भी मिश्रण किया जाता है। "दीपन" आमपाचक, स्तम्भक, जीवाणु नाशक है। इसी फार्मेसी द्वारा निर्मित "डाया-डिन" नामक सीरप मे भी जायफल होता है। यह विशेषतया बालको के लिये उपयोगी है। इसी प्रकार का प्रयोग है "डायोडिन" कैपसूल जिसके निर्माता श्री रुद्रदेव आयुर्वेद भवन है। द० कु० नाण्डू के "बर्बे-न्टरोल" (टेब० एव सीरप) मे भी जायफल है, जो अतिसार, प्रवाहिका मे लाभप्रद है। बालको के लिए लाभप्रद "डायरिल ड्राप्स" मे भी जायफल है। यह आम पाचक ग्राही, मूत्रक, शोथहर, दाहशामक, कीटाणु नाशक समधुर सुगन्धित बिन्दु प्रयोग है। इस प्रयोग का निर्माण आर्य औषधि फार्मास्युटिकल वर्क्स ने किया है। योगी फार्मेसी जो 'गैसान्तक वटी" का निर्माण करती है, उसमे जातिफलक्षार का भी मिश्रण होता है। यूनेक्सो लेबो० द्वारा विनिर्मित "लीवोनेक्स टेबलेट" मे जायफल, जावित्री है। इनके अतिरिक्त लवग, इलायची, स्वर्णमाक्षिक, निर्विषी, लौह भस्म, मण्डूर भस्म आदि हैं। यह अरुचि, यकृत् शोथ, पाण्डु रोग आदि मे लाभप्रद है।

ग्राही औषधियो की भाति वाजीकरण औषधियो मे भी प्राय इसका मिश्रण किया जाता है। पुनः रोकनवर्क के "विटोन ६६ सीरप" (वान) मे, पौष्टर्द

की दुर्बलता और धातुदौर्बल्य मे उपयोगी "शक्ति" (प्रताप) नामक सूचिकाभरण मे, सम्भोग जन्य थकावट मे उपयोगी फोर्टेज (अलारसिन) नामक टिकिया मे, शीघ्रपतन मे उपयोगी 'आजेक्स फोर्ट' (आर्य) नामक टेब्स्युल मे, सम्भोग मे शक्तिवर्धक "मेनटेक्स फोर्ट" (काश्मीर आयु०) नामक गोली मे, सप्तधातु पोषक "आलविन फोर्ट" (भारतीय महौषधि संस्थान) नामक कैपसूल मे, मर्दाना कमजोरी को दूर करने वाले "शक्तिदा" (रुद्रदेव आयु०) नामक कैपसूल मे, हीनता अनुभव करने वाले पुरुषो के लिए वरदान स्वरूप "भगवन्त मकरध्वज वटी" (देशरक्षक) मे, स्तम्भनशक्ति की कमी के लिए अत्युत्तम "क्लीबारि" (ज्वाला आयु०) नामक कैपसूल मे, नपुसकता नाशक "क्लीबान्तक" (गर्ग वनौ०) नामक कैपसूल मे, क्लैब्य को दूर करने वाले "क्लैब्यारि" (निर्मल आयु०) नामक कैपसूल मे यह सुशोभित है। इनमे "विटोन ९९" के अतिरिक्त सभी जायफल जावित्री दोनो ही हैं। इनके साथ अश्वगन्धा, कपिकच्छू, विषतिन्दुक, लवग, अकरकरा, मूसली आदि वृष्य द्रव्यों का भी मिश्रण किया गया है।

उच्च रक्तचाप एव हृदयरोगी को इनका प्रयोग हितकर नही है।

जातीफल शारीरिक ही नही मानसिक थकावट को भी दूर करता है। यह सब इसके वातशामक कर्म के द्वारा होता है। कर्पूर की भाति यह भी मस्तिष्क-दौर्बल्य को दूर करता है। झण्डू फार्मास्युटिकल की "ब्रेन्टो" गोलियो मे इसीलिए जातीफल मिलाया जाता है। ब्रेन्टो मज्जातन्तु मडल की पौष्टिकता के लिए एक आदर्श योग है। शर्मा मेडिको के मूर्च्छारि कवच (कैपसूल) मे भी अन्य महत्वपूर्ण द्रव्यो के साथ जायफल होता है। यह कवच सब प्रकार की मूर्च्छा मे हितकारी है। श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन एव निर्मल आयुर्वेदिक संस्थान जो "स्वप्न प्रमेहान्तक" व स्वप्न-मेहारि" कैपसूल बनाते हैं उनमे भी जायफल एव जावित्री का मिश्रण किया जाता है। ज्वाला आयुर्वेद भवन द्वारा निर्मित "मधुना कैपसूल" (मधुमेह नाशक) का भी जायफल प्रथम घटक द्रव्य है।

नपुसकता मे वाह्य प्रयोगार्थ भी इसका उपयोग किया जाता है। काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स अमृतसर द्वारा निर्मित "सजीवनी तिला" मे लौग, दालचीनी आदि के साथ जायफल भी होता है। इसके अतिरिक्त हिमालया ड्रग कम्पनी के द्वारा की गई प्रसिद्ध "हिमकोलीन" नामक क्रीम मे ५-५ प्रतिशत जायफल एव जावित्री का तैल होता है। शिश्न उत्थान हेतु एव स्तम्भन हेतु-यह क्रीम वाह्य प्रयोगार्थ अतीव उपयोगी है। वात रोगो मे यह वाह्य प्रयोगार्थ उपयोग मे लाया जाता है। दीनदयाल औषधालय ग्वालियर का "लाल तैल" आता है। उसमे कुचला, दारुहरिद्रा, जटामासी, लवग आदि के साथ जायफल, जावित्री भी होता है। यह समस्त वात रोगो को नष्ट करता है। वृद्धो के लिए यह अभ्यङ्ग हेतु परम हितकारी है।

यह वृद्धो के लिए ही नही कफशामक होने से बालको के लिए भी हितावह है। बान द्वारा विनिर्मित "सेवोरीन ग्रेन्यूल्स" नामक प्रयोग मे जायफल-जावित्री दोनों का सम्मिश्रण किया जाता है। ये द्रव्य दीपन-पाचन व कृमिघ्न होने से दुर्बल पाचन शक्ति वाले शिशुओ के लिए लाभप्रद है, सुतरा उक्त प्रयोग को उपयोग लाना चाहिए। जायफल-जावित्री के अतिरिक्त इस प्रयोग मे विडङ्ग, सोठ, अतीस, शतपुष्पा आदि द्रव्यो का भी मिश्रण किया जाता है।

कफघ्न ज्वरघ्न होने से "एक्रीसीन" नामक टेब्स्युल मे भी जायफल का मिश्रिण किया जाता है। इस प्रयोग का निर्माण आर्य औषधि फार्मा० इन्दौर करती है। यह प्रयोग बच्चो के लिए लाभप्रद है। इससे बच्चो का ज्वर शान्त होता है, कफ निकलता है और इनका आक्षेप मिटता है। बच्चो की भाति बडो के लिए भी यह उपयोगी है।

अनुभूत प्रयोग

१ स्तम्भप्रदायनी वटी—जायफल १२ ग्राम, गुग्गुलु १२ ग्राम, केसर ३ ग्राम, अफीम ४ ग्राम फाककर ऊपर से वेलपत्र स्वरस ३६ ग्राम, शहद १२

सबको बड के दूध मे खरल करें, सूखने पर ६ ग्राम मधु मिलाकर पुन सुखा लें और गुठली निकाले हुए छुहारो मे भरकर धागे मे बाधकर उडद के आटे से लपेटकर शुष्क कर लें। रात को इसे मन्द-मन्द आग मे रख दें। प्रात निकालकर आटे को हटाकर छुहारे सहित सब द्रव्य पीसकर चने प्रमाण गोली बना लें।

१ गोली सायकाल दूध अथवा गर्म पानी मे खाये। रात को भोजन नही करें, केवल दूध पर ही रहे। इससे वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, शीघ्रपतनादि दूर होते हैं। —श्री गेवीअली पाठक

(धन्व० अगस्त ६५ से)

२. स्कन्दग्रह नाशक वटी—जावित्री ६ ग्राम, शिलाजीत ६ ग्राम, उत्तम केशर ३ ग्राम इन सबको पान के रस मे खरल कर मूग बराबर गोली बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली तक।

अनुपान—माता का दूध या मधु के साथ।

समय—दिन मे तीन बार।

गुण—इस रोग मे बच्चे का गला फंस जाता है। मा का दूध त्याग देता है। चौवा (हनु) बैठ जाता है। आख की पलकें फूल जाती हैं और आख बन्द सी रखता है। रोया नही जाता, बडी मुश्किल से धीमी आवाज मे रोता है। दोनो नेत्र एक समान नही रहते, मुह अर्दित रोग यानि लकवे की तरह टेढा हो जाता है। मुट्ठी बन्द रखता है मल गाढा हो जाता है। और पेट कडा रहता है। ऐसी दशा मे उपरोक्त दवा अति लाभदायक है। वातनाशक नारायण तैल कुज प्रसार रिजी फैल आदि की चौवा (हनु) पर मालिश करनी चाहिए। साथ ही स्वामिकार्तिकेय का पूजन अधिक हितकर सिद्ध होता है।

—प० श्री लक्ष्मीकुमार झा

(ध० स० सि० प्र०)

३. संग्रहणीहर प्रयोग—जायफल, अफीम, कलमीशोरा, लौंग प्रत्येक १२-१२ ग्राम।

चूना के पानी (चूर्णोदक) मे पीसकर मसूर बराबर गोलिया बनाकर शुष्क कर लें। भयकर से भयकर संग्रहणी अतिसार पर प्रयोग करें अवश्य लाभ होगा।

प्रयोग काल एवं अनुपान—प्रात प्रात दोपहर, रात या ३-३ घण्टे पर ? बार नर्म जल ३० ग्राम मे घोलकर पिलावें, अवश्य लाभ होगा। पुरानी मन्द मे भी उत्तम लाभप्रद है। —श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र

४ ऋतुपीडाहर प्रयोग—जायफल, नागकेशर और सुहागे का फूला समानभाग लें। इनका सूक्ष्म चूर्ण तैयार कर ऋतुकाल मे ५ दिन पूर्व से लेकर ५ दिन बाद तक ३-३ ग्राम गरम जल से सेवन करें। इसके उपयोग से ऋतुस्राव के समय की पीडा दूर होकर गर्भाशय विकार नष्ट होते हैं।

—वैद्या श्रीमती शान्तिदेवी आत्रेय

(ध० गु० सि० प्र० भा० २)

५. बालरोगोपयोगी योगामृत वटी—जायफल, वच, टीकामाली, सैन्धव, करञ्ज का बीज, हींग, हरड, भुना सुहागा—प्रत्येक १२-१२ ग्राम व केशर १।। ग्राम। तुलसी के रस से इसकी गोलिया बना ली जावें।

गुण—बच्चो के लिए बहुत ही उत्तम है। इससे दाढ-दात सुगमता से निकल आते हैं। खासी, बुखार, दस्त, उल्टी इत्यादि बच्चो की हर बीमारी के लिए अत्यन्त ही लाभप्रद है।

—श्री प० लक्ष्मणकुमार गोवर्धन त्रिवेदी

(ध० गु० सि० प्र० भा० १)

६ संग्रहणीहर प्रयोग—जायफल ६० ग्राम, अहिफेन ६ ग्राम, चादी वर्क ३ ग्राम, जहरमोहरा खताई ३ ग्राम, वत्सनाभ शुद्ध ६ ग्राम। उपरोक्त पाचों वस्तुओ को भृङ्गराज के रस मे आठ प्रहर खरल कर उडद (माष) बराबर गोलिया बना लें। प्रात मध्याह्न साय तीनो समय दूध (गोदुग्ध) के साथ १-१ गोली लेनी चाहिए।

पथ्य—गोदुग्ध धारोष्ण ही यथा खीच लेना चाहिए पूर्ण अनुभूत है। —ध० गु० सि० प्र० भा० ४

७ मधुमेहहर प्रयोग—जायफल, सोठ, मिर्च, वशलोचन, पीपल प्रत्येक १२-१२ ग्राम, गुडमार पत्ती १२० ग्राम, जामुन की गुठली ६० ग्राम।

उपरोक्त औषधियो को कूट-पीसकर चूर्ण बना लीजिए इसी चूर्ण को प्रतिदिन ६ ग्राम की मात्रा में फांकी दें

ग्राम मिलाकर पिलाइये। पथ्य मे रहे। मधुमेह की उत्तम औषधि है। —वैद्य श्री वाचस्पति त्रिपाठी

(धन्व० जन० ५०)

८. पक्षाघातहर वटी प्रयोग—जायफल ९ ग्राम, शोधित गूगल १२ ग्राम, उत्तम शिगरफ भस्म और राई ६-६ ग्राम। सबको यथायोग्य कूट-पीस घोटकर गूगल मे मिला लो फिर अगूरी सिरके मे ६ घण्टे कूट-कर चने के बराबर गोलिया बना लो। प्रात-साय १-१ गोली रोगी को रास्नादि क्वाथ से दो। दूसरे दिन से आधी-आधी गोली बनाते जाओ। तीन गोलियो से अधिक मत दो। कब्ज हो तो क्वाथ मे एरण्ड तैल भी मिला लो।

खटाई से परहेज रखाओ। शरीर पर वातारि तैल की मालिश कराओ। इस प्रयोग के उपयोग से लकवा, फालिज, पक्षाघात, वाताघात, प्रभृति मिट जायेंगे। —प० श्री चन्द्रशेखर जैन शास्त्री

(धन्व० ४१।१०)

९. आनन्द विहार वटी प्रयोग—जायफल, जावित्री, अकरकरा, ककोल, मिरच, मुलहठी, मलयागिरी चन्दन, लौंग, कलमी तज, पीपर, उरद की दाल प्रत्येक १२-१२ ग्राम, केशर, गुडच का सत्व, कपूर ६-६ ग्राम, भाग धुली हुई ३० ग्राम, मिश्री ६० ग्राम।

निर्माण विधि—सबको कूट-पीस छानकर उसमे इतना शहद डालें कि वह चूर्ण गोली बनाने योग्य हो जाय। तब उसकी बेर के बराबर गोली बनाकर चन्दन के चूरा मे लपेट कर किसी उत्तम पात्र मे रखलें।

गुण—प्रात-साय दूध के अनुपान से १-१ गोली लें और सयम से रहे तो निस्सन्देह धातु पुष्ट हो, वाजीकरण हो, स्तम्भन हो, सुस्ती, प्रमेह जावे तथा मन प्रसन्न रहे। —अम्बिकाप्रसाद अवस्थी

(धन्व० पुरुष रोगाक)

१०. विसूचिकाहर वटी प्रयोग—जायफल १०० ग्राम, लवग ५०० ग्राम, कर्पूर २५ ग्राम, अहिफेन शुद्ध १५ ग्राम, कस्तूरी ७॥ ग्राम, केशर ३॥ ग्राम, मोटी पिप्टी १ ग्राम ८०० मि० ग्राम। प्रथम जायफल तथा लवग को पीसकर पृथक् करलें फिर शेष सब वस्तुए चीनी मे घोल खरल मे डालकर अर्क अजवायन के साथ घोटकर १२० मि० ग्राम की गोलिया बनाले।

मात्रा—१-२ गोली उष्ण जल के साथ।

उपयोग—विशूचिका की प्रत्येक अवस्था मे अचूक है। विशेषकर शीताग अवस्था मे अधिक लाभकर है। —अमरसिंह छावडा द्वारा

(धन्व० अनुभवाङ्क से)

११. विशूचिकाहर प्रयोग—जायफल, कपूर, श्वेत चन्दन, लवग प्रत्येक १०-१० ग्राम, पिपरमेट ६ ग्राम। समभाग जल मे पीसकर मटर के प्रमाण की गोली बना लें। प्रात-साय दोपहर को नित्य लें। विशूचिका मे शीघ्र लाभकारी है।

—वैद्य सुन्दरलाल जैन द्वारा

(गु० सि० प्रयोगाङ्क से)

१२. नपुंसकताहर योग—जायफल, लौंग, कालीमिर्च, कपूर प्रत्येक ४०-४० ग्राम, कस्तूरी १ ग्राम, मकरध्वज १० ग्राम को पान के पत्तो के रस मे घोट कर ३६० मि० ग्राम की गोलिया बनालें तथा दूध से सेवन करें। —कवि० श्री गिरधारी लाल मिश्र

(सुधानिधि अक्टूबर ८१)

१३. संग्रहणीहर कल्प—जायफल, इन्द्रजौ, मोथा और विल्व चारो समभाग खरल मे पीस कर रखलें। १ से ६ ग्राम तक दिन मे ३-४ बार दे। तक्र तथा औषधि की मात्रा आरम्भ मे थोडी रखकर क्रमश. बढ़ाते जाए। तक्र के अतिरिक्त और कुछ न खावें। जब-जब भूख अधिक सतावे, तब-तब ही औषधि की मात्रा तथा तक्र दें।

—वैद्य प्रो० श्री बसरीलाल साहनी

(वैद्य बाबा का बस्ता)

१४. मुखदुर्गन्धहर प्रयोग—जायफल, जावित्री, मरवा के फूल, तुलसी के पत्ते, केशर, समभाग लेकर पीस लें। इसमे गुड मिलाकर चने बराबर गोली बनालें। इन्हे मुख मे रखने से मुख की दुर्गन्ध दूर होती है। —स्वामी श्री जगदीश्वरानन्द जी

जीरक चतुष्टय

१. जीरक-श्वेत — CUMINUM CYMINUM
२. कृष्ण जीरक — CARUM CARWI
३. कलवञ्जिका — NIGLLLA SATIVA
४. अरण्य जीरक — CENTRATHERUM ANTHELMINTICUM



जाणो है म्हणो नही जाणो विसरावीग।
रोग हरण रे कारणे रची है औषद ईस॥

लिङ्ग शरीर का स्थूलशरीर को त्यागना यह ठीक उसी प्रकार होता है जैसे कोई पुराने वस्त्रो को त्याग कर नवीन वस्त्र धारण करता है—

मृत्यु एक सरिता है जिसमे
श्रम से कातर जीव नहाकर।
फिर नूतन धारण करता है
काया रूपी वस्त्र बहाकर॥
—रामनरेश त्रिपाठी

यह मृत्यु शरीरधारियो की प्रकृति है, अवश्यम्भावी है, इस पर किसी का वश नही चलता है—

मरण प्रकृति शरीरिणाम् (रघुवश ८।८७)
जातस्य हि ध्रुव मृत्यु (गीता २।२७)

लायी हयात आये कजा ले चली चले।
अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले॥
(जौक)

किन्तु रोगो का निवारण सम्भव है और इस हेतु बहुत सी औषधिया जो युक्तियुक्त प्रयुक्त की जाने पर रोगो का निवारण कर सकती है। स्वस्थ व्यक्ति अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा हेतु प्रयत्नशील रहे और रोगी योग्य चिकित्सक द्वारा औषधि का सेवन करे। आयुर्वेद मे स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा के उपाय एव रोगानुसार औषधिया वर्णित है। उन बहुत सी लाभप्रद औषधियो मे जीरक भी एक है। यह औषधि होने के साथ आहारसस्कारार्थ भी उपयोगी द्रव्य है। इस प्रकार यह स्वस्थ के स्वास्थ्य का रक्षण करने के साथ रोगों का निवारण करने मे भी समर्थ है—

स्वास्थ्यसुरक्षण हेतु अरु रोगहरण के हेतु।
जीरक को सेवन करो सुगम सजीवन सेतु॥

वैसे जीरा के नाम से सफेद जीरा ही अभिप्रेत होता है किन्तु कई अन्य औषधिद्रव्य हैं जो जीरक के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं यद्यपि उनके पृथक्-पृथक् विशेषण हैं। ग्रन्थकारो ने, व्याख्याकारों ने विविध जीरको का वर्णन कर एक ही प्रकरण मे इनका उल्लेख किया है। आचार्य भावमिश्र ने जीरकत्रय मे सफेद जीरा, स्याहजीरा और कलौंजी का वर्णन किया है। अन्य ग्रन्थकारो ने उपकुञ्ची (कलौंजी) को पृथक् कर अरण्य जीरक का जीरक प्रकरण मे वर्णन किया है। कैय्यदेव निघण्टु के सुप्रसिद्ध टीकाकार आचार्य श्री सुरेन्द्रमोहन ने पाच प्रकार के जीरक का वर्णन किया है। सुश्रुतसहिता के टीकाकर आचार्य चक्रपाणि एव डल्हण ने जीरकद्वय से शुक्ल-पीत जीरक लिये हैं और कारवी से कृष्ण जीरक। यथा हि—

जीरकद्वयमत्र शुक्लपीतभेदेन। कारवी कृष्ण जीरक, करवी कण जीरक यवानिकेत्यन्ये। उपकुञ्चिका स्थूलजीरकम्।
—भानुमती

जीरकद्वय शुक्ल पीतभेदेन। कारवीति कारवी कृष्ण जीरक, उत्तरापथे प्रसिकाद्ध, कारवी यवानीत्येके, अजमोदेत्यपरे, अन्ये राजिकामाहु। उपकुञ्चिका स्थूलजीरक ईषत्कृष्णो "बृहज्जीरक" इति लोके।
—निबन्ध सग्रह

महामहोपाध्याय पंडित प्रवर श्री भागीरथ स्वामी ने अजाजी (जीवा) शीर्षक मे वर्णित विवरण मे जीरक के अन्य भेदो का उल्लेख किया है। शुक्लाजाजी के वर्णन मे आप लिखते हैं कि "यह गौर अजाजी का वर्णन है। गौरादि का वर्णन नही। गौरादि जीरक दूसरा होता हैं।" और "द्वितीय सफेद अजाजी राजनिघण्टुकार ने एक भिन्न बताई हैं। वह इसी जाति वाली ईरान मे बहुत पैदा होती है इसकी तासीर गरम होती है। इसकी गन्ध कटु तीव्र होती है। यह देशी सफेद जीरे मे तीव्र होती है। इसी प्रकरण मे सूक्ष्म कृष्णाजाजी (छोटा स्याह जीरा) का भी वर्णन किया है जो सम्भवत आगे वर्णित विलायती जीरा है। उपकुञ्चिका का आपने पृथक् वर्णन किया है।

आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने जीरक (श्वेत), कृष्ण जीरक का दीपन द्रव्यो के अन्तर्गत, कालाजाजी (कलौंजी) का गर्भाशय सकोचक द्रव्यो मे तथा अरण्य जीरक (कालीजीरी) का कण्डूघ्न द्रव्यो मे वर्णन किया है। आपने कृष्ण जीरक प्रकरण मे यह वक्तव्य दिया है—

"भावप्रकाश मे जीरक, कृष्ण जीरक और कारवी (पृथ्वी या उपकुञ्चिका) को जीरकत्रितय कहा हैं। कारवी मेरे विचार से कैरम कार्वी (Carum Carvi) है जिसे अरबी और फरसी मे करोया कहते हैं। कृष्ण जीरक और कारवी बिल्कुल मिलते जुलते है। प्राय भेद करना कठिन है। कारवी के फल मुडे हुए हैं। दोनो सिरो पर नुकीले बडे तथा हलके रग के होते हैं। सम्प्रति अधिकाश वैद्य कारवी मे मगरैल (कलौंजी) लेते हैं किन्तु जीरकत्रितय मे तीन प्रकार के जीरक ही लेना उपयुक्त है, मगरैल नही। मगरैल विदेशी द्रव्य है जिसका समावेश बाद मे कारवी के प्रतिनिधि के रूप मे कर लिया गया प्रतीत होता है। वस्तुत कृष्ण जीरक मे Carum Bulbocastanum or C. Carvi दोनो द्रव्य आजकल चल रहे हैं। इसकी लगभग प्रजातिया इसमे मिलाई जाती है।"

—द्रव्यगुणविज्ञान द्वितीय भाग

वनौषधि विषयक विपुल सामग्री विश्व को प्रदान करने वाले पुण्यात्मा आयुर्वेदसूर श्री प० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी ने उपर्युक्त जीरकों का पृथक्-पृथक् सुन्दर वर्णन किया है। जीरा (श्वेत) जीरा (स्याह) वर्णन करते हुए स्याह जीरे के प्रकरण मे कहा है कि "देशी स्याह जीरे का ही एक विदेशी भेद विलायती स्याह जीरा कहा जाता है और स्याह जीरे का एक भेद काला जीरा (विष जीरा) होता है।" दोनो जीरो का वर्णन करने के पश्चात् आपने विष जीरे का भी पृथक् वर्णन किया है। इसी प्रकार कालीजीरी (अरण्य जीरक) का भी पृथक् वर्णन किया है और टिप्पणी मे पुन. स्पष्ट किया है कि "काला जीरा और काली जीरी इन दो शब्दो मे भी बडी गड़बड की जाती है। स्याह जीरा का एक भेद काला जीरा या विष जीरा है, जो कि विशेष उग्र एव विपाक्त होता है। उसे ही काली जीरी मानना भूल है।"

हम (एकत्व न प्रयुञ्जीत गुरावात्मनि चेश्वरे) भी यहा इन सभी का वर्णन करने का प्रयास करेंगे। एक साथ इन सबका वर्णन इनके तुलनात्मक अध्ययन मे साधक होगा। हमारा यह प्रयास रहा है कि इस विषय का यथाशक्य सम्पूर्ण साहित्य पटु-पाठको को एक स्थान पर ही उपलब्ध हो सके। इसमे अनेक त्रुटिया भी हो सकती है, किन्तु दोषपूर्ण होते हुए भी यह सुखद ही होगा—

विगुणापि मदुक्तिर्वा सुखाय समुदेष्यिति।
स्वर्णाभरणभारोऽपि केषा कष्टाय जायते।

इस प्रकरण मे हम जीरक नाम से व्यपदिष्ट इन द्रव्यो का वर्णन करेंगे—

१ जीरक

२ कृष्ण जीरक

(क) विदेशी कृष्ण जीरक

(ख) विष जीरक

३ कलवञ्जिका

४ अरण्य जीरक

इनमें अनुभूत प्रयोग सभी के एक ही दिये गये हैं, तथा श्वेत जीरक एव कृष्ण जीरक के प्रयोग भी सम्मिलित रूप से लिखे गये हैं।

श्वेत कृष्ण जीरक सखे अरु जीरक जो स्थूल।
कानन जीरक का यहा वर्णन है आमूल॥

जीरक—श्वेत (Cuminum Cyminum)

अखिल शरीर मे व्याप्त सज्ञावाही नाडियो के सूत्रो मे स्थानीय क्षोभ उत्पन्न होने से ही शूल का अनुभव होता है, सुतरा शूल मे वायु की प्रमुखता होती है। केवल शूल का प्रयोग करने से आयुर्वेद मे उदरशूल समझा जाता है। भगवान चरक ने जीरक को शूलप्रशमन कहा है एव इसके अतिरिक्त इसे शिरोविरेचन भी कहा है।

दीपन-पाचन इन दोनो शब्दो का सम्बन्ध अग्नि से है। शरीर मे विद्यमान अग्नि की क्रिया मे ही दीपन-पाचन शब्दो से जानी जाती है। सुश्रुतसहिता मे पिप्पल्यादिगण को दीपन-पाचन कहा गया है। इस पिप्पल्यादिगण के द्रव्यो मे जीरक भी एक है।

जीरक शतपुष्पा, कुल (Umbelliferae) की वनौषधि है।

नाम—

सस्कृत—जीरक, जरण, अजाजी, दीर्घ जीरक, शुक्लाजाजी।
हिन्दी—जीरा, सफेद जीरा।
गुजराती—जीरु।
मराठी—जिरें।
बगला—जीरा, साधा जीरे।
मलयालम—जीरेकम।
तेलगू—जीलकरी, जीरका।
तामिल—चीरकम्।
कन्नड—जीरिगे।
राजस्थानी—जीरो।
फारसी—जीरक सफेद ज़ीरा।
अरबी—कम्मून, अब्यज।
उर्दू—जीरा।
यूनानी—जामुन।
पंजाबी—चिच्च जीरा, जीरा सफेद।
अंग्रेजी—क्युमिन सीड (Cumin Seed)।
लैटिन—क्युमिन साइमिनम (Cuminum Cyminum)।

उत्पत्ति स्थान—बगाल और आसाम को छोडकर भारत के प्राय सभी प्रान्तो मे यह उत्पन्न होता है। विशेपतया यह उत्तर प्रदेश, राजस्थान और पजाब मे इसकी खेती होती है। मिश्र तथा उत्तरी अमेरिका के भूमध्यसागर तटीय प्रान्तो एव दक्षिण पूर्वी यूरोप के भूमध्यसागर तटीय प्रदेशो मे प्रचुरता से इसकी खेती की जाती है।

रासायनिक सघटन—इसमे एक उडनशील तैल २-४ प्रतिशत होता है। इसके कारण ही इसमे कटु स्वाद एव सुगन्ध आती है। इसमे २०-४० प्रतिशत क्युमैल्डिडाइड रहता है। इसके अतिरिक्त बीजो मे स्थिर तैल १० प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त आर्द्रता ११ ६, प्रोटीन १८ ७, कार्बोहाइड्रेट ३६ ६, सूत्र १२, खनिजद्रव्य ४ ८ प्रतिशत, कैल्शियम १·०८, फास्फोरस ० ४९, लौह ३१ मि० ग्रा०—प्रति १०० ग्राम। विटामिन ए ८७० इ० यू० विटामिन सी ३ मि० ग्रा०—प्रति १०० ग्रा० होते हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसका कोमल वर्षायु क्षुप सौंफ के क्षुप के समान होता है जो १-३ फुट तक ऊचा होता है।

काण्ड—बहुशाखायुक्त कोषीय या धारीदार होता है। शाखाए पतली होती हैं।

पत्र—सौंफ के पत्तो जैसे पतले-पतले लम्बे दो या तीन मे विभक्त रेखाकार नीलाभ हरितवर्ण कोषीय आधार वाले होते हैं।

पुष्प—श्वेतवर्ण या गुलावी किंवा पीताभ होते हैं जो छत्तों पर शीतकाल मे आते हैं।

फल—इन्हीं पुष्पो के छत्तो मे फल किंवा वीज लगते हैं। पकने पर वीजो को पृथक् कर लिया जाता है। जीरे के फल ४ से ६ मिलीमीटर लम्वे तथा २ मिलीमीटर तक चौडे तथा आकार मे लम्व गोलाकार होते हैं, जो अग्रो की ओर क्रमश पतले होते जाते हैं। रङ्ग मे खाकस्तरी लिये हल्के भूरे रङ्ग के होते हैं। फल के ऊपर चार या पाच रेखायें जो पतली होती हैं, लम्वाई की दिशा मे पाई जाती है। ऊपर के आवरण को हटाने पर नीचे वादामी वर्ण का वीज शस्य दिखलाई पडता है। वृन्त की ओर भ्रूण का छोटा अश रहता है। अनुप्रस्थ छेद लेने पर ऊपर फलावरण भूरे रङ्ग का मिलता है। उसके नीचे बीज शस्य होता है। वीज मे कटा हुआ भ्रूण का भाग दिखाई देता है। अनुलम्व छेदन मे भी यही द्रव्य मिलते हैं। इसमे एक विशिष्ट प्रकार की सुगन्ध एवं स्वाद पाया जाता है जो वहुत कुछ Anise से मिलता जुलता है। यह भगुर एव स्पर्श मे रूक्ष, खर व लघु होता है। पार्श्व भाग मे रोम होते हैं।

जीरे के परिस्रवण द्वारा एक उत्पत् तैल प्राप्त किया जाता है, जिसे जीरे का तैल (ओलियम क्युमिनाइ) कहा जाता है।

शीतकाल के अन्त मे ही इसमे पुष्प एव फल लगते हैं।

रस—कटु।

गुण—लघु, रूक्ष।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—यह उष्ण होने से कफ-वात शामक और पित्तवर्धक है। कफ वातघ्न वर्ग मे ही वोपदेव ने सिद्धमन्त्र मे इसे लिखा है—

जीरक वास्पिकावस्तमोदामातङ्गपिप्पली।

—सि० म० ८५।

कटुरस एव उष्णवीर्य होने से यह आग्नेय द्रव्य कहा जाता है।

दीपन पाचन जीरक ग्रहणी
शूल समूल नसावे है।
शोथ वेदना मिटे शीघ्र यदि
इसका लेप लगावे है॥
वात वलास जनित सव
आमय सेवन से मिट जावे है।
मुदित होय 'गोपेश' जरण की
जव-जव परिमल पावे है॥

प्रयोज्य-अङ्ग—बीज।

मात्रा—३-६ ग्राम।

हानिकारक—फुफ्फुसो के लिये अधिक मात्रा मे सेवन करने से हानिकारक है।

दर्पनाशक—कतीरा गोंद।

प्रतिनिधि—अजवाइन (देशी)।

गुणप्रकाशक संज्ञा—जरण।

गुण-धर्म—शास्त्रीय उद्धरणो के वर्णन से पहले पाठको के मनोरजन किंवा सुखस्मरणार्थ स्वरचित द्रव्य गीतिका का एक गीत प्रस्तुत करना चाहता हू, जो राजस्थान के एक लोक गीत की धुन पर तैयार किया गया है।

जीरा तो प्यारा दीपन पाचन रे
करे तो खुस कफ पवन रोगी॥
होवे तो जव भोजन मे अरुचि,
पानी से रज को पिलाना चाहिए।
हो जावे जव दस्तो से व्याकुल,
मिलाय के दही चटाना चाहिए।
होवे तो जव वारम्वार वमन,
जीरे के धूम को सुघाना चाहिए।
काटे तो जव विच्छू जहरीला,
घी मे मिलाय के लगाना चाहिए।
हो जावे जव तन पे खुजली तो,
जीरे के क्वाथ से नहाना चाहिए।
जच्चा के जव दूध न आवे तो,
चीनी के साथ मे खिलाना चाहिए।

छूटे ना जब मिट्टी की आदत,
रोजाना इसको चबाना चाहिए।
कितना तो गुणकारी ये 'गोपेश'
हिये मे हरदम समाना चाहिए।

तीक्ष्णोष्ण कटुक पाके रुच्य पित्ताग्निवर्धनम्।
कटु श्लेष्मानिलहर गन्धाढ्य जीरकद्वयम्॥
—सुश्रुत० सू० ४६/२२९

कारवी कुञ्चिकाजाजी यवनी धान्यतुम्बुरु।
रोचन दीपन वातकफदौर्गन्ध्यनाशनम्॥
—चरक० सू० २७

जीरक कटुक रूक्ष वातकृद्दीपन परम्।
गुल्माध्मानातिसारघ्न ग्रहणीकृमिहृत् परम्॥
—धन्व० नि०

शुभ्रजीर कटुग्राहि पाचन दीपन लघु।
किञ्चिदुष्ण च मधुर चक्षुष्य कचिकृत्मतम्॥
गर्भाशयशुद्धिकर रूक्ष वल्य सुगन्धिकम्।
तिक्त वमिक्षयाध्मान वात कुष्ठ विप ज्वरम्॥
अरोचक रक्तदोप अतिसार कृमीस्तथा।
पित्त च गुल्मरोग च नाशयेदिति कीर्तितम्॥
—नि० र०

कटदीपनपाचनोष्णरूक्षमतिसार-
ज्वररुक्कफानिलघ्नम्।
हृदयङ्गममेध्यवृष्यहृद्दश्य जरणाना
त्रितय रुचि चिनोति॥
—सि० भे० म० मा०

गौराजाजी हिमा रुच्या कट्वी मिष्टाग्निदीपनी।
विषहन्त्री कृमिहरी चक्षुष्या गर्भशोधिनी॥
—महौषध निघण्टु

गौराजाजी हिमा रुच्या कटुर्मधुरदीपनी।
कृमिघ्नी विषहन्त्री च चक्षुष्याध्माननाशिनी॥
—नि० शि०

जीरक कटुरूक्षोष्ण पित्तल कफवातहृत्।
दीपन पाचनो रुच्यो गर्भाशयविशोधन॥
—प्रि० नि०

चरकसहिता मे जो आहारयोगिवर्ग कहा है उसमे मसालो का वर्णन किया गया है। सुश्रुत ने जो पिप्पल्यादिगण कहा है उसमे मसालो का वर्णन है इनमे जीरक का उल्लेख किया गया है। वस्तुत आहारसस्कारार्थ प्रयुक्त द्रव्यो मे जीरक मुख्य है—

जरयति चान्न भूम्ना जीरक इति सोऽभिकथ्यते प्राज्ञै।
प्राय प्रयुज्यतेऽसौ पानान्नव्य जनसस्कारे॥
—आ० प्रियव्रत शर्मा

इसके नियमित उपयोग मे उदर में दूषित वायु, आध्मान किवा कोष्ठवद्धता आदि विकारो की उत्पत्ति नही होती। मल के दूषित जलीयाश का शोषण करने मे यह श्रेष्ठ है। इसलिए ग्राही, शूलप्रशमन वातानुलोमन दीपन-पाचन एव रोचन कहा गया है। उक्त कार्यों के लिये इसे सदा भूनकर उपयोग मे लाना प्रशस्त हैं। अजीर्ण, अग्निमांद्य, छर्दि, आध्मान, उदर-शूल, ग्रहणी एव अर्श रोगो मे यह सदैव मे चिकित्सको द्वारा व्यवहृत किया जाता रहा है। कृमिघ्न होने से कृमिरोग मे भी यह लाभप्रद सिद्ध हुआ है। दीपन-पाचन प्रयोगो मे इसकी महत्ता सर्वोपरि होती है—

जरणत्र्यूपणोपेतो यवक्षारस्तु शीलित।
भोजनादौ तदन्ते च दीपन पाचन स्मृत॥
कणाजरणचूर्णेन सर्जिका परिशीलिता।
रक्तित्रयमितात्पर्थ दीपनी पाचनी मता॥
जरणत्र्यूपणोपेतो नरसारो विशोधित।
दिनसप्तकमात्रेण जाठराग्निप्रदीपन॥
—र० तर० १३-१४

व्योपाकल्लाशिवैलादारुसिताहिंगुजीरका पिष्टा।
पोदीनार्द्रककन्यानिम्बुस्वरसै कृशानुदा लीढा॥
—सि० भै० मञ्जूपा ३/१६

स चायमग्निमान्द्येऽजीर्णे च लेढव्य। अत्रानुक्तोऽपि तोलकमितलवणप्रक्षेपोऽवश्य विधेयस्तस्याग्नि-वर्धकत्वात्स्वादुतासम्पादकत्वाच्च। —कुञ्चिका

चरक के अतिसार चिकित्सा प्रकरण मे जो शालिपर्ण्यादि यवाग्वादि सस्कार द्रव्यो को कहा गया है, उस गण मे जीरक की भी गणना की गई है। इस गण की प्रशस्ति मे कहा गया है—



जीरक-श्वेत (Cuminum Cyminum)

विभिन्न नाम : स०—जीरक, जरण, अजाजी । हि०—जीरा । गुज०—जीरू । मराठी—जिरें । अंग्रेजी—क्युमिन सीड । लैटिन—क्युमिन साइमिनम ।

प्राप्ति स्थान : उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब आदि ।

उपयोगी अङ्ग : बीज । **दोषशमन**—कफ-वातशामक ।

उपयोग : अग्निमांद्य, अजीर्ण, अतिसार आदि ।

वातश्लेष्महरो ह्येष गणो दीपन पाचन ।
ग्राही बल्यो रोचनश्च तस्माच्छस्तोऽतिसारिणाम् ॥
—चरक० चि० १९/२९

तथा च जीरक, पिप्पली, पाठा, सोठ और मरिच को कफातिसार मे उपयोगी कहा गया है। भृष्ट-जीरक चूर्ण का मधु किंवा तक्र के साथ चिकित्सक अतिसार ग्रहणी आदि मे पौन पुन्येन उपयोग करते हैं। मञ्जूषाकार लिखते है—

चित्रकमरिचाजाजीशुण्ठीसौवर्चलैः कृत चूर्णम् ।
तक्रविलोलितपीत भृशमनुभूत जयेद्ग्रहणीम् ॥

अजाजी–श्वेत जीरक सच भृष्ट आदेय । तक्र-विलोलितम्–तक्रममेलितम् ।

श्लेष्मावृत वातज तथा साम कफजन्य ग्रहणी मे भगवान् चरक ने जो पञ्चमूलाद्य घृत एव अग्निसदीपन चूर्ण कहा है उसमे भी जीरक की योजना की गई है।

छर्दिरोगमहारार्थ योगरत्नाकरकार ने एक जीरकादि रस का उल्लेख किया है—

अजाजीधान्यपथ्याभि सक्षौद्रैः सकटुत्रिकैः ।
एतैः माषैं सूतभस्म सद्यो वान्ति विनाशयेत् ॥

जीरक का अर्क भी छर्दिरोग मे लाभप्रद सिद्ध हुआ है—

पोदीनार्को देवपुष्पस्य वार्को-
मिश्रेयार्क श्वेत जीरोद्भवार्क ।
एलाक्षोदश्चेतसो वा प्रमोद-
सोडावारिच्छर्दिरोगापहारि ॥
—मञ्जूषा

विपूचिका रोग मे इसे जायफल के साथ देना हितकर है—

जीरकजातीकोषकतोलम् ।
हन्ति विपूचीपुष्कर लोलम् ॥
—मञ्जूषा

अम्लपित्त मे अरुचि, क्लान्ति, वमन आदि लक्षण होते हैं—

अविपाकक्लमोत्क्ले दतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ।
हृत्कण्ठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद् भिषक् ॥

इसमे जीरकादि घृत की उपयोगिता प्रदर्शित की गई है—

पिष्ट्वाजाजी सधन्याक घृतप्रस्थ विपाचयेत् ।
कफपित्तारुचिहर मन्दानलनर्मि जयेत् ॥
—वृन्द

जीरक शोथहर एव वेदना स्थापन होने से अग्नि-दग्धव्रण, सद्योव्रण आदि पर लाभ पहुचाता है—

जीरकपक्व पश्चात् सिक्थकसर्जरसमिश्रित हरति ।
घृतमभ्याङ्गात् पावकदग्धद्रुम क्षणार्द्धेन ॥
—चक्रदत्त

अजाजी हपुषा कुष्ठ गोमय बदरान्वितम् ।
काञ्जिकेन तु सम्पिष्ट कुर्याद् वर्ध्मप्रलेपनम् ॥
—वसवराजीयम्

जीरकस्य कृत कल्को घृतसैन्धवसयुत ।
सखोष्णो वृश्चिकार्त्तानां मुलेपो वेदनापह ॥
—चक्रदत्त

जरणलवणपथ्या शाल्मलीकण्टकाना–
मनुदिनमनुघृष्ट दन्तमूलेषु चूर्णम् ।
व्रणदरणरुगस्रस्राव चाञ्चल्य शोथा–
नपनयति विवस्वानन्धकारानिवाशु ॥
—यो० र०

यह सुगन्धित एव पाचन होने से मुख की दुर्गन्ध को भी दूर करता है—

अजाजीसैन्धव क्षोदैर्द्विसन्ध्य शोधयेद्रदान् ।
उत्क्लेदभ्रमदौर्गन्ध्यवमनारुचिशान्तये ॥
—सि० भे० मणि०

वातशामक होने से गुड के साथ वातरोगो मे हितकारी है—

अजाजी गुडसयुक्ता विषमज्वरनाशिनी ।
अग्निसाद जयेत् सम्यग् वातरोगाश्चनाशयेत् ॥
—च० द०

सूतिका रोगो मे प्राय वातशामक ही चिकित्सा की जाती है—

सूतिका रोग शान्त्यर्थं कुर्याद्वातहरी क्रियाम् ॥

इस निमित्त पिप्पल्यादिगण परमोपयोगी कहा गया है। इस गण मे भी जीरक होता है। जैसे

पञ्चजीरक पाक सूतिका रोगों मे कहा गया है वह भी सूतिका रोगो के अतिरिक्त योनिरोग, ज्वर, क्षय, काक, श्वास, पाण्डु कार्श्य एव वातव्याधि मे लाभप्रद पाया गया है। प्रसूता के वृद्ध वात का शमन करने के अतिरिक्त जीरक गर्भाशय का शोधन करता है, दुग्ध को बढाता है एव बल को बढाता है—

गर्भाशय शोधनकरण स्तन्य बढावन हेतु।
बलवर्धन हित सूतिका क्यो न जरण सितलेत ।।

कहा गया है—

सतत परिपीय तक्रतो मिषि-
सौवर्चलजीरज रज ।
अपि बन्ध्यवधू पयोभरै
कुचयुग्म विदधाति तुन्दिलम् ।।
शतावरी तन्दुल जीरकैर्गवा
पयोभिर्गिलितैर्निरन्तरम् ।
पय स्तनाभ्या सुदृशा स्रवत्यल
गिरेर्यथा निर्झरमम्बुश्रृङ्गतः ।।

—सि० भे० म० मा०

जीरकादिमोदक (भै० र०) जीरकावलेह (यो० र०), जीरकारिष्ट आदि योग केवल सूतिकारो मे ही नही अपितु प्राय समस्त स्त्रीरोगो मे लाभप्रद हैं। श्वेतप्रदर मे भी उपयोगी एक प्रयोग है—

साध्यर्धांश कृष्णगुन्द्रस्य
मुष्टिर्मुष्टिर्दुग्ध्या जीरक च द्विमुष्टि।
वध्यो वद्धा सप्त सर्पि
सितभ्या ध्वसयस्यु शुक्लदीप्तर्दरस्य ।।

—सि० भे० म० मा०

यह उत्तेजक होने से हृदयरोगो मे तथा रक्तशोधक होने से रक्तविकारो मे व त्वग्दोषो मे हितावह है—

जीरकस्य पल पिष्टं सिन्दूरार्धपलन्तथा।
कटुतैल पचेदाभ्या सर्वपामाहर परम् ।।

—भै० र०

द्वे जीरके कृष्णतिला सर्षपा पयसा सह।
पिष्टा कुर्वन्ति वक्त्रेन्दुमपास्तव्यङ्गलाञ्छनम् ।।

—अ० हृ० उ० ३२।१८

यह उष्ण होने से वृष्य है तथा मूत्रल होने से मूत्राघात, अश्मरी व पूयमेह मे उपयोगी है। इसके अतिरिक्त आचार्य भावमिश्र ने इसे मेध्य भी कहा है। आखों के लिए भी यह हितकारी है, इसे बाह्य एव आभ्यन्तर रूप में उपयोग मे लाया जा सकता है। नेत्र रोगो मे इसका सूक्ष्म चूर्ण सुरमे की तरह लगाया जाता है। तथा च सेवन करने हेतु योग है—

जीरक भागमेक स्यात् खण्डस्तद्द्विगुण स्मृत.।
चतुर्गुण घृत तप्त सर्व सम्मील्य चोद्धरेत् ।।
गोधूमपुञ्जमध्ये च चतुर्दशदिन स्थितम्।
माघमासकृत चैतद्भक्षित चक्षुषोर्हितम् ।।

—योगचिन्तामणि

नवीन तथा पुराण ज्वरो मे विशेषत. वातश्लेष्मा प्रधान ज्वरो मे यह उपयोगी है।

अजाजी गुडसयुक्ता विषमज्वरनाशिनी।

—चक्रदत्त

अजाजी सगुडा खादेत्कल्क वा मधुनालिहेत्।
सकणा विश्वमरिच तक्रञ्चानु पिबेज्वरी ।।
तत्पीत्वा चातपे तिष्ठेत् यावत् स्वेदागमो भवेत्।
कफमारुतजात् क्षिप्र ज्वरादेव प्रमुच्यते ।।

—गदनिग्रह

श्वासहिक्का रोगियो के लिए भगवान् चरक ने जो सिद्ध यवागू कही है उसमे भी जीरक की योजना की गई है—

शालिषष्टिकगोधूमयवान्नान्यनवानि च ।
हिंगुसौवर्चलाजाजीबिड पौष्करचित्रकै. ।
सिद्धा कर्कटश्रृङ्ग्या च यवागू श्वासहिक्कानाम् ।।

चरक० चि० १७

इसी प्रकार मदात्यय मे वात एव कफशमन हेतु जीरक की योजना का निर्देश है—

बीजपूरक वृक्षाम्लकोलदाडिमसयुतम् ।
यवानी हपुषाजाजी श्रृङ्गवेरावचूर्णितम् ।।
सस्नेहै शक्तुभिर्युक्तमवदंशैर्विरोचितम् ।
दद्यात् सलवण मद्य पैष्टिक वातशान्तये ।।
सौवर्चलमजाजी च वृक्षाम्ल साम्लवेतसम् ।
त्वगेलामरिचार्धांश शर्करामागयोजितम् ।।

एतल्लवणमष्टाङ्गमाग्निसदीपनं परम् ।
मदात्यये कफप्राये दद्यात् स्रोतोविशोधनम् ॥
चरक० चि० २५

मद्य मे जीरक, आर्द्रक आदि मिलाकर सेवन करने से मदात्यय की तृष्णा मिटती है—

सजीरकण्यार्द्रकशृङ्गवेर
सौवर्चलान्यर्धजलप्लुतानि ।
मद्यानि हृद्यान्यक गन्धवन्ति
पीतानि सद्य शमयन्ति तृष्णाम् ॥
सुश्रुत० उ० ४७

यूनानी मतानुसार—यह दो कक्षा मे गरम और तृतीय कक्षा मे रूक्ष है। यह आमाशय, यकृत् तथा आतो को वलप्रद है और वृक्को को दृढ करने वाला है। वृक्को की सूजन मिटाकर उनमे गर्मी पैदा करता है। यह पेट के अफरे को मिटाता है और वायु को शान्त करता है। यह कफ को छाटता है, कब्जियत को मिटाता है और कामशक्ति को वढाता है। इसका हिम रतौंधी, आखो के जख्म नाखूना (अर्म) और आखो से पानी बहने को रोकता है। यह मसाने और गुर्दे की पथरी को तोडता है। सिरके के साथ देने से हिचकी को मिटाता है। यह कृमि और गर्भिणी के जी मिचलाहट को भी मिटाता है। यह स्त्रियो के दूध को वढ़ाने वाला विच्छू के विष को उतारने वाला, अतिसार को मिटाने वाला और विषमज्वर को नष्ट करने वाला है। इसके लेप से अडकोषो की सूजन मिटती है।

आधुनिक मतानुसार—आर० एन० खोरी के मतानुसार यह वायु नाशक, सुगन्धित, पाचक और उष्ण है। यह अतिसार, ग्रहणी, उदराध्मान और स्वरभग आदि रोगो मे लाभप्रद है। सन्याल और घोष के मतानुसार जीरे को पीसकर पट्टा बनाकर चढाने से जलन और सूजन मिटती है। कर्नल चोपडा के मतानुसार यह अग्निवर्धक, पेट के अफरे को दूर करने वाला, शान्तिदायक है। यह सर्पविष मे भी उपयोगी है।

जीरे के पक्व फलो से परिस्रवण द्वारा जीरे का तेल प्राप्त किया जाता है जिसे आयल आव क्युमिन (Oil of Cumin) कहते हैं। इसका लेटिन नाम ओलियम् क्युमिनाइ (Oleum Cumini) अर्थात् सफेद जीरे का तेल है। यह आधुनिक चिकित्सा मे उपयोग मे लाया जाता है।

यह जीरे का तेल ताजी अवस्था मे रगहीन या हलके पीले रग का द्रव होता है जो रखने पर गाढे रग का हो जाता है। इसमे एक विशिष्ट गध आती है। यह स्वाद मे कुछ तिक्त होता है। यह ११ भाग अल्कोहल मे विलेय है। इसकी मात्रा १ से ३ बूद है। यह आध्मान, अजीर्ण आदि मे व्यवहृत होता है।

एक्वा क्युमिनाई (अर्क जीरा) जो जीरे के तेल से तैयार किया जाता है, यह भी उक्त रोगो मे उपयोगी है। इसके अतिरिक्त कब्ज मे उपयोगी योग टिं० सैनी को (Tinc Sennae Co) मे भी सनाय, धनिया, ग्लीसरिन, अल्कोहल के साथ जीरा भी होता है। इसकी मात्रा १/२–१ ड्राम, दिन मे २ बार या २-४ ड्राम दिन मे एक बार है।

सामान्य प्रयोग

वाह्य प्रयोग—

१. **मुस्कशोथ**—जीरा, कालीमिर्च को पानी मे पीसकर औटाकर मर्दन करने से अडकोष का कड़ापन व शोथ मिटता है।

२. **रक्तप्रदर**—(क) आधा भुना हुआ आधा बिना भुना हुआ जीरा लेकर लाल चावलो के पिसे कल्क मे रखकर योनि मे रखने से खून रुकता है।

(ख) जीरक स्वरस मे जैतून का तैल मिलाकर योनि मे फाया रखना चाहिए।

३. **ओष्ठपाक**—जीरे को पीसकर होठो पर लेप करें।

४. **प्लीहावृद्धि**—जीरे को सिरके मे पीसकर प्लीहा के स्थान पर लेप करें।

५. **उदरशूल**—उदर मे कही भी शूल हो जीरे का लेप हितकारी है।

६. **पामा**—(क) जीरक क्वाथ से स्नान करना हितकारी है।

(ख) जीरा ४० ग्राम, सिन्दुर २० ग्राम, तैल ३२५ ग्राम पकाकर लगावे।

७. दन्तशूल—भुना हुआ जीरा, सेंधानमक समानभाग लेकर चूर्ण बना दात एव मसूडो पर मलने से मसूडो का फूलना, दातो का दर्द आदि ठीक हो जाते हैं।

८. लूताविष—जीरा और सोठ को पीसकर लगावें।

९. अर्श—जीरा पीसकर गर्म कर लेप करे।

१०. व्यग—(क) जीरे को उबालकर उस पानी से मुह धोवें।

(ख) जीरा, स्याह जीरा, काले तिल और सरसो समभाग लेकर दूध मे पीसकर लेप करने से मुखमण्डल के विकार झाईं (व्यग), धब्बे आदि मिटते हैं।

११. पीनस—जीरा और चीनी का समभाग चूर्ण (कपड़छन) का नस्य पीनस मे उपयोगी है। यह पूतिनस्य मे भी लाभप्रद है।

१२. वृश्चिकदश—(क) जीरे को पीसकर उसमे घृत मिलाकर गरम कर दश स्थान पर लेप करना चाहिए।

(ख) जीरा, सेंधानमक समभाग चूर्ण कर मधु, घृत मे मिलाकर कवोष्ण लेप करने से वृश्चिकदश की वेदना शान्त होती है। इससे लूताविष का भी शमन होता है।

१३. नक्तांध्य—जीरक हिम कषाय से नेत्र धोवें।

१४. शिरोरोग—जीरक हिम कषाय से शिर धोवें।

१५. नेत्ररक्तिमा—जीरक स्वरस या जीरक क्वाथ नेत्रो मे टपकावे।

१६. रक्तपित्त—जीरक क्वाथ के छाने हुये जल मे कुछ बूदें सिरके की मिलाकर नाक मे टपकावें।

१७. छर्दि—जीरक चूर्ण के धुआ को सूघने से पुरानी छर्दि मिटती है।

१८. श्वास—जीरे के मोटे चूर्ण मे जरा सा घृत मिलाकर चिलम मे भरकर या बीडी बनाकर पीने से श्वास शान्त होता देखा गया है।

१९. उपदंश—जीरे के सूक्ष्म चूर्ण को कुमारीस्वरस मे पीसकर शिश्न पर लेप करने से शूल, पाक आदि मे लाभ होता है।

आभ्यान्तर प्रयोग

१. अतिसार—(क) भृष्ट (भुना हुआ) जीरा, सौंफ, सोठ, अनारदाना और सेंधानमक मिलाकर चूर्ण बना, ३ ग्राम चूर्ण तक्र से सेवन करे।

(ख) भुना जीरा, सोठ, बेलगिरी, सौंफ और अजवायन के चूर्ण को ठन्डे पानी से सेवन करे।

(ग) जीरा, सोठ और पोदीना पीसकर ठन्डे पानी से सेवन करने से ग्रीष्मकाल का अतिसार मिटता है।

(घ) जीरे और सौंफ को तवे पर सेक ले, बारीक पीसकर ३-३ ग्राम ठन्डे पानी से सेवन करें।

(ङ) जीरे के चूर्ण को दही मे मिलाकर सेवन करें।

(च) भुना जीरा, मरिच (काली) और सेंधानमक के चूर्ण को तक्र से सेवन करें। यह अर्श, ग्रहणी मे भी लाभप्रद है।

२. प्रवाहिका—जीरा, सोठ और सैन्धव चूर्ण को तक्र से सेवन करे।

३. ग्रहणी—जीरे के चूर्ण मे (२-३ ग्राम) ६० मि० ग्रा० शुद्ध हिंगु मिलाकर तक्र से सेवन करे।

४. छर्दि—(क) जीरा, धनिया, त्रिकटु चूर्ण को मधु मे मिलाकर थोडा-थोडा कई बार चाटे।

(ख) जीरा, सेंधानमक और नेपाली धनिये का समभाग चूर्ण कर दो तीन बार मजन करने से भी छर्दि मे लाभ होता है।

(ग) जीरे का अर्क पीने से भी छर्दि मिटती है।

(घ) जीरे के चूर्ण को निम्बु के स्वरस से सेवन करें। इससे मुख्यत पित्तजछर्दि का सहार होता है।

५. अम्लपित्त—जीरा, धनिया और शर्करा मिलाकर सेवन करे।

६. अरुचि—जीरे के चूर्ण को सुखोष्ण जल से सेवन करने से भोजन मे रुचि होती है एव मन्दाग्नि, छर्दि भी मिटती है।

७. अग्निमाद्य—(क) जीरक और पिप्पली के चूर्ण को सेवन करे।

(ख) भुना हुआ जीरा १ भाग, पुराना गुड २ भाग वलानुसार सेवन करने से मन्दाग्नि, विपमज्वर, वात-रोग आदि नष्ट होते हैं।

८. हिक्का—जीरे मे थोडा घृत मिलाकर बीडी मे भरकर धूम्रपान करने से हिक्का और छर्दि का शमन होता है।

९. तृष्णा—जीरा, धनिया, अदरख और काला-नमक मिलाकर चूर्ण कर सेवन करने से तृष्णा का शमन होता है। यह हृदय के लिये भी हितकारी है।

१०. मल्लविष—जीरक, शर्करा के चूर्ण से या इन्हे पीसकर ठडाई बनाकर सेवन करने से सखिया, हरताल, मेनसिल आदि के विप-विकार शान्त होते हैं।

११. सर्वसर—जीरे को पानी मे पीसकर इला-यची और फिटकरी का फूला मिलाकर गण्डूष धारण करे।

१२. अर्श—(क) जीरा और मिश्री मिलाकर खावें।

(ख) जीरा, अजमोद चूर्ण को सिरके मे मिलाकर सेवन करे।

१३. अजीर्ण—(क) जीरा, त्रिकटु एव यवक्षार को भोजन से पूर्व एव पश्चात् देने से अजीर्ण, अग्नि-माद्य आदि नष्ट होते हैं।

(ख) जीरा, पिप्पली और सज्जीक्षार के चूर्ण को सेवन करने से भी अजीर्ण, मन्दाग्नि मिटते है।

(ग) जीरा, त्रिकटु और शुद्ध नोसादर के चूर्ण को सात दिन तक सेवन करने से भी वैसा ही लाभ होता है।

१४. दुग्धन्यूनता—(क) जीरक और शर्करा चूर्ण को दुग्ध के साथ सेवन करे।

(ख) जीरे को गाय के घी में हल्का भूनकर कपडछन चूर्ण बनाकर इसमे शक्कर मिलाकर ४-४ ग्राम दिन मे २-३ बार सेवन करे। यह क्षीर-वर्धक योग है।

(ग) जीरा, चावल, सतावरी इन तीनो का सम-भाग सम्मिलित चूर्ण बनाकर ३-३ ग्राम चूर्ण गोदुग्ध मे कुछ समय तक सेवन करने से माता के दुग्ध में वृद्धि होती है।

(घ) जीरा, सौंफ १००-१०० ग्राम सेंधानमक ५० ग्राम इन तीनो का कपडछन चूर्ण गाय की ताजा छाछ से ५-१० ग्राम की मात्रा मिलाकर निरन्तर सेवन करने से भी स्तन्य की वृद्धि होती है।

१५. शीत ज्वर—जीरक चूर्ण प्रात. करेले के स्वरस से, रात्रि मे पुराने गुड के साथ सेवन करें।

१६. वातश्लेष्मिक ज्वर—जीरक चूर्ण १० ग्राम को मधु से चाटकर ऊपर से थोडा त्रिकटु चूर्ण डालकर तक्र पीवें। धूप मे बैठकर पसीना आने से ज्वर उतर जायेगा।

१७. जीर्ण ज्वर—(क) जीरा ६ ग्राम, मधु ६ ग्राम दोनो समय २१ दिन तक सेवन करें।

(ख) जीरे को गोदुग्ध मे पकाकर शुष्क कर चूर्ण करलें। ३-६ ग्राम चूर्ण मिश्री मिलाकर सेवन करें।

१८. श्वेतप्रदर—(क) जीरा भूनकर शर्करा मिला सेवन करे।

(ख) जीरा, मिश्री चूर्ण को तण्डुलोदक से सेवन करें।

(ग) जीरा, आमलकी चूर्ण मे मिश्री मिलाकर सेवन करें।

१९. दाह—(क) जीरा १० ग्राम, काली मिरच १ ग्राम, मिश्री ५ ग्राम, २५० मि०लि० जल मे पीस-कर पीवें तो देह की जलन, कलेजे की गरमी, हाथ पावो की जलन, छर्दि आदि रोग मिटते हैं।

(ख) जीरा १ भाग, कालाजीरा २ भाग, छुहारा वीज रहित ४ भाग सबको कूटकर ४ ग्राम की मात्रा से दिन मे दो वार १४ दिन तक सेवन करने से विषम ज्वर का दाह दूर होता है।

२०. विसूचिका—जीरा १० ग्राम, जायफल १० ग्राम का सूक्ष्म चूर्ण कर ठण्डे जल मे मिलाकर वस्त्र मे छानकर, २-३ वार रोगी को पिलावें।

२१. शिर:शूल—(क) जीरक क्वाथ मे सिरका डालकर पीवें।

(ख) इसका हिमकषाय पीने से शिरोरोग एव नक्ताध मिटते हैं।

२२. श्वानविष—२५ ग्राम जीरा, १५ कालीमिर्च घोटकर पिलावे।

२३. मूत्रकृच्छ्र—जीरा, गोखरु और गिलोय का चूर्ण सेवन करें।

२४. पूयमेह—जीरा और मिश्री का चूर्ण सेवन करने से पूयमेह, मूत्राघात एव अश्मरी आदि मिटते है।

२५. परिणाम शूल—जीरा, हीग, सैन्धव चूर्ण को घृत एव मधु में मिलाकर सेवन करने से परिणाम शूल मिटता है।

२६. पाण्डु रोग—मिट्टी खाने मे जिन्हें पाण्डु रोग हो उन्हे जीरा खाने को देना चाहिए। इसमे मिट्टी खाने की आदत भी छूटने लगती है।

२७. आन्त्रिक ज्वर—(क) जीरा ३ ग्राम, कालीमिर्च ३ दाने इन दोनो को तुलसी के रस मे पीस कर पिलाने से आन्त्रिक ज्वर मे कफ की प्रबलता से उत्पन्न विकारो का शमन होकर रोगी सुख का अनुभव करने लगता है।

(ख) जीरा और खस को पीसकर पिलाना (किंवा गोवर के रस मे पीसकर) भी आन्त्रिक ज्वर मे लाभप्रद है।

(ग) जीरा और श्वेत चन्दन दोनो ३-३ ग्राम लेकर दोनो को गङ्गाजल, अभाव मे सादे पानी मे पीसकर छान लें और उसमे बारहसिंगा घिसकर रोगी को पिलावें। इससे आन्त्रिक ज्वर मे लाभ होता है।

(घ) जीरा, पद्माख, गिलोय, इन्द्रजौ, चिरायता और इलायची (छोटी) इन सवको पानी मे पीसकर पिलाना भी आन्त्रिक ज्वर में हितकारी है।

(ङ) जीरे को गधे के पुरीष स्वरस मे पीसकर रोगी को पिलाने से भी आन्त्रिक ज्वर की निवृति हो जाने के लिए कहा गया है। मात्रा—जीरा ६ ग्राम, रस ३५ मि० लीटर।

२८. शोथरोग—(क) जीरा, त्रिफला, एरण्डमूल की छाल, गिलोय, वच, नागरमोथा और अजमोद का चूर्ण गरम जल से सेवन करें।

(ख) जीरा, स्याहजीरा, विडङ्ग, असगन्ध, सोंठ, पुनर्नवा और देवदारु का चूर्ण गोमूत्र के अनुपान से सेवन करना भी शोथ में लाभप्रद है।

(ग) जीरा, नागरमोथा हल्दी, सोठ, चित्रक, पिप्पली और पिप्पलामूल का चूर्ण वनाकर गरम जल के साथ लें तो त्रिदोप शोथ दूर होता है।

(घ) जीरा, निशोथ, सोठ, मिर्च, पिप्पली के चूर्ण को त्रिफला क्वाथ से सेवन करने से कफजन्य शोथ मिटता है।

२९. उपदंश—जीरा १० ग्राम, कलमीसोरा ७ ग्राम, यवक्षार ३ ग्राम और खाड २० ग्राम का चूर्ण वनाकर ३-३ ग्राम चूर्ण गाय के दूध की लस्सी के साथ पीने से पेशाब साफ आकर उपदश मे लाभ होता है।

विविध कल्पनाएं

१. जीरकादि चूर्ण—(क) जीरा, सेंधानमक, हरीतकी, शाल्मलीकटक समभाग लेकर चूर्ण बनाकर प्रतिदिन दन्तमूलो मे चूर्ण का अगुली द्वारा घर्षण करने से दन्तमूलगतव्रण, दरण, पीडा रक्तस्राव, शोथ और दन्तचलन आदि मे लाभ होता है। —यो० र०

(ख) जीरा, धनिया, अद्रक व कालानमक समभाग चूर्ण कर १-२ ग्राम की मात्रा मे, उत्तम सुगन्धित मद्य मे मिला पीने से तृष्णा शान्त होती है। यह चूर्ण हृदय के लिए भी हितकारी है। —यो० र०

(ग) जीरा ४ भाग, सोठ ३ भाग, कालीमिर्च २ भाग, कालानमक १ भाग तथा अजमोद व सेंधानमक आधा-आधा भाग सबका चूर्ण वनाकर रख लें। भोजन के बाद तक्र के साथ ३ ग्राम चूर्ण

सेवन करने मे अग्नि दीप्त होती है। इससे प्लीहोदर, अजीर्ण, विसूचिका दूर होते है। इसका नाम सिंहराज चूर्ण है।

—हा० स०

(घ) जीरा, कालीमिर्च, छोटी हरड, अजवाइन व सेंधानमक समभाग लेकर जीरे को थोडा भून लें और शेष द्रव्यो के साथ सूक्ष्म चूर्ण करलें। ३ ग्राम चूर्ण जल के साथ या शहद के साथ लेने से अरुचि, आध्मान, उदरशूल, हिक्का, वातविकार, अजीर्ण आदि में लाभ होता है। —धन्व० वनौ० विशे०

(ङ) जीरा, सोठ, सेंधानमक १२-१२ ग्राम, हीग भुनी हुई ३ ग्राम सबका मिश्रित चूर्ण बनाकर रखलें। यह चूर्ण तक्र मे मिलाकर लेने से, तक्र का स्वाद उत्तम हो जाता है। इस चूर्ण को दही के साथ भी लिया जा सकता है। यह तक्र जीरकादि योग विशेष पाचक, आन्त्र क्रिया सुधारक, आमपाचक, आन्त्र-कृमिनाशक व अतिसार मे लाभकारी है।

—व० विशे०

(च) भुना हुआ जीरा, कालीमिर्च और सेंधा-नमक का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर रख लें। यह चूर्ण भी तक्र के साथ लाभप्रद एव स्वादिष्ट लगता है। यह चूर्ण अर्श, अतिसार, ग्रहणी आदि को मिटाता है। पाचन क्रिया के निर्बल हो जाने से होने वाले अति-सार एव उदरशूल मे यह विशेष उपयोगी है।

—गा० औ० रत्न

२. स्वादिष्ट जीरा—(क) जीरा २४० ग्राम, सेंधानमक ६० ग्राम और काला नमक ३० ग्राम इन तीनो को काच की बरनी मे डालकर उसमे नीबू रस २४० ग्राम मिला मुख बन्द कर ७ दिन धूप मे रखें। रस के सूख जाने पर धूप मे अच्छी तरह शुष्क कर, पीस-छान शीशियो मे भर लें। भोजन के बाद या जब भी आवश्यकता हो लें। १ से २ ग्राम तक जल के साथ लेने से जी मिचलाना, भूख न लगना, अप-चन, अरुचि, उदरकृमिजन्य शूल, अतिसार आदि मे लाभकर है। अजीर्ण की दशा मे दुर्गन्धयुक्त वमन होती हो तो १-१ घण्टे से २-२ वार इसे लेने से लाभ होता है सगर्भा स्त्री को भी यह दिया जाता है।

—धन्व० वनौ० विशे०

(ख) जीरा १४४ ग्राम, सेंधानमक १२० ग्राम, धनिया ९६ ग्राम, सोठ, काली मिरच ४८-४८ ग्राम, छोटी पीपल, इलायची २४-२४ ग्राम, दालचीनी १८ ग्राम, नीबूसत् (साइट्रिक एसिड) १८ ग्राम व खाड १९२ ग्राम लेकर प्रथम खाड व नीबूसत् को अलग रख, शेष द्रव्यो का महीन चूर्ण करें फिर खाड व नीबू सत् मिला खरल मे ३ घण्टे तक घोटकर बरणी मे भर रखें।

२ ग्राम तक लेने से क्षुधावृद्धि होती है, उदर मे गैस का विकार शमन होता तथा अधोवायु की ठीक-ठीक प्रवृति होती है। यह बहुत ही उत्तम स्वादिष्ट चूर्ण बालक, स्त्री, वृद्ध एव किसी प्रकृति के व्यक्ति के लिये लाभकर है।

—धन्व० वनौ० वि०

(ग) जीरा १०० ग्राम लेकर भली प्रकार साफ करलें। फिर इसमे ५० मि० लि० नीबू का स्वरस, ३ ग्राम सेंधानमक, ६ ग्राम कालीमिर्च का चूर्ण मिला-कर डाल दें और काच के पात्र मे ढककर धूप मे रख दें। २४ घण्टे धूप मे रखने के बाद, एक चौडे पात्र मे निकालकर छाया मे शुष्क होने के लिये रख दें। छायाशुष्क होने पर सुरक्षित रखें। यह अरोचक नाशक भूख बढाने वाला मन प्रसादक व स्वादिष्ट है। इसे खाना खाने के बाद १-२ ग्राम लेकर मुख मे रखकर धीरे-धीरे चबाकर खावें। आवश्यकता के समय स्वागत मे भी प्लेट मे रखा जा सकता है।

—सुधानिधि० अक्टू० ७९

३. जलजीरा—एक लीटर शुद्ध जल मे चार ग्राम नमक, ८ ग्राम भुना जीरा, १०० मि० ग्रा० भुनी हीग और एक बडे नीबू का रस डालकर हिलाकर रखलें। यदि नमक कम पडे तो और डालें या अधिक हो तो पानी मिलाकर स्वानुकूल करले, इसे ४-५ बार मे ३-३ घण्टे के अन्तर मे दें। आतप मे उत्पन्न रोगो मे लवण की कमी की पूर्ति के लिये यह जल-जीरा पिलाना चाहिए।

—सुधानिधि नि० चि० वि० ग्रा० १

४. जीरकादि वटी—(क) सफेद जीरा, स्याह जीरा, हरड, अजवाइन, वायविडङ्ग, अदरख, चित्रक, पोदीना, धनिया, सेंधानमक, साभर नमक, समुद्र नमक, विड्नमक, काला नमक, अम्लवेत, शुद्ध सुहागा इन द्रव्यों को समभाग लेकर चूर्ण बना नीबू के रस मे घोटकर गोलिया बना लें। १-२ गोली के सेवन करते रहने से अजीर्ण एव अजीर्ण जात रोगो का शमन होता है। —सि० भै० मञ्जूषा

(ख) जीरा, सेंधानमक २-२ भाग, कालीमिरच १ भाग तथा भुनी हींग १/४ भाग लेकर सवका सूक्ष्म चूर्ण बना, चूर्ण के बरावर गुड मिलाकर ६-६ ग्राम की गोलिया बना लें। सुखोष्ण जल से सेवन करने से अजीर्ण, अलसक, विसूचिका, आध्मान, आनाह आदि नष्ट होते है। —भा० भै० र०

(ग) पुराना गुड ४०० ग्राम को ६०० मि०लि० पानी मे पकाकर तीन तार की चाशनी आने पर उसमे २०० ग्राम जीराचूर्ण मिला खूब कूटें, तथा हाथों मे घी लगाकर मसलकर १ या २ ग्राम की गोलिया बनालें। प्रात.-सायं १-२ गोली सेवन से जीर्णज्वर मे लाभ होता है। आमाशय मे सचित आमविष इससें दूर होकर शरीर स्वस्थ बनता है। —स्वास्थ्य

५. जीरकादि रस—जीरा, धनिया, सोठ, मिर्च, पीपल तथा पारदभस्म (अभाव मे रससिन्दूर) समान भाग लेकर एकत्र खूब घोटें। एक ग्राम तक शहद मे लेवें। इससे छर्दि (वमन) शीघ्र बन्द होती है। —यो० र०

६. जीरक फाण्ट—(क) जीराचूर्ण ३ ग्राम को उबलते हुये १२० मि०लि० जल मे डालकर, नीचे उतारकर ढंक दें। २० मिनट वाद छानकर थोड़ी शक्कर मिला नित्य प्रातः पीने से ज्वरजन्य दुर्बलता दूर होकर भूख लगने लगती है। —धन्व० व० विशे०

(ख) जीराचूर्ण ३ ग्राम को १२० मि०लि० उवले हुवे पानी मे डालकर ढंक दे। पांच मिनट वाद छानकर उसमें ६० मि०लि० दूध व १०० ग्राम शक्कर मिला पीवें। प्रात-सायं इसके सेवन से शरीर स्वस्थ एव पुष्ट होता है। —स्वास्थ्य

७. जीरकादिमोदक—(क) सफेद जीरा ३८४ ग्राम, भाग (भुनी हुई) १९२ ग्राम, लोह भस्म, बङ्ग भस्म, अभ्रक भस्म, सौंफ, तालीसपत्र, जावित्री, जायफल, धनिया, हरड बहेड़ा, आवला, दालचीनी, नागकेशर, इलायची, तेजपात, लोग, छरीला, सफेद चन्दन, जटामासी, मुनक्का, कचूर, सोहागे का फूला, कुदक, मुलहठी, वशलोचन, शीतलमिर्च, पीपल, धाय के फूल, नेत्रवाला, सोठ, मिर्च, वेलगिरी, अर्जन छाल, सोया, देवदारु, कपूर, गगेरन की छाल, प्रियंगु, कुटकी जीरा, मोचरस, कमल की नाल सब १२-१२ ग्राम लें। भस्म को छोड शेष सबको कूटकर बारीक चूर्ण करें। ८६० ग्राम मिश्री मिलावें और गोली बन सके उतना शहद मिलाकर ६-६ ग्राम की गोलिया बनावें। कितने ही चिकित्सक इस मोदक मे ५०० ग्राम गोघृत मिला पश्चात् शहद के साथ गोलिया बनाते हैं।

इस प्रयोग में आचार्यों ने कुटकी मिलायी है। कुटकी मिलाने से मोदक का स्वाद कडवा हो जाता है। मलावरोध न हो तो मिलाने की आवश्यकता नहीं है। यदि प्रकृति वलवान हो तो लड्डू बनाने के समय गोघृत मिलाना हितावह होता है। यदि दस्त मे दुर्गन्ध हो, सफेद वर्ण हो, आम अधिक आती हो तो घी नही मिलाना (६०-१२० ग्राम) ही मिलाना हितावह माना जायेगा। १ से २ गोली रोज़ सुबह जल या मट्ठे के साथ दें।

इस मोदक के सेवन से संग्रहणी, आमदोष, पित्त-दोष, मन्दाग्नि, रक्तातिसार, विषम ज्वर, शब्द सहित अतिसार, अम्लपित्त, उदररोग, शूल, अरुचि आदि रोग दूर होते है। —भै० र०

(ख) जीरा ५०० ग्राम (चूर्ण), गेहू का आटा ५०० ग्राम को ५०० ग्राम गोघृत मे भूनकर चीनी की चासनी मिलाकर ५०-५० ग्राम के मोदक बनाकर दिन मे दो बार दूध के साथ खाने से स्त्रियों का दूध बढ़ता है। —वनौ० शास्त्र

(ग) नवीन जीरा १ किलो, लोध्र ५०० ग्राम, खोवा १ किलो, गोघृत १ किलो, मिश्री ३ किलो, तज, तेजपात, इलायची, नागकेशर, छोटी पीपर, सोठ, स्याह जीरा, देवदारु, खैर, रसौत, धनिया, हल्दी, हरदार अडूसा, वशलोचन, तवाखीर प्रत्येक १०-१० ग्राम। जीरा लोध्र को कूट-कपडछन कर खोवा मिला घृत मे भून लें और मिश्री की चाशनी कर उसमे मिला लें तथा शेष औषधिया भी कपडछन कर उसमे मिला जमा दें और २०-२० ग्राम की कतली काटकर रख लें। प्रात-साय १-१ कतली दूध के साथ सेवन करानी चाहिए। स्त्रियो की सभी प्रकार की दुर्बलता मे यह लाभकारी।

—सुधानिधि प्रयोग सग्रह भाग-३

८. जीरक पाक—(क) जीरा, कलौंजी, छोटी सोफ, वडी सोफ (सोवा के वीज), अजवाइन, अजमोद, धनिया, मेथी, पीपल, पपीरामूल, चित्रक, हाऊवेर, विदारीकन्द, कूठ और कवीला २५-२५ ग्राम, गुड ५ किलो, दूध २ किलो, घी २५० ग्राम सवको एकत्र कर पाक वनावें। यह पच जीरक पाक प्रसूति रोगो मे उत्तम लाभप्रद है। यह मदाग्नि, ज्वर, क्षय, कास, श्वास, पाण्डुरोग, कृशता और आमवात रोग को भी दूर करता।। यह सूतिका रोग, योनिरोगो को भी मिटाने वाला है। —यो० र०

(ख) दोनो जीरे, सौंफ, अजमोद, धनिया, मेथी, सोठ, पीपल, पीपलामूल, चित्रक, झाऊ की जड, वेर की गुठली, कूठ, सहिजना ये सव दवा ४०-४० ग्राम लेवें। कूट-कपडछन करके तव १६० ग्राम घी मे दवा भूनकर १ किलो ३०० ग्राम दूध का खोवा करने के पश्चात् ४ किलो खाड की चाशनी कर सव दवा मिलाकर पाक तैयार कर खिलाने से सूतिकारोग, योनिरोग, वातरोग, पाण्डुरोग, दुर्वलता, कास, श्वास और क्षय नष्ट होते हैं। स्त्री रोगो की यह उत्तम औषधि है। —यो० र०

९. पञ्चजीरक गुड—जीरा, हाऊवेर, धनिया, देवदारु, वेर के सूखे फल, अजवाइन राई हिंग पत्री, करौंदी, पीपरामूल, अजमोद, छोटी राई तथा चित्रक पृथक्-पृथक् ४८-४८ ग्राम, कलौंजी १९२ ग्राम, सोठ १९२ ग्राम, कूठ १९२ ग्राम, अजवाइन १९२ ग्राम, गुड ५ किलो, घी ७६८ ग्राम, दूध ३ लीटर १९२ मि०लि० इनको मन्द आच मे पकाकर गुड सिद्ध करना चाहिए। गुड, घी, दूध तथा दूध के वरावर जल के साथ पहले पाक करना चाहिये। फिर लेह के समान हो जाने पर जीरा आदि औषधियो का चूर्ण मिलाना चाहिये। यह स्त्रियो के प्रसूत रोग, योनिव्यापत, ज्वर, क्षय, पाण्डु आदि को दूर कर उन्हे सुन्दर स्वस्थ बनाता है। — च० द०

१०. जवारिश जीरा—जीरे को एक रात दिन सिरके मे भिगोकर और छाया मे शुष्क करके भूनें और ४० ग्राम उसमे मे शामिल करें। यवक्षार ४ ५ ग्राम, कालीमिरच १३ ५ ग्राम, सोठ १ ५ ग्राम। सव दवाओ को कूट-छानकर सफेद मिश्री ४७५ ग्राम के कवाम मे माजून वतरीक लौजयात के तैयार करें। ५-१० ग्राम की मात्रा मे सेवन करने से मुह से पानी वहना, कफवृद्धि आदि विकार दूर होते हैं।

—करावादीन जुकाई

११ जीरकाद्यरिष्ट—१० किलो सफेद जीरे को १०२ किलो ३८४ ग्राम पानी मे पकावे। जव २५ किलो ५९६ ग्राम पानी शेप रह जाय, तव उसमे गुड १५ किलो, धाय के फूल ७६८ ग्राम, सोठ का चूर्ण ९६ ग्राम, जायफल, मोथा, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, वडी इलायची, अजवायन, ककोल और लौग का चूर्ण ४८-४८ ग्राम लेकर मिट्टी के चिकने वर्तन अथवा चीनी मिट्टी के या उत्तम काठ के वने पात्र मे उपरोक्त सव दवा डालकर सन्धान करके एक मास तक रखा रहने दें। वाद मे तैयार हो जाने पर छानकर रख ले।

इस योग मे जल का परिमाण द्रव द्वैगुण्य परिमाण के अनुसार द्विगुण किया गया है। इससे उत्तम वनता है।

१५ से ३० मि० ली० खाना खाने के वाद सुवह-शाम दें।

यह शीतल रुचिकारक, चरपरा, मधुर, अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, विष-दोष शामक तथा पेट के अफरे को दूर करने वाला है। यह थोड़ा उष्ण (गर्म) भी है और गर्भाशय की शुद्धि करता है। इसके अतिरिक्त सूतिकारोग, संग्रहणी, अतिसार और मन्दाग्नि के विकारों को दूर करता, भूख बढ़ाता और पाचनशक्ति को प्रबल करता है। —आयु० सा० संग्रह

१२. जीरक पायस (जीरे की खीर)—२४ ग्राम जीरा कुचलकर प्रातः २५० ग्राम गोदुग्ध में भिगा दें। दो घन्टा के बाद में इसे मन्द अग्नि पर पकावें। अच्छी तरह पक जाने पर खड़ा जैसा हो जाने पर उसमें २४ ग्राम मिश्री मिलाकर अग्नि से नीचे उतार लें। यह एक मात्रा है।

इसके सेवन से प्रदर एवं तज्जन्य हाथ-पैरों की व आंखों की जलन मिट जाती है। पाचनशक्ति नष्ट होने पर, पतले दस्त होने पर भी यह लाभप्रद है। रोग की साधारण दशा में केवल प्रातः एक बार सेवन करें किन्तु बढ़ी हुई दशा में दो बार (प्रातः-सायं) इसे लेवें। इसके सेवन के बाद तुरन्त पानी नहीं पीना चाहिये। —सि० मृत्यु० योग

१३. जीरकादि घृत—जीरा और धनिया ४८-४८ ग्राम लेकर एकत्र पानी के साथ पीस, कल्क करें। कुल कल्क १९२ ग्राम कर, ७६८ ग्राम (१ प्रस्थ) गोघृत, गोघृत से चौगुना जल एकत्र मिला पकाकर घृत सिद्ध कर लें। ६ ग्राम से २४ ग्राम तक इसे सुखोष्ण जल से सेवन करने से कफ, पित्तज, अरुचि, मन्दाग्नि और वमन शान्त होते हैं। —यो० र०

(ख) जीरा ८०० ग्राम को चौगुने जल में पकावें चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर उसमें ५० ग्राम जीरे का कल्क तथा २०० ग्राम गोघृत मिलाकर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें। सिद्ध होने पर इसे छानकर इसमें १५ ग्राम मोम को पिघलाकर तथा १५ ग्राम राल को पीसकर मिला दें। इसे लगाने से अग्निदग्ध व्रण की पीड़ा शीघ्र शान्त होती है। —च० द०

१४. जीरक खण्ड (जमाया हुआ जीरा)—जीराचूर्ण १ भाग, खांड २ भाग और तपाया हुआ गोघृत ४ भाग लेकर सबको एकत्र मिला स्वच्छ चिकने चीनी मिट्टी के पात्र में भरकर, मुख पर शराव ढक कर कपरोटी कर, अनाज के ढेर में दबा दें। चौदह दिन बाद निकालकर काम में लावें। इसे माघ मास में १०-१२ ग्राम लेकर खाना चाहिये। यह नेत्रों के लिये हितकारी है। अनुपान उष्ण दुग्ध। —योगचिन्तामणि

१५. जीरकादि तैल—२५ मि०लि० पानी में पीसा हुआ जीरा एक ग्राम, लाल घुंघची १ ग्राम और सिन्दूर १ ग्राम को २५ ग्राम अलसी के तैल में मिलाकर मन्द आंच से पकावें। जब तैल मात्र शेष रह तब छानकर रख लें। इसे कान में डालने से कर्णशूल, कर्णकण्डू, कर्णपाक आदि कर्णरोग नष्ट होते हैं। —सि० भ० म० माला

(ख) जीरा ४० ग्राम का चूर्ण करें, उसमें २० ग्राम सिन्दूर मिला, सरसों का तैल ३२० ग्राम तथा २ किलोग्राम पानी में तैल सिद्ध कर ले। इसकी मालिश करने से खुजली, पामा की खुजली शीघ्र नष्ट होती है। —यो० र०

कृष्ण जीरक (Carum Carwi)

यह भी शतपुष्पाकुल (अम्बेलिफेरी) की वनौषधि है जो दीपन द्रव्यों में श्रेष्ठ कही गई है।

नाम—

संस्कृत—कृष्ण जीरक, कृष्णाजाजी, काश्मीरजीरक।

हिन्दी—काला जीरा, स्याह जीरा।

गुज०—शाहजीरू।

मराठी—शहाजिरे।

बंगला—शियजीरा।

तामिल—शिमाई शिरगम।

तेलगु—शीमाजिलकर।

अरबी—कमूने अरमनी।

फारसी—जीरए स्याह।

अंग्रेजी—ब्लैक कैरवे (Black Caraway)।

लैटिन—केरम कारवी (Carum Carwi)।

उत्पत्ति-स्थान—यह अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, ईराक के अतिरिक्त यहा काश्मीर, कुमाऊ, गढ़वाल आदि हिमालय के समीपवर्ती क्षेत्रो म पाया जाता है। इन स्थानो मे इसकी खेती की जाती है।

रासायनिक सघटन—इसमे एक सुगन्धित तैल २ प्रतिशत होता ह जिसके कारण तीक्ष्ण गन्ध आती है। इसमे उडनशील तैल २२ ७–८ प्रतिशत, स्थिर तैल और राल ६ २–१० १ प्रतिशत होता है।

वानस्पतिक परिचय—इसका वर्षायु क्षुप २-३ फुट ऊचा होता है। शाखाए एकातर मृदु होती है। पत्र बहुखडित दीर्घ होत है। पुष्प स्वेत व छत्राकार होते है जो श्वेत जीर से कुछ छोट होत है। वीज (फल)–श्वेत जीरे से छोटे भूरापन लिये हुये काले, पतले धनुष के समान किंचित् वक्र, आयताकार, रेखाकार होत है। फल-शीर्ष और आधार पर क्रमश. नुकील हात है। ये ३-७ मि० मी० लम्बे तथा २ मि० मी० चौड़े होते हैं बाह्य पृष्ठ पर हल्के रङ्ग की पाच अनुलम्ब उन्नत स्पष्ट रेखायें होती हैं। इन रेखाओ के मध्यभाग अवनतोदर (Concave) युक्त होते हैं। जिनमे ६ तैल नलिकाएँ होती है। वीजो म एक विशेष प्रकार की सुगन्ध होती है।

भेद—इसका ही एक विदेशी भेद विलायती कृष्ण जीरक स्याह जीरा (करुई फ्रक्टस–(Carui Fructus) है। यह मध्य एव उत्तरी यूरोप मे तथा ईरान मे प्राय सर्वत्र स्वयजात पाया जाता है। हालेण्ड मे इसकी अधिक खेती की जाती है। अमेरिका, अफ्रीका मे भी यह वोया जाता है। भारत मे इसका आयात मुख्यत. इग्लैण्ड और लेवाट से होता है। औषधीय दृष्टि से लेवाट का विलायती स्याह जीरा निकृष्ट माना गया है। विलायती कृष्ण जीरक मे एक विशिष्ट प्रकार की सुगन्धित तथा स्वाद होता है। गुण-धर्म देशी स्याह जीरे के समान ही होत है।

कृष्ण जीरक का ही एक भेद विषजीरा (काला जीरा) होता है जो विशेष उग्र एव विषाक्त ह। कोई भ्रमवश इसे ही काली जीरी (अरण्य जारक) मान लेते हैं। इसे अंग्रेजी म हमलक तथा लैटिन म कोनियम मेक्युलेटम (Conium Maculatum) कहत हैं। यह भारत म तथा यूरोप म अधिक होता ह। इसका प्रयोग विशेषत. एलोपैथिक चिकित्सा म अधिक होता है। यह प्राय. बाह्य प्रयोगों मे ही उपयुक्त होता ह। इसका कुल भी उक्त जीरो (श्वेत एव कृष्ण) क समान ही है। यह जीरा विशेष काला किंवा गहरा बादामी रग का १/८ इञ्च तक लम्बा चपटा होता ह।

यह कटु तिक्त उष्ण वीर्य, वेदनानाशक स्पर्शज्ञाननाशक, आक्षेप निवारक एव वातशामक ह। इसका लेप लगान से स्पर्शज्ञान कम हो जाता है तथा वेदना की शान्ति होती ह। यह किसी स्थान विशेष म जमे हुए रक्त को बिखेर देता ह। पेशी समूह पर इसका क्रिया अफीम के समान होती ह। अर्बुद, गलगण्ड, गुल्म, प्लीहोदर, श्लीपद आदि रोगो म तथा अपस्मार कम्पवात, धनुर्वात आदि रोगो म वेदना व आक्षेप निवारणार्थ इसका लेप करना हितकारी। बालक की मृत्यु हो जाने से स्त्री क स्तनो म जो दूध का जमाव हो जाता है और असह्य पीड़ा होती है उसे दूर करने के लिए इसका लेप उपयोगी ह। पुरुष या स्त्री के कामोन्माद के निवारणार्थ तथा शुक्रमेह म इसका लेप जननेन्द्रिय पर किया जाता है।

आक्षेप निवारणार्थ एव वेदना को कम करने के लिए उक्त रोगो मे इसका कुछ आभ्यन्तर प्रयोग भी किया जाता है। आभ्यन्तर उपचारार्थ इसका मद्यार्क या टिंचर दिया जाता है। ५०० मि० ग्राम से अधिक मात्रा मे इसे सेवन करने पर पक्षाघात की सी स्थिति होकर दम घुटने लगता है और श्वासावरोध होकर

मृत्यु हो जाती है। अत. इसके आभ्यन्तर प्रयोग में पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए।

कृष्ण जीरक के रसगुणादि—

रस—कटु।

गुण—लघु, रूक्ष।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—कफवात शामक।

प्रयोज्य अङ्ग—बीज।

मात्रा—१–३ ग्राम।

अपमिश्रण—महगा होने के कारण कृष्ण जीरक में अनेक प्रकार की व्यावसायिक गड़बड़िया मिलती है। इसमें तैल निकाले हुए फलो की मिलावट की जाती है। कभी-कभी पुराने हीन वीर्य फल भी मिलाये जाते हैं जिनमें उत्पन्न तैल पहले से ही न्यून होता है। गाजर, सोया आदि के बीजो को रञ्जित कर असली कृष्ण जीरक मे मिलाकर या अलग से कृष्ण जीरक के नाम से बेचे जाते हैं।

परीक्षण—असली कृष्ण जीरक को जानने के लिए उसका परीक्षण आवश्यक है। कृष्ण जीरक के पूर्व परिचय से इसकी परीक्षा कर लेनी चाहिए। उड़नशील तैल (Voletile Oil) निकाले हुए कृष्ण जीरक के रग मे अन्तर आ जाता है। वे अधिक काले पड़ जाते हैं तथा बाहर से सिकुड़े हुए होते हैं। इसमे उत्पन्न तैल निकल जाने के कारण सुगन्धि कम पाई जाती है।

असली कृष्ण जीरक के फलो मे गाजर, सोया के रञ्जित बीजो की मिलावट होने पर इन बीजो की आकृति रेखाएं खात, ग्रन्थियों का डिसेक्टिङ्ग माइक्रोस्कोप की सहायता से अवलोकन कर निर्णय करना चाहिए। असली कृष्ण जीरक मे वर्णित आकृति, रेखाए, ग्रन्थिया सोया एव गाजर के बीजो मे नही होती है। गाजर सोया के रञ्जित बीज गन्ध मे असली कृष्ण जीरक के समान मनोरम उग्र गन्धि न होकर प्राय: गन्धहीन होते हैं। —द्रव्य-परीक्षा

गुण-धर्म—

जीरकत्रितय रूक्ष कटूष्ण दीपन लघु।
संग्राहि पित्तलं मेध्य गर्भाशयविशुद्धिकृत्॥
ज्वरघ्न पाचन वृष्य बल्य रुच्य कफापहम्।
चक्षुष्य पवनाध्मानगुल्मछर्द्यतिसारहृत्॥
—भा० प्र० नि०

जरणा कटूष्ण च कफ शोफनिकृन्तनी।
रुच्या जीर्णज्वरघ्नी च चक्षुष्या ग्राहिणीपरा॥
—ध० नि०

कृष्णजीरः सुगन्धि. स्यात्तथा हैमवत. स्मृत.।
जीरात् प्रशस्तगुणयुक् सदा राज्ञा तु पूजित.॥
—प्रि० नि०

इसके एव श्वेत जीरक के गुणो मे प्राय: समानता है किन्तु यह अधिक सुगन्धित होने से श्वेत जीरक से श्रेष्ठ माना गया है। गरम मसालो मे इसका उपयोग होता है।

दुर्गन्ध नाशक के अतिरिक्त यह दीपन-पाचन, रुचन, ग्राही एव उत्तम वातानुलोमन है अत. मुख-दुर्गन्ध, अरुचि, वमन, अग्निमांद्य, अजीर्ण, आध्मान, सग्रहणी आदि रोगो मे हितावह है। द्विजीरकादि वटी उक्त रोगो की श्रेष्ठ औषध कही जा सकती है—

द्विजीरकाभयादीप्याविडङ्गार्द्रकचित्रकै।
सतीक्ष्णच्छदधान्यार्कैर्लल्लवणपञ्चकै.।
साम्लवेतसकैरेभि किञ्चित्सौभाग्यसयुतै.।
निम्बवम्बुभावितैर्वट्योऽजीर्णमन्दानलच्छिद.।
—सि० भै० मञ्जूषा

यह हृद्य और शोथहर होने से हृद्दौर्बल्य एव शोथपरक व्याधियो मे उपयोगी है—

कृष्णाजाजी ब्रह्मदण्डी मरिच रामपिप्पली।
स्फोटिकाया हितोलेप पाने वा तण्डुलाम्भसा॥
—योगचिन्तामणि

शितजीरे शरीजीरे पृथग्गद्याणसम्मिते ।
प्रसूतेऽम्भसि नि क्वाथ्य पादोनमवताश्येत् ।।
पटपूते क्षिपेत्तत्र खण्डं कर्पार्धमुज्वलम् ।
द्वित्रिवार निपीत तत् कोठोदर्दोव्यपोहति ।।
—सि० भे० मणि०

यह योग ग्रहणी एव क्रमिनाशक भी कहा गया है।

प्रसूतिविकारो मे यह गर्भाशय शोधन, स्तन्यजनन एव दीपन के लिए यह प्रयुक्त होता है। जीर्णज्वर मे इसका प्रयोग करने से ज्वर शान्त होता है, अग्नि बढ़ती है तथा अन्न का पाचन ठीक होने से बल बढता है। सन्निपातज्वर के ही एक अभिन्यास ज्वर मे उद्वर्तन हेतु श्वेत जीरक के साथ इसको उपयोग मे लाना हितकारी है—

सजीरककृष्णाकंटुतुम्बिहेम–
वब्बूलपत्राऽसितजीरकोग्रै. ।
हरीतकीकट्फलरुक्कुलत्थै–
रुद्धूलन स्वेदमपाकरोति ।।
—त्रिशती ५७

यूनानी मतानुसार—यह दूसरे दर्जे मे गरम और खुश्क है। यह गरमी पैदा करता है, कफ को मिटाता है, अफरे को दूर करता है, भूख को बढाता है, मूत्र को खोलता है और रज का प्रवर्तन करता है। मुख मे चबाकर इसके रस को आख मे डालने से आख का जमा हुआ खून पिघल जाता है। इसके काढ़े के कुल्ले करने से दातो का दर्द मिटता है। यह कृमियो को भी नष्ट करता है। हिचकी को मिटाता है। गर्भाशय की सूजन को मिटाता है। बवासीर के मस्से और जुकाम मे यह लाभ करता है।

आधुनिक मतानुसार—आर० एन० खोरी के कथनानुसार यह कृमिघ्न, मूत्रकर, स्तन्यवर्धक, रज-स्रावकारी एव वायुनाशक है। विरेचक या तिक्त औषधियों को सुगन्धित करने के लिए इसका व्यवहार होता है। प्रसव के बाद इसका क्वाथ सेवन करने से गर्भाशय सकुचित होता है तथा दूध बढ़ जाता है। यह कृमियो के लिए भी हितकर है, विषमज्वर, ग्रहणी, अग्निमाद्य, अजीर्ण और अतिसार मे यह चित्रक के साथ सेवन किया जाता है। हाथ-पैरो मे हुए शोथ को इसका प्रलेप नष्ट करता है। कपडो में इसके बीज रखने से कपड़े कीडो के खाने से बच जाते है।

पश्चात्य द्रव्यगुण के लेखक डा० रामसुशीलसिंह के अनुसार यह सुगन्धित (Aromatic), उत्तेजक (Stimulant) एव वातानुलोमन (Carmintive) तथा एन्टिसेप्टिक है। मुख द्वारा इसका प्रयोग उदराध्मान एव आन्त्रशूल के निवारण के लिए भी किया जाता है।

इसका तैल एक उड़नशील तैल होता है जो कारम् कारवी नामक उपर्युक्त वनौषधि के सुखाये हुए पके फलो अर्थात् कृष्ण जीरक से परिस्रवण द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसमे ५३ प्रतिशत से ६३ प्रतिशत तक कारवोन पाया जाता है। यह तैल एक रगहीन किंवा हलके पीले रग का द्रव होता है जो स्वाद, गध मे कृष्ण जीरक की भाति होता है। इस तैल का उपयोग अन्य औषधियों को सुगधित करने के लिये एव उनसे उत्पन्न हृल्लास व मरोड के निवारणार्थ किया जाता है। यह अजीर्ण निवारक है।

सामान्य प्रयोग

बाह्य प्रयोग—

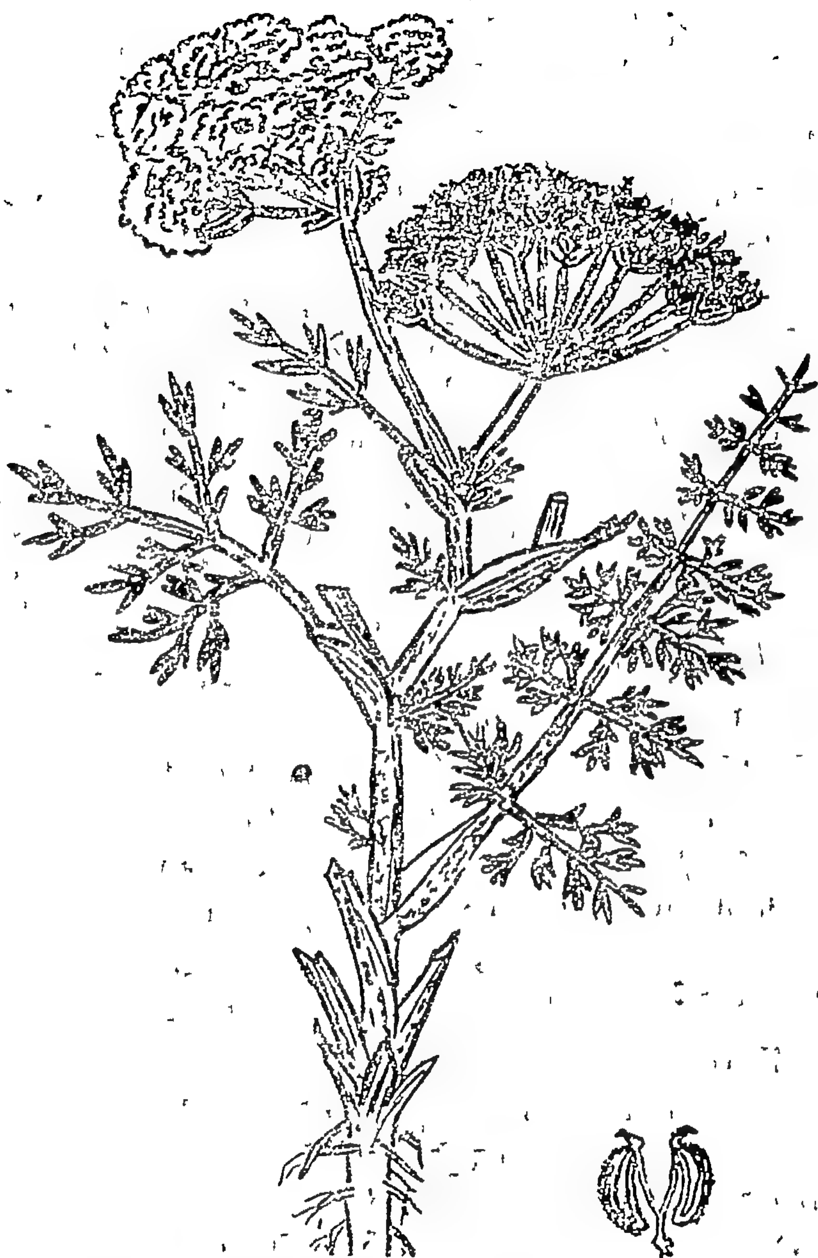
१. **अर्श**—(क) अर्शांकुरो का कृष्ण जीरक के क्वाथ से सेक करे।

(ख) कृष्ण जीरक की पुल्टिस बनाकर सुखोष्ण बाधे।

२. **गर्भाशयशोथ**—इसके क्वाथ मे स्त्री को बिठाने से गर्भाशय के शोथ-शूल का शमन होता है।

३. **प्रतिश्याय**—इसके क्वाथ के वाष्प का बफारा या वाष्प का नस्य लेना चाहिये।

४. **दन्तशूल**—इसके क्वाथ के गण्डूष (कुल्ले) करने चाहिये।



कृष्ण-जीरक [Carum Carwi]

विभिन्न नाम : सस्कृत–कृष्ण जीरक, कृष्णाजाजी । हिन्दी–स्याह जीरा । गुज०–शाहजीरू । म०–शहाजिरे । अ०–ब्लैक कैरवे । लैटिन०–केरम कारवी ।

प्राप्ति स्थान : हिमालय के समीपवर्ती क्षेत्र ।

उपयोगी अङ्ग : बीज । **दोषशमन :** कफ वातशामक ।

उपयोग : अरुचि, जीर्णज्वर, अतिसार आदि ।

५. नेत्रगत रक्तस्कन्दता—इसे मुख मे चबाकर इसका रस नेत्र मे डालने से जमा हुआ रक्त पिघल जाता है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

१. जीर्ण ज्वर—इसका क्वाथ किंवा चूर्ण सेवन करने से ज्वर शान्त होकर आहार का पाचन ठीक होने लगता है।

२. गर्भाशयशोथ—इसके द्वारा बनाया शर्बत पीना हितकर है।

३. हिक्का—इसके चूर्ण को सिरके मे मिलाकर देना चाहिये।

४. उदर्द—कृष्ण जीरक और लामज्जक दोनो ५-५ ग्राम को १२५ मि० लि० जल मे उबालकर अष्टमांश रहने पर छान लें, इस क्वाथ मे ५ ग्राम शक्कर मिलाकर रोगी को पिला दें। दो-तीन बार के इस प्रयोग से उदर्द एव कोठ का प्रशमन हो जाता है।

५. मलेरिया ज्वर—कृष्ण जीरक, एलुआ, सोंठ, मरिच, बकायन की निबौली, करज की मींगी सबको पानी मे पीसकर चने के बराबर गोली बनाकर रख लें। ३-३ घण्टे से दिन मे तीन बार देने से मलेरिया ज्वर उतर जाता है।

विलायती कृष्णजीरक के कुछ सामान्य प्रयोग

१. श्वास—इसकी अधिक मात्रा को मुख मे रखकर चबाने से कफ का शमन होता है। इससे आध्मान और आमाशय शूल एव आमाशय की निर्बलता से हुआ श्वासरोग ठीक हो जाता है।

२. उदरशूल—इसके क्षुप को कुचलकर रस निचोडकर पिलाने से वातजन्य उदरशूल मे लाभ होता है।

३. जलोदर—रोग के आरम्भ मे इसके क्वाथ में जैतून का तैल मिलाकर सात दिन तक पान करने से लाभ होता है।

४. अजीर्ण—इसे शाक मे डालकर सेवन करने से आध्मान व विष्टम्भकारक दोष दूर होकर वे शीघ्र पचते हैं। यह आमाशय की आर्द्रता को नष्ट कर अजीर्ण में लाभ पहुचाता है।

५. विबन्ध—इसका हरीतकी एवं एरण्डफल-मज्जा के साथ क्वाथ बनाकर पीने से विबन्ध एव विबन्ध जन्य रोगो का शमन होता है।

विविध कल्पनाएं

१. जीरकासव—कृष्ण जीरक के एक भाग चूर्ण में ५ गुना मद्यसार (९० प्रतिशत) मिलाकर बोतल में भरकर अच्छी तरह कार्क बन्द कर रखें। सात या चौदह दिन बाद मोटे कपडे से खूब निचोडते हुए छानकर शीशियो मे भरकर रखें।

१५ से ६० बूद तक थोडे गर्म जल मे मिलाकर इसके सेवन से विषमज्वर, जीर्णज्वर, अग्निमाद्य एव वातजन्य सम्पूर्ण उपद्रव नष्ट होते हैं। रक्तपित्त में इसे शक्कर के शर्बत के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

—धन्व० वनौ० विशे०

२. जीरक अर्क (एक्वाकारी डेस्टिलेटा)—कृष्ण जीरक का अर्क विधि से तैयार अर्क पाचक कहा गया है। इससे अजीर्ण का शमन होता है।

मात्रा—१५ से ३० मि० लि०।

३. जीरक अवलेह—कृष्ण जीरक (स्याहजीरा) भुना हुआ ५० ग्राम तथा दालचीनी, कालीमिर्च, श्वेतमिर्च, बूरा अरमनी ७-७ ग्राम, सुदाबपत्र १२ ग्राम, सोठ का मुरब्बा ३५ ग्राम, हरड का मुरब्बा ६० ग्राम, सूर्यतापी गुलकन्द ९६ ग्राम, खाड २५० ग्राम व शहद १२५ ग्राम लेकर प्रथम गुलकन्द व मुरब्बो को पानी मे पीसकर, खांड मिलाकर, आग पर रखें। पाकसिद्धि पर शेष द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर अवलेह तैयार करें। यह यूनानी ग्रन्थो मे ज्वारश कमूनी कबीर के नाम से जाना जाता है।

यह उदर के वातविकार, वातिकशूल, आध्मान, अजीर्ण, हिक्का, वातोदर आदि को नष्ट करता है। यह कुछ रेचक भी है। इसकी मात्रा ७ ग्राम है। इसे अर्क सौफ के साथ उपयोग मे लाना चाहिये।

—यूनानी चिकित्सा सागर

पेटेण्ट प्रयोगों में जीरक—पाचन संस्थान की विकृतियो मे जीरक सदैव उपयोगी समझा गया है। बहुत सी निर्माणशालाएं इसके सम्मिश्रण से उत्तमोत्तम प्रयोग प्रस्तुत करती है। उनमे से कतिपय का उल्लेख यहा किया जा रहा है—

नाम रोग	औषधि निर्माण-शाला	मुख्य द्रव्य	कल्पना	योग
१. गैस्टोटेब	लक्ष्मी कैमीकल इन्ड० मथुरा	जीरा, पीपर, मिर्च, चित्रक आदि।	वटी	उदरशूल, अजीर्ण, अरुचि आदि।
२. गैसारि कैप०	निर्मल आयु० संस्थान अलीगढ़	जीरा, सैन्धव, सोठ, रसोन, हिंगु आदि।	कवच (कैप०)	अजीर्ण, आध्मान, अग्निमाद्य आदि।
३. गैस्टीन	आर्य औषधि फार्मा० इन्दौर	जीरा, सोठ, कालानमक, अनारदाना आदि।	वटी	आध्मान, उदरशूल, अजीर्ण आदि।
४. गुलमोला	भारतीय महौषधि संस्थान अनूपशहर	जीरा, निम्बु सत्व, सोठ, अजवाइन, पोदीनासत्व आदि	वटी	गुल्म, विबन्ध, अग्निमाद्य आदि।
५. रुचिका कैप०	शर्मा मेडिको	दोनो जीरे, अनारदाना, शु० गन्धक, अजवाइन, लवण आदि।	कवच	अरुचि, अजीर्ण, अग्निमाद्य आदि।
६. पाचकीद्राव	मोहता रसायनशाला हाथरस	जीरा, निम्बुरस, सोठ, कालानमक, हीग आदि।	पेय	अरुचि, मन्दाग्नि, अजीर्ण आदि।
७. शाही चूर्ण	योगी फार्मेसी	जीरा, पिप्पली, निम्बुसत्व, पोदीना सत्व आदि।	चूर्ण	छर्दि, विबन्ध, अजीर्ण आदि।
८. अर्जुनबाण चूर्ण	देश रक्षक औषधालय कनखल	जीरा, अजवाइन, पोदीनापत्र, सौंफ, नौसादर आदि।	चूर्ण	अजीर्ण, अम्लपित्त, आध्मान, यकृत्-विकार आदि।
९. गैसहरवटी	देशरक्षक औषधालय	दोनो जीरे, निम्बुसत्व, चित्रक, सज्जीक्षार आदि।	वटी	अजीर्ण, अग्निमाद्य, आध्मान, विबन्ध आदि।
१०. गैसोना कैप०	ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ़	जीरा, चित्रक, विडङ्ग, अम्लवेत, इन्द्रयव, शु० कुपील आदि	कवच	आध्मान, अजीर्ण, उदरशूल आदि।
११. डाइजेस्टिन	कश्मीर आयु० वर्क्स अमृतसर	जीरा, हीग, त्रिकटु, स्वर्णगैरिक आदि।	वटी	अजीर्ण, अरुचि आदि।
१२. गैसपावटी	त्रिमूर्ति फार्मेसी, बीकानेर	जीरा, चव्य, यवक्षार, चित्रक आदि।	वटी	उदावर्त, अजीर्ण आदि।

१३. हाजमा टेब०	शिल्पा केम, इन्दौर	जीरा का सत्, त्रिकटु, लवण, नीबू सत् आदि।	वटी	अरुचि, अजीर्ण आदि।
१४. सुकारमिन सीरप	सुमित फार्मा० अहमदाबाद	जीरा, सोंठ, विडङ्ग, इलयची आदि।	पेय	उदरशूल, विबन्ध आदि।
१५. पेप्टेमिन सीरप	गोस्वामी ड्रग, रतनगढ (राज०)	दोनो जीरे, पिप्पली, चित्रक, सोंठ, मरिच आदि।	पेय	आध्मान, अजीर्ण, अग्निमांद्य आदि।
१६. जिमनेट सीरप	एमिल फार्मा० नई दिल्ली	जीरा, अद्रक, हरीतकी, चित्रक, अनारदाना, दालचीनी।	पेय	,,
१७. फलासव	मोहता आयु० रसायन-शाला, बीकानेर	जीरा, त्रिफला, द्राक्षा, खजूर अमरूद आदि।	पेय	अरुचि, दौर्बल्य
१८. डायाडिन सीरप	चरक फार्मा०	जीरा,, कुटज, दाडिम, जाय-फल आदि।	पेय	अतिसार मे
१९. यकृतो टेब०	,,	कालाजीरा, पुनर्नवा, अपा-मार्ग, चित्रक, विडङ्ग आदि।	वटी	यकृत् प्लीहा विकार आदि।
२०. डिसैन्ट्रीना	,,	जीरा, अतीस, बिल्व, मुस्तक, सोंठ, आदि।	वटी	अतिसार, प्रवाहिका बालको के पाचन
२१. ग्राइपवाटर	एम्बीजेक लेबो० सरदार शहर	जीरा, धनिया, सौंफ आदि।	पेय	विकारो मे।
२२. गैसेप्ट	,,	स्याहजीरा, चित्रक, कज्जली आदि।	वटी	आध्मान, उदरशूल आदि।
२३. गैसहर	शिल्पाकेम, इन्दौर	कालाजीरा, चित्रक, सैन्धव आदि।	वटी	अजीर्ण, विबन्ध, उर्ध्ववात आदि।
२४. पाचन सुधा	,,	दोनो जीरे, सैन्धव, नीबूसत् आदि।	,,	,,
२५. डाइजेस्टीन	मार्तण्ड फार्मा०, बडौत	जीरा, सैन्धव, हीग, सोंठ आदि।	,,	छर्दि, आध्मान, अरुचि।
२६. आर डी जाइम	श्रीरुद्रदेव आयु० भवन नयागाव (सारण)	स्याहजीरा, चित्रक, अजमोद, हीग, त्रिफला, विडङ्ग आदि।	पेय	आध्मान, उदरशूल, अम्लपित्त आदि।
२७. के० पेप-२	कौशिक आयु० भवन, मालासर	जीरा, भृङ्गराज, विडङ्ग, चित्रक आदि।	,,	अरुचि, मन्दाग्नि आदि।

उपर्युक्त प्रयोगो के अतिरिक्त एक पेटेण्ट पेय प्रयोग है–"गर्ग बालविट" जिसका निर्माण गर्ग वनौषधि भण्डार विजयगढ़ (अलीगढ) द्वारा किया जाता है। यह बालको के समस्त रोगो को दूर करने वाला अत्युत्तम टॉनिक है। इसमे जीरा, द्राक्षा, गिलोय, हरीतकी, पिप्पली, शतपुष्पा, विडङ्ग, टकण, काला नमक, गुलाब पुष्प आदि महत्वपूर्ण द्रव्यो का सम्मिश्रण किया जाता है। यह बालको को पाचन-सस्थान के विकार दन्तोद्भेद विकारो से दूर रखकर हृष्ट-पुष्ट बनाता है।

बालको के रोगो के अतिरिक्त यह स्त्री रोगो की भी उत्तम औषधि है। राजवैद्य शीतलप्रसाद एण्ड सन्स दिल्ली के प्रसिद्ध प्रयोग हेमपुष्पा (पेय) मे अशोक, लोध्र, दशमूल, ऊदसलीब, शिवलिङ्गी, उलट कंबल आदि स्त्री रोगोपयोगी द्रव्यो के साथ जीरक का भी सम्मिश्रण किया जाता है। जीरा मन्दाग्नि को दूर कर आर्तव शोधन एव दुग्धवर्द्धन करने में सहायक सिद्ध होता है। इसी प्रकार का एक प्रयोग है "फेमीकेयर सीरप" यह दीनदयाल औषधालय ग्वालियर द्वारा बनाया जाता है। इसमे जीरक के अतिरिक्त शोक, रक्तचन्दन, वसा, लोध्र, देवदारु, सर्पगन्धा आदि का सम्मिश्रण किया जाता है। समस्त रोगो मे प्रायः पाचन-सस्थान विकृत होता है कहा गया है—

प्रायेणाहार वैपम्यादजीर्णं जायते नृणाम् ।
तन्मूलो रोगसघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ।।

अत प्राय सभी औषधियो मे पाचन-सस्थान को सम्यक् बनाये रखने के लिये जीरक आदि द्रव्यो को भी समाविष्ट किया जाता है। पौष्टिक प्रयोगो मे भी इसकी योजना की जाती है। 'शिल्पा केम' औषधि निर्माता का प्लेक्सोना "सायरप" असाधारण प्रयोग है जो पाचक रसो को उत्तेजित कर शारीरिक शक्ति का सरक्षण कार्य करता है। इसमे जीरा, बिल्व, नागकेशर, पिप्पली आदि हैं। स्त्रियों के लिये उपयोगी पौष्टिक पेय है "फेमिको सीरप" जिसका निर्माण एम्बीजेक लेबोरेट्रीजन सरदार शहर (राज०) है। यह गर्भाशय सम्बन्धी तकलीफो को दूर करके स्त्रियों को स्वस्थ व सुन्दर बनाने वाला अनुपम टॉनिक है। इसमे सफेद जीरा, अशोक, लोध्र, वासा, सुपारी, चन्दन, शिलाजीत, मकरध्वज, बङ्ग, लौह, अभ्रकभस्म आदि परमोपयोगी द्रव्य हैं। इसी प्रकार का एक प्रयोग है कौशिक आयुर्वेद भवन सालसर (राजस्थान) का–"लेडीटोन सीरप"। यह स्त्रियो के लिये स्वास्थ्यवर्धक सर्वोत्कृष्ट टॉनिक है। इसमे भी सफेद जीरा, एलात्वक्, अशोक, दाडिम, अर्जुन, शतावरी, नागकेशर आदि है। जीरक को गर्भाशय शोधक भी कहा गया है इसलिये भी स्त्री रोगो मे इसकी महत्ता अधिक प्रगट की गई हैं। चरक के एम २ टोन सीरप मे भी जीरे को डाला जाता है।

कल्वञ्जिका (Nagella Sativa)

यह वत्सनाभ कुल (रेननकुलेसी) की वनौषधि है। भावप्रकाश निघण्टु के हरीतक्यादि वर्ग मे जीरक, कृष्णजीरक के साथ कलवञ्जिका (उपकुचिका) का वर्णन किया गया है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने वृष्यादि वर्ग के अन्तर्गत गर्भाशय सकोचक द्रव्यो मे इसका वर्णन किया है। सिद्ध भेषज मणिमालाकार ने चिरपोटिका, कबाबचीनी, कलाकन्द, कचवलिका आदि हिन्दी नामो की भांति कलौजी का भी सस्कृत मे नामकरण किया है। कालाजाजी से काला जीरा समझकर भ्रमित न हो, इस हेतु हमने उक्त कलवञ्जिका शीर्षक देना ही उपयुक्त समझा है।

नाम—

संस्कृत—कालाजाजी, उपकुचिका, पृथ्वीका, कलवजी, कल्वञ्जिका।

हिन्दी—कलौंजी, मगेरल।

गुज०—कलौजी।

मराठी—कलौजी।
बगला—मुगरेला।
राज०—कलनोजी।
तामिल—कनरुजीरगमू।
तेलगु—नल्लजिलकर।
कन्नड—करेंजिरगे।
मलयालम—करुनचीरगमू।
अरबी—शोनीज।
फारसी—स्याहदान।
अंग्रेजी—स्मालफनेल (Small Fennel)।
लैटिन—नाइगेला सेटाइवा (Nige,la Sativa)।

उत्पत्ति-स्थान—इसका मूल वास स्थान दक्षिण यूरोप है। देश के पूर्वी प्रान्तो पजाव, हिमाचल प्रदेश, वगाल, विहार, आसाम मे तथा दक्षिण भारत मे इसकी खेती की जाती है। कमी होने पर यह अफगानिस्तान, मिश्र आदि देशो से भी आयात किया जाता है।

रासायनिक सघटन—इसके वीजो मे एक पीताभ भूरा उडनशील तैल ०.५–१.६ प्रतिशत और एक रक्ताभ भूरे रङ्ग का स्थिर तैल ३१ प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त शर्करा, पिच्छिल सेन्द्रिय अम्ल, विपाक्त ग्लूकोसाइड आदि होते हैं। उडनशील तैल मे कार्वोन ४५-६० प्रतिशत डीलाइमोनिन और साइमिन तत्व होते हैं। इसमे श्वासनलिका प्रसारक नाइगेलान तत्व भी होता है।

वानस्पतिक परिचय—इसका क्षुप सौफ के समान किन्तु उससे कुछ छोटा होता है। इसके पत्ते भी सौफ के पत्तो जैसे किन्तु पतले एक साथ जोडे से लगते है। ये पत्रदण्ड के दोनो ओर होते हैं। पुष्प–नीलाभ पीतवर्ण एकल, लम्बे पुष्पदण्डो पर निकलते हैं। फूलो के झड जाने पर शिम्बी (कली) लगती है जो १३ मि० मी० लम्बी होती है। वीज–तिल के समान कुछ मोटे त्रिकोणाकृति अत्यन्त काले रङ्ग के या गहरे भूरे रङ्ग के होते हैं। ये सुगन्धित, सिकुडन-युक्त, ग्रन्थिमय तथा शिम्बी में अनेक होते हैं। वीज २.५ से ३ मि० मी० लम्बा २ मि० ली० चौड़ा होता है। वाह्य वीजावरण खुरदरा, रूक्ष होता है। वीजावरण को अलग करने पर स्निग्ध श्वेत वीजमज्जा दिखाई देती है। इसकी गन्ध तीक्ष्ण होती है। सूघने पर नाक की भीतरी कलाए जलने लगती हैं।

इसकी खेती नदियो के किनारे वालू मिट्टी मे या दुमट मिट्टी मे अधिक उपजाऊ होती है। इसके पुष्प शरद् ऋतु मे तथा फल शीतकाल मे लगते है।

रस—कटु, तिक्त।
गुण—तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष।
वीर्य—उष्ण।
विपाक—कटु।
दोषकर्म—कफ वातनाशक, पित्तवर्धक।
प्रयोज्य-अङ्ग—वीज।
मात्रा—१-३ ग्राम।
वीर्यकालावधि—५ वर्ष तक।

अपमिश्रण—इन वीजो मे प्याज, गाजर, मूली लहसुन, (कुछ लोगो का यह विचार है कि कलौंजी लहसुन के वीज हैं, किन्तु यह विचार निराधार है), भृङ्गराज एव सुदाव के वीज मिला दिये जाते हैं। अत असली कलवञ्जिका का परीक्षण कर उपयोग मे लाना चाहिये।

हानिकारक—गर्भाशय तीव्रोत्तेजक होने से गर्भावस्था मे न दें। अधिक मात्रा से भ्रम, शिर शूल, उद्वेष्टन आदि लक्षण होते हैं। इसकी आमाशय, अन्त्र, वृक्क और त्वचा पर भी उत्तेजक क्रिया होती है।

दर्पनाशक—दुग्ध, घृतादि शीतल स्निग्ध पदार्थ। कतीरा गोंद को पानी मे भिगोकर मिश्री मिलाकर पिलाना।

उग्र लक्षणों मे—वमन।

गुणधर्म—

कलवञ्जिका पाचनदीपनी पर
सन्धानयोग्या कफवातवारिणी।



कलवञ्जिका [Nigella Sativa]

विभिन्न नाम : स०—कलवञ्जिका, कालाजाजी, उपकुञ्चिका । हि०—कलौजी, मगरैल ।
: गु०, म०—कलोजी । अ०—स्माल फनेल । लै०—नाइगेला सेटाइवा ।

प्राप्ति स्थान : पंजाब, बिहार, आसाम आदि ।

उपयोगी अङ्ग : बीज । **दोषशमन** : कफवात शामक ।

रोगोपयोग : कष्टार्तव, अरुचि, उदरशूल, वातव्याधि आदि ।

प्रवर्तयत्यार्त्तवमुष्णवीर्या
भक्तेऽपि भक्ति बहुली करोति ॥
—सि० भे० म० मा०

उपकुञ्जी कृष्णकाया मगरैलेति कथ्यते ।
दीपनी पाचनी रुच्याध्मानहृत् कफवातजित् ॥
—प्रि० नि०

कारवी कटुरुष्णा च कफशोथनिकृन्तनी ।
रुच्या जीर्णज्वरघ्नी च चक्षुष्या ग्राहिणी परा ॥
—महो० नि०

पृथ्वीका कटुतिक्तोष्णा वातगुल्मामदोषनुत् ।
श्लेष्माध्मानहरा जीर्णा जन्तुघ्नी दीपनी परा ॥
—नि० शि०

वृष्या चाजीर्ण शमनी गर्भाशयविशोधिनी ।
—ग० नि०

तीक्ष्णोष्ण कटुक पाके, रुच्य पित्ताग्निवर्धनम् ।
कटुश्लेष्मानिलहर गन्धाढ्य जीरकद्वयम् ॥
तद्वद् विज्ञेया सोपकुञ्चिका ।
—सु० सहिता

उक्तोपकुञ्चिका तिक्ता कट्वी चोष्णा च दीपनी ।
वृष्या चाजीर्ण शमनी गर्भाशयविशोधनी ॥
आध्मानवात गुल्म च रक्तपित्त कृमीस्तथा ।
कफ पित्त चामदोष वात शूल च नाशयेत् ॥
—नि० रत्ना०

रोचन दीपन वातकफदौर्गन्ध्यनाशनम् ।
—चरकसहिता

यह लेखन, शोथहर एव वेदना स्थापन होने से चर्मरोगो मे सन्धिशोथ मे एव वातव्याधि मे उपयोगी है । खालित्य मे बीजो का लेप करना चाहिये । शिर-शूल व कामला मे चूर्ण का नस्य देना चाहिये और प्रतिश्याय मे तथा अर्शाकुरो पर धूम्र देना चाहिये । उत्तेजक एव वेदनाहर होने से वातव्याधि मे इसका आभ्यन्तर प्रयोग भी किया जाता है । दुर्गन्धनाशन होने से मुख दुर्गन्ध मे रोचन होने से अरुचि मे दीपन-पाचन अनुलोमन होने से अग्निमाद्य, अजीर्ण, आध्मान, उदरशूल मे कृमिघ्न होने से कृमिरोग (विशेषत. गण्डूपद कृमि) मे और ग्राही होने से अतिसार-ग्रहणी मे यह उपयोगी है । विरेचन द्रव्यों के साथ मरोट को बन्द करने के लिये इसका मिश्रण किया जाता है । यह कफ नि सारक होने से कास-श्वास व पार्श्वशूल मे लाभप्रद है । गर्भाशय सकोचक होने से कष्ट प्रसव मे, प्रसवोत्तरकाल मे (गर्भाशय सशोधनार्थ) एव रजोरोध-कष्टार्त्तव मे भी उपयोगी है । स्तन्यजनन होने से सूतिका के दुग्ध की वृद्धि कर स्वास्थ्य वृद्धि मे सहायक सिद्ध होती है । मूत्रल होने से मूत्राघात में भी हितावह है । और स्वेदजनन होने से त्वग्दोषो का निवारण करती है । ज्वरघ्न और शीतप्रशमन होने से विषमज्वर विशेषत शीताभिप्राय मे इसको व्यवहार मे लाया जाता है । जिस रक्तपित्त मे लोहे के समान गन्ध आती है, श्वास और उद्गार आने पर धूम्र के समान गन्ध आती है, कठ मे धूम का भरना प्रतीत होता है उसमे इसे शर्करा के साथ मे सेवन करना चाहिये—

लोहगन्धिनि नि श्वासे उद्गारे धूमगन्धिनि ।
पृथ्वीका शाणमात्रा च खादेत् द्विगुणशर्कराम् ॥
—वृन्द

चरकसहिता एव सुश्रुतसहिता मे केवल स्वतन्त्र एक ही, इसका प्रयोग कहा है किन्तु सूतिका के अपरापातनार्थ अन्य द्रव्यो के साथ इसके उपयोग का वर्णन किया है । चरकसहिंता मे शिरोविरेचन मे एव उद्गार शुद्धि हेतु इसका उल्लेख है । वाग्भट ने वचादि चूर्ण मे योनिरोगहरणार्थ एव शोथनाशार्थ इसका वर्णन किया है ।

इसका सुगन्धित तैल जीवाणु नाशक है । इस क्रिया का अध्ययन ए० के० भार्गव एव सी० एस० चौहान ने किया । आई० पी० अग्रवाल एम० वी० एस० अचर, आर० वी० वोरकर एव एन० राय आदि अनुसन्धाताओ ने यह सिद्ध किया कि यह चूहो मे काफी दुग्ध वृद्धि करता है तथा साथ मे स्तन ऊतक की भी वृद्धि (Proliferation) होती है जबकि जीरे से केवल ऊतक वृद्धि ही पाई गई ।

—डा० श्री कृष्णचन्द्र चुनेकर
(वान० अनुसन्धान दर्शिका)

तैल हेतु कहा गया है—" "पृथ्वीका तैलानि तीक्ष्णानि लघून्युष्णवीर्याणि कटूनि कटुविपाकानि सराण्यनिलकफकृमिकुष्ठप्रमेहशिरोरोगापहराणि चेति ।। —सुश्रुत० सू० ४५/११५

इस तैल की सिर पर मालिश करने से मस्तिष्क का अवरोध दूर होकर बुद्धि-स्मृति बढती है ।

यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे मे, गरम और खुश्क है । किसी-किसी के मत से यह दूसरे दर्जे मे गरम और तीसरे दर्जे मे खुश्क है । यह फेफडो की शिकायत मे मुफीद है । पीलिया मे इसका अन्दर और बाहर प्रयोग करने से लाभ होता है । यह कफ के रोगों मे भी लाभ पहुचाती है । इसके अतिरिक्त यह मूत्र साफ लाने वाली ऋतुस्रावनियामक तथा गर्भस्रावकारक भी है ।

गिलानी के मत से यह हाजमावर्धक और वादी व बलगम से उत्पन्न खट्टी डकारो को नष्ट करती है । इसे कुछ समय लगातार खाने से औरत का दूध बढता है । गाजरूनी के मत से यह औषधि जुकाम की खास दवा है । इसके चूर्ण को जैतून के तैल मे मिलाकर नाक मे ४-५ बार टपकाने से छीकें आकर जुकाम साफ हो जाता है ।

यह पूर्व मे कहा गया है इससे दो प्रकार का तैल प्राप्त होता है । जो पीले रङ्ग का तैल होता है वह उडनशील होता है दूसरा जो सफेद रङ्ग का होता है वह एरण्ड तैल के समान होता है । खजायनुल अदविया के मतानुसार इसको जैतून के तैल के साथ मिश्रण कर पीने से नामर्द ठीक होता है । इस तैल को कमर और लिंगेन्द्रिय पर लगाने से बेहद कामशक्ति बढती है । इसकी मालिश से पट्ठो की सुस्ती और सर्दी का दर्द मिटता है ।

गिलानी का कहना है कि इसके तैल की कुव्वत मूली के तैल के बराबर है । इसके मलने और पीने से फालिज (लकवा), सुन्नवाय और मिरगी (अपस्मार) की बीमारी में फायदा पहुचता है । यह खून के दौरो को ठीक करती है । कान में इसको टपकाने से वहरापन और कान की सूजन ठीक होती है । नाक से टपकाने से मिरगी मिटती है । सर पर मलने से दिमाग के सुद्दे खुल जाते हैं और दिमाग की कमजोरी दूर होती है ।

कर्नल चोपडा के मतानुसार कलौंजी पेट के अफरे को दूर करने वाली मूत्र और ऋतुस्राव नियामक है । खुजली और अन्य चर्मरोगो मे इसका लेप लाभप्रद है । बिच्छू के डक मे भी यह लाभदायक है । कोमान के मतानुसार साधारण सुतिकाज्वर मे यह औषधि लाभकारी है ।

डा० राक्सबर्ग तथा डा० एन्सली आदि वैज्ञानिको ने इसे भारतवर्ष की ही अति प्राचीन औषधि माना है, किन्तु अन्यो ने इसे दक्षिण यूरोप की माना है ।

सामान्य प्रयोग

बाह्य प्रयोग—

१. स्नायुक—(क) कलौंजी को पीसकर तक्र (छाछ) मे मिलाकर गर्म कर आक्रान्त स्थान पर मलकर लगाने से तीन दिन मे पूरा स्नायुक (नारू) बाहर निकल जाता है । यदि स्नायुक टूट गया हो तो कलौंजी के पत्ते, कलौजी के बीज और शाखायें पीसकर बाध देने से आराम हो जाता है ।

(ख) कलौंजी चूर्ण को दही मे मिलाकर पीसकर लेप करने से भी स्नायुकजन्य पीडा शान्त होती है ।

२. अर्श—(क) कलौजी को जलाकर भस्म बना मस्सो पर मलें ।

(ख) इसकी धूनी देना भी लाभप्रद है ।

(ग) इसके चूर्ण मे मधु मिलाकर बत्ती बनाकर गुदा मे रखने से भी लाभ मिलता है ।

३. पाण्डुरोग—इसके सात दानो को स्त्री के दूध मे पीसकर नाक मे टपकाने से पाण्डु-कामला एव शिर शूल मे लाभ होता है ।

४. इन्द्रलुप्त—इसे जलाकर तैल मे मिलाकर शिर मे मालिश करें ।

५. प्रतिश्याय—(क) बीजो को सेककर मलमल के कपड़े से बाधकर सूघें ।

(ख) कलौंजी २ ग्राम, नौसादर २ ग्राम, सोठ ३ ग्राम लेकर पीसकर पोटली बनाकर सूघें।

(ग) कलौंजी तैल में जैतून तैल मिलाकर सूघे।

६. वातव्याधि—(क) इसके चूर्ण को तैल मे मिलाकर लेप करें।

(ख) इसके तैल का अभ्यङ्ग करे।

७. शोथ—वात प्रकोप या किसी जन्तुदश से उत्पन्न शोथ मे इसे जल मे पीसकर लेप कर सुखाकर रुई बाधने से शोथ शूल का शमन होता है।

८. चर्मविकार—चूर्ण को नारियल के तैल मे मिलाकर मलें।

९. कृमिरोग—कलौंजी और एलुवा की वत्ती बनाकर गुदा मे रखने से चुरने कृमि नष्ट होते हैं।

१० शिरःशूल—इसका एव स्याहजीरे का लेप हितावह है।

११. मर्कटविष—इसके चूर्ण को मधु मे मिलाकर लगावें।

१२. युवानपिडिका—कलौंजी को सिरके मे पीसकर रात के समय मुख पर लेप कर प्रात जल मे धोवें। कुछ ऐसा करने से युवानपिडिका (मुहासे) मिटती हैं।

१३. कर्णबाधिर्य—इसके तैल को कान मे डालने से बाधिर्य एव कर्णशोथ मिटता है।

१४. विचर्चिका—इसे हरिद्रास्वरस मे पीसकर या इसके तैल की मालिश करें।

१५. ध्वजभंग—इसके तैल की शिश्न एव कमर पर शनै -शनै मालिश करें।

आभ्यन्तर प्रयोग—

१. अश्मरी—कलौंजी को पानी मे पीस मधु मे मिलाकर पीवें। इससे मूत्राघात भी मिटता है।

२ अर्श—इसकी भस्म बनाकर पानी के साथ पीवें।

३. प्रसवकष्ट—इसका क्वाथ बनाकर पीने से प्रसव पीड़ा मिटकर प्रसव हो जाता है।

४ कुष्ठ—इसके चूर्ण को हरिद्रास्वरस या बिल्व पत्र स्वरस के साथ सेवन करें।

५. श्वानविष—इसका चूर्ण पानी के साथ पीसकर दिन मे ३-४ बार सेवन करें।

६. हिक्का—चूर्ण को नवनीत या तक्र या मधु मे मिलाकर सेवन करें।

७. कष्टार्तव—इसका क्वाथ पिलाते हैं।

८. सूतिकारोग—इसका क्वाथ पिलाने से गर्भाशय का सशोधन होकर रोगों का शमन होता है।

९. स्तन्याभाव—कलौंजी का चूर्ण सेवन करने से दुग्ध वृद्धि होती है।

१०. विषमज्वर—इसका चूर्ण गुड के साथ किंवा मधु के साथ सेवन करें।

११. अजीर्ण—इसके चूर्ण को चित्रकमूल चूर्ण के साथ सेवन करने से अजीर्ण, अग्निमांद्य एव विषमज्वर दूर होते हैं।

१२. कृमिरोग—इसका चूर्ण सेवन करने से गण्डूपदकृमि नष्ट होते हैं।

१३. रक्तपित्त—चूर्ण से दुगनी मिश्री मिलाकर शीतल जल से सेवन करें।

१४. पक्षाघात—इसके तैल को दूध मे डालकर पीवें।

१५. कामला—इसका क्वाथ बनाकर पिलावें।

१६. चातुर्थिक ज्वर—इसके चूर्ण की अधिक मात्रा को मधु के साथ पारी के दिन चटाने से चातुर्थिक ज्वर छूटता है।

१७. प्रतिश्याय—इसके चूर्ण को मधु या उष्ण जल से सेवन करने से प्रतिश्याय मे भी लाभ होता है।

१८. दुग्धदुष्टि—माता के दूध की शुद्धि करने हेतु कलवञ्जिका को शाक किंवा क्वथिता (कढी) के साथ खिलानी चाहिये।

विविध कल्पनाएं—

१. चूर्ण—(क) कलौंजी, मेथी, चन्द्रसुर एव अजवाइन का समभाग चूर्ण बनाकर सेवन करने से वायु के रोग, अजीर्ण, शूल, आध्मान, पार्श्वशूल और कटि

शूल मिटता है। इसे चतुर्बीज चूर्ण कहा जाता है—
—भावप्रकाश निघण्टु

(ख) कलौजी, धनिया, मेथी, सौंफ, जीरा सफेद, जीरा स्याह ये सब भुने हुये ६०-६० ग्राम तथा सेंधा नमक ६० ग्राम, काली मिरच, दालचीनी, तेजपात, सोठ और अमचूर ३०-३० ग्राम, भुनी हीग और हल्दी १२-१२ ग्राम—इन सबको एकत्र कूट-पीसकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण के उपयोग से अरुचि, अजीर्ण, अग्निमांद्य, आध्मान, कृमिरोग, उदरशूल आदि रोग दूर होते हैं। यह चूर्ण यथारुचि दाल-शाक मे मिलाकर भी सेवन किया जा सकता है। इससे दाल-शाक स्वादिष्ट एवं रोचक हो जाते हैं। —धन्व० वनौ० वि०

२. वटी—१२५ ग्राम कलौजी का चूर्ण २५० ग्राम गुड मे भली प्रकार घोटकर सात गोलिया बनालें। प्रतिदिन १-१ गोली सेवन करने से नेत्रज्योति की मन्दता एव तज्जन्य पीडा और शिर शूल आदि व्यथायें दूर होती हैं। —सि० भै० मणि०

३. लेटिका (चटनी)—भुनी हुई कलौंजी, भुना जीरा, काली मिरच और इमली का गूदा समानभाग यथेष्ट काला नमक, मशाला भीग जाने योग्य खट्टे अनार का रस और मधु या गुड मिलाकर लेहवत् बनाकर भोजन के साथ खावें। इससे अरुचि व मन्दाग्नि दूर होते हैं। —गावो मे औषध रत्न

४. अवलेह—भुनी हुई कलौंजी का चूर्ण १५० ग्राम लेकर उसके साथ सफेद तथा काली मिर्च ३५-३५ ग्राम, दालचीनी १५ ग्राम, सताप (सद्दाव) के शुष्क पत्र ४५ ग्राम इनका चूर्ण मिलाकर उसमे मुरब्बा सोठ १२० ग्राम, मुरब्बा, आवला १८० ग्राम गुलकन्द और मिश्री या शक्कर ३००-३०० ग्राम एकत्र मिलाकर घोटकर सुरक्षित रखें। यह माजून किंवा अवलेह १५-२० ग्राम दिन मे ३ वार सेवन करने से अतिसार, अजीर्ण, अग्निमांद्य, अम्लपित्त, मुख दौर्गन्ध्य आदि विकार दूर होते हैं। यूनानी ग्रन्थो मे यह जवारिशे कमून के नाम से जाना जाता है।

५. तैल—कलवञ्जिका चूर्ण, वाकुची चूर्ण, दारुहरिद्रा चूर्ण और गुग्गुलु ६०-६० ग्राम तथा गन्धक ३० ग्राम लेकर सबका सूक्ष्म चूर्ण एकत्र घोटकर एक किलोग्राम नारियल के तैल मे मिलालें। यह औषधि मिश्रित तैल एक बोतल मे डाल रखें। इसे सात दिनो तक धूप मे रखें और दिन मे २-३ बार खूब हिला लिया करें। इसके पश्चात् इस तैल का मर्दन करने से कुष्ठ आदि विविध चर्मरोगो मे लाभ होता है। —वनौषध शास्त्र

पेटेण्ट प्रयोगों मे कलवञ्जिका—शिलपाकेम (इन्दौर) नामक औषध निर्माणशाला द्वारा "युटेरिना" नामक कैपसूल का निर्माण किया जाता है जो एक श्रेष्ठ गर्भाशयशामक औषधि है। यह गर्भाशय को विकसित कर, शोथ शूल का सहार कर मासिकस्राव को नियमित करता है। इसमे कलवञ्जिका, हरड, अशोक, शिग्रु एव नागकेशर आदि डाले जाते है। गर्ग वनौषधि भण्डार द्वारा विनिर्मित "रजावरोधान्तक" कैपसूल मेभी कई घनसत्वो के साथ कलवञ्जिका होती है। इन्द्रायन, रेवतचीनी, मूली, गाजर बीज आदि इसमे डालकर यह तैयार किया जाता है। यह भी कृच्छ्रार्तव को मिटाकर तज्जन्य उपद्रवों को मिटाता है। रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, योनिव्यापक आदि गर्भाशयिक विकारो के लिये स्वास्थ्यवर्धक सर्वोत्कृष्ट टॉनिक है—कौशिक आयुर्वेद भवन, सालासर (राज०) का "लेडीटोन सीरप" इसमे बहुत से स्त्रीरोगोपयोगी द्रव्यो के साथ कलवञ्जिका भी डाली जाती है जिससे यह मासिकधर्म की अनियमितता को दूर करने मे सहायक सिद्ध हुआ है।

इसके अतिरिक्त यह कृमिहर प्रयोगो मे भी प्रयुक्त होती है। "क्लीयर कैप्सूल" (निर्माता—वान मार्क) मे खुरासानी अजवाइन, डीकामाली आदि के साथ में कलवञ्जिका भी है। यह समस्त प्रकार के कृमिरोगो मे गुणकारी है। १-१ कैपसूल दिन मे ३ बार जल से देना होता है। बालको को आयुबल के अनुसार दिया जाता है।

निर्मल आयुर्वेद सस्थान द्वारा निर्मित "श्वेतकुष्ठारि" वटी मे भी कलवञ्जिका है। यह श्वेतकुष्ठ में बाह्यप्रयोगार्थ उपयोगी है।

अरण्य जीरक (Centratherum Anthelminticum)

यह भृङ्गराज कुल की औषधि है। इस कुल को कम्पोजिटी (Compositae) कहा जाता है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने इसे कण्डूघ्न द्रव्यों के अन्तर्गत लिया है।

नाम—

संस्कृत—अरण्य जीरक, वन जीरक, सोमराजी।
हिन्दी—काली जीरी, जगली जीरा।
गुजराती—काली जीरी, कटवी जीरी।
मराठी—कडूजिरें।
राजस्थानी—काली जीरी।
बंगला—सोमराज।
तमिल—आदावी जिलागारा।
तेलगु—कट्टु शिरामामू।
अरबी—कमूनवर्री।
फारसी—जीरए वर्री (सोहराई)।
अंग्रेजी—पर्पल फ्लीवेन (Purple Flebane)।
लैटिन—सेण्ट्राथीरम एन्थेलमिण्टिकम्।

उत्पत्ति-स्थान—यह भारत मे विशेषत हिमालय स्थित ग्रामों मे ५५०० फीट की ऊचाई तक उत्पन्न होता है। यह ऊसर एव उजाड भूमि पर स्वयमेव उग आता है।

रासानिक संघटन—इसमे प्रधानत स्थिर तैल १८ प्रतिशत, लगभग ०.०२ प्रतिशत एक उत्पत तैल और एक तिक्त सत्व पाया जाता है। यह तिक्त सत्व पीतवर्ण होता है यह इसका वीर्यवान भाग है। यह सौ भाग वीजो में एक भाग से ऊपर पाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय—इसका वर्षायु (वर्षजीवी) क्षुप एक फुट से पाच फुट तक ऊचा होता है। शाखायें इधर-उधर फैली हुई और उन पर दानेदार किरमची रग के बहुत से धब्बे होते हैं। पत्र लगभग ५-१० अगुल लम्बे मध्य मे से लगभग १-३ अगुल चौडे आगे से नोंकदार होते हैं। पत्तो के चारो ओर किनारे आरे के समान कटे से होते हैं। पत्र ऊपर रोमेंदार होते हैं। ये क्षुप के नीचे से चौड़े और वडे होते हैं और ऊपर की ओर क्रमश छोटे होते जाते हैं। शाखा के ऊपर फूल की ढोडी निकलती है। ढोडी सूरजमुखी फूल के समान होती है। पुष्प गुच्छों मे आते हैं पंखडिया नीलाभ गुलाबी रग की होती है। इसके फूल की गोलाई कघी (अतिवला) के समान होती है। फूल के पक जाने पर एक ढोडी से २५-३० दाने निकलते हैं। इनके बीजो के ऊपर ढोडी मे पतले सूक्ष्म बालों का सा गुच्छा होता है। इनके बीज कच्चेपन मे पीले पकने पर हरे एव पूर्ण पक सूखने पर भूरे हो जाते हैं। ये १/५ इंच लम्बे रोमश भूरे काले रग के होते हैं जिनके पृष्ठ भाग पर लम्बाई मे दस उभरी रेखायें (Ridges) होती हैं। इनसे तीक्ष्ण गन्ध आती है। एक क्षुप मे प्राय ६० ग्राम अरण्य-जीरक के बीज प्राप्त होते हैं। वर्षाकाल मे इस पर पुष्प एव वसन्त मे फल लगते हैं।

रस—कटु, तिक्त।
गुण—लघु, तीक्ष्ण।
वीर्य—उष्ण, पत्र–शीत।
विपाक—कटु।
दोषकर्म—कफ-वातशामक।
प्रयोज्यअङ्ग—बीज, पत्र।

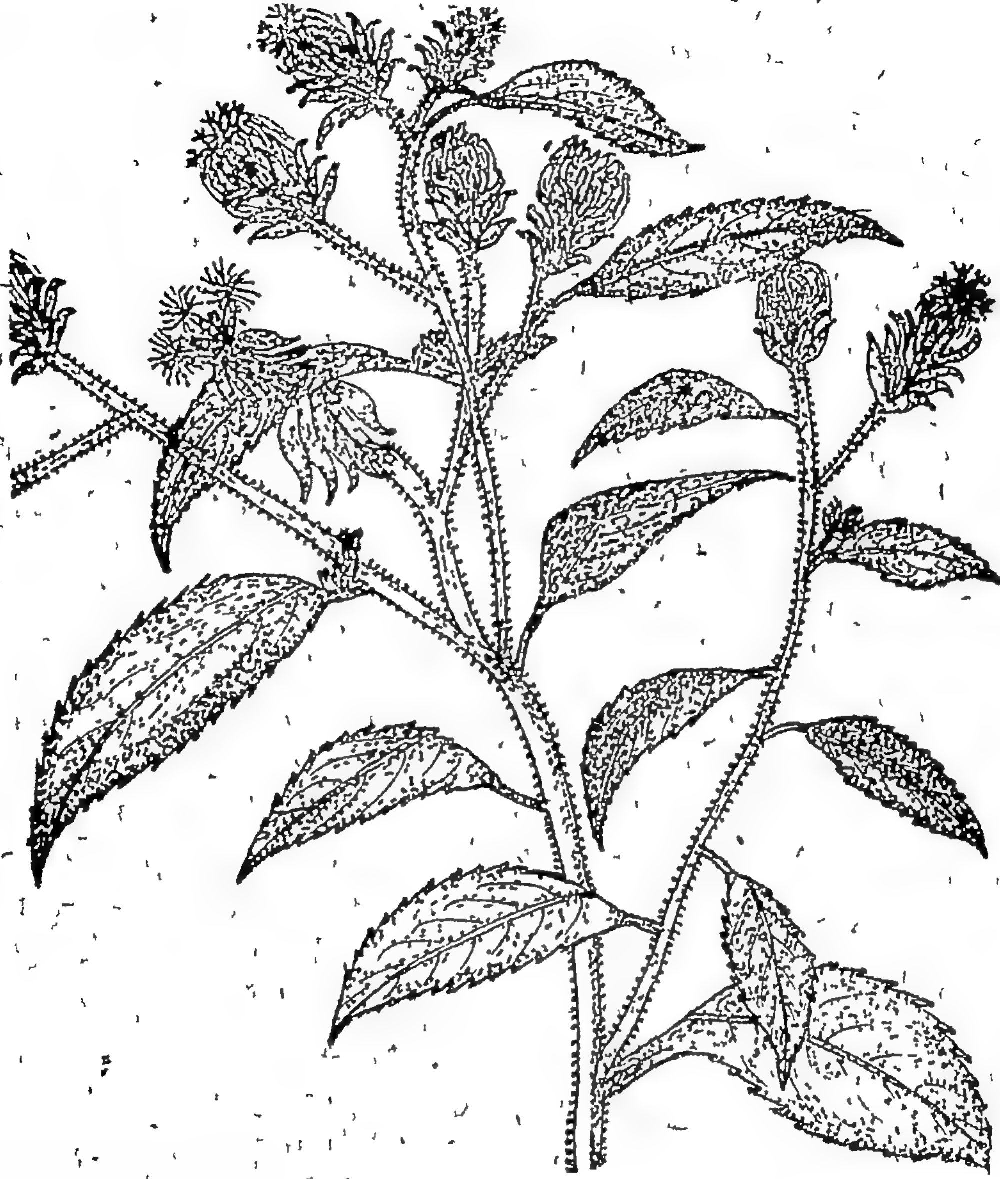
मात्रा—बीज चूर्ण–१-३ ग्राम उदरकृमि विनाशार्थ ६ ग्राम तक पत्र-स्वरस–६ मि० लि०।

अहितकर—तीक्ष्ण उष्ण होने से अधिक मात्रा किंवा निरन्तर सेवन करना हानिकारक है। इससे पित्त विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अतिमात्रा आमाशय व आतो को हानि पहुचाती है।

दर्पनाशक—कतीरा गोद (इसका हिम बनाकर सेवन करें), गुलरोगन, गोदुग्ध, आमलकी।

प्रतिनिधि—स्याह जीरा।

अरण्य जीरक और सोमराजी—अरण्य जीरक (काली,जीरी) और बाकुची दोनो भिन्न-भिन्न वनौषधियां हैं किन्तु दोनो का पर्याय सोमराजी होने से अरब वैद्य और आधुनिक ग्रन्थो के टीकाकार इन



अरण्य-जीरक [Centratherum Anthelminticum]

विभिन्न नाम : संस्कृत—अरण्य जीरक, सोमराजी। हिन्दी—काली जीरी। गुज०—काली जीरी। म०—कडूजिरें। अं०—पर्पल फ्लीबेन। लैटिन०—सेंट्राथीरम ऐन्थेलमिण्टिकम्।

प्राप्ति स्थान : हिमालय प्रदेश।

उपयोगी अङ्ग : बीज। **दोषशमन** : कफ वातशामक।

उपयोग : कण्डू, कुष्ठ, स्तन्यविकार, कृमिरोग आदि।

दोनो औषधियो को एक के स्थान पर दूसरी का प्रयोग करने की गलती कर बैठते है। यद्यपि इनके गुण सर्वथा भिन्न-भिन्न है। अरण्य जीरक के गुण यहा लिखे गये है वाकुची के गुण प्रसगानुसार लिखे जायेंगे। वाकुची अत्यन्त प्राचीन काल से (चरक सुश्रुतादि के समय से) श्वित्र एव कुष्ठ मे प्रयुक्त होने वाली औषधि है। अरण्य जीरक अर्वाचीन है। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थो मे नही मिलता। अर्वाचीन ग्रन्थो मे भी सबसे पहले धन्वन्तरि निघण्टु और राज निघण्टु मे इसका वर्णन मिलता है। सुतरा प्राचीन ग्रन्थो मे जहा सोमराजी लिखा हो वहा वाकुची ही समझना चाहिये। हा, सोमराजी अरण्य जीरक का वाचक हो सकता है किन्तु चिकित्सक को रोगाधिकार के अनुसार निर्णय करना चाहिये।

गुण-धर्म—

क्रिमिनुतिक्तरसोऽसौ तीक्ष्णोष्ण कुष्ठहा कफघ्नश्च।
विषकण्डूतिप्रशमनो ज्वरहन्तारण्यजीर स्यात्॥
—षोडशाङ्गहृदयम्

सोमराजी कटुस्तिक्ता क्रमिकुष्ठकफापह।
तीक्ष्णोष्णा विषकण्डूतिज्वर प्रशमनी च सा॥
—द्रव्य० वि० भा० २

अरण्यजीरकस्तिक्त क्रमिकुष्ठकफापह।
तीक्ष्णोष्णो विषकण्डूतिज्वर प्रशमनश्च स॥
—प्रि० नि०

वनजीर कटु शीतो व्रणहा 'राजनामके'।
'द्रव्यरत्नाकरे' प्रोक्तो स्तम्भी वातकफापहा॥
—नि० शि०

अरण्यजीरक चोष्ण तुवर कटुक मतम्।
वात कफञ्चैव विनाशयेत्॥
—नि० र०

वनजीर कटु शीतो व्रणहा क्रमिनाशन।
—ध० नि०

वाह्य प्रयोग के द्वारा का अरण्यजीरक शोथ शामक, दोषपाचक, वेदनाहर, क्रमिनाशक, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न है। इसके लेप से कफवातजन्य शोथ मिटता है, आघातजन्य शोथ एव पीडा भी इसके लेप से नष्ट होती है। श्वित्र, दद्रु, पामा, कण्डू पिडिका आदि मे भी लेप से आराम होता है। वाह्य क्रमियो को नष्ट करने मे भी यह श्रेष्ठ है। आभ्यन्तर प्रयोग से तन्तुकृमि व गण्डूपद कृमि नष्ट होते है। दीपन होने से अग्निमाद्य मे लाभप्रद है। अधिक मात्रा मे यह वामक है। रक्तशोधक होने से रक्तविकारो मे हितकारी है। कुष्ठ विनाशन हेतु कहा गया है—

तीव्रेण कुष्ठेन परीतदेहो
य. सोमराजी नियमन खादेत्।
सवत्सर कृष्णतिलद्वितीया
स सोमराजीं वपुषातिशेते॥
—भै० र०

इसके पत्र रक्तस्तम्भक कहे गये हैं। सुतरा रक्तपित्त मे हितावह है। सन्धिवात की वेदना को हरने मे उपयोगी है। यह मूत्रल होने से मूत्राघात मे एव कफवातजन्य ज्वर को एव अजीर्णजन्य ज्वर को नष्ट करता है। ज्वरघ्न होने के साथ कटुपौष्टिक होने से जीर्णज्वर मे भी यह लाभदायक है। साधारण दुर्बलता मे भी इसे काम मे लिया जा सकता है। यह गर्भाशय शोधक एव स्तन्यजनन होने से सूतिका रोगो मे एव स्तन्य विकारो मे भी व्यवहृत होता है।

पशु चिकित्सा मे विशेषत अश्वरोगो मे इसका अधिक उपयोग होता है। जागमविषो मे भी इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी प्रशस्ति मे कहा गया है—"अरण्यजीरक (कालाजीरी) एक गृहस्थ के लिये बहुत उपयोगी और निरापद है। इसलिये इसका हर घर मे रहना आवश्यक है। इससे जन्तुओ का नाश होता है। उधइ आदि जन्तुओ से कपडो की रक्षा करने के निमित्त कालीजीरी कपडो मे रखी जाती है। पट के कीडो के लिये कालाजीरी के सेवन के बाद एक जुलाब एरण्ड के तैल का देना जरूरी है। कालीजीरी जिस प्रकार अन्दरूनी इस्तेमाल मे मुफीद है उसी प्रकार बाहर प्रलेप करने से भी बहुत फायदेमन्द है।'
—आर्य औषधि

यूनानी मतानुसार—यह तीसरे दर्जे मे गरम और खुश्क है। यह कृमिनाशक और दस्तावर होने के अलावा श्वास, मूत्राशय की तकलीफ व हिचकी मे भी लाभदायक है। चर्मरोग, खुजली, आख मे चलने वाली खुजली और सूजन पर भी इसके बाहरी प्रयोग से बहुत लाभ होता है। यह बलगमी मवाद को छाँट देती है, आमाशय और आतो से हर किस्म के कीड़ो को निकाल देती है। सर्दी के दर्द को मिटाती है। बवासीर मे भी यह लाभ पहुचाती है।

आधुनिक मतानुसार—सन्याल और घोष के मतानुसार यह चम रोगो मे उपयोगी है। यह विसर्प और श्वित्र की भी खास दवा है। अन्त.प्रयोग मे यह कटु, अग्निवर्धक, और संशोधक है। यह ज्वर कफ और आन्त्रकृमि को नष्ट करने वाली है। एन्सली के अनुसार भी इसके बीज कृमिनाशक कहे गये हैं। अन्य औषधियो के साथ मे सर्पदंश मे भी यह लाभप्रद है। केस और महस्कर ने इसे विष पर निरुपयोगी कहा है।

कर्नल चोपड़ा का कहना है कि यह तेज कृमि नाशक है। इसको देने के पूर्व एव पश्चात् मल का परीक्षण करने से यह सिद्ध हुआ है कि यह कृमियो पर विशेष प्रभावी है। कई बच्चो पर इसका अनुभव किया गया। इससे कई कृमिजन्य उपद्रव दातो का पीसना, रात्रि मे अनैच्छिक मूत्रस्राव आदि शान्त होते पाये गये। इसके अतिरिक्त यह आन्त्रशूल, अजीर्ण, विसर्प, श्वित्र और अन्य चर्मरोगो को भी नष्ट करने वाली है।

सामान्य प्रयोग

बाह्य प्रयोग—

१. **गण्डमाला**—अरण्यजीरक, धतूरे के बीज और अफीम को पीसकर लेप करने से शोथशूल का निवारण होता है।

२. **कर्णमूलशोथ**—अरण्यजीरक को गोमूत्र मे पीसकर उष्ण कर लेप करें।

३. **रसग्रन्थिवृद्धि**—अरण्यजीरक को पानी मे पीसकर लेप या पुल्टिस बांधें।

४. **यूका-लिक्षा**—अरण्यजीरक को जम्बीरी नीबू या चूर्णोदक के पानी मे पीसकर लेप करने से सिर की यूका-लिक्षा (जुयें, लीखें) मर जाती हैं।

५. **श्वित्र**—अरण्यजीरक ४ भाग, हरताल १ भाग लेकर इन्हे गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करें।

६. **कण्डू**—(क) बीजो को पीसकर लेप करें।
(ख) नीम के क्वाथ के साथ मालिश करें।
(ग) बाकुची तैल मे मिलाकर मालिश करें।

७. **पक्षाघात**—पैरो के पक्षाघात में इसका लेप हितकारी है।

८. **शिरःशूल**—अरण्यजीरक तथा कलोजी को जल मे पीसकर मस्तक पर लेप करें।

९. **विसर्प**—अरण्यजीरक को आग पर जलाकर इसे तैल मे मिलाकर लेप करें।

१०. **सन्धिवात**—इसके पत्तो को पीसकर लेप करें।

११. **शोथ**—हर प्रकार के शोथ को नष्ट करने के लिए अरण्यजीरक तथा निर्विषी का लेप करना चाहिये।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

१. **कुष्ठ**—अरण्यजीरक और काले तिलो को समभाग लेकर उष्ण जल से सेवन करे।

२. **श्वित्र**—संशोधन के पश्चात् अरण्यजीरक और काले तिलो का ३-३ ग्राम चूर्ण खदिर-आमलकी कषाय से प्रात-साय दो बार सेवन करें। भोजन मे फीका दूध एव चावल देना चाहिये। यह प्रयोग एक वर्ष तक करना चाहिये।

३. **रक्तविकार**—अरण्यजीरक चूर्ण खदिरकषाय या निम्बफाण्ट से सेवन करना हितावह है।

४. **मूत्रकृच्छ्र**—अरण्यजीरक फाण्ट या जल मे पीसकर बनाया गया पेय पिलावें।

५. **सन्धिवात**—अरण्यजीरक ३ ग्राम मालकागनी के बीज का चूर्ण ३ ग्राम को उष्ण जल से सेवन करना चाहिए।

६. कामला— इसके चूर्ण को वासी पानी से लेना चाहिये।

७ गर्भिणीशोथ—अरण्यजीरक, श्वेतजीरा और कुटकी का क्वाथ वनाकर पिलाना लाभदायक है।

८. रक्तपित्त—इसके पत्तो का स्वरस रक्तपित्त को मिटाता है।

९. अर्श—(क) ३ ग्राम अरण्यजीरक मे आधे को भूनकर आधे को कच्चा पीसकर प्रात खावे और दोनो समय साठी चावल का भात व दही सेवन करें। इस प्रकार कुछ दिन तक सेवन करने से खूनी और वादी ववासीर नष्ट होते है।

(ख) अरण्यजीरक चूर्ण २ ग्राम और शुद्ध सुहागा ५०० मि० ग्रा० दूध के साथ सेवन करना हितकारी है।

१०. कृमिरोग—(क) इसके एव विडङ्ग के चूर्ण को दे।

(ख) इसके चूर्ण को मधु के साथ देकर विरेचन दे।

११. स्तन्यन्यूनता—इसके चूर्ण को दुग्ध के साथ देने से प्रसूता के स्तनो से दूध उतरने लगता है।

१२. अजीर्ण—इसे घी मे भूनकर कवोष्ण जल से देने से अजीर्ण (कफज), आध्मान, उदरशूल आदि पाचन-सस्थान के रोग मिटते हैं।

१३. कास—अरण्यजीरक, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र को मधु के साथ सेवन करने से कफजन्य कास शान्त होता है।

१४. वातश्लेष्मिक ज्वर—अरण्यजीरक चूर्ण को नीम की छाल के फाण्ट के साथ सेवन करना हितावह है।

१५. सूतिकाज्वर—इसका चूर्ण दशमूल क्वाथ से दें।

१६. जीर्णज्वर—(क) ३ ग्राम अरण्यजीरक को किसी मृत्पात्र मे आग पर भूनें, जव वीज फूटने लगें तव उसमे १५० मि० लि० पानी डालकर पकने से चौथाई शेष रहने पर उतार छानकर मधु मिलाकर पिलावें।

(ख) इसका यवकुट चूर्ण ६ ग्राम, नीमपत्र एक मुट्ठी दोनो को मृत्पात्र मे भिगोकर प्रात. मल छानकर पिलावे।

विविध कल्पनायें—

१. चूर्ण—(क) अरण्य जीरक, डीकामाली, कुटकी, चिरायता, दुधवच और विड्नमक समभाग लेकर चूर्ण कर रख लें। प्रात -साय १-३ ग्राम तक सुखोष्ण जल से लेते रहने से जीर्ण ज्वर नष्ट होता है।

—धन्व० वनौ० विशे०

(ख) अरण्य जीरक के एक भाग वीजो को भून लें और एक भाग विना भुना लेकर दोनो को एकत्र मिला महीन चूर्ण करें। फिर उसमे एक भाग सोठ, आधा भाग काला नमक तथा चौथाई भाग शखभस्म मिला खूब खरल कर रखें। १-३ ग्राम प्रात -साय, भोजन के पश्चात् सुखोष्ण जल से लेने पर अपान की शुद्धि होती है। ऐंठनयुक्त पतले दस्त वन्द होकर भूख लगने-लगती है। किन्तु प्रवाहिका मे कोष्ठशुद्धि के पश्चात् ही इसका सेवन गुणकारी होता है।

—आयु० विश्वकोष

२. हिमकषाय—अरण्य जीरक १२ ग्राम, काली मिर्च ६०० मि० ग्रा० इन दोनो को रात के समय जल मे भिगो दें। प्रात. पीस-छानकर पिला दें। इस प्रकार एक सप्ताह तक कराते रहने से वात-कफ जन्य चर्मरोग, खुजली, पामा, पिचर्चिका तथा किटिङ्भरोग नष्ट होते हैं। पुराने चर्मरोगो मे प्रथम रोगी को सशोधन कराना आवश्यक है।

—आयु० द्रव्यगुण विज्ञानम्

३. मरहम—अरण्य जीरक ६० ग्राम, सत्यानाशी के वीज ६० ग्राम, अजवाइन अधजली ३० ग्राम, पीलीकोडी जली हुई ३० ग्राम, तिल्ली का तैल ५०० ग्राम। तैल को कासे के वर्तन मे डालकर शीतल जल से खूब मथें जिससे तैल गाढ़ा व सफेद हो जाय। तैल मे वार-वार पानी डालें और मलकर

पानी को अलग करना चाहिये। इस प्रकार सौ बार धोये तैल मे उक्त दवाओ का कपड़छन चूर्ण मिलाकर तीन-चार दिन धूप मे रखें। दिन मे एक बार हिलाते रहें जिससे शेष रहा पानी निकल जाय। यह मलहम सर्व प्रकार के व्रण, फोडे, विसर्प, खुजली आदि में उपयोगी है। —धन्व० नव० ५१

पेटेण्ट प्रयोगों में अरण्य जीरक—

कुष्ठ रोगोपयोगी "गलित कुष्ठारि" (रुद्रदेव) का यह प्रमुख घटक द्रव्य है। "क्लीयर कैपसूल" (वान) और 'कृमिनि सीरप' (चरक) मे भी यह डाली जाती है। ... ही प्रयोग क्रमिरोगहर हैं। चरक फार्मा० की हो "दीपन" टैबलेट मे भी यह है। यह टैब० दीपन-पाचन एव ग्राही है। इसी फार्मेसी द्वारा निर्मित "लुनारेक्स टैब०" मे भी टंकण मेथी आदि के साथ अरण्य जीरक है। यह अनियमित मासिकधर्म को नियमित करने वाला प्रयोग है।

अनुभूत प्रयोग—

१. **मूत्रकृच्छ्रान्तक चूर्ण**—जीरा सफेद, यवक्षार, शीतलचीनी, दाना इलायची बडी, कलमी शोरा, रेवन्द चीनी प्रत्येक १२-१२ ग्राम लेकर कूट-पीस कपडछन कर रख लें।

१ ग्राम से ३ ग्राम तक दूध की लस्सी या ताजे जल से दिन मे ३-४ बार दें। इसका प्रयोग मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह, पूयमेह में अति लाभदायक है।

—वैद्य गोवर्धनदास चागलानी
(सुधानिधि मई ७९)

२. **जीरकसुधा**—श्वेत जीरक १० ग्राम, बुझा हुआ कलई का गीला चूना ३ ग्राम। दोनो को हाथ पर रखकर अगूठे से तम्बाकू की तरह तब तक मलें जब तक जीरे का रङ्ग हल्दी की तरह पीला होकर तीव्र उडनशील गैस सी बन जावें। इसे तुरन्त सिल-बट्टे से या खरल मे वारीक पीसकर रोगी को खिलावें और ऊपर से अपामार्ग पत्र स्वरस २५ ग्राम पिलावें इस प्रकार १५-२० मिनट पर शूलशक्ति पर्यन्त तक देते रहें। मात्रा का निर्णय वय लिङ्ग आदि के अनुसार न्यूनाधिक कर सकते हैं। छोटे बच्चो को मधु के साथ दे सकते हैं। यह भयानक आमाशय शूल आन्त्रिक शूल आदि मे उपयोगी है।

—डा० श्री ओमप्रकाश जी पाठक
(धन्व० अनुभवांक)

३. **उदर शूलान्तक**—सफेद जीरा ५० ग्राम, स्याह जीरा ५० ग्राम, डीकामाली ५० ग्राम, धनिया ५० ग्राम, छोटी हरड ५० ग्राम, सनाय ५० ग्राम, वायविडग २५ ग्राम, सेंधा नमक ५० ग्राम, सोठ २५ ग्राम। सबके बराबर चीनी डालें उपरोक्त सभी औषधियो का वारीक चूर्ण कर छान चीनी मिला रख लेवें।

मात्रा—२ से ३ ग्राम जल से देने पर उदर शूल मे लाभ होता है।

—श्री शोभालाल हीरालाल जी शास्त्री
(धन्व० सफलसिद्ध प्रयोगाङ्क)

४. **कण्डूहर**—स्याह जीरा २ ग्राम, सफेद जीरा ६ ग्राम, सूखा आवला १२ ग्राम, कचूर २४ ग्राम, बाकुची ३६ ग्राम। सबको कूट-छानकर रात्रि मे गोमूत्र मे पीसकर धर देवें। सवेरे लगाने से एक घण्टे लगाकर स्नान करने से छाले वाली और सूखी खाज नष्ट होती है। —प० श्री भागीरथ जी स्वामी
(आत्मसर्वस्व)

५. **स्वादिष्ट चूर्ण**—जीरा भुना हुआ, काली मिर्च, सोंठ, काला नमक, नौसादर, टाटरी (निम्बू का सत्) २४-२४ ग्राम, मिश्री बराबर १४४ ग्राम।

प्रयोग-विधि—दिन मे ३-४ वटी गर्म जल से या ताजे जल से लीजिये या मुह में रखकर चूसिये।

रोग निर्देश—अजीर्ण, सिर का भारीपन, आध्मान (अफरा) उदर-विकार दूर कर पाचन-क्रिया को सबल बनाती है। गरिष्ट भोजन को शीघ्र पचा देती है। भूख न लगना, शौच ठीक से न आना, पेट मे गुडगुडाहट, पीडा तनाव के लिये यह औषधि बडी लाभदायक है। —वैद्य श्री विजयसिंह जागडा
(छ० स० सिं० प्र०)

६. स्वादिष्ट पाचक चूर्ण—जीरा ५० ग्राम, मिर्च ५० ग्राम, बडी इलायची दाना १० ग्राम, नौसादर ५० ग्राम, जवाक्षार ५० ग्राम, काला नमक २०० ग्राम, नीवू सत् २५ ग्राम।

निर्माण विधि—सभी दवा चूर्ण कर महीन पीस मजवूत डाट वाली शीशी मर रख लें।

मात्रा—१ ग्राम।

गुण—भयकर उदरशूल, अपचन, वायुदोष तथा पाचन-क्रिया को ठीक रखने वाला स्वादिष्ट पाचक।

—श्रीकृष्णमोहन मिश्र
(ध० स० सि० प्र०)

७. मूत्रकृच्छ्रहर प्रयोग—जीरा सफेद, कलमी सोरा, यवक्षार, रेवाचीनी प्रत्येक १२ ग्राम और मिश्री ४८ ग्राम। सव औषधियो को कूट-छानकर वलावल देखकर १ ग्राम से ३ ग्राम तक २-२ घन्टे, ४-४ घन्टे या ६-६ घन्टे के अन्तर से दूध पानी की लस्सी या ठडे पानी से देते रहे। अधिक दिन की वीमारी हो तव सुवह-शाम ही देना ठीक रहेगा।

गुण—इससे दस्त और पिशाव खुलकर आने लगते हैं। इस योग से अनेको कष्ट-साध्य रोगी भी रोगमुक्त हुये हैं। —वैद्य प० श्रीरामदत्त शर्मा
(ध० गु० सि० प्र० भा० १)

८. मलेरिया नाशक प्रयोग—स्याह जीरा १२ ग्राम, काली मिर्च १२ ग्राम, मुसव्वर १२ ग्राम, सोठ १२ ग्राम, वकायन फल १२ ग्राम, करजफल की मिंगी १२ ग्राम। इन सवको जल के साथ पीस कर चने के वरावर गोलिया वनाली जावें। १-४ गोली दिन मे ३ वार गरम जल के साथ देने से शीतपूर्वक आने वाला ताप नष्ट होता है। इन गोलियो को वुखार आने के पूर्व देने से वुखार नही आता है तथा चढ़ा हुआ वुखार उतर जाता है।

—डा० श्री जहानसिंह चौहान
(सुधानिधि अगस्त ७७)

९. दन्त मंजन—भुना श्वेत जीरा १२ ग्राम, रूमीमस्तगी १२ ग्राम, तालीसपत्र १२ ग्राम सोठ १२ ग्राम, छोटी इलायची का दाना १२ ग्राम, सेंधा नमक १२ ग्राम, फिटकरी ६ ग्राम, दालचीनी ६ ग्राम, भुना तूतिया ३ ग्राम और कपूर ३ ग्राम। इन सवका महीन चूर्ण कर प्रतिदिन इस मजन को दातो पर मलने से मसूढे दृढ होते हैं और रक्त का निकलना वन्द हो जाता है। —आचार्य प० श्री महावीरप्रसाद
(प्रयोग पुष्पावली)

१०. ग्राही पाचक प्रयोग—जीरा सफेद, सौंफ, वडी इलायची, सोठ, पोस्त डोडे, छोटी हरड प्रत्येक २०-२० ग्राम लें। इनमे पहले पोस्त के डोडे घी मे तवे पर भून लें फिर अन्य वस्तुओ को १०-१० ग्राम भूनें और वची वस्तुओ को भुनी वस्तुओ मे मिलाकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण की मात्रा १॥ ग्राम से ३ ग्राम तक है। इसे सोठ के क्वाथ से लेना चाहिये।

यह चूर्ण दीपन, पाचन, ग्राही है तथा आमावस्था मे विशेष हितकारी है। अतिसार, प्रवाहिका, (शूलयुक्त) इन सव रोगो मे अत्यन्त हितकर हैं।

—वैद्य श्री दाताराम शर्मा
(सुधानिधि अप्रैल ८७)

११ नेत्रगत रक्तिमा पर जीरक का उपयोग—एक रुग्णा की आखें आयी। एक आख तो लाल हो रही थी और दूसरी सफेद थी। रुग्णा ने वताया कि यह आंख वरावर सात-दिन से लाल हो रही है। जिसने जैसा वताया वैसा ही उपचार मैंने किया, किन्तु अभी तक कोई भी लाभ नही है।

इस समय मुझे अप-वीता अनुभव स्मरण हो आया। मैंने सोचा कि इसे प्रयोग वतला दिया जाय तो श्रद्धा न होगी। इसलिये ६० मि० ग्राम गुलावी फिटकरी का वारीक चूर्ण, जो शीशी मे एक विभिन्न नाम के लेविल मे थी, ६० मि० ग्राम दिया गया। और वतलाया कि यह वहुत ही तेज दवा है और इसमे नेत्रो का दर्द एव लाली वहुत जल्दी ठीक हो जाते हैं।

तुम इस दवा को १२५ ग्राम पानी मे डाल देना। फिर एक जीरे की पोटली बनाकर इस पानी मे डुवो-

डुबोकर आंखो पर फेरना (जीरे की पोटली मे साफ कपडे मे ३ ग्राम जीरा रखकर बनानी चाहिये।

इस उपाय से दूसरे ही दिन उसका दर्द कम हो गया और आखो की लाली भी छट गयी। तीसरे दिन तो विल्कुल आराम हो गया। प्रयोग सरल है और सत्वर लाभदर्शक है। सभी व्यक्ति इससे लाभ उठा सकते हैं। फिटकरी तो इसमे अपना प्रभाव, जमाने के लिये मात्र (वैद्य पुडिया) है, काम की चीज एकमात्र जीरा है। सैकडों बार का अनुभूत प्रयोग है।

—वैद्य प्रकाशवती जैन
(धन्व० सिद्ध चिकि०)

१२. बाह्याभ्यन्तरोपयोगी प्रयोग—स्याहजीरा, ब्रह्मदण्डी, मिरच और पिप्पली इनका लेप करने मे फोडो को आराम मिलता है और चावलो के पानी के साथ इस औषध को पीने से भी फोडा अच्छा होता है।

—श्री शिवकुमार पोतदार
(सुजनप्रकाश)

१३. अमीरी दन्त मंजन—सफेद जीरा, कालीमिर्च, नागरमोथा, सेलखडी, धनिया, मस्तङ्गी, सेंधानमक और सोठ इनमे एक नागरमोथा १५ ग्राम लेवें, शेष सभी औषधिया २०-२० ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इनमे जीरा, धनिया सोठ और सेलखडी को आग पर रख भूनकर ही कूटें-पीसें। इन्हे भूनने पर इनका चूर्ण सरलता से हो जाता है। इस मजन के प्रयोग से दात बहुत सुन्दर तथा मजबूत हो जाते हैं।

—श्री देवीचन्द्र बेरी

१४. उदरशूलहर प्रयोग—कालाजीरा, आधा किलो लेकर उसे आठ प्रहर तक सिरका से भिगो देवें, फिर इसको घी मे भून लेवें। पीछे सोठ, पोदीना, सुरदावे ये तीन औषधिया ६०-६० ग्राम, सेंधानमक ३६ ग्राम, पीपल १२५ ग्राम, मधु ५०० ग्राम लेवें। मधु को अग्नि पर चढाकर कुछ गर्म कर ये सम्पूर्ण दवा कूट-कपडछन कर उसमे मिला देवे। ८ ग्राम प्रमाण इस औषधि को गरम पानी के साथ खाने से वातजन्य एव कफजन्य उदरशूल का शमन होता है।

—स्वामी दादूपथी वैद्य माधवदास
(औषधि प्रकाश)

१५. ज्वरसंहारक प्रयोग—जीरे मे गिलोय और गूमा के रस की ७-७ भावना देकर, छायाशुष्क कर पीस-छानकर शीशी मे रखें।

मात्रा—३ ग्राम, शक्कर ६ ग्राम के साथ फाककर ऊपर से ३ अगुल गिलोय को ६० मि० लि० पानी मे पीस छानकर, गरम कर १२ ग्राम शक्कर मिला पीवें। दिन मे तीन बार ऐसा करने से गरमी का बुखार (पित्तज्वर नष्ट होता है। जीर्णज्वर मे इस दवा के बाद ऊपर से बकरी का दूध पीवें तो वह भी अच्छा हो जाता है। —भा० गृह चिकित्सा

१६. दन्तरोगहर प्रयोग—सफेदजीरा, पीपरी, सेंधानमक समभाग चूर्ण कर सरसो के तैल के साथ दातून से मलें। इससे मसूडो से रक्त जाना मिटता है और मुख मे दुर्गन्धि तथा दातो पर मैल जमना आदि दूर होते हैं। —श्री गिरजादत्त पाठक

(धन्व० मार्च ५५)

१७. पेचिस पर यूनानी प्रयोग—कालाजीरा, वेखअजवार, गुले अनार, रेशाखत्मी, खवीरन, हब्बुलास, रूमीमस्तङ्गी, सौंफ प्रत्येक ३-३ ग्राम। बड़ी इलायची १ दाना, पोस्त १॥ ग्राम, भुसी ईसबगोल १॥ ग्राम, गुलकन्द १८ ग्राम।

रेशाखत्मी को कूटकर ३० ग्राम ताजा जल मे भिगो दें पश्चात् अन्य औषधियों को कूडी मे डालकर खूब घोटें उसी मे रेशाखत्मी का लुआब जो पानी मे दबा है मिला दें और ८० या १२० ग्राम पानी मिलाकर घोटकर छान ले। इसी ८० या १२० ग्राम पानी को ईसबगोल की भुसी फकाकर ऊपर से पिला दें। इस पानी को २-२ घण्टे पश्चात् पिलायें। रक्तप्रवाह पेचिस को शीघ्र ही लाभ हो जायेगा।

—वैद्यभूषण श्री श्यामसुन्दरलाल शर्मा
(धन्व० जन० ५०)

१८. बंध्यत्व नाशक योग—सफेदजीरे का चूर्ण ६० ग्राम, शिवलिङ्गी के बीजो का चूर्ण ६० ग्राम, मयूरशिखा की जड का चूर्ण ६० ग्राम, पारसपीपर के बीजो का चूर्ण ६० ग्राम—मिश्रण तैयार कर लें। ६ ग्राम नित्य सवेरे ऋतुदर्शन से १६ दिन तक प्रति-

माह धारोष्ण गोदुग्ध से सेवन करें। गर्भ धारण अवश्य होगा। गर्भ धारण होते ही सेवन वन्द कर दे। —प्राणाचार्य प० श्री हर्षुल मिश्र (सुधानिधि जन० ८४)

१६ **नवरत्न मंजन**—कालीजीरी (वनजीरा), आमाहल्दी पिसी, फिटकरी सफेद, अकरकरा, छोटी पीपल, हरड का वक्कल, सेंधानमक, अखरोट की छाल—सव चीजें समभाग अलग-अलग पीसकर वाद मे मिला देना चाहिए। इसे नित्य दातो पर मलने से मसूडो का वादीपन का दर्द और दात का हिलना, दात से खून गिरना और पानी दात मे लगना (टीस) आदि सव दातो के रोग नष्ट होकर दात चमकीले वनते हैं। —श्री रामदयाल वुद्धसेन गुप्ता (धन्व० दिस० ४६)

२०. **पूयमेहहर प्रयोग**—जीरा ४ भाग, खूनखरावा व गुलावपुष्प की पंखुडी २-२ भाग तथा कलमीसोरा व धनिया ५-५ भाग लेकर सवको महीन चूर्ण कर लें। १-१॥ ग्राम की मात्रा मे जल के साथ देने से सुजाक मे लाभ होता है। —श्री नाडकर्णी

२१. **कृमिहर प्रयोग**—पेट के केंचुओ (गण्डूपद-कृमि) को मारने के लिए अरण्यजीरक और विडङ्ग को वरावर लेकर चूर्ण कर लें। इसे ८ ग्राम तक की मात्रा मे काजी के या खट्टे तक्र के साथ अथवा मधु के साथ सायकाल के समय दो दिन तक दें। प्रातःकाल विरेचन के लिये एरण्डतैल दे दें। वालको को इसकी कम मात्रा देनी चाहिये। वच्चो के लिये ४ ग्राम अरण्यजीरक का फाण्ट वनाकर देने से भी उदरकृमि मर जाते हैं। इससे मूत्रकृमि या चुन्ने कीडे भी नष्ट होते हैं और वच्चो का विस्तर पर सोते-सोते पेशाव कर देना या दांत किटकिटाना भी वन्द हो जाता है। —वैद्य श्री निरजनदेव आयुर्वेदालकार (आयु० द्रव्यगुण विज्ञानम्)

(२२) **कर्णमूलशोथहर प्रयोग**—अरण्ड जीरक २४ ग्राम, सोठ १२ ग्राम, कपूर ३ ग्राम, कुचला १ ग्राम, सिङ्गी मोहरा १ ग्राम को जल मे पीसकर आग पर पका कर लेप के समान तैयार होने पर मन्दोष्ण लेप करने से कर्णमूल शोथ (Mumps) तथा उसके आसपास की सूजन वहुत शीघ्र मिट जाती है।

उक्त प्रलेप हर प्रकार की विषैली सूजन में अकसीर का काम करता है। —श्री उदयलाल महात्मा (धन्व० नव० ५१)

(२३) **गर्भवती के उदरशूल वस्तिशूल पर उपयोगी प्रयोग**—कालीजीरी (अरण्य जीरक) ३० ग्राम, सोठ ६० ग्राम, एरण्डफल मज्जा (रेंडी का गूदा) सवको औटाकर पीसकर गुनगुना कर दर्द वाले स्थान पर लेप करें। —श्री स्वामी परमानन्द (गुणो की पिटारी)

(२४) **आध्मानहर प्रयोग**—जीरा, सोठ, हींग (शुद्ध), सेंधा नमक, अजवाइन, काला नमक, ढीकामाली—इन सवको समान मात्रा मे लेना चाहिये। इनका मिश्रित चूर्ण १ किलो लेकर उसमें आकडे के फूल की चौकडिया नग १६० लेकर सुखाकर इनका चूर्ण वनाकर उसमे मिलावें। फिर शीशी मे भरकर रख लेवें। जिनको अफरा, गैस हो, अपचन रहता हो, उसे एक चम्मच चूर्ण (२-३ ग्राम) पानी के साथ फका देना चाहिये। इससे अपानवायु का खुलकर निःसरण हो जाता है। —कवि० श्री राजेन्द्रप्रकाश आ० भटनागर (सचित्र आयुर्वेद वनौ० विशे०)

(२५) **वातशमन चूर्ण**—मेंथी, कालीजीरी और कालानमक समान लेकर चूर्ण तैयार करलें। ५-७ग्राम चूर्ण जल से सेवन करने पर वायु का दर्द शीघ्र शान्त हो जाता है। —श्री गोपीनाथ शर्मा आ० भिषक् (धन्व० कश्चित प्रत्न भाग)

(२६) **दुग्धवर्धक प्रयोग**—जीरा सफेद (विना बुझा), बबूल का गोंद २०-२० ग्राम, साठी चावल १०० ग्राम, गाय का दूध २ किलो, ईख का रस १ किलो, गाय का घी २०० ग्राम, मिश्री १ किलो। दूध जा खोवा वनाकर घी मे भून लें, वाद में सभी चीजें डालकर ४०-४० ग्राम के मोदक वनालें। इसमें से १-१ लड्डू प्रातः-सायं दुग्ध के साथ सेवन कराने से दुग्ध की वृद्धि हो जाती है —श्री गोपालशरण गर्ग (प्रयोग सग्रह भाग ३)

ज्योतिष्मती

(Celastrus Panniculatus)

ये याता किमपि प्रधार्य मनसा पूर्वं गता एव ते
ये तिष्ठन्ति भवन्तु तेऽपि गमने काम प्रकामोद्यमा ।
एका केवलमर्थ साधनविधौ सेना शतेभ्योऽधिका
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ॥
—मुद्राराक्षस

उक्त श्लोक महामति चाणक्य की गर्वोक्ति का है। वे कहते हैं कि कई सैनिक हमारी सेना से चले गये, भले ही जो शेष रहे हैं वे भी चले जाय किन्तु नन्द वश को समूल नष्ट करने में तल्लीन मेरी यह बुद्धि नही जानी चाहिये अर्थात्, यदि यह मेरी बुद्धि इसी प्रकार काम करती रही तो कितना ही सेन्यवल तैयार कर शत्रु को परास्त करने मे अवश्य सक्षम होगी। जिनको अपनी बुद्धि पर भरोसा होता है, वे अवश्य इसी प्रकार कह सकते हैं।

ऊह, अध्यवसाय, स्मृति, धृति आदि भावविशेष इसी वुद्धि के कार्यभेद हैं। वुद्धि की विशेष शक्ति को मेधा कहा जाता है। कई मनुष्य जन्म से ही वुद्धिमान होते हैं किन्तु कई मन्दवुद्धि। वस्तुत बुद्धि को कुशाग्र करने के लिए शास्त्रो मे कई विधान वर्णित हैं। चतुर्वेदों में वुद्धिवर्धक मन्त्रो का उल्लेख है। ज्योति शास्त्र मे बुधवृहस्पति की पूजा करने के लिए कहा गया है। कहते हैं कि श्रीहर्ष, दण्डि आदि कवियो के माता-पिता ने कविपुत्र कामेष्टि प्रक्रिया का पूर्ण निर्वाह किया था। आयुर्वेद मे भी ऐसे वुद्धिवर्धक द्रव्यो का वर्णन मिलता है जिनके युक्तिपूर्वक प्रयोगो से वुद्धि को तीव्र वनाया जा सकता है। उन वहुत से द्रव्यो मे से एक विशेष द्रव्य है—ज्योतिष्मती (मालकांगनी)। हम भी सद्‌वुद्धि पाने के लिए इसकी वन्दना करते हैं—

वन्दन तेरा अभिनन्दन है
तव यश की कैसे कथा कहे।
सद्‌वुद्धि हमें तू दे देना
फिर पास न कोई व्यथा रहे ॥
शास्त्रो के अनुशीलन मे शुभ
निर्बाध हमारी नित गति हो।
श्री राधावल्लभ चरणो मे
हे हेमलते बस नित रति हो ॥

भगवान् चरक एव महर्षि सुश्रुत ने इसे शिरोविरेचन गण के अन्तर्गत कहा है। शिरोविरेचन का महत्व वतलाते हुए चरकचतुरान चक्रपाणिदत्त ने कहा है कि—जिस प्रकार मूल के अविकृत होने से वृक्ष सम्यक् बढता है उसी प्रकार शिर के निरोग रहने से देह का भी सम्यक् विकास होता है। सुतरां अन्य कर्मो की अपेक्षा पूर्व मे शिरोविरेचन का ही वर्णन किया गया है। चरकसहिता के प्रथम अध्याय मे जिनका मूल उपयोगी है, उन सोलह औषधियो मे ज्योतिष्मती को भी कहा है (मूल प्रशस्ततमं यासा ता मूलिन्य)। चरकरहस्य प्रकाशिकाव्याख्या के लेखक वैद्य श्री मदनगोपाल ने इस प्रकरण की व्याख्या मे लिखा है कि "मालकागनी के वीज वाजार मे मिलते हैं जिनसे तैल निकलता है। यह वामक व रेचक है। चरक ने इसे यहा शिरोविरेचन के लिये ग्रहण किया है। मालकागनी का मूल वाजार मे नही मिलता अत इसका प्रचलन नही है। अपामार्ग तण्डुलीय अध्याय मे कहा गया है—"ज्योतिष्मतीं नागर च दद्याच्छीर्षविरेचने।" इसी प्रकार मात्राशितीय अध्याय मे—

श्वेता ज्योतिष्मती चैव हरितालं मन शिला।
गन्धाश्चागुरुपत्राद्या धूम. शीर्षविरेचनम् ॥
—चरक० सू० ५/२६

चिकित्सा स्थान के स्नेहोपयोगिक अध्याय मे महर्षि सुश्रुत ने वर्णन किया है—"विडङ्ग खरमजरी मधुशिग्रु सूर्यवल्लीपीलु सिद्धार्थक ज्योतिष्मतीस्नेहा शिरो विरेचयन्ति।" इसी प्रकार भेलसहिता एव अष्टागसग्रह मे भी इसे शिरोविरेचन कहा है। चरकानुसार वृद्ध वाग्भट ने भी ज्योतिष्मती के मूल को ही लिया है—"कुष्ठवचाभार्ङ्गी श्वेताकणिहिनागदती-ज्योतिष्मतीगवा क्षीवयस्थावृश्चिकालीविवीकरजमूलानि ' ' शिरोविरेचनोपयोगीनि।"

शिरोविरेचन के अतिरिक्त महर्षि सुश्रुत ने इसे अधोभागहर भी कहा है—"त्रिवृत् ' ज्योतिष्मती बेल्वधोभागहराणि।" इनमे ज्योतिष्मती के क्षीर को अधोभाग हर कहा गया है—"महावृक्ष सप्तपर्ण ज्योतिष्मती क्षीराणि ' ' विरेचनोपयोगीनि।"
—अष्टागसग्रह।

इसका कुल ज्योतिष्मतीकुल (सिलेस्ट्रेसी) है।

नाम—

संस्कृत—ज्योतिष्मती, पारावतपदी, काकाण्डकी, कटभीका, वेगा, कगुनी, पीततैला आदि—

ज्योतिष्मती स्वर्णलता ज्योतिष्काह्वा च दुर्मदा।
कणी कगुनी पीता पीततैला मतिप्रिया॥
—अभिधान रत्नमाला ४/५३

हिन्दी—मालकागनी, मालकगुनी, मालकागी।
गुजराती—मालकांगनी।
मराठी—मालकांगोनी।
बगला—लताफटकी, वनउच्छे।
पजाबी—मालकागनी, सख।
राजस्थानी—मालकागणी।
तामिल—वालुलवै।
मलयालम—पालुरुवम्।
तेलगु—वावुरुगे।
अरबी—हैजा, तैलाफुन।
अंग्रेजी—स्टाफ ट्री (Staff Tree)।
लेटिन—सिलेस्ट्रस पैनिकुलेटस (Celastrus Panniculatus)।

उत्पत्तिस्थान—यह श्रीलका, मलयद्वीप, फिलिपाइन के अतिरिक्त भारत मे विशेषत पजाब कश्मीर आदि पार्वत्य प्रदेशो मे ३००० फीट की ऊचाई तक उत्पन्न होती है। राजस्थान की अरावली पर्वत श्रेणियो मे यह प्रचुर मात्रा मे होती है। कालसी, देहरादून, सहारनपुर के जगलो की यह मुख्य लता है।

रासायनिक संघटन—बीजो मे ३० प्रतिशत गाढ़ा रक्ताभ पीत तिक्त एव गन्धयुक्त तैल, एक तिक्त रालयुक्त तत्व, कषाय द्रव्य तथा ५ प्रतिशत क्षार होता है। बीजो से जो क्षाराभ प्राप्त किये गये है उनमे एक सिलेस्ट्रीन और दूसरा पैनिकुलेटीन है।

वानस्पतिक परिचय—

ज्योतिष्मती नाम लता पीता पीतफलोज्ज्वला।
आसाढे पूर्वपक्षे स्याद् गृहीत्वा बीजमुत्तमम्॥
—र० र० स० उ० ४६

सितबिन्दुकित काण्ड लता प्रसृमरा भृशम्।
पीताभहरित पुष्पं फल वृत्त नताकृति॥
—प्रि० नि० २/७१

इसकी आरोहिणी सुविस्तृत काण्ठमय लता होती जिसकी शाखायें झुकी हुई एव नवीन शाखाओ पर श्वेत बिन्दु होते हैं। पत्र आकार और कद दोनो मे बडी भिन्नता रखती है। वे प्राय. २-४ इच लम्बे, १॥-३ इच चौड़े ऊपर से लट्वाकार, अग्र भाग पर यकायक नुकीले तथा गोल दातो से युक्त धार वाले होते हैं। फल—व्यास मे ४-५ इच प्राय. त्रिकोष्ठी और पीतवर्ण होते हैं। पक्व फलो के गुच्छे आ जाने पर लता बहुत सुन्दर प्रतीत होती है। ये फल मटर के बराबर होते हैं। पुष्पागम ग्रीष्म ऋतु मे होता है (ये गुच्छों मे लगते हैं) और शरद् ऋतु मे फल लगते व पकते है। हरित अवस्था मे फलो पर एक दृढ आवरण रहता है। इनमे बीज बन्द रहता है। सूखते ही फल का आवरण अपने आप फट जाता है। फल के मूल पर वृत लगा होता है जिस पर तीन उभार होते हैं। फलावरण सूखने पर उथला हो जाता है। आवरण के नीचे आर्द्रावस्था मे स्निग्ध गूदा होता है। इसके ही कारण सब बीज आपस मे सयुक्त रहते है।



ज्योतिष्मती [Celastrus Panniculatus]

विभिन्न नाम : सं०—ज्योतिष्मती, पारावतपदी । हि०—मालकागनी । गु०—मालकागनी । म०—मालकागोणी । अ०—स्टाफ ट्री । लै०—सिलेट्रस पेनिकुलेटम ।

प्राप्ति स्थान : पजाब, कश्मीर आदि ।

उपयोगी अङ्ग : बीज एव तैल । **दोषशमन** : वातकफशामक ।

रोगोपयोग : मस्तिष्करोग, नाडीदौर्बल्य, ध्वजभग, वातविकार आदि ।

प्रत्येक फल में ऐसे ६ बीज होते हैं। कभी-कभी एक भाग में २ के बदले ३ बीज होते हैं जिनका आकार त्रिकोणाकार नव होता है।

रस—तिक्त, कटु।

अभिधान रत्नमाला के लेखक ने इसका वर्णन तिक्त द्रव्य स्कन्ध में किया है।

गुण—तीक्ष्ण, स्निग्ध।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

प्रभाव—मेध्य।

मेध्य द्रव्यों की क्रिया प्रभावजन्य होती है, क्योंकि मेध्य द्रव्यों में कुछ शीतवीर्य, मधुर रस एवं मधुर विपाक द्रव्य होते हैं और कुछ उष्णवीर्य और तिक्त रस द्रव्य होते हैं। मुतरां समान रस, विपाक एवं वीर्य वाले द्रव्यों की अपेक्षा इन द्रव्यों में यह विशिष्ट कर्म होता है। अतः यह प्रभाव जनित होता है—

विशेषः कर्मणा चैव प्रभावस्तस्य स स्मृतः।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक।

दोष कर्म—यह स्निग्ध एवं उष्ण होने से वात का तथा तिक्त कटु होने से कफ का शमन करती है।

प्रयोज्य अङ्ग—पञ्चाङ्ग, विशेषतः बीज एवं तैल

मात्रा—बीज-१-२ ग्राम, तैल-५-१५ बूंद।

हानिकर—दो-तीन ग्राम खाने से वमन-विरेचन होने लगते हैं। यह उष्णप्रकृतिक व्यक्तियों को हानिकर है।

दर्पनाशक—इसके अहितकर प्रभावों के निवारण के लिये गोदुग्ध और गोघृत का सेवन कराया जाता है।

प्रतिनिधि—लवंग तैल।

अपमिश्रण—इसमें मिलावट की कम ही सम्भावना रहती है फिर भी हरमल और सुदाब के बीज क्वचित् मिले पाये जाते हैं।

परीक्षा—पूर्ववर्णित फल की बनावट से इसे पृथक् किया जा सकता है। फल का प्राकृत वर्ण कत्थई और प्रदाय युक्त तैल में पीतवर्ण एवं जलाने पर ज्वाला भी पीतवर्ण।

गुणप्रकाशक संज्ञा—ज्योतिष्मती।

ज्योतिष्मती स्यात् परिदीप्तकाया
    ददातिमेध्या च धियं प्रकाशम्।
उष्णा हरत्याशु हिमं समीरं
    लतेयमस्माद् भुवि सार्थनाम्नी॥

—प्रिय निघण्टु

गुण-धर्म—

ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता सरा कफसमीरजित्।
अत्युष्णा वामनी तीक्ष्णा वह्निबुद्धिमतिप्रदा॥

—भा० प्र०।

ज्योतिष्मती रसे तिक्ता किञ्चित्कटुस्मृता जनैः।
दाहप्रदा वातकफान् हन्ति प्रज्ञा प्रदायिनी॥
मेधाकृद्दीपनी प्रोक्ता 'राजनामनिघण्टके'।
कषाया मोहदा स्निग्धा वर्णदा व्रणपांडुहा॥
विसर्पघ्नी 'कैयदेवे' प्रोक्ता वैद्यैर्न संशयः।
श्लेष्मवातहरा चैव पाचनी कटुका सरा॥
अत्युष्णा वामनी तीक्ष्णा वह्निदा 'धन्वनामके'।
आमवातहरा प्रोक्ता 'मदने' भिषजां वरैः॥
मुखरोगहरा चैव भावे प्रोक्ता मनीषिभिः।
कण्ठरोगहरा हिक्कानाशिनी 'गणनामके'॥

—नि० शिरोमणि।

ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कफवातजित्।
दीपनी वामनी पित्तकारिणी बुद्धिवर्द्धिनी॥

—प्रि०-नि०।

निम्ब.तमी ... 'ज्योतिष्मतीफलतैलानि तीक्ष्णानिलघ्न्युष्णवीर्याणि कटूनि कटुविपाकानि सराण्यनिलकफकृमिकुष्ठप्रमेहशिरोरोगापहराणि चेति।

—सुश्रुत० सू० ४५।

कटु ज्योतिष्मती तैलं तिक्तोष्णं वातनाशनम्।
पित्तसंतापनं मेध्यं प्रज्ञाबुद्धिविवर्धनम्॥

—रा० नि०।

ज्योतिष्मतीभवं तैलं पित्तलं स्मृतिबुद्धिदम्॥

—यो० र०।

तत्तैलं वातरोगेषु चाभ्यङ्गार्थं प्रशस्यते।
मेधाविवर्धनार्थञ्च सेव्यते कल्पयोगतः॥

—प्रि० नि०।

यह पूर्व मे कहा गया है कि यह एक विशिष्ट मेध्य द्रव्य है। मेध्य द्रव्यो मे अधिकतया द्रव्य शीतवीर्य होते हैं। शीतवीर्य द्रव्य धृति (धारणाशक्ति) को वढाने को होते हैं किन्तु जो मेध्यद्रव्य उष्णवीर्य होते हैं वे धी (ग्रहणशक्ति), स्मृति (स्मरणशक्ति) को वढाने वाले कहे गये हैं। ज्योतिष्मती उष्णवीर्य होने से धी और स्मृति को वढाने वाली है।

यद्यपि शारीर एव मानस के समस्त व्यापारो का नियन्ता प्रणेता वायु को कहा गया किन्तु मेधा के लिये पित्त प्रमुख भूमिका का निर्वाह करता है। पाच प्रकार के पित्तो मे साधकपित्त मेधा का विकास करता है। साधकपित्त का स्थान हृदय कहा गया है। यह हृदय के आवरक कफ और तम को दूर कर मन को विमल और उत्कृष्ट वनाता है। मन के उत्कृष्ट होने से मेधा विकसित होती है। भारती सस्कृति मासिक के आयुर्वेदाङ्क मे वैद्यवर श्री वा० वा० नटराज शास्त्री ने उक्त तथ्य को थोडे शब्दो मे इस प्रकार व्यक्त किया है।

शारीराणामिव मानसानामपि कृत्स्नव्यापाराणा नियन्ता प्रणेता च जीवशक्तिरूप सर्वप्राणिदेहचरो भगवान् वायुरेव सर्वाध्यक्ष। तथापि वायुना परस्परानुप्रविष्ट समुचितधातुत्रयेणैवनिखिलशारीरमानसक्रियामिनिष्पत्तिरिति स्थितेः तत्र मन शक्ति विशेषस्य मेधाया साक्षात् अनुग्राहको ध्वसकश्च प्राधान्येन पित्तधातुरेव। पित्तपञ्चकेऽपि कतम मेधार्क्दिति भूयो विचवृणोति रक्त त्रिशोधीये "प्रभा प्रसादो मेधी च पित्तकुमाविकर- जम्" "यतु साधकसज्ञ तत् कुर्याद् बुद्धि धृति स्मृतिम्"।

तवर्धक होने से ज्योतिष्मती इस पित्त को वढाकर मेधावृद्धि मे सहायक सिद्ध होती है। यह केवल मेध्य ही नही, नाडी वलदायक एव मस्तिष्कशामक होने से अन्य कई मानसरोगो मे भी लाभप्रद है। उन्माद मे मञ्जूषाकार ने इसे कल्परूप मे उपयोगी कहा है जिसका आगे वर्णन किया जायेगा। अनिद्रानिवारक एक योग मे इसकी प्राथमिकता को प्रकट किया गया है—

ज्योतिष्मती जटामासी सर्पगन्धासितायुतम्।
मकध्वजसयुक्त चूर्णं निद्राकर परम्॥
—अनु० यो० रत्नाकर।

वातनाडी-सस्थान के लिये इसकी उपयोगिता को इन परीक्षणो ने भी सिद्ध कर दिया है—

मालुकागुनी के तैल के पालीइस्टर का परीक्षण श्वेत चूहो पर किया गया। केन्द्रीय वातनाडी-सस्थान पर इसका प्रभाव सौमनस्यकारक है तथा साथ ही साथ इससे सुस्ती नही होती। अधिक मात्रा मे यह उत्तेजक है। —वा० अनु० दर्शिका।

वेदनास्थापन और वातहर होने से इसके स्नेह को पक्षाघात सन्धिवात आदि रोगो मे अभ्यङ्ग के रूप में भी उपयोग मे लाया जाता है।

आजकल युवक होने से पूर्व ही वहुत से किशोर दुष्ट क्रियाओं द्वारा अपना वल-वीर्य नष्ट कर डालते हैं। इससे उनके शिश्न का विकास रुक जाता है और नाडी मण्डल सुप्त होकर उत्तेजना नष्ट हो जाती है। काम, मद के अभाव से वे नपुसक हो जाते हैं। इसकी चिकित्सा में शारीरिक विकारो को ठीक करने के साथ स्थानीय उपचार भी किये जाते हैं। स्थानीय उपचारो में ज्योतिष्मती वहुधा प्रयुक्त होती है। इस रोग के प्रारम्भ में उत्तेजना शान्त करने के उपाय किये जाते हैं और फिर पुन कामागो को जाग्रत एव उत्तेजित करने के उपाय किये जाते हैं। ज्योतिष्मती क्योकि एक उत्तेजक द्रव्य है अत इसका प्रारम्भ में उपयोग उपयुक्त नही है। चिकित्सक जव उत्तेजना पुन जागृत करने के लिये उद्यत हो तो उस समय ज्योतिष्मती को अवश्य याद करें। वहुत से चिकित्सक उपयुक्त स्थिति में इस द्रव्य मे विनिर्मित तिलाओ किवा तैल ताम्वूल को वाह्य प्रयोगार्थ उपयोग में लाकर पुण्य, यश और श्री प्राप्त करते हैं। नाडी वलदायक होने से इसका आभ्यन्तर प्रयोग भी नपुसकता में किया जाता है।

वाजीकरण के अतिरिक्त यह आर्त्तवजनन भी है। इस हेतु ज्योतिष्मती पत्र को भून कर घृत के

साथ किंवा पत्र का शाक बनाकर सेवन कराना लाभप्रद है।

. . . . . भृष्ट ज्योतिष्मतीदलम्।
सम्प्राश्यन चिरादेव वनिता त्वार्तवलभेत् ॥

यहा यह (स्मरण) रहे कि इसके शाक को दोष-वर्धक कहा है सुतरां इसे युक्तिपूर्वक (स्वल्प समय के लिये, दोषशामक मिश्रण के साथ) ही सेवन करावें—

दोषल सार्षप शाक ज्योतिष्मत्या कुठिजर ।
—सिद्धमन्त्र

यह कटु तिक्त एव उष्ण होने के कारण दीपन है। अतः अग्निमाद्य को दूर करती है। यह पूर्व मे कहा गया है कि महर्षि सुश्रुत ने इसे अधोभागहर कहा है। यह अपनी स्निग्धता एव उष्णता से वात का अनुलोमन करती है, एतवता विवन्ध गुल्म आदि रोगों को नष्ट करने मे श्रेष्ठ है।

यह उष्ण होने से हृदय को उत्तेजित कर हृदय-मन्दता को दूर करती है। यह रक्तवाहिनी, प्रसारक कही गई है। क्योकि इसके उपयोग से रक्तसवहन मे वृद्धि होती है। विभिन्न शोथों में भी यह उपयोगी है। विटामिन बी की कमी से होने वाले "बेरी-बेरी" नामक रोग की यह श्रेष्ठ औषधि है।

कफघ्न होने से कास-श्वास मे भी इसका प्रयोग किया जाता है। शिरोविरेचन की तो यह श्रेष्ठ औषधि है ही, जिसका पूर्व मे उल्लेख किया जा चुका है। कफमार्ग के विष दूषित हो जाने पर इसका नस्य के रूप में उपयोग करने का वर्णन मिलता है—

नासाक्षिकर्णजिह्वाकठनिरोधेषु कर्म नस्त स्यात् ।
वार्ताकुबीजपूर ज्योतिष्मत्यादिभि पिष्टै ॥
—चरक० चि० २३/६८

ज्योतिष्मतीत्यादीनि षट्विरेचनशताश्रितायोक्तानि शिरोविरेचनानि । —चक्र

ऊर्ध्वजत्रु के कफ-वातोत्था रोगों मे धूमपान का विधान है। यह तीन प्रकार से प्रयुक्त होता है—"स्निग्धो मध्य तीक्ष्णश्चैव वातत्के कफे"। इनमे तीक्ष्ण धूम के लिये ज्योतिष्मती को प्रशस्त कहा है—"तीक्ष्णे ज्योतिष्मती निशा।
—(अ० हृ० सू० २१)"।

गण्डमाला, भगन्दर आदि रोगो मे इसके बाह्य-प्रयोग का वर्णन मिलता है। भगन्दर के घावों के शोधन हेतु कहा गया है—

ज्योतिष्मतीलाङ्गलीश्यामादन्तीत्रिवृत्तिला ।
कुष्ठ शताह्वा गोलोमी तिल्वको गिरिकर्णिका ॥
कासीस काञ्चनक्षीर्यौ वर्ग. शोधन इष्यते ॥
—सुश्रुत० चि० ८।३।८

उष्ण एव मूत्रल होने से कफजन्य मूत्रकृच्छ्र मे इसे काम में लाया जाता है। यह वृक्को को उत्तेजित कर मूत्र के प्रवाह को बढाती है। इसी प्रकार आमपाचन एव स्वेदजनन होने के कारण यह ज्वर को भी कम करती है। स्वेदजनन एवं कुष्ठघ्न होने से यह कुष्ठ मे भी उपयोगी है। श्वित्र को नष्ट करने मे भी यह उपयोग मे लाई जाती है। कहा गया है कि—

मयूरक क्षारजले सप्तकृत्व परिस्रुतम् ।
सिद्ध ज्योतिष्मती तैलमभ्यङ्गाच्छ्वित्रनाशनम् ॥
—यो० र०

चत्वारिंशद्दिनानि स्त्रीमूत्रे ज्योतिष्मतीप्लुता ।
तत्तैल यन्त्रत कृष्ट्वा लिम्पेच्छ्वित्रोपरिद्रुतम् ॥
—सि० भै० म० मा०

"सचित्र आयुर्वेद के त्वक् रोग विशेषाक (जुलाई ८६) मे प्रोफेसर आर० एस० सिंह का "श्वित्र का प्राचीन लोकज्ञान एव चिकित्सा" नामक लेख प्रकाशित हुआ है। उन्होंने लिखा है कि कौटिलीय अर्थ-शास्त्र मे वर्णित श्यामीकरण योग का आधारभूत जो कगु तैल कहा गया है वह ज्योतिष्मती तैल ही है। रसशास्त्रो मे वर्णित कगुणी तैल (रसार्णव में स्वर्ण पर रङ्ग लाने के लिये इसका उल्लेख है) भी ज्योतिष्मती तैल ही है। यह तथ्य प्रकट करने के पश्चात् विद्वान् लेखक ने लेख के अन्त मे कहा है कि—श्वित्र की चिकित्सा मे श्यामीकरण—सवर्णीकरण हेतु कागुणी तैल अर्थात् ज्योतिष्मती तैल एक विश्वस्त एवं फलप्रद द्रव्य प्रतीत होता है। अनेक पारम्परिक

चिकित्सको को इसका सफल व्यवहार करते मैंने स्वय देखा है। हमारे स्वर्गीय ज्येष्ठ भ्राता वैद्यराज हकीम दलजीतसिंह जी इसका प्रयोग कराते थे। आयुर्वेदीय चिकित्सको तथा शोधकर्त्ताओ को भी इसका व्यवहार एवं परीक्षण करना चाहिए।

यूनानी मतानुसार—यह तीसरे दर्जे मे गरम और रूक्ष है। दिमाग, आमाशय एव ओज के लिए यह बलकारी है। गठिया, पसली का दर्द, स्नायु के रोग, पक्षाघात, अर्दित में इसका तैल गुणकारक हे। कफ और वायु के रोगो में यह हितकारी है। इसका तैल अत्यन्त गरम, तीक्ष्ण, वमनकारक, लेखन, पित्त-जनक, स्मरण-शक्ति वर्धक, बुद्धिदायक, अग्निदीपक और रसायन है।

आधुनिक मतानुसार—आर एन खोरी के कथनानुसार ज्योतिष्मती बीज रसायन, उष्ण, नाडियो को बलदायक है। अन्य सुगन्धित औषधियो के साथ यह आमवात, वातरक्त, वातव्याधि व कुष्ठरोगो मे उपयुक्त है। एक भाग तैल व सातभाग मक्खन मिश्रित करके इसका पोमेटम बनाते हैं। यह पोमेटम मस्तिष्क शुद्धि के लिये प्रसिद्ध है। इसके तैल मर्दन से मलेरिया के रोगी की वातवेदना एव वातव्याधि प्रशमित होती है। इसका कृष्णवर्ण का तैल (Oleum Nigrum) भारत में सर्वत्र तरुण शोथरोग या बेरी-बेरी मे व्यवहार में लाया जाता है। इसके बीज से जो तैल निकलता है जिसके मर्दन करने से वातवेदना व सूजन दूर होती है। १० से ३० बिन्दु मात्रा मे सेवन करने से पसीना निकलता है एवं मूत्रवृद्धि होती है। यह उत्तेजक वायु-नाशक है। बेरी-बेरी रोग की यह महौषधि है।

डा० मुर्दतसेरिफ कहते हैं कि शोथ मे इसके तैल का प्रयोग कर विशेष उपकार पाया गया है। यह मूत्रल, स्वेदजनन और ज्ञान तन्तुओ को उत्तेजना देने वाला है। बेरी-बेरी रोग का यह निश्चित इलाज है। इसके मूत्रल-शोथहर गुण को देखकर मैंने यह तैल जलोदर के रोगियों पर भी व्यवहार किया और उसका परिणाम अत्यन्त सन्तोषजनक रहा।

डाक्टर देसाई के मत से यह कडवी, गरम, उत्ते-जक, स्वेदजनन, मूत्रल, वातनाशक और चर्मरोगो को दूर करने वाली है। इसकी प्रधान क्रिया मस्तिष्क और मज्जातन्तु पर होती है।

डाक्टर बेडन पावेल के अनुसार भी यह बेरी-बेरी के लिये सर्वोत्तम औपधि है। सन्धिवात और पक्षाघात मे भी यह उपयोग मे ली जाती है। नवीन रोगो मे यह खासतौर मे असरकारक है।

मेजर वसु व कर्नल कीर्तिकर लिखते हैं कि—हम इस ब्लैक आयल को गत ३९ वर्षों से प्रयोग में ले रहे हैं। प्रारम्भ मे इस पर विश्वास नही हुआ किन्तु गत २५ वर्षों से विजिगापट्टम, मछलीपट्टम और एलोर से प्राप्त की हुई वनस्पति का प्रयोग करने से हमे यह विश्वास हो गया है कि यह बेरी-बेरी रोग की सर्वोत्तम औपधि है। डा० हरक्काडस ने जो भी इसके विषय मे प्रशंसा की है उन सबसे हम सहमत हैं। यह पहले मूत्र की वृद्धि कर जल की अधिकता को दूर करती है। पश्चात् अन्य लक्षण भी गायब होते नजर आते हैं। बेरी-बेरी के रोगी को बहुत पौष्टिक खुराक देने की आवश्यकता है। मैंने जलोदर के बीमारो को यह वस्तु बहुत ही सादे रूप मे दी और उसके परिणाम बहुत ही उत्साहजनक रहे।

विविध ज्योतिष्मती कल्प—

१ ज्योतिष्मत्यास्तैलमाज्य सगन्ध
गुजावृद्धया सेवयेन्मासमात्रम्।
यावच्चास्याद्यस्तु स प्राप्त
मूर्तिर्मेधायुक्तो दिव्यदृष्टिर्नियक्ष्माः॥
—र० र० उ० स० २६

ज्योतिष्मती का तैल, घृत, शुद्ध गन्धक समान-भाग लेकर एकत्र मिला एक रत्ती (१२० मि० ग्रा०) की मात्रा से सेवन प्रारम्भ करें और प्रतिदिन एक रत्ती की मात्रा बढाते जावें। इस प्रकार एक मास तक सेवन करें। इससे मेधावृद्धि होती है। दिव्य दृष्टि होती है तथा यक्ष्मारोग नष्ट होता है।

२. ज्योतिष्कावीज तैल खलु
विधिविहित श्लक्ष्णचूर्णं वचाया।

गव्यञ्चाज्यं नवीनं दधिभव-
ममलं तुल्यभागत्रयं स्यात् ॥
पामाग्निंष्टगन्धाश्मितयपरि-
मित: सेवितो मासमात्रं।
यक्ष्माणञ्चान्त्रशोषं हरति हि
चपलं गण्डमालाञ्चभीष्माम् ॥
दिव्या दृष्टि स्सन्तत वीर्य-
वृद्धिश्चित्ते तुष्टिनिर्भर देहपुष्टि।
शौर्योत्कर्षो जायते वज्र-
मुष्टिर्नष्टातङ्कोमासमात्रप्रयोगात् ॥
—र० तर० ८/४८

ज्योतिष्मती तैल, वचा चूर्ण तथा ताजे दही का मक्खन, इन तीनों को समभाग में लें और इन तीनों के बराबर भाग नष्ट गन्ध किया हुआ शुद्ध गन्धक चूर्ण मिलाकर एक मास तक सेवन करने से तीव्र यक्ष्मा, आन्त्रशोष, भयकर कण्ठमाला रोग नष्ट होते हैं। स्वस्थ शरीर मे एक मास तक उक्त योग का सेवन करने से नेत्रो की ज्योति मे वृद्धि, वीर्य वृद्धि, मन मे सन्तुष्टि, शरीर मे पर्याप्त मात्रा मे पुष्टि होती है। इससे मनुष्य बड़ा साहसी बलवान तथा सर्वरोग रहित हो जाता है। इसे कल्परूप मे भी सेवन किया जा सकता है।

३ वृद्धि लब्धवती यत श्रितवती ज्योतिष्मती केवला।
सा स्नेहात्मवती पयोऽन्वयवती बुद्धिस्मृतिप्रीतिदा ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

वृद्धि लब्धवती = प्रथमदिने एक बीजम्, द्वितीयदिने द्वे बीजे, तृतीयदिने त्रीणि बीजानीत्येव क्रमेण मण्डलयावत् त्रीजवृद्धया वर्धमाना। स्नेहात्मवती = तैल स्वरूपा तु दिने-दिने विन्दुक्रमेण वर्धमाना। उभयरूपापि पयोऽन्वयवती = दुग्धसम्बन्धवती दुग्धेन निपीतेत्यर्थं, यतम् = पथ्याहारविहारवन्त श्रितवती केवला ज्योतिष्मती बुद्धिस्मृति प्रीति दा भवति।
—कुञ्चिकारव्यटीका

मालकागनी के बीज को एक से प्रारम्भ कर प्रतिदिन एक-एक बीज बढाता हुआ चालीस दिन तक खायें। अथवा इसके तैल को एक बूंद से प्रारम्भ कर एक-एक बूंद प्रतिदिन बढ़ाता हुआ चालीस दिन तक सेवन करें। इन दोनों का अनुपान गोदुग्ध है। यह उन्माद के रोगी के लिये उत्तम रत्न है।

४ ज्योतिष्मती तैल १ भाग, बादाम तैल १ भाग दोनों को मिलाकर रख लें। २ बूंद की मात्रा से प्रारम्भ कर वर्द्धमान क्रम से बढ़ाने से ग्यारह पावें तथा अनुपानार्थ मिश्री मिला दूध पीवें।

एक रोगी को १२ वर्षों से शिरोवेदना रहती थी। स्मृति भी अत्यन्त मन्द हो गई थी, मन दुःखी रहता था उसके साथ ही नेत्रादि कारणों का विस्तार कर चलता रहा तो भी इसके केवल १५ दिनों के प्रयोग से ही लाभ हो गया। -वैद्य बनवारीलाल साहनी
(सुधानिधि जून ८२)

५ मालकागनी चावल साफ कर लें। पहले दिन एक दाना, दूसरे दिन २ दाने, तीसरे दिन तीन दाने खिलावें। इसी प्रकार बढ़ाते हुये ६० दानों तक ले जावें। फिर एक-एक दाना घटाते हुये एक दाने पर आ जाए। इससे जोड़ो का दर्द, वातव्याधि और कफ के विकार नष्ट होते हैं। बुद्धि बढ़ती है। वीर्य विकार नष्ट होते हैं। यदि दाने बढाने के बीच में ही अधिक गर्मी अनुभव हो तो उसी दिन से दाने घटाने आरम्भ कर दें। —स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती
(चम० औषधियां)

६ पहले दिन ५ रत्ती (६०० मि० ग्रा०) ज्योतिष्मती तैल गोदुग्ध मे मिलाकर पिलाना, फिर प्रतिदिन ५-५ रत्ती बढाते हुये ३० रत्ती तक पहुचा देना, २८ दिन ३० रत्ती की मात्रा मे सेवन कर पाच रत्ती घटाते हुये पाच रत्ती आने पर छोड़ देना चाहिये। लवण वर्जित और दूध जितना पचे सेवन करना चाहिए।
—अभिनव बूटी दर्पण

७ मालकागनी के तैल के एक मास के प्रयोग से अठारह प्रकार के कुष्ठ और सब रोग दूर होते हैं और मनुष्य वलीपलित नाश होकर युवा के समान बलवान् और दीर्घ आयु प्राप्त करता है।

विधि यह है कि शुभ तिथि और शुभ नक्षत्र मे मलकागनी के बीजो का संग्रह कर तैल निकालें और तैल को मध्याग्नि से पकालें। तीन महीनो तक इस तैल के पात्र को धान्यराशि मे गाढ दें। तदनन्तर निकालकर सेवन करें। इसका सेवन कल्पविधि से भी किया जा सकता है। इस तैल की १०-१५ बूद तक दिन मे ३ बार देने से शरीर मे चैतन्यता होती है और कुछ घन्टो के बाद पसीना आता है किन्तु निर्बलता नही होती। शरीर के किसी अङ्ग की शून्यता मे अत्यन्त लाभप्रद है। —प० श्रीरामचन्द्र वैद्य शास्त्री (बूटी रहस्य)

८ मालकागनी के बीज गठिया, छोटे जोडो की सूजन और पक्षाघात रोग मे बडा लाभ पहुचाते हैं। इनके खाने की तरकीब यह है कि पहिले दिन इसका एक बीज, दूसरे दिन दो बीज, इसी तरह प्रतिदिन एक-एक बीज बढाते हुये पन्द्रहवें दिन पन्द्रह बीज खाना चाहिए। इसके साथ ही इसके तैल की रोगग्रस्त अङ्गो पर मालिश करनी चाहिए।

—अनुभूत चिकित्सा सागर

९ नवीन जलोदर रोग मे इसका काला तैल बहुत लाभ पहुचाता है। इस रोग मे इसका तैल पाच से लेकर पन्द्रह बूद तक की मात्रा मे दिया जाता है। साथ ही इसके बीज दस की सख्या से शुरू करके क्रमश बढाते हुए पचास की सख्या तक बढा दिये जाते है। सोठ भी साथ मे दी जाती है। इनसे पहले पेशाब की तादाद बढती है, फिर जलशोथ की कमी होती है। फिर दर्द बन्द होता है और अन्त मे ज्ञानशक्ति ठीक होती है। —डा० वा० के० देसाई

१० मालकागनी का पेलकर निकाला हुआ तैल एक तावे के बरतन मे भरकर उस पर कपडमिट्टी करके ६ मास तक जमीन मे गाड़ देना चाहिए। उसके बाद उसको निकालकर पहले दिन पन्द्रह बूद, दूसरे दिन तीस बूद, तीसरे दिन ४५ बूद, चौथे दिन ६० बूद की मात्रा मे पीना चाहिए और उसके बाद हमेशा ६० बूद की मात्रा लेते रहना चाहिए। पथ्य मे दूध, भात और गेहूं की रोटी का उपयोग करना चाहिए। इस प्रयोग को बराबर तीन वर्ष तक करने से मनुष्य अत्यन्त धुरन्धर विद्वान् श्रुतधर और दीर्घायु होता है। —आचार्य वाग्भट

आचार्य वाग्भट ने एक और इसी प्रकार का कल्प लिखा है किन्तु इन कल्पो मे सेवित मात्रा अधिक जान पडती है जो वर्त्तमान मे निरापद नही कही जा सकती है। सभी कल्प प्रयोग किसी सुयोग्य चिकित्सक की देख-रेख म पथ्यपूर्वक करने चाहिए अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है। आचार्य पडित श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी की देख-रेख मे एक कल्प प्रयोग किया गया और लाभ प्राप्त किया गया जिसका विवरण उनकी ही लेखनी से लिखा हुआ है, इसे पढकर ज्योतिष्मती की रसायनशक्ति का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। विवरण इस प्रकार है—"आयुर्वेद जीवन विज्ञान शास्त्र है। इसमे जहा रोगो से मुक्ति पाने के लिये विभिन्न प्रकार की औषधियो का विवरण है वही शरीर को स्वस्थ रखने के लिये और दीर्घायु बनाने के लिये विभिन्न प्रकार के कल्प हैं, उन्ही कल्पो मे द्वियोपधि कल्प के अन्तर्गत ज्योतिष्मती कल्प मेधायुष्कामीय रसायन के अन्तर्गत आता है। इन रसायन कल्पो का विधान भिन्न-भिन्न रोगो से मुक्ति के लिये तथा तरुण आयु प्राप्त करने के लिये कई प्रकार के शास्त्रो मे वर्णित है। ज्योतिष्मती कल्प उन लोगो के लिये लाभदायक होता है जिनको मस्तिष्क की शक्ति को उर्वरा बनाना होता है साथ ही साथ जीर्ण शरीर को तरुण शरीरवत क्रियाशील बनाना होता है।

ज्योतिष्मती कल्प का विधान कल्प कलिका, आनन्दकन्द रस-रत्न समुच्चय तथा अन्य कई ग्रन्थो मे उपलब्ध है। स्वामीजी ने इस कल्प को केवल मेधायुष्कामीय प्रयोजन के लिये ही स्वीकार किया था।

प्रथम शरीर को पचकर्म के द्वारा शुद्ध करके इस कल्प को प्रारम्भ किया गया पचकर्म के सम्यक् शोधन मे २४ दिन, ४१ दिन तथा ३ मास का समय लगता है किन्तु चिकित्सक मण्डल ने स्वामीजी के शरीर की

परीक्षा करके आवश्यकीय पचकर्मों को २१ दिन मे पूरा किया।

ज्योतिष्मती कल्प मे एक कल्प (४८ ग्राम) तक की मात्रा प्रथम मास मे पहुचाने का विधान है चूकि ज्योतिष्मती दिव्य औषधि है इसकी तीक्ष्णता तथा वृहण कर्मों का प्रभाव वहुत उग्र होता है। अत सब साधक इस मात्रा तक नहीं पहुच पाते। श्री स्वामीजी तो ३० ग्राम तक की मात्रा तक ही पहुचे। शरीर की स्थिति हृदय एव मस्तिष्क के ऊपर तीव्र प्रभाव की वृद्धि के कारण औषधि पाचन काल मे रह-रह करके लहर की भाति प्रभाव होते थे। उनको सहन करना वहुत कठिन था इस काल मे सामान्य वेहोशी रह-रहकर वेचैनी, हृतश्चकन्द की वृद्धि, स्मरण मे कमी एव विचार शृखला का टूटना व जुडना, रक्त-भार की वृद्धि, नाडी की तीव्रता तथा औषधि की तीव्रता व तीक्ष्णता के कारण मात्राधिक ग्रहण करना कष्टप्रद होता गया।

अत. ३० ग्राम तक की मात्रा वर्दास्त की जा सकी। उसे धीरे-धीरे कम कर दिया गया जवकि स्वामीजी एक योगी पुरुष है, उनकी सहनशीलता व मन स्थिति प्रवल था अत इसको वर्दास्त कर गये। इस काल मे औषधि पाचन के वाद क्षीर व साण्डि-कान्ज मात्र ही सेवन करने से शरीर की वृद्धि मे विशेषता वढी दृष्टिगोचर हुई। फिर भी ४० दिन के काल मे उनका भार पाच किलो वढ गया। त्वचा की कान्ति मे वृद्धि हुई। चेहरे पर झुरिया मिटने लगी। ललाट के पार्श्व वालो म कृष्णता का आभास होने लगा था। यदि यह कल्प कम से कम तीन मास पर्यन्त कुटी-प्रवेश विधान से चलता तो इसमे वहुत परिवर्तन की सम्भावना ह। किन्तु एक मास तक सेवन करके प्रथम चरण को समाप्त कर दिया है। चिकित्सको की सावधानी के कारण कोई वात का व्यवधान नहीं हो पाया। कभी-कभी विवन्धादि होने पर सामान्य उपचार से उनको दूर कर दिया जाता था।

—प० श्री विश्वनाथ द्विवेदी
(सचित्र आयुर्वेद मई ७३)

सामान्य प्रयोग

बाह्यप्रयोग—

१. दद्रु—ज्योतिष्मतीपत्र को कालीमिर्च के सूक्ष्म चूर्ण के साथ पीसकर दद्रु (दाद) पर लगाने से लाभ होता है।

२. कण्डू—ज्योतिष्मती वीजो को गोमूत्र के साथ पीसकर लगावें।

३. व्रण—वीजो को पीस पुल्टिस वनाकर वाधने से व्रण का शोधन एव रोपण होता है।

४. अर्श—ज्योतिष्मती वीज किंवामूल को पानी मे पीसकर मस्सो पर लगाने से रक्तार्श का रक्तस्राव वन्द हो जाता है।

५. ध्वजभङ्ग—ज्योतिष्मतीवीज, एरण्डवीज, असगन्ध और अकरकरा के चूर्ण मे तिल तैलमिला-कर पीसकर पान के पत्ते पर रखकर शिश्न पर वाध दें और लगोट वाध लें। इसे रात्रि मे सोत समय वाधें तथा प्रात. उष्ण जल से शिश्न को धोवें इससे नपुसकता मिटती है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

१. ध्वजभङ्ग—वीजो को खीर मे मिलाकर खाने से नपुसकता मिटती है।

२. वुद्धिमाद्य—ज्योतिष्मतीवीज, वच, अतीस, दवदारु इनका वारीक पीसकर घी, गोमूत्र एव कट-कारी स्वरस मे मिलाकर सेवन करने से वुद्धि तीव्र होती है।

३.—दन्तरोग—ज्योतिष्मतीवीज, मजीठ, हरड, दारुहल्दी, लोध्र और पाठा का सुक्ष्म चूर्ण कर दातो पर मलने से दातो से खून आना, उनके हिलने आदि मे लाभ होता है।

४. सन्धिवात—ज्योतिष्मतीवीज और काली जीरी का चूर्ण वनाकर ४ ग्राम चूर्ण गरम जल से सेवन करना हितकारी है।

५. अनिद्रा—ज्योतिष्मतीवीज, जटामांसी, सर्प-गन्धा और मिश्री का चूर्ण वनाकर इस चूर्ण को दूध के साथ लेने पर निद्रा आ जाती है।

६. कृच्छ्रार्तव—(क) अग्निर्मार्जित ज्योतिष्मती पत्र चूर्ण को जवाकुसुम के साथ पीसकर सेवन करें। यह गर्भ का भी स्राव कराने वाला है।

(ख) बीज, राई, विजयसार और बच को महीन पीस ३ दिन दें।

७. अहिफेनव्यसन—इसका पत्र-स्वरस ४० मि० लि० देने से यह अभ्यास मिटता है।

८. श्वास—बीज, बड़ी इलायची के दाने २-२ ग्राम लेकर मधु के साथ खाने से कफ का श्वास मिटता है।

९. दौर्बल्य—(क) ज्योतिष्मतीबीज २५० ग्राम लेकर गोमूत्र मे भून लें इसमे समभाग खाड मिलाकर रख लें। ५ ग्राम दवा प्रतिदिन प्रातः-साय गोदुग्ध के साथ सेवन करें। इसे लगभग चालीस दिन तक सेवन करना चाहिये।

(ख) पचाग का चूर्ण, घृत एवं मधु के साथ सेवन करना भी बलवर्धक है। यह वृद्धावस्था मे उपयोगी है।

ज्योतिष्मती तैल की उपादेयता—ज्योतिष्मती बीजो से जो तैल निकाला जाता है, उसकी दो विधिया हैं—कोल्हू मे दबाकर और पातालयन्त्र से। प्रथम विधि से प्राप्त तैल पीतवर्ण होता है जो अधिक पुराना होने से रक्तवर्ण का हो जाता है। द्वितीय विधि से प्राप्त तैल कृष्ण वर्ण होता है जिसे ब्लैक आइल (Oleum Nigrum) कहते हैं। इस विधि से प्राप्त तैल मे क्रियोजोट नामक द्रव्य प्राप्त होता है। बीजो को कूटकर पानी मे औटाकर भी तैल प्राप्त किया जाता है। तैल निकालते समय बीजो के साथ जायफल, जावित्री, लवग और लोहबान आदि भी मिला देते हैं। चिकित्सक इसे अन्त.परिमार्जन एवं बहि.परिमार्जन हेतु उपयोग में लाते हैं। यह उष्ण प्रकृति के व्यक्तियो के लिये हानिकारक है। गुणो मे यह अंग्रेजी औषधि 'क्रियाजूट' की क्षमता रखता है। इसमे मूत्रल एव तीव्र जन्तु नाशक शक्ति है। स्वाभाविक दुर्बलता किंवा रोग के आक्रमण होने पर दुर्बलता को मिटाने के लिये यह श्रेष्ठ औषधि है। इसके खाने से प्रारम्भ में वमन हो सकता है, जिससे सारा श्लेष्मा निकल जाता है। स्मरणशक्ति बढ़ाने के उत्सुक व्यक्ति प्रायः इसका सेवन करते हैं।

बाह्य प्रयोग—

१. क्लैब्य—(क) ताम्बूलपत्र पर तैल लगाकर शिश्न पर बाधें।

(ख) तैल मे अफीम मिलाकर शिश्न पर मालिश करें और ऊपर से पान का पत्ता बाधें। ७ या १४ दिन मे नपुसकता मिटती है।

२. स्मृतिमांद्य—असली बादाम के तैल मे ज्योतिष्मती का तैल मिलाकर सिर मे मालिश करनी चाहिए। यह उन्माद के रोगी के लिए लाभप्रद है। इससे बुद्धि-स्मृति बढ़ती है। बादाम का तैल ज्योतिष्मती तैल से चौगुना होना चाहिए।

३. श्वित्र—(क) इसके तैल को श्वित्र पर नियमित लगाना चाहिए।

(ख) ज्योतिष्मती बीजों को २१ दिन तक गोमूत्र में भिगोकर फिर इनका तैल निकालकर श्वित्र पर लगावें। गोमूत्र प्रतिदिन बदलें।

(ग) ५०० ग्राम ज्योतिष्मती बीजों को ४० दिन पर्यन्त स्त्री मूत्र से भावित रखें, अनन्तर पातालयन्त्र विधि से तैल निकालें। इस तैल के मर्दन से भी श्वित्र का विलोपन होता है।

४. दृष्टिमांद्य—ज्योतिष्मती तैल की पगतलियो पर नियमित मालिश करने से नेत्रो की ज्योति बढ़ती है।

५. नाड़ीव्रण—इसके तैल से प्लावित प्लोत रखकर बाधने से नाड़ीव्रण एव अन्य दुष्ट व्रणो का शीघ्र ही शोधन होकर रोहण होने लगता है।

६. कुष्ठ—कुष्ठ, कण्डू, पामा आदि रोगो मे इस तैल की मालिश करना हितकारी है। तैल पातालयन्त्र विधि से निकाला हुआ होना चाहिये। इस विधि से निकाला तैल अधिक लाभप्रद होता है।

७. वातव्याधि—पक्षाघात, अर्दित, सन्धिवात, गृध्रसी, कटिशूल, आदि वातरोगों मे भी इस तैल का अभ्यङ्ग हितकारी कहा गया है। हाथ एव पैरो की कमजोरी इस तैल के अभ्यङ्ग से मिटती है। इसके अभ्यङ्ग से रक्त का सचालन सम्यक् होता है तथा मास पेशिया मजबूत होती हैं। अभ्यङ्ग धीरे-धीरे करना चाहिए।

८. शोथ—किसी प्रकार के शोथ के शमन के लिए भी इस तैल का अभ्यङ्ग हितकारी है।

९. गण्डमाला—गण्डमाला पर भी इसका अभ्यङ्ग करना लाभप्रद है।

१०. तान्द्रिक सन्निपात—तैल में पिंडारक की जड़ पीसकर नस्य देने से तन्द्रिक सन्निपात में लाभ होता है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

१. क्लैब्य—(क) दुग्ध मे कृष्णवर्ण तैल मिलाकर सेवन करने से क्लैब्य दूर होता है।

(ख) तैल की १० बूंद पान पर लगाकर दिन मे २-३ बार खानी चाहिए। इन दिनो रोगी को घृत, दुग्ध का अधिक सेवन करना चाहिए।

२. स्मृतिमान्द्य—तैल की ५-१० बूंद नवनीत के साथ खाने से स्मृति बढती है। यह उन्माद, अपस्मार आदि मानस रोगो मे भी हितकर है।

३. बेरी-बेरी—इस रोग मे इसकी १५ बूंद २-३ बार देनी चाहिए।

४. उदररोग—उदररोगों मे इसे दूध के साथ सेवन करना लाभप्रद है।

५. मूत्रकृच्छ्र—दूध की लस्सी मे यह तैल डालकर पीना हितकारी है।

६. ज्वर—तैल सेवन करने से २-३ घण्टो के बाद जोर से पसीना आकर ज्वर कम हो जाता है। यह अन्य ज्वरो की अपेक्षा वातबलासक ज्वर (बेरी-बेरी) मे अधिक उपयोगी है। जिसका वर्णन पूर्व मे किया जा चुका है।

७. पाण्डुरोग—पाण्डु के कारण हुए शोथ को नष्ट करने में यह श्रेष्ठ है। इसके सेवन से मूत्र की वृद्धि होकर धीरे-धीरे शोथ भी मिटने लगता है।

८. क्षय—इसको रजतभस्म के साथ सेवन करना चाहिए।

विविध कल्पनायें

१. ज्योतिष्मत्यादि वटी—(क) मालकागनी, देवदारु, हल्दी, पाढ, रसौत, जवाखार तथा पीपल इन्हे समभाग लेकर पीसकर शहद मे मिलाकर गोलिया बना लें। इन गोलियो को मुह मे रखने से हर प्रकार के कण्ठरोगो में लाभ होता है।

(ख) मालकागनी १२ ग्राम, रतनजोत १२ ग्राम, छोटी पीपल १२ ग्राम, स्याहमूसली ६० ग्राम, सोठ ६४ ग्राम तथा शुद्ध जमालगोटे की गिरी—सब्जी दूर की हुई १६ ग्राम—इन सबको पानी के साथ खरल कर कालीमिर्च के बराबर की गोलिया बना लें।

मात्रा—२ गोली। इन गोलियों के सेवन से पक्षाघात, अर्दित आदि वातरोग मिटते हैं।

—आयु० चिकि० सार

(ग) मालकागनी के साफ बडे दाने ५० ग्राम, चीनी २५ ग्राम—दोनों को गौ के आधा किलो दूध मे डालकर हल्की अग्नि पर पकावें। जब सारे दूध का खोया बन जाए तब उतार ले और अच्छी प्रकार घोटकर जगली बेर के बराबर गोलिया बना ले। १-१ गोली प्रात-साय गोदुग्ध से खिलायें। ये गोलिया अत्यन्त शक्तिवर्धक और यौवनावस्था को वापस लाने वाली है। —चमत्कारी औषधिया

(घ) १ किलो मालकागनी को ८ किलो पानी मे पकावें जब १ किलो पानी शेष रहे तो उसे छानकर उसमे ६०-६० ग्राम त्रिकटु, हरड़, सोया, विडङ्ग, चित्रक, पीपलामूल, अजमोद, वच, कूठ, असगन्ध, देवदारु और शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण मिलाकर गोलिया बना लें। इन्हे घी और शहद के साथ सेवन करने से समस्त वातरोग नष्ट होते है। —भा० भै० र०

मात्रा—१ ग्राम।

२ घृत—मालकागनी, श्वेतकनेर की जड का छिलका अकरकरा, छोटी इलायची प्रत्येक ६०-६० ग्राम बारीक कूट-पीसकर १० किलो दूध मे मन्दाग्नि से पकावें। ६-७ किलो दूध शेष रहने पर दही जमाकर घी निकाल लेवें। इसे २ से ८ ग्राम तक सिता युक्त दुग्ध मे डालकर प्रात सायं पीवें। इसके सेवन-काल मे घी-दूध का अधिक उपयोग करना चाहिए। यह घृत नपुसकता मे उपयोगी है। इसे शिश्न पर मलना भी हितकारी है।

३. पाक—मालकागनी घृत २५० ग्राम तैयार कर उसमें पान की जड और केशर की जड का चूर्ण २५०-२५० ग्राम मिलाकर आधा किलो मधु भी उसी मे मिला दें और थाली मे रखें। एक कटोरा ऊपर धर कर मुँह बन्द कर मन्द आंच मे रखें। पाक सिद्ध होने पर निकाल दें। एक ग्राम की मात्रा मे दूध से लेवें। इससे बल पुष्टि की वृद्धि होती है, मूत्रातिसार नष्ट होता है। —व० पा० संग्रह

४ ज्योतिष्मत्यादि तैल (नामर्दी नाशक तैल)—(क) मालकागनी के बीज ३० ग्राम, अफीम, शृङ्गिक विष, भाग, लौंग, जायफल, जावित्री, दालचीनी, अकरकरा, कौडिया लोहबान, प्याज के बीज अण्डी के बीज (छिले हुए सफेद मज्जा) हरेक १२-१२ ग्राम।

कूटने पीसने वाली चीजो को कूट-पीस लो। अफीम को कूटने की आवश्यकता नही यो ही खरल मे डाल दें। फिर आक के दूध मे तमाम दवायें एक दिन तक घोटें और टिकिया बनाकर पातालयन्त्र से तैल बना लो।

इस तैल को सीवन व सुपारी बचाकर शेष इन्द्रिय पर अंगुली से धीरे-धीरे मलना चाहिये। ऊपर से बगला पान गर्म करके सुहाता-सुहाता लपेट देना चाहिए। पान पर हलका कपड़ा लपेटकर धागा लपेट दें जिसमे तैल ना छूटे और रात भर लगा रहे।

नोट—(१) चिकित्सा काल मे लिंगी पर पानी न पडने दें। स्नान न करें, यदि करना ही हो तो गरम जल से करें।

(२) तैल लगाने से फफोले या फुन्सी हो जावें तो तैल लगाना बन्द कर सौ बार धोया हुआ मक्खन लगावें। फफोले ठीक होने पर पुन व्यवहार करें।

अपथ्य—लालमिर्च, खटाई, कड़ुआ तैल तथा अधिक गर्म या शीतल पदार्थों से परहेज करे।

गुण—यह तैल नसों मे भरे दूषित पानी को निकालकर उभरी नसो को दबाता है तथा विकृति को दूर कर नामर्दी का नाश करने वाला है।

—धन्व० पुरुषरोगाक

(ख) मालकागनी का तैल, तारपीन का तैल, रोगन मोम, धतूरा का तैल प्रत्येक ६० ग्राम, लौंग का तैल १२ ग्राम। इनको एकत्र मिलाकर पीड़ित अग पर लेप करें और रुई का फाहा बांध दें। यह कम्पवात, आक्षेप और वातजशूल इत्यादि के लिए गुणकारी है। —यू० सि० यो० स०

(ग) मालकागनी के बीज २५० ग्राम, इन्द्रायण के बीज २५० ग्राम दोनों को कूटकर ३ किलो पानी मे डालकर आग पर चढाए। जब १ किलो पानी रह जाय तब आधा किलो तिल का तैल डालकर फिर अग्नि देते रहें। जब केवल तैल रह जाए तब उतार लें। ठण्डा होने पर मलकर छान लें। इस तैल को सिर मे लगाने से यह बालो को काला करता है। यह सिर मे लगाने मे ही पुराने प्रतिश्याय को भी ठीक करता है। —चर्म० औषधियां

पेटेण्ट प्रयोगो मे ज्योतिष्मती—बहुत सी रसायनशालाए सिद्ध तैलो के अन्तर्गत "ज्योतिष्मति तैल" का भी निर्माण करती है। यह पूर्व में कहा गया है कि यह तैल मस्तिष्क के रोगो में व वातविकारो मे उपयोगी है। रसाश्रम फार्मा लेबोरेटरीज मोडल (गुजरात) एवं ऊझा आयुर्वेदिक फार्मेसी का ज्योतिष्मति तैल सर्वाधिक लाभप्रद है। बीकानेर की मोहता आयुर्वेदिक रसायनशाला भी इसे तैयार करती है। आयुर्वेदीय इञ्जेक्शनो मे बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक फार्मेस्युटिकल झांसी "मालकागनी" नामक इञ्जेक्शन का निर्माण करती है। इसके १ मि०

लि० के एम्प्युल में १'० मि० ग्राम मालकागनी (ज्योतिष्मति) क्षार होता है। यह इन्जेक्शन मस्तिष्क तथा मज्जातन्तुओं को बल देता है। स्मृतिनाश, शिरःशूल तथा भ्रमरोग को यह नष्ट करता है। अधिक काल तक प्रयोग करने पर बेरी-बेरी (वातबलासक ज्वर) तथा अफीम विष को दूर करता है। सप्ताह में दो अथवा अधिक बार मासपेश्यान्तर्गत इसे लगाना चाहिए।

निर्मल आयुर्वेद सस्थान अलीगढ द्वारा निर्मित "नवशक्ति मलहम" मे भी ज्योतिष्मती है। ज्योतिष्मती, असगन्ध, वीरवहूटी, मल्ल, तिल तैल और देशी मोंम आदि द्रव्यो के मिश्रण से, यह मलहम तैयार किया जाता है। शिश्न की वक्रता निर्बलता मे अभ्यङ्गार्थ यह मलहम उपयोग में लाई जाती है। शिश्नमुण्ड को छोडकर सम्पूर्ण शिश्न, जघा एव अण्डकोषो पर इसकी मालिश करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त इसी सस्थान द्वारा निर्मित "नवशक्ति पोटली" में भी मालकागनी, असगन्ध, वज, हाथीदात का बुरादा आदि होते हैं। इसमें से ३ ग्राम की पोटली बनाकर उसे चमेली के तेल मे डुबोकर, फिर तवे पर गर्म कर शिश्नमुण्ड को छोडकर सम्पूर्ण शिश्न, अडकोष व जघा पर सुहाती-सुहाती १५ मिनट से आधे घण्टे तक सिकाई की जानी चाहिए। नवशक्ति मलहम एव पोटली के प्रयोग के पश्चात् उन स्थानो पर शीतल जल न पडने दें। यदि मलहम या पोटली की सिकाई से फफोले (स्फोट) पड जायें तो सिकाई बन्द कर शतधौत घृत लगावें। मलहम प्रयोग करने के पश्चात् हाथों को साबुन से अवश्य धोलें। इसी प्रकार के दोनो प्रयोग गर्ग वनौषधि भण्डार विजयगढ द्वारा भी तैयार किये जाते हैं। इसका नाम "नवयौवन मलहम" रखा गया है। इसमें प्राय- उक्त द्रव्य ही है किन्तु तिल-तैल व देशी मोंम के स्थान पर वसा (चर्बी) को उपयोग में लाया जाता है।

मानसिक नपुसकता, वृद्धावस्था या अति मैथुन के कारण उत्पन्न शिश्न शिथिलता में व्यवहृत एक मलहम है—"हिमकोलिन क्रीम" (हिमालय ड्रग कम्पनी प्रा० लि०) यह क्रीम शिश्न के उत्थान में भाग लेने वाले तन्तुओं का बलवर्धन करता है, रक्तवाहिनियों को विस्तृत कर शिश्न में रक्त की मात्रा बढाता है तथा स्तम्भन शक्ति बढाता है। इसके घटक द्रव्यों मे ज्योतिष्मती तैल प्रमुख है। इसके अतिरिक्त जायफल, जावित्री, जमालगोटा, दालचीनी आदि का तैल, जुदबेदस्तर, शेर-रीछ की चर्बी का भी इसमें सम्मिश्रण होता है।

भारतीय औषधि निर्माणशाला राजकोट जो "ब्रेवोवाल" नामक कैपसूल का निर्माण करती है, इसमे मात्र ज्योतिष्मती तैल १०० मि० ग्राम होता है। मस्तिष्क के ज्ञानतन्तुओ की चयापचय क्रिया के पोषण के माध्यम से नाडीमण्डल को चेतन करने वाला यह एक सुरक्षित व सक्रिय टॉनिक है। स्मृतिदौर्बल्य, स्मृतिभ्रंश, मानसिक अशक्ति एवं निद्राहीन में यह प्रयोग ही है। बालकों को एक कैपसूल दूध के साथ तथा वयस्क को २-२ कैपसूल रात्रि को सोते समय एक कप दूध के साथ लेना इष्ट है। अशार टेब० (चरक) मे भी ज्योतिष्मती तैल होता है। रक्तचापशामक "आर्जिन" (अलारसिन) नामक वटी प्रयोग मे भी ज्योतिष्मती है। इसके अतिरिक्त इस प्रयोगरत्न में सर्पगन्धा, पुनर्नवा, जटामासी, शिलाजीत, हरीतकी, अर्जुन, विल्व आदि हैं। वासु फार्मा० का एलर्ट कैप० भी बान के ब्रेवोवाल की तरह है। इसका भी मुख्य घटक ज्योतिष्मती है।

समस्त वातज कष्टो की मालिश द्वारा चिकित्सा में परमोपयोगी प्रयोग है—"वातरिपु तैल।" इसके मुख्य घटक ज्योतिष्मती, रसोन, विषमुष्टिका, लालमिर्च, गंरोजा, इन्द्रयव, पोस्तडोंडा, सुरजान आदि हैं जिनका तैल पाक विधि से तैल तैयार किया जाता है। यह दर्द एव सूजन को मिटाता है। अधिक लाभ के लिये मालिश के पश्चात् हल्का सेक भी करें। यह प्रयोग भी रुद्रदेव आयुर्वेद भवन नयागाव द्वारा तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त "ट्रिप आयल" नामक वाह्य प्रयोगार्थ प्रभावकारी तेल भी है, जिसका निर्माण कौशिक आयुर्वेद भवन सालासर (राजस्थान)

द्वारा किया जाता है। यह ज्योतिष्मती तैल, एरण्डतैल, तिलतैल, सरसो का तैल, सर्जरस, वत्सनाभ, एरण्डपत्र स्वरस, स्नुही स्वरस गोमूत्र आदि द्रव्यो से तैयार किया गया पेटेण्ट प्रयोग है जो स्नायुशूल, सन्धिशूल, शोथ, व्रण आदि मे उपयोगी पाया गया है। वातरोगोपयोगी बाह्य प्रयोगो के साथ यह आभ्यन्तरीय प्रयोगो मे भी हितकारी है। चरक फार्मा० की प्रसिद्ध रोमानिल गोलियो मे बहुत सी वात शामक औषधियो के साथ ज्योतिष्मती की भी योजना की जाती है।

अनुभूत प्रयोग—

१. स्मरण शक्तिवर्धक प्रयोग—ज्योतिष्मती ६० ग्राम खूब अच्छी तरह से स्वच्छ कर लें। फिर पुष्य नक्षत्र मे १५ ग्राम शुद्ध गोघृत के साथ तवे पर सावधानीपूर्वक भून लें, जलने न पावे, सतर्कता से भूनें।

ठण्डी हो जाने पर सभी भुनी दवा की ३ ग्राम की एक मात्रा बनाकर पुडिया बांध लें। सुवह, शाम एवं दातुन कुल्ला से निवृत होकर, एक मात्रा खूब अच्छी तरह से चबाकर ठडे पानी से निगल जाए। १० दिन सेवन करें। लालमिर्च, खटाई एव तेल का परहेज रखें। वस उपरोक्त औषधि से स्मरणशक्ति बडी तीव्र होती है, यह परीक्षित योग है। मेरा अनुभूत है। —श्री हीरालाल जी वर्मा

(धन्व० सित० ६१ से)

२. हर्बुल उदर जलांतक—मालकागनी के बीज का चूर्ण ५० ग्राम, स्फटिकाभस्म ५० ग्राम, प्रवालपचामृत ५० ग्राम, मण्डूरभस्म ५० ग्राम, इन्द्रायणमूलचूर्ण ५० ग्राम, दन्तीमूल चूर्ण ५० ग्राम, सज्जिकाक्षार २५ ग्राम, पलाशक्षार २५ ग्राम, स्नुहीदुग्ध २५ ग्राम, ताम्रभस्म २५ ग्राम। सबको खरल मे डालकर कृष्णभांगरा स्वरस की भावना देकर खूब घोटें फिर ४ रत्ती की गोलियां बना लें।

१-२ गोली प्रात:-साय फाडे हुए गोदुग्ध के जल से सेवन करावें। उदर के जल (जलोदर) का इससे अन्त हो जाता है। —प० श्री हर्षुल जी मिश्र

(सुधा० प्रयोग संग्रह भाग २)

३. प्लीहान्तक वटी प्रयोग—मालकागनी पेड़ के जड की छाल का वक्कुल २५० ग्राम, काली मिरच ६० ग्राम लेकर खूब वारीक पीसें शरफुखा के पत्तो के स्वरस की ३ भावना देकर बेर के बराबर गोलियां बनावें, किसी भी किस्म के उदर-विकार, यकृत् प्लीहा आदि मे महान् उपकारी है। यकृत्प्लीहा के पुराने रोगी को ३-४ सप्ताह सेवन करानी चाहिए। पाण्डु तथा कामला की हालत मे भी इससे लाभ देखा गया है।

सेवन विधि—१-१ गोली दोनो समय उष्ण जल के साथ सेवन करावें। —वैद्यभूषण श्री ज्ञानचन्द जैन

(धन्व० अप्रैल ४८)

मालकांगनी, सोंठ और असगन्ध ये तीन औषधिया ऐसी प्राणवान औषधियां हैं जिनका युक्तिपूर्वक प्रयोग किया जाये तो क्या उन्माद और क्या अपस्मार दोनो को भी दूर भगाया जा सकता है।

मैं ब्लडप्रेशर बढ़ने या चिन्ता बढ़ने को उन्माद के अन्तर्गत व हीन रक्तचाप व विषाद को अपस्मार के अन्तर्गत मानता हू।

इन तीनो औषधियों का अलग-अलग चूर्ण बनाकर रख लेवें और मात्रा युक्ति-अनुपान व पथ्य के साथ रोगियों पर प्रयोग करें तो आपको चिकित्सा का आनन्द आ जायेगा। इन बडी वलवान् व शक्तिमान् दवाओ के द्वारा शरीर का वायु तत्व, जो न केवल शारीरिक बल्कि चेष्टाओ का भी सचालक है, उसमे प्राण फूक कर सुव्यवस्थित किया जा सकता है। जिसकी प्राणशक्ति कमजोर पड जाती है उन्ही की सोचने, विचारने, निर्णय करने की शक्ति का ह्रास हो जाता है। ऐसे ही जन-मद, मूर्च्छा, सन्यास की ओर जाते देखे हैं। पक्षाघात की मरणान्तक पीडा भोगनी पडती है। इन अवस्थाओं मे डूबने से पहले ही मनुष्य को बचाया जा सकता है, यदि उसे इन तीन दवाओ का उचित व उपयुक्त सहारा सुचिकित्सक से मिल जाय। —वैद्य श्री गोपालप्रसाद शर्मा

(स्वास्थ्य जन० ६१)

५. शिश्नशैथिल्यहर प्रयोग—मालकागनी का तैल १० बूद, सत्यजीवन (प्रतापमल, गोविन्दराम कलकत्ता का पेटेण्ट प्रयोग) १ बूद मिलाकर गुप्ताग पर मालिश करने से कमजोर व शिथिल नसें मजबूत व बलिष्ट होती हैं। शिथिल व कमजोर स्नायु व मासपेशियों को मजबूत व बलिष्ठ बनाने के लिये यह प्रयोग बडा उपयोगी है। यह तैल खून का सचालन करके यह काम बडी जल्दी के साथ करता है।

—प्रतापमल गोविन्दराम
(अपना इलाज खुद करो)

६. पक्षाघातनाशक प्रयोग—मालकागनी १ किलो, चिरमी (घुघची) सफेद १ किलो, कनकबीज ५०० ग्राम, लौंग और जायफल २४-२४ ग्राम इनको जौकुट करके पातालयन्त्र से तैल निकालें। ३ सलाई भर पान मे खिलाने से पक्षाघात मे लाभ होता है।

—डा० श्री भंवरलाल शर्मा
(ध० गु० सि० प्र० भा० २)

७. व्रणोपयोगी प्रयोग—ज्योतिष्मती के गीले या सूखे पत्ते तथा काली मरिच तीन नग बारीक पीस कर फोडे पर लगाने से अनेक प्रकार के घाव भरने लगते हैं। —श्री हरदयाल वैद्य वाचस्पति
(धन्व० अनु० प्रयोगाक)

८. क्लैब्यहर प्रयोग—मालकागनी, कुचला, धतूरे के बीज प्रत्येक १५-१५ ग्राम, ५ किलो गोदुग्ध मे तीनों की पोटली बांधकर मन्दाग्नि से पकावें। पकते-पकते लाल होने पर निचोड़ के दही जमादें, जब दही जम जावे तब उसे चलाकर मक्खन निकाल कर घी निकाल लें। यह घृत क्लैब्यरोग नाशक है।

मात्रा—१-२ ग्राम दूध से, पोटली मे बधे हुये द्रव्य का तैल निकाल कर शिश्न पर मलने से पुरुषत्व बढता है। —कवि० श्री वेदव्यासदत्त शर्मा
(धन्व० स० सि० प्र० भा० १)

९. गर्भपातहर उपाय—मालकागनी की जड को रविवार के दिन खोद कर लाना चाहिये। इस जड मे से ४ अगुल का एक टुकडा लेकर उसको काले कपडे मे बाध कर जिस स्त्री को बार-बार गर्भपात होता हो, उसकी कमर मे बाध देने से गर्भपात का होना रुक जाता है। जिस स्त्री को बार-बार गर्भपात होता हो उसको गर्भ रहने के साथ ही इस जड को कमर मे बाध लेना चाहिए और प्रसव के एक-दो दिन पहले खोल देना चाहिए।

—जगल की जडी बूटी

१०. पक्षाघातहर प्रयोग—मालकांगनी ६० ग्राम, अफीम १ ग्राम, मीठा तेलिया ४८ ग्राम, तिल तैल २५० ग्राम। कढाई मे तैल को डालकर आधा गरम करो और फिर उसमें मालकांगनी डालकर धीमी आग से पकाते-पकाते काला करलो, फिर उसे नीचे उतार कर पिसा हुआ मीठा तेलिया डाल दो और खूब रगड दो। फिर अफीम को पीसकर डाल दो और घोट लो। तैल बनाते समय धुये से अवश्य बचें। इस तैल की मालिश पक्षाघात के रोगी के लिये लाभदायक है। —वैद्य प० श्रीचन्द्रशेखर जैन
(धन्व० ४१।१०)

ताम्बूल

(Piper-Betle)



तावद्वा श्रीयते लक्ष्म्या तावदस्य स्थिर यशः ।
पुरुषस्तावदेवासौ यावन् मानान्न हीयते ।।
—किरातार्जुनीयम्

मनुष्य के पास लक्ष्मी तभी तक आश्रय लेती है, तभी तक उसका यश स्थिर रहता है और तब तक ही उसे पुरुष (मर्द) समझा जाता है, जब तक कि उसका मान और स्वाभिमान बना रहता है। इनमे मान किंवा सम्मान अन्य व्यक्तियो द्वारा व्यक्त किया जाता है और स्वाभिमान स्वय द्वारा। ताम्बूल के माध्यम से भी सम्मान (कायिक) एव स्वाभिमान प्रगट किया जाता है।

इतिहास साक्षी है कि रणबाकुरे राजपूतो मे पहले यह परम्परा थी कि किसी महत्वपूर्ण कार्य को करने के लिये सोने की तश्तरी मे पान का बीडा रखकर लाया जाता था। स्वाभिमानी व्यक्ति स्वाभिमान को व्यक्त करने के लिये उस बीडे को उठाना और वह उस कार्य को करने की पूर्ण जिम्मेदारी लेता था। "काम का बीडा उठाना" इसी के कारण यह मुहावरा अस्तित्व मे आया।

ताम्बूल समर्पित कर ही हम अपने इष्टदेव का श्रद्धापूर्वक सम्मान करते हैं—

जातीफलैलासुलवङ्ग नागवल्लीदलैः
पूग फलैस्च सयुतम् ।
मुक्तासुधारखादिरसारयुक्त गृहाण
ताम्बूलमिद रमेश ।।
—गर्गसंहिता

ताम्बूलं मनसा मया विरचित
भक्त्या प्रभो स्वीकुरु ।
—शिवमानसपूजास्तोत्र

पान चढे फूल चढे और चढे मेवा ।
जय गणेश जै गणेश जै गणेश देवा ।।
पान—ताम्बूलपत्र

पान सुपारी, ध्वजा नारियल
ले ज्वाला, तेरी भेंट धरे ।
—देवी देवताओ की आरतियां

"नैषधीयचरितम्" नामक महाकाव्य के रचयिता श्रीहर्ष ने कान्यकुब्जाधीश्वर जयचन्द्र की सभा को अलकृत किया था। उन्होंने स्वय अपने सम्मान के सम्बन्ध मे व्यक्त किया है कि—

ताम्बूलद्वयमासन च लभते
य. कान्यकुब्जेश्वरात् ।

व्यवहार मे भी हम सम्मान योग्य व स्नेही जनो को ताम्बूल खिलाकर सम्मान, स्नेह प्रकट करते हैं।

ताम्बूल का कुल पिप्पली कुल (पाइपरेसी) है। आचार्य भावमिश्र ने गुडूच्यादि वर्ग के अन्तर्गत इसका वर्णन किया है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने हृद्य द्रव्यो के अन्तर्गत इसका वर्णन किया है।

नाम—

संस्कृत—ताम्बूल, नागवल्ली, सप्तशिरा, पर्णलता।

हिन्दी—पान ।
गुजराती—नागरवेल ।
मराठी—नागवेल ।
बंगला—पान, ताम्बूल ।
तामिल—वेट्टिलई ।
तेलगु—तामालपाकु ।
अरबी—तबूल ।
फारसी—तबूल ।

अंग्रेजी—वेटल (Betel)।

लैटिन—पाइपर वेटल (Piper Betle)।

उत्पत्ति स्थान—सम्भवत इसकी जन्मभूमि मलेशिया है। कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश को छोडकर प्राय. सभी प्रान्तो मे यहा पर यह उत्पन्न होता है। भारत मे इसकी खेती वहुत विस्तृत एव उत्तम रीति से होती है। लका मे भी यह प्रचुर मात्रा मे उत्पन्न होता है। महोवा और चुनार का पान बहुत प्रसिद्ध है। बगाल, उडीसा, वनारस और मद्रास मे इसकी खेती की जाती है। यह उष्ण और आर्द्र प्रदेशो मे अधिक उत्पन्न किया जाता है। मध्य प्रदेश में एक हजार हेक्टर से अधिक क्षेत्र मे पान की फसल लगाई जाती है। मध्य प्रदेश के २३ जिलो मे पान की ७-८ किस्मे उगायी जाती हैं। छत्तरपुर मे प्रदेश का पान की फसल का सर्वाधिक क्षेत्रफल है।

रासायनिक संघटन—ताम्बूलपत्र मे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिजद्रव्य और टैनिन होते है। इसमे कैलशियम, फास्फोरस, लौह, आयोडिन, पोटाशियम, विटामिन, ए, वी, सी पाये जाते है। ताम्बूलपत्र मे लगभग ४ प्रतिशत तक एक तीक्ष्ण और सुगन्धित पीला या भूरे रङ्ग का उड़नशील तैल होता है, जिसमे फेनोल (Phenol) और टर्पिन (Terpene) नामक तत्व रहते हैं। फेनोल के कारण ताम्बूल मे विशिष्ट गन्ध होती है और उसकी मात्रा के अनुसार इनका व्यावहारिक महत्व होता है। टर्पिन की उपस्थिति से इनमे तिक्तता और रूक्षता अधिक होती है।

तैल एव इन तत्वो के अतिरिक्त इसमे पियोरिन, पियोरिडोन, एरिकोलीन, पियरोवेटोन, मरक्यूटिकएलमीन तथा एमीलिन नामक विष भी पाये जाते हैं। बगला एव मद्रास पान मे इन विषो की मात्रा अधिक होती है। पान मे चूना, कत्था लग जाने पर पियेरिडीन और एमीलीन नामक विष तो नष्ट हो जाते हैं किन्तु लायमगैस, केटेकाल, कारवोलिक एसिड तथा आननबाल नामक तत्व की वृद्धि हो जाती है। जितना विष २४५ पानों मे होता है उतना विष ५॥×३ इन्च आकार के चूना-कत्था लगाये हुये ५८ पानो मे होता है। यदि इनको निकालकर दो कुत्तो को खिलाया जाय तो वे पाच मिनट में मर जायेगे। वगला पान सबसे अधिक विषैला होता है। मद्रासी पान मे पियरोवेटीन नामक विष अधिक परिमाण मे होता है, जो हृदयगति को शिथिल करता है।

वानस्पतिक परिचय—इसकी बहुवर्षायु प्रसरणशील १५-२० फुट लम्वी लता होती है। इसका काण्ड दृढ़, कठिन एव ग्रन्थियुक्त स्थान पर मोटा होता है। पत्र—४-८ इञ्च लम्बे, २-४ इञ्च चौडे, लट्वाकार-आयताकार या लट्वाकार हृदयाकार, ५—७ सिराओ से युक्त लम्वाग्र होते है। पत्रवृन्त लगभग १—१॥ इञ्च लम्बा होता है। पुष्प—काण्ड मे ही, अवृन्त गुच्छो में एक लिगी होती है। फलमजरी १-५ इञ्च लम्बी, दृढ़, लटकती होती है जिसमे १/४ इञ्च व्यास के अनेक सघन मासल फल लगत है। फलो को पान पिप्पली कहते हैं। वसन्त मे पुष्प और ग्रीष्म मे फल लगते हैं।

इसकी लता लकड़ी या वास के मण्डपों में लगाई जाती है। इस प्रकार मण्डपों मे यह पालित लता ही प्राय. भारत मे सर्वत्र मे लगाई जाती है। बंगाल, आसाम, आगरा अवध आदि में ऐसे मण्डपो की अधिकता देखी जाती है। किन्तु कही-कही इसकी लता वृक्षादि के आश्रय से भी फैलाई जाती है, जिनके पान अत्यन्त तिक्त, छोटे तथा सिराजाल से युक्त होते हैं जो निकृष्ट कोटि के माने जाते हैं। अधिक ठण्ड पान की दुश्मन है और भरपूर पानी इसकी आवश्यकता है। ३०-४० इञ्च वर्षा पान के लिये सर्वाधिक अनुकूल है। पान को अधिक धूप भी सहन नही होती है इसलिए ही तो इनके मण्डप बनाये जाते है। ये मण्डप "पनवाडी" अथवा "वेराज" कहे जाते हैं। ८ से १२ फुट लम्बी हजारो लकड़ियो को कतारो मे गाढकर उसके चारो ओर घास की टट्टियां लगाई जाती हैं तथा ऊपर भी घास की छत बनादी जाती है। दुमट मिट्टी खेती के लिये श्रेष्ठ होती है। खाद के रूप मे दही-तक्र, खस-खस, मेंथीदाना मटर आदि



ताम्बूल [Piper Betle]

विभिन्न नाम : सं०—ताम्बूल, नागवल्लरी। हि०—पान। गु०—नागरवेल। म०—नागवेल। । अं०—बेटल। लै०—पाइपर बेट्ल।

प्राप्ति स्थान : बिहार, बंगाल, उड़ीसा आदि।

उपयोगी अङ्ग : पत्र। **दोषशमन :** वातकफशामक।

रोगोपयोग : हृदयरोग, रक्तभार (उच्च), ध्वजभंग, प्रतिश्याय, ज्वर, अग्निमांद्य आदि।

कूट कर लताओं को दिया जाता है। इनकी लतायें लगभग १५-२० वर्षों तक निरन्तर पान देती रहती हैं। लताओं को सम्भाल कर बांधने तथा पत्र तोड़ने के लिये कुशल श्रमिक कार्य करते है। एक लता से प्रतिदिन २०-२५ पत्ते तोड़े जा सकते हैं।

भेद—स्थान भेद से इसके बहुत से व्यवसायिक भेद कर दिये गये हैं। धन्व० निघण्टु के रचयिता धन्वन्तरि ने इसके दो भेद किये हैं—श्वेत एवं श्यामल।

आचार्य नरहरि ने सात भेद किये हैं—

१. श्रीवाटी (सिरिवाटी)—मधुर-तीक्ष्ण, त्रिदोषहर, रुचिकारक।

२. अम्लवाटी (अम्वाडे)—कटुक, अम्ल, उष्ण, मुखपाककारक, वातहर।

३ सतसा (सातसी)—मधुर, तीक्ष्ण, दीपन-पाचन, गुल्म-आध्मानहर।

४. गुहागरे—सुगन्धित, सप्त सिराओं से युक्त, पुंस्त्व-बलप्रद, रोचक।

५. अम्लरसा (मालवा का पान)—दाहहर, सौभाग्यप्रद, गुल्म विबन्धहर।

६ पटूलिका (आन्ध्र प्रदेश मे उत्पन्न)—कंठ के लिये लाभप्रद, वातहर।

७ वेहसनीया (समुद्रतीरवर्ती स्थानों में उत्पन्न), दीर्घपत्र, कफवातहर हृद्य।

आचार्य शालिग्राम ने ६ भेद किये हैं—

१. बंगला—औषधि कार्य मे प्राय. ये ही अधिक काम मे लिये जाते हैं।

२ महोवा—ग्वालियर, मन्दसौर, टीकमगढ़, रतलाम आदि जिलो में उत्पन्न।

३. महराजपुरी—मगहिया (बनारसी)।

४ बिलोआ।

५ कपूरी—कपूर की सी उत्तम सुगन्ध, इसकी खेती बहुत कम की जाती है।

६ कुलवा

बंगाल मे तीन प्रकार के पान उत्पन्न होते हैं—१. देशी या बंगला, २ सांची, ३ मीठी या कपूरी। बम्बई में तीन जातियां प्रचलित हैं—काली, श्वेत, देसवी (छोटी)। सबसे उत्तम प्रकार का पान बंगाल में उत्पन्न होता है। खाने के लिए बनारसी, मघई, महोबा और बंगला पान अधिक पसन्द किये जाते हैं। घटिया प्रकार के बंगला पान को कुटुआ कहते है।

"एक भेद गिरिताम्बूल भी होता है जो पहाड़ी पान के नाम से जाना जाता है। इसका लैटिन नाम पिपेर थोम्सोनिई (Piper Thomsone)। चट्टानों पर लिपटकर फैलने वाली लता। पत्ते बड़े, पान जैसे, नाड़िया उभरी हुई। जुलाई में लम्बे, पतले, कच्चे, हरे फल निकलते हैं। पत्ते बहुत चरपरे, सुपारी और कत्थे के साथ पान के रूप में खाते हैं। केदार घाटी में ये पान के नाम से बिक जाते हैं। पश्चिमोत्तर-हिमालय में घने नमीदार जंगल में ५०००' फीट (१५२४ मीटर) तक पाया जाता है।"

—वैदी वनस्पतिकोष

(आ० विद्या अप्रैल '६६)

रस—कटु, तिक्त।

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण।

वीर्य—कटु।

वीर्य—उष्ण।

दोषकर्म—गुण, रस और वीर्य से कफ का तथा वीर्य से वात का शामक है। तीक्ष्ण, उष्ण होने से यह पित्त प्रकोपक है।

प्रयोज्यअङ्ग—मुख्यत पत्र।

मात्रा—स्वरस ५-१० मि० लि०।

निषेध—१. तीक्ष्ण, उष्ण और पित्तप्रकोपक होने के कारण विषप्रकोप, मद, नेत्र रोग, रक्तपित्त, उर.-क्षत, मूर्च्छा आदि मे हानिकर है।

ताम्बूलं न हितं दन्तदुर्बलेक्षणरोगिणाम्।
विषमूर्च्छामदार्तानां क्षतिनां रक्तपित्तिनाम्॥

—भा० प्र०

२. पित्तप्रकृतिक पुरुष को एव पैत्तिक रोगो मे इसका सेवन उपयुक्त नही है।

३. निर्बलवीर्य एव कृशव्यक्तियों को कामोत्तेजना के लिए पान नहीं खाना चाहिए।

४. ब्रह्मचारी, सगर्भास्त्री और छोटे बच्चो को भी पान खाना ठीक नही है।

५ विरेचन लिया हुआ और भूखा व्यक्ति पान न खावे।

दर्पनाशक—एला, खदिर, सुपारी।

पान मे लगे चूने से यदि मुख जल जाय और व्रण हो जाय तो दुग्ध मे शक्कर डालकर गण्डूष करें। अथवा लौंग और नारियल की गिरी चवावें। सुपारी लगने पर ठडा पानी पीना उत्तम है।

प्रतिनिधि -लवङ्ग।

पान के अतियोग से हानियां—पान जितना रति, आनन्द, स्वास्थ्य, वल तथा वीर्यवर्धक है उतना ही अति सेवन से हानिप्रद भी है। इसके अधिक सेवन से रक्त में एक प्रकार का विष प्रवेश कर जाता है, जो पाचनक्रिया को हानि पहुंचाता है। साथ मे लगे हुए चूने की अधिकता से दातो को हानि पहुचती है। कत्था से फुफ्फुसो मे शुष्कता एव आतो मे विषोत्पत्ति होती है। सुपारी की अधिकता से उसमे स्थित विष अरिकन (Arecaine) के प्रकोप से सारे शरीर पर खुजली चलने लगती है। अत पान एव उसमे मिलाने वाले कत्था, चूना, सुपारी आदि सव मर्यादित होने चाहिए। पान मे चूना आदि प्रक्षोभक द्रव्यो के साथ ही तम्बाकू मिलाकर खाने मे मुख की अन्तस्त्वचा मे व्रण होकर उसका पर्यवसान कैंसर जैसे भयानक रोगो मे हो जाना सम्भव है।

पान का निरन्तर सेवन करने से इसकी आदत पड जाती है। पिष्टमय पदार्थ चावल, आलू आदि सतत खाने वालो मे पान खाने की आदत प्राय देखी जाती है। इसके निरन्तर सेवन से देह, नेत्र, केश, दन्त, अग्नि, श्रवण-शक्ति और वर्ण आदि को नुकसान होकर वल का क्षय होता है। अति सेवन से पित्त प्रकोप एवं रक्त प्रकोप होता है। पान की अधिकता से लाला उत्पादक ग्रन्थियां प्रकुपित होती हैं। इससे स्त्रियो की प्रजनन शक्ति कमजोर होती है। गर्भपात एवं अपस्मार का यह प्रमुख कारण है।

जो व्यक्ति अजातुल्य पूरे दिन ताम्बूल चबाते रहते हैं, उनके दात खराव हो जाते हैं। दातो में लगे पान सुपारी के कण दन्तमासकला एव दन्तमूल मे विकृति उत्पन्न कर पूय को उत्पन्न करते हैं। शनैः-शनै यह पूय दातो की अस्थिकृत कला को भी गला देती है, जिससे दातो की जड़ें निकल आती हैं। भोजन के साथ यह पूय उदर मे जाकर अन्य कई विकृतियां उत्पन्न करता है।

स्नायु प्रणाली पर पान के विष का विशेष प्रभाव होता है। अति सेवन से पान का विष मस्तिष्क मे प्रवेश कर ज्ञानतन्तुओ पर आक्रमण करता है। परिणामत मस्तिष्क मे एक अशान्ति सी उत्पन्न होती है। इससे स्मरणशक्ति का लोप होकर मनुष्य के स्वाभाविक गुणो का नाश होता है। अधिक सेवन से पुरुषार्थ शक्ति घटती है। शिर शूल, उत्क्लेश, तापवृद्धि एव भ्रम आदि उत्पन्न होने लगते हैं। पान का अधिक सेवन करने वालो को पान चबाते ही कुछ क्षणो के लिए स्फूर्ति सी महसूस होने लगती है किन्तु वाद मे शरीर अधिक शिथिल पड जाता है, सुतरा इसके अधिक सेवन से सदैव बचना चाहिए।

इतिहास—प्राचीन ग्रन्थो के अवलोकन से यह विदित होता है कि ताम्बूल सेवन की प्रथा पुरातन काल से ही चली आ रही है। हिन्दू धर्म शुभ कार्य में इसको मङ्गलसूचक मानते है। हमारे पूर्वजो ने भोजनोपरान्त पान चर्वण स्वास्थ्यप्रद माना है। प्राचीन ऐतिहासिक एव साहित्य ग्रन्थो मे इसका प्रचुर वर्णन मिलता है।

इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे वरई (तमोली, पान का धन्धा करने वाले) लोगो में यह कथा किंवदन्ति के रूप मे प्रसिद्ध है कि महाभारत युद्धोपरान्त जव पाण्डवो को अश्वमेध यज्ञ के मागलिक कार्मार्थ इस प्रकार के विशिष्ट द्रव्य की आवश्यकता प्रतीत हुई, तव उन्होने पाताललोक मे इसकी प्राप्ति के लिए वासुकी नाग के पास अपना एक दूत भेजा। वासुकी ने अपनी कराङ्गुली का अग्रभाग काटकर दिया और

कहा कि इसे भूमि मे रोपण कर देने से पान की लता उत्पन्न होगी, जिससे पाडवो की अभीष्ट पूर्ति होगी। पाण्डवों ने वैसा ही किया, और इसकी उत्पत्ति हुई। इसी से इसे "नागवल्ली" कहा जाता है।

फिर शनै-शनै इसके विशेष गुणो के कारण वैद्य लोग इसे औषधि रूप मे व्यवहृत करने लगे। आयुर्वेदज्ञो के गुण वर्णन से प्रभावित होकर सामान्यजन इसका मुख्यत' भोजन के पश्चात् सेवन करने लगे। राजा-महाराजाओं ने तो इसे अपनी दिनचर्या का अङ्ग ही बना लिया। इसे श्रृङ्गार एव विलासिता के रूप में भी स्वीकार किया गया। फिर यह शनै-शनै ऐश आराम एव व्यसन की वस्तु बन गया। विदेशी, भारतप्रवासी "सर टामसरो" आदि के लेखो से यह बात प्रमाणित होती है कि ताम्बूल का नवदम्पति के प्रथम मिलन के दिन या चिर वियोग के बाद मिलने पर उपयोग किया जाता था, पर सदैव नही। इसका प्रयोग वेश्याओ मे अधिक होने लगा। यह वेश्याओं का एक कामोत्तेजक साधन माना जाने लगा। मन्दिरों, राजमहलो मे रखी जानें वाली देवदासिया और नर्तकिया इसे अधिक प्रयोग करती थीं। मुसलमानी सल्तनत के आरम्भ मे इसका इतना प्रचार नहीं था जितना बाद मे हुआ। मुसलमानी सल्तनत से भारत मे विलासिता की बाढ़ आई जिससे बेगमो, राजा-रईसों ने इसे खूब अपनाया। मुगलकाल से ही इसका अधिक प्रचार हुआ। मुसलमानो मे अब भी बहुत से अजाबत् पान चबाते रहते हैं। मुसलमान ही क्यों, अन्य सम्प्रदायावलम्बियो मे भी बहुत से व्यक्ति इसकी लत के शिकार पाये जाते हैं। आज पान ने अपना प्रभुत्व सब पर जमा लिया है। सुतरा इसका इतिहास कम महत्वपूर्ण नहीं। पूर्वकाल मे इसकी प्रथा प्रचलित रही, वर्तमान मे इसका प्रभुत्व सर्वोपरि है और भविष्य मे भी यह सर्वप्रिय रहेगा। हा, काल-क्रमानुसार इसके उपयोग की मात्रा न्यूनाधिक होती रहेगी।

साहित्य में ताम्बूल—मानव जीवन की सब क्रियाओं के दो पहलू होते हैं—उपादेयता और सौन्दर्य। उपादेयता वह पहलू है जो मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और सौन्दर्य जो इसके मन को प्रसन्न तथा अलौकिक आनन्द देता है। साहित्य इसी सौन्दर्य की सृष्टि करने मे सहायक बनता है। साहित्य मे प्रकृति का सजीव एव मनोहारी वर्णन किया जाता है। प्रकृति चित्रण की पृष्ठभूमि मे वनौषधियां सर्वोपरि है। प्राय सभी महाकवियो-कवियो ने नैसर्गिक श्रृङ्गारी सम्पदा के कारण वनस्पतियो का श्रृङ्गारी काव्यो मे वर्णन किया है। वनस्पतियो को काव्यो में उपमान के रूप मे भी देखा जाता है। ऐसे सजीव वर्णन से ही तो कवि यशस्वी हो जाते हैं। एक कवि स्वय स्वीकार करते हैं कि—

पद से जुड़े मगर हम अज्ञात ही रहे।
गीतो गजल से जुडकर यशवत हो गये॥

—चन्द्रसेन "विराट"

ताम्बूलवल्ली एव ताम्बूल सेवन दोनो का ही साहित्य मे पदे-पदे वर्णन मिलता है। आधुनिक युग के हिन्दी साहित्यकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ताम्बूल सेवन को सात्विक आहार कहा है। उनके ही एक शिष्य ने एक लेख में लिखा है कि—"गुरुवर्य आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी की गौरव गरिमा का भी कदाचित् यही रहस्य था कि वे सत्तू, दही, फल और पान को परम सात्विक आहार मानते थे। सत्तू के भोजन पर ताम्बूल सेवन के सुख को तो वे स्वर्ग मे भी दुर्लभ समझते थे। मेरी आखें यह सोचकर आज भी डबडबा जाती हैं कि स्वर्ग में उन्हे ये पदार्थ नही मिलते होगे। अब कैसे मे उनके पास मोतीहारी के सत्तू और मगधी पान पहुंचा सकूंगा। जिनको देखते ही उनकी जिह्वा से सरस्वती रस बरसाने लगती थी। बाणभट्ट की तरह मनमौजी, कबीर की तरह फक्कड, तुलसी की तरह समन्वयवादी, रवीन्द्र की तरह मानवतावादी, निराला की तरह आत्मसम्मानी तथा सूर की भाति सम्वेदनशील उनके व्यक्तित्व मे सत्तू और पान का अद्भुत योगदान था।"

—डा० भुवनेश्वरप्रसाद गुरुमैता
(मधुमती अप्रैल ८१)

ताम्बूल की लताओ से ढके हुए सुपारी के वृक्षो वाली मलयाचल पर्वत की शोभा का वर्णन महाकवि कालिदास ने इस प्रकार किया है—

ताम्बूलवल्ली परिणद्धपूगा
स्वेलालतालिंगितचन्दनासु ।
तमालपत्रास्तरणासु रतु
प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु ॥
—रघुवश ६/६४

कलिङ्ग देश को जीतकर प्रसन्न मानस रघु के सैनिको ने महेन्द्र पर्वत पर जो नारिकेलासव पिया उसके लिये पात्र ताम्बूलपत्रो को बनाया गया—

ताम्बूलीना दलैस्तत्र रचितापान भूमय ।
नारिकेलासव योधा शात्रव चपपुर्यश ॥
—रघु० ४/४२

ताम्बूल को रतिवर्धक कहा गया है सुतरा सहवास के समय स्त्री-पुरुष को ताम्बूल सेवन करना चाहिए। ऐसे प्रयोगो मे ताम्बूल सेवन का वर्णन साहित्य में भी मिलता है। आनन्दराय मखी प्रणीत "जीवानन्दनम्" नाटक मे जीवराजा के वर्णन मे उसे ताम्बूल रक्ताधर कहा गया है—"गण्डूपोदकशोधितेऽपि वदने ताम्बूलरक्ताधर"। ताम्बूल राग से कमनीय ओष्ठ विलासवती रमणियो का आभूषण कहा गया है—

स्वच्छाम्भ स्नपनविधौतमङ्ग—
मोष्ठस्ताम्बूलद्युतिविशदो विलासिनीनाम्।
वासस्तु प्रतनु विविक्तमस्त्वितीयानाकल्पो यदि कुसुमेषुणा न शून्य ॥

यह उष्ण होने से शीतकाल मे विशेष सेवन किया जाता है। भर्तृहरि ने हेमन्त ऋतु मे मसालेदार पान के बीडे को चवाते हुए शयन करने वाले को भाग्यवान कहा है—

हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना माञ्जिष्ठवासोभृत
काश्मीरद्रवसान्द्रदिग्धवपुप खिन्ना विचित्रै रतै ।
पीनोरुस्तनकामिनीजनकृताश्लेषा गृहाभ्यन्तरे ।
ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखा धन्या सुख शेरते ।
—शृङ्गारशतक

हेमन्त ऋतु की भाति शिशिर ऋतु मे भी शयनागार मे उत्कण्ठा से प्रविष्ट होने वाली रमणिया ताम्बूल को साथ ले जाती है—

गृहीतताम्बूलविलेपनस्रज
सुखासवामोदितवक्त्रपङ्कजा ।
प्रकामकालागुरुधूपवासित
विशन्ति शय्यागृपमुत्सुका स्त्रिय ॥
—ऋतुसहार

श्री विश्वनाथ कविराज ने नायिकाओ के ३८४ भेदों का वर्णन किया है। उनमे समस्तरद को विदा के उदाहरण मे कामिनी की विविध कामकेलिकलाओं के सूचक प्रच्छदपद (चादर) को पान आदि से रगा हुआ कहा है—

क्वचिन्ताम्बूलाक्त क्वचिदगरुपङ्काङ्कमलिन ।
क्वचिच्चूर्णोद्गारी क्वचिदपि च सालक्तकपद ।
वलीभङ्गाभोगैरलकपतितै शीर्णकुसुमै ।
स्त्रिया सर्वावस्थ कथयति रत प्रच्छदपट ॥
—साहित्यदर्पण ३

शृङ्गार रस मे नायक के कई सहायक कहे हैं उनमे ताम्बूल विक्रेता किंवा विक्रेत्री को भी गिना है

शृङ्गारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्या स्यु ।
भक्ता नर्मसु निपुणा कुपितवधूमानभञ्जना शुद्धा
आदि शब्दान्मालाकाररजकताम्बूलिकगान्धिकादय ।
—साहित्यदर्पण ३

तब ही तो महाकवि भट्ट श्री श्रीकृष्णराम ने इस मुक्तक मे ताम्बूल विक्रेत्री का भी वर्णन किया है—

ताम्बूलगोपी सुमकत्य चूर्ण—
पूगादिभि पूर्णकरण्डगर्भा ।
ददाति मूल्येन सुवर्णवर्णं
पुराणपर्णं नवयौवन च ॥

पान चवाना शृङ्गार का मुख्य साधन होने से ही तो लक्ष्मीजी कहती हैं कि इसके प्रयोग से स्त्रिया पति को प्रिय हो जाती हैं—

स्नान करे जे वा नारी मुह देय पान ।
लक्ष्मी बोली सेऊ नारी आमारि समान ॥

ताम्बूल चर्विता-लावण्यमयी ललना को देखकर महाकवि जौक को कहना पडा—

देखना ऐ जौक ! होंगे आज फिर लाखो के खून।
फिर जमाया उसने लाले लब पे लाखा पान का ।।

अन्त में काव्यों के प्रमुख नायक व- नायिका के दाम्पत्यसुख को बढाने वाले इस ताम्बूल का यह वर्णन कर इस प्रसङ्ग को समाप्त करता हू—

वक्त्रे तत फणिलतादलवीटिका स्वे
विन्यस्य चन्दनघनावृत पूगगर्भाम् ।
रामेऽब्रवीदय गृहाण मुखे न वाले
तच्छद्मना तदधर प्रमातुम् ।।

—हनुमन्नाटक २/१३

आज दुइ को विलास अली मैं
दुरै दरश्यो कहते नहि आवत ।
नदलला अति ही हठकै
वृषभानुकुमारि को पान खवावत ।
ओठन सौं पिय अगुलि छै
मुसकाय कै नैन सो नैन मिलावत ।।
नासिका मोरि मरोरि कै भौंह
करै तिय नाहि लो लो सुख पावत ।।

—कृष्ण कवि
(आत्मज कविवर विहारी)

गुणधर्म विवेचना—

ताम्बूलपत्र तीक्ष्णोष्ण कटु पित्तप्रकोपणम् ।
सुगन्धि विशद तिक्त स्वर्यं वातकफापहम् ।।
स्रसन कटुक पाके कषाय वन्हिदीपनम् ।
वक्त्रकण्डूमलक्लेद दौर्गन्ध्यादि विशोधनम् ।।

—सु० सू० ४६

ताम्बूल सक्षार रुच्यमुष्ण कफप्रणुत् ।

अष्टागसग्रह

ताम्बूल कफ्य तीक्ष्णोष्ण तुवर सरम् ।
वल्य तिक्त कटुक्षार रक्तपित्तकर लघु ।।
वल्य श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यमलवात श्रमापहम् ।

—[illegible]० र०

नागवल्ली कटुस्तीक्ष्णा तिक्ता पीनसवातजित् ।
कफकासहरा रुच्या दाहकृत् दीपनी परा ।।

—रा० नि०

ताम्बूल कटु तिक्तमुष्णमधुर क्षार कषायान्वित ।
वातघ्न कफनाशन क्रमिहर दुर्गन्धनिर्णाशनम् ।।
वक्त्रस्याभरण विशुद्धिकरण कामाग्निसदीपन ।
ताम्बूलस्य सखे ! त्रयोदशगुणा स्वर्गेऽपि ते दुर्लभा ।।

—ध० नि०

ताम्बूलमुक्त तीक्ष्णोष्ण रोचनं तुवरसरम् ।
तिक्त क्षारोपण कामरक्तपित्तकर लघु ।।
वश्य श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यमलवात श्रमापहम् ।
मुखवैशद्यसौगन्ध्यकान्तिसौष्ठवकारण ।।

—यो० र०

ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागवल्ली च सा स्मृता ।
तस्या पत्र ताम्बूल लोके सुविदित्त परम् ।।
ताम्बूल मुखशुद्धयर्थं प्राय- सर्वत्र युज्यते ।
क्वचित् पूगादिसयुक्त क्वचिदेकलमेव च ।।
ताम्बूल कटुतिक्तोष्ण रक्तपित्तकर सरम् ।
तीक्ष्ण वातकफध्वसि हृद्य वृष्य च जन्तुजित् ।।

—प्रि० नि०

ताम्बूल मुखशुद्ध्यै प्रयुज्यते तु किक्तकटुवीर्योष्णम् ।
वातकफामयशमन हृद्य वृष्यञ्च जन्तुघ्नम् ।।

—षोडशाङ्गहृदयम्

सरोष्ण ताम्बूल मुखविरसताजन्तुकफहृत् ।
सपित्तासृग्वृद्धिस्मरमपवन वन्हिजननम् ।।

—सि० भे० मणिमाला

यह पूर्व मे कहा जा चुका है कि-आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने द्रव्यगुण विज्ञान तृतीय भाग मे हृद्य द्रव्यो के अन्तर्गत ताम्बूल का वर्णन किया है ।

हृदय नामक कोष्ठाग एक ऐसा अवयव है जो प्राणवह तथा रसवहस्रोत का अधिष्ठान है। हृदयाधिष्ठित वात वृद्धि के कारण हृदयगति तीव्र हो जाती है ताम्बूल वात का शमन कर हृदयगति की तीव्रता को कम कर देता है तथा रक्तभार को भी कम कर देता है। इस प्रकार हृदयगति की अनियमितता को [illegible] उसे नियमित करने से ताम्बूल श्रेष्ठ है।

सुतरा हृदयदौर्बल्य किंवा हृदयावसाद की स्थिति मे वैद्यजन ताम्बूल मे मकरध्वज को रखकर रोगी को खिलाते हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद विभाग मे ताम्बूल का आसव बनाकर हृदयरोगो मे दिया गया जिससे लाभ प्राप्त हुआ। इस सारे अनुसन्धान का विवरण आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने सचित्र आयुर्वेद (वैद्यनाथ) के अक्टू० ६७ एव जून ६८ के अको मे प्रकाशित करवाया है, विस्तृत वर्णन हेतु पाठको को ये अक देखने चाहिये। इस ताम्बूलासव की निर्माण विधि का वर्णन आचार्य जी ने अपने नवीन आर्यावृत्तबद्धग्रन्थ "षोड्शाङ्गहृदयम्" मे भी किया है—

ताम्बूलस्य स्वरसो द्रोणमितोऽथो गुडस्तदर्ध स्यात्।
प्रस्थद्वयञ्च धातकिपुष्प पलिकञ्चतुर्जातम् ॥
ताम्बूलासव एषस्त्वनुभूतो हृद्भवेषु रोगेषु।
हृद्दौर्बल्ये पादस्थित शोथेऽतीव लाभकर ॥

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ही डा० ओ० पी० मे उपाध्याय एव डॉ० जे० के० ओझा ने भी हृदयरोगो मे ताम्बूल को उपयोगी पाया है जिसका विस्तृत विवरण इन लेखकद्वय ने आयुर्वेद विकास (डावर) के जनवरी ८४ अक मे किया है। इस प्रकार के अनुसन्धानो को डा० श्रीकृष्णचन्द्र चुनेकर ने "वानस्पतिक अनुसन्धान दर्शिका" से लिखा है। पाठको की जानकारी के लिए इन्हें यहा उद्धृत किया जा रहा है—

१ प्राणियो के हृदय पर इसके पत्र की क्रिया का अध्यापन किया गया है। इसके सुरासारीय सत्व के जलविलेय अश मे सबसे अधिक क्रिया पाई गई एव मुख द्वारा इसका शीघ्र तथा स्थिर प्रभाव होता है। यह हृदय की अनियमितता को दूर करके एव गति कम करके उसकी शक्ति को बढ़ाता है। इसके कार्यों को आयुर्वेदिक सिद्धान्तो के आधार पर भी सिद्ध किया गया। —प्रि० व्र० शर्मा एव च० चतुर्वेदी

२ प्राणियो पर प्रयोग से देखा गया कि हृदय पर इसके सुरा निस्सार का जलविलेय अश डिजिटेलीन की तरह प्रभाव होता है। इसका कार्यकर अंश जल मे विलेय है और यह उष्णता से नष्ट होता है। इसके अन्य निस्सार जैसे जलीय, सुराजन्य, पेट्रोलियम ईथर जन्य मे क्रमश कम प्रभाव देखा गया है।

—प्रि० व्र० शर्मा, च० चतुर्वेदी

३ प्राणियो मे इसके प्रयोग से देखा गया कि यह हृदय की गति को कम करता है तथा प्रसारकाल एव विश्रान्तिकाल को बढ़ाकर गति को नियमित करता है। मुख द्वारा प्रयोग से भी इसका तत्काल प्रभाव होने लगता है तथा वह बना रहता है।

—प्रि० व्र० शर्मा, च० चतुर्वेदी

४. इसके सुगन्धित तैल का प्राणियों मे गुण-कर्मीय अध्ययन किया गया है। इससे रक्त दवाव, हृदय की गति तथा सकोच मे कमी होती है।

—एस. एम अली, आर० के० मेहता

ताम्बूल के बहुत से गुणो मे कामाग्निवर्धक गुण भी एक है अत यह ब्रह्मचारी, तपस्वी, सन्यासी और विधवा स्त्री के लिए वर्जित है। यहाँ तक ब्रह्मवैवर्त पुराण मे ऐसे लोगो के लिए यह गोमास के समान माना गया है—

ताम्बूल विधवास्त्रीणा यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
तपस्विना च विप्रेन्द्र गोमांस सदृश ध्रुवम् ॥

इसका प्रभाव कामेन्द्रियो पर तीव्र उत्तेजक होता है। चूना और कत्थे के साथ यह अधिक कामोद्दीपक बन जाता है। इसका प्रभाव पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो पर अधिक होता है सुतरा वेश्यायें इसका अधिक सेवन करती हैं। इस काम की विविध परिभाषायें प्रस्तुत की गई हैं किन्तु स्पष्ट एव सरल परिभाषा यह है कि—

स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां पुरुषेषुवा।
परस्परकृत स्नेह काम इत्यभिधीयते ॥

इस काम की वृद्धि करने वाले द्रव्यो को बाजीकरण कहा गया है—

यद् द्रव्य पुरुष कुरुते वाजीव सुरतक्षमम्।
तद् वाजीकरमाख्यातं मुनिभिर्भिषजां वरैः॥

ताम्बूल भी एक प्रमुख वाजीकरण किंवा वृष्य द्रव्य है। रसिक कवि लोलिम्बराज ने इसे प्राथमिकता प्रदान की है—

ताम्बूल मधु कुसुमस्रजो विचित्रा
कान्तार सुरतरु नवा विलासवत्य ।
गीतानि श्रवणहराणि मिष्टमन्न
क्लीवानामपि जनयन्ति पचबाणम्॥

—वैद्यजीवन ५/१

इसके अतिरिक्त भी ताम्बूल की महत्ता प्रदर्शित की गई है। यह वृष्ययोगो मे गुणवृद्धि एव स्थायित्व-सम्पादन करता है, सुतरा इसे प्रयुक्त किया जाता है—

भोजनानि विचित्राणि 'ताम्बूल मदिरास्रव ।
मनसश्चाप्रतीघातो वाजीकुर्वन्ति मानवम् ॥

—सुश्रुतसहिता

ताम्बूलमच्छमदिरा कान्ता-कान्ता निशाशशाकाका ।
यद्यच्च किंचिदिष्ट मनसो वाजीकर तत्तत् ॥

—अ० हृ०

लवग केशर चैव दरदेन समन्वितम् ।
ताम्बूलेन सम भक्ष्य धातुवृद्धिकर मतम् ॥
ताम्बूलेन समायुक्त भक्षयेल्लोहमुत्तमम् ।
अग्निदीप्तिकर वृष्य देहकान्ति विवर्धनम् ॥

—र० रा० सु०

सूरण तुलसीमूलं ताम्बूलेन तु भक्षयेत् ।
न मुचति नरो वीर्यमेकेनैव न सशय ॥

—र० म०

जातीफल लवंग च जातीपत्र सकुंकुमम् ।
सूक्ष्मैलाचाहिफेन च त्वाकारकरभ तथा ॥
प्रत्येक कर्षमात्राणि कर्पूर शाणमात्रकम् ।
नागवल्लीदलरसैर्वटी चणकसन्निभा ॥
वीर्यस्तम्भनी एषा वलवीर्यातिवर्धिनी ।

—यो० र०

प्राय चिकित्सक ध्वजभग के रोगी को ताम्बूल का बाह्याभ्यन्तर प्रयोग कराते है किन्तु यह ध्यान रहे कि प्रारम्भ मे इसका प्रयोग उपयुक्त नही है। ध्वजभग के रोगी की यह प्रबल इच्छा होती है कि वह शीघ्र ही रमणसमर्थ हो जाय। प्रबल कामेच्छा-युक्त ध्वजभङ्ग का रोगी यदि विशेषत दुर्बल रक्तहीन, उत्साहरहित और पाचन विकारग्रसित हो तो उसकी कामवासना को पूर्व मे शान्त करने का प्रयास करना चाहिए। इस हेतु उसे रास्नासप्तक क्वाथ मे एरण्ड-स्नेह डालकर पिलाना चाहिए। इस प्रकार उत्तेजना शान्त हो जाने के पश्चात उसके विकारो को दूर कर पुन उत्तेजना उत्पन्न करने के समय ताम्बूल को स्मरण करना चाहिये। ध्वजभङ्ग के रोगियो के लिये यह एक उत्तम सहायक औषधि सिद्ध होती है। कदाचित् यह युक्तियुक्त होने पर मुख्य औषधि का भी काम कर देता है।

पाचन सस्थान पर भी इनका विशेष प्रभाव देखा गया है। पान खाने से मुख की अम्लता एव दुर्गन्ध नष्ट होती ह। आमाशयिक ग्रन्थियो को यह उत्तेजित करता है। अजीर्ण, अग्निमाद्य, अरुचि विबन्ध आदि इसके उपयोग से नष्ट होते हैं। यह उष्ण, कटु तिक्त एव कफघ्न होने से स्रोतोरोध को समाप्त कर जाठराग्नि की वृद्धि मे सहायक होता है। बूटी प्रचार के लेखक महन्त श्री सुखरामदास लिखते हैं कि "पान पर कत्था चूना लगाकर छोटा इलायची, दालचीनी, जावित्री और सुपारी आदि डालकर खाने से मन्दाग्नि, मुख की दुर्गन्ध और कफाधिक्य समाप्त होता है।" एतावता यह मुखवैशद्यकारक, दुर्गन्ध नाशन, लाला-प्रसेकजनन, रेचन, दीपन-पाचन, अनुलोमन आदि विशेषणो से जाना है। आयुर्वेद भूषण आशुकवि साहित्य महोपाध्याय पडित श्री हरिशास्त्री दाधीच ने एक स्थान पर लिखा है कि—

मन्दाग्निमाहन्तुमभीप्सते चेत्
कान्तामतल्लि त्वमये तदाशु ।
ताम्बूल वल्लीदल पानकेन
सजीवनीमेकवटी भजस्व ॥

—सजी० साम्राज्यम्

पाचनक्रिया को सुचारु बनाये रखने के लिए ही तो भोजन के पश्चात् ताम्बूल सेवन का निर्देश दिया जाता है।

यह उत्तम कृमिघ्न भी है। इसका कारण ताम्बूल मे स्थित सुरभित तैल है। यह केंचुवो के लिये चिनोपोडियम के तैल के समान हानिकर है। बाह्य प्रयोग से यूकलिक्षादि भी नष्ट होते हैं—

"ताम्बूलपत्रजो (रस.) वापि लेपनाद्यूकना शकन.।"

इसके पत्तो एव तैल को जीवाणु विरोधी क्रिया का भी जी० पी० वागड, आर० ई० राव, के० सी० वर्मा आदि अनुसन्धाताओ ने अध्ययन किया है। सांगर बगलापान से प्राप्त तैल मे यह गुण सबसे अधिक पाया गया।

यह कटु-तिक्त और तीक्ष्ण-उष्ण होने से कफघ्न है, सुतरा कफजन्य किवा कफ प्रधान रोगो मे यह उपादेय है। कास-श्वास, प्रतिश्याय, स्वरभेद आदि रोगो मे इसका स्वरस औषधि रूप मे किवा अनुपान रूप मे व्यवहृत होता है। फुफ्फुसो मे कफ वृद्धि होने पर, कण्ठ मे श्लेष्मा की बाधा होने पर तथा फुफ्फुस प्रदाह मे ताम्बूलपर्ण स्वरस उपयोगी है। इसमे आर्द्रक स्वरस एव मधु मिलाकर इसे अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। प्रतिश्याय मे तो कोई उपयुक्त योग को ताम्बूलपत्र मे रखकर चबाया जाता है। बहुत से योग इसके स्वरस मे घोटकर ही बनाये जाते है। अज्ञातनामा योगरत्नाकरकार ने कास-श्वासाधिकार मे नागवल्लभ नामक एक प्रयोग लिखा है—

कर्पमाना मृगमदचोचटकणका अथ।
काश्मीरजन्मदरदपिप्पल्य. स्युर्द्विकर्षिका ॥
आकारकरभे जातीपत्री जातीफल विषम्।
प्रत्येक पलमानानि कृत्वार्यथ सुखल्वके ॥
अहिवल्लीदलरसैर्मर्दयेच्च दिनत्रयम्।
मुद्गप्रमाणा वटका लीढा मध्वार्द्रकद्रवै ॥
ताम्बूलचर्विता मोहकास क्षयमरुद्धरा।
नागवल्लभनामोऽय रसो विश्वोपकारक ॥

श्लेष्मव्याधि मे सजीवनी साम्राज्यकार ने भी लिखा है कि—

श्लेष्मोत्थरोगैरसि विक्लवा चेत्
ताम्बूलवल्लीदल वीटिकायाम्।
प्रिये। द्विरक्तिप्रमिताम्बरेण
सजीवनी भक्ष्यतु मास्म भैषी ॥

तमकश्वास, पार्श्वशूल, श्वसनकज्वर, उत्फुल्लिका आदि रोगो मे इसके पत्ते गर्म कर बाधे जाते हैं जिससे कफ का विम्लापन होकर आराम हो जाता है। बालकों को प्रतिश्याय हो जाने पर ताम्बूल पत्र पर एरण्ड तैल लगा गरम कर छाती पर बाधना चाहिये।

मणिमालाकार ने श्वास रोगी के लिए नागवल्ली-स्वेद को अत्युपयोगी कहा है—

दीपोपरि चालनिका तदुपरिवसन्
वितत्य तनुतन्तु।
स्विन्नानि नागवल्ली दलानि बध्नीत
वक्षसि श्वासी ॥

यह शीतप्रशमन तथा ज्वघ्न होने से शीतपूर्वक ज्वर मे उपयोगी है। उष्ण, तीक्ष्ण, तिक्त, कषाय गुणो वाला होने से यह रसवहस्रोतस् मे जाकर सम्प्राप्ति सम्मूर्च्छन जनित आम एव स्रोतोरोध को दूर कर ज्वर का शमन करता है। वातव्याधि मे नाडी दौर्बल्य दूर करने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है। मेदोवृद्धिजन्य तथा आमवातज सन्धि पीडा को नष्ट करने मे यह श्रेष्ठ है। अग्निमाद्य के कारण उत्पन्न दुर्बलता मे भी यह कटुपौष्टिक होने से लाभ पहुचाता है।

देहदौर्गन्ध्य एव पारद विकारो मे इसका लेप, मर्दन करने से लाभ होता है। कहा गया है—

ताम्बूलपत्र चूर्णन्तु चूर्ण कुष्ठाशिवाभयम्।
वरिणालेपन कुर्यात् गात्रदौर्गन्ध्य नाशनम् ॥
—शा० स० उ० ११/११६

नागवल्लीरसप्रस्थ भृङ्गराजरस तथा।
तुलस्याश्च रस प्रस्थ छागदुग्ध समाशकम् ॥
मर्दन सर्वगात्रेषु यामयुग्म दिनत्रयम्।
स्नान शीतलतोयेन सुतदोषप्रशान्तये ॥
—यो० र०

शूल-शोथ का शमन करने के कारण पार्श्वशूल की भाति स्तनशोथ, ग्रन्थिशोथ आदि पर भी इसका पत्र गरम कर बाधा जाता है। असह्य कर्ण वेदना मे कत्था-चूना युक्त पान की पीक लाभप्रद है।

ताम्बूलवीटिका मीकगण्डूष श्रवणे किरेत् ।
निश्चित तेन तत्रत्य शूलार्तिर्मङ्क्षू नश्यति ॥

—सि० भे० म० मा०

इसी प्रकार कण्ठरोगो मे भी इसके स्वरस मे उष्ण जल मिलाकर गण्डूष करने से शोथशूल का शमन होकर रोगी लाभ प्राप्त करता है। कालिदास नामक वैद्यवर ने इसे वृश्चिकदंश पीडित रोगी के लिए भी लाभदायक कहा है—

ताम्बूल गोमयोपेत
भक्षयेद् वृश्चिकातुर ।
सहसैव तु तद् व्याधि
र्नाश यातिन सशय ॥

—वैद्य मनोरमा

श्लीपद मे —

सप्तताम्बूल पत्राणा कल्क तप्तेन वारिणा ।
सम्मृष्ट लवणोपेत श्लीपद हन्ति सेवनन् ॥

—वगसेन

ताम्बूल सेवन-विधि—महाभारत वनपर्व मे एक कथा युधिष्ठिर को मार्कण्डेय ऋषि ने सुनाई, जो वृत्रासुर से सम्बन्धित थी। उसमे ऋषि ने कहा है कि वृत्रासुर का पाप तीन भागो मे विभक्त करके ताम्बूल, स्त्री और द्यूत (जूआ) को दिया गया। ऋषि के इस कथन का दृष्टिकोण कुछ भी रहा हो, किन्तु हमारी सम्मति से ताम्बूल एव स्त्री मे कोई पाप की बात नही है। महर्षि सुश्रुत ने ताम्बूल को शुभ कहा है—पत्र ताम्बूलज शुभम्"। तब ही तो प्राय प्रत्येक मागलिक कार्यो मे ताम्बूल को लिया जाता है।। इसी मार्कण्डेय के पुराण मे लिखा है कि' देवताओ, किंवा ब्राह्मणो को समर्पित किये विना पान खाने मे दोष है—अदत्वा द्विज देवेभ्यस्ताम्बूल वर्जयेत् बुध."। अर्थात् ताम्बूल सेवन का एक विधान है, उसके अनुसार न सेवन करने से किंवा अत्यधिक सेवन करने से ताम्बूल मे पाप (दोष) है, इसी प्रकार स्त्री सेवन के अतियोग मे भी पाप (हानि) है—"व्यायामजागराध्वस्त्री भजन्नति विनश्यति"। कविवर श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भी कहा है कि आनन्दातिरेक प्रकृति का धर्म होना चाहिये। जब यह आनन्द जीवन के अन्य क्षेत्रो मे नही मिलता, तब मनुष्य बलपूर्वक, इच्छापूवक उसकी खोज काम मे करने लगता है। यही पाप है।"' जो स्त्री युवक की प्रेमिका, प्रौढ़ की मित्र और वृद्धि की सेविका बनकर रहती है, उसमे पाप का वास कहा? अथवा स्त्री से यहा वारवधू अभिप्रेत है। कहा भी है-"वेश्या प्रत्यक्ष राक्षसी"। भगवान् चरक ने तब ही तो वेश्या प्रसङ्ग व द्यूत आदि मे रुचि न रखने का निर्देश दिया है (यहा ताम्बूल का निषेध नही है)

—'नमद्यद्यूतवेश्याप्रसङ्गरुचि स्यात्"

(चरक० सू० ८/२५)

यद्यपि चरक सुश्रुत सहिताओ मे औषधि के रूप मे ताम्बूल का वर्णन नही मिलता किन्तु मुखशुद्धि, किंवा भोजन के सम्यक् पाचन के लिए ताम्बूल सेवन का निर्देश है—

धार्याण्यास्येन वैशद्यरुचिसौगन्ध्यमिच्छता ।
जातीकटुकपूगाना लवङ्गस्य फलानि च ॥
कक्कोलस्य फल पत्र ताम्बूलस्य शुभ तथा ।

—चरक० सू० ५/७७

इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थकारो ने भी कहा है कि—

कर्पूरजाती कंकोललवगकटकाह्वयै ।
सुचूर्णपूगै. सहित पत्र ताम्बूलज शुभम् ॥
मुखवैशद्यसौगन्ध्यकान्तिसौष्ठवकारकम् ।
हनुदन्त स्वरमलजिह्वेन्द्रियविशोधनम् ॥
प्रसेक शमन हृद्य गलामयविनाशनम् ।

—शा० स० उ० १०

एला लवङ्गखदिरपूगचूर्णपरिष्कृतम् ।
नागवल्लीदल खादेन्मुखसौरभ्यहेतवे ।।
—सि० भे० म० मा०

ताम्बूल भोजन के पश्चात् एव स्त्री प्रसङ्ग के समय सेवन करना उपयुक्त है । वैसे इसके सेवन का समय कहा गया है—

रते सुप्तोत्थिते स्नाते भुक्ते वान्ते च सगरे ।
सभायां विदुषा राज्ञा कुर्यात्ताम्बूलचर्वणम् ।।
प्रत्युपसि भुक्तसमये युवतीना चैव सगमे विरमे ।
विद्वद्राजसभाग्या ताम्बूलं यो न भक्षयेत् स पशु ।।
—यो० र०

परन्तु यह ध्यान रहे कि सोते समय ताम्बूल मुख मे रखकर ही न सोवें एव ताम्बूल सेवन के पश्चात् दातों को अच्छी तरह साफ कर लें ।

ताम्बूल मे मिलाये जाने वाले मुख्य तीन द्रव्य हैं—चूना, कत्था और सुपारी । इनमे चूना वातकफहर, कत्था पित्तहर और सुपारी कफपित्त शामक है । अत प्रात. सुपारी की, मध्याह्न मे कत्थे की और रात्रि मे चूने की अधिकता होनी चाहिये —

पूगाधिक प्रभाते स्यान्मध्याह्ने खदिराधिकम् ।
चूर्णाधिक निशाया तु ताम्बूल भक्षयेत्सदा ।।
—यो० र०

इन द्रव्यो के एव इसमे डाले जाने वाले अन्य द्रव्यो के गुण-धर्म द्रव्यगुण विज्ञान मे देखने चाहिये । सक्षिप्त मे यह श्लोक पर्याप्त होगा—

कषाय ताम्बूलीदलमकफमुष्ण पवननुद्धिम
रूक्ष पूग तुवरमकफ पित्तशमनम् ।
सितचूर्ण श्लेष्मानिलजयि तथोष्ण खदिरजो
बलासृक् पित्तकृमिगरमकुण्ठास्यगदहृत् ।।
—सि० भे० म० माला

इसमे ताम्बाखू डालकर खाना अतीव हानिप्रद है । सौंफ, लवङ्ग, छोटी इलायची, पिपरमेण्ट (पुदीना-सत्व), नारियलगिरी कतरन, शीतलचीनी, कपूर, गुआपत्र, मुलहठी, जायफल, गुलकन्द, केशर, कस्तूरी, स्वर्णवर्क (स्वर्ण वर्क) आदि यथावश्यक न्यूनाधिक द्रव्य ताम्बूल मे डालकर इसे अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है ।

बिना ताम्बूल के सुपारी एव बिना सुपारी के ताम्बूल खाना ठीक नही है । सुपारी विकाशि गुण युक्त कही गई । यह धातुओं से ओज को विभक्त कर, सन्धियो को शिथिल कर शरीर को सुखा देती है । अकेली सुपारी बुद्धिभ्रश उत्पन्न करती है । सुतरा कहा गया है—

विना पर्ण मुखे दत्वा गुर्वाकं भक्षयेद्यदि ।
तावद् भवति चाण्डालो यावत् गङ्गा न गच्छति ।।
—कर्म लोचन

अनिधाय मुखेपर्णं पूग खादयते नर ।
मति भ्रशो दरिद्र स्यादन्ते न स्तरते हरिम् ।।
—रा०नि०

पान को लगाते समय उसका अग्रभाग, मध्यभाग एव पीछे का भाग इनको निकाल देना चाहिए ताम्बूल के अग्रभाग, मध्य एव अन्तिम भाग में विषैले तत्व अधिक होते हैं । ये विष (फिनेहिल आदि) रक्त में प्रविष्ट होकर अग्निमाद्य, मूर्च्छा आदि विविध उपद्रव उत्पन्न कर सकते हैं, अत. इनका निकालना आवश्यक है, प्राच्यो ने भी कहा है—

आयुरग्रे यशो मूले लक्ष्मीर्मध्ये व्यवस्थिता ।
तस्मादग्र तथा मूल मध्यं पर्णस्य वर्जयेत् ।।
पर्णमूले भवेत् व्याधि पर्णाग्रे पापसम्भव ।
मध्य पर्ण हरत्यायु सिरा बुद्धि विनाशिनी ।।

सेवनार्थ कृष्ण वर्ण के पान उत्तम नही कहे गये हैं—वे तिक्त, उष्ण, कषाय एव दाह, मुख जडता उत्पन्न करने वाले होते हैं । शुभ्र किंवा सम्यक् पके पान वातकफ शामक, रोचक एव दीपन-पाचन होते हैं —

कृष्ण पर्ण तिक्तमुष्ण कषाय
धत्ते दाह वक्त्रजाड्य मलञ्च ।
शुभ्रं पर्ण श्लेष्मवातामयघ्न
रुच्य वृष्य दीपनपाचनञ्च ।।
—अभि० निघण्टु

नवीन पान भी ठीक नही है। खाने के लिए पुराने पान लेने चाहिए। नवीन पान को जल से सीच कर उपयोगी बनाया जा सकता है। कुछ समय पान को जल मे रख दें और इसके अनन्तर मोटे वस्त्र मे पान को चारो ओर से भली प्रकार रगडकर पुन शुद्ध जल से प्रक्षालन कर अनुपयोगी भाग को निकालकर उपयोग मे लावें।

पान खाकर प्रथम तथा द्वितीय पीक थूक देनी चाहिए क्योकि प्रथम पीक विष तुल्य होती है तथा दूसरी पीक मलभेदक व देर से पचने वाली होती है—

आद्य विषोपम पीत द्वितीय भेदि दुर्जरम्।
तृतीयादि तु पातव्यं सुधातुल्य रसायनम्॥
—यो० र०

यह ध्यान रहे कि हर कही पान की पीक थूककर स्थान को गन्दा नही करना चाहिये। कविराज श्री द्वारिकाप्रसाद का कहना है कि—पान थूकने के सम्बन्ध मे हम बडे अशिष्ट हो जाते हैं। हमारी "पिच पिच" से भारत का कोना-कोना भ्रष्ट हो रहा है। नाटक, सिनेमाहाल, घर, बाहर, ट्रेन व रेल्वे स्टेशनो आदि पर थूकते रहते हैं। जहा साफ-सुथरा देखा वही थूक दिया। इस प्रकार थूकते रहने से अनेको विषैले कीटाणु पैदा हो जाते हैं, जो नाना प्रकार के रोगो को पैदा कर देते हैं।

—(शुचि अगस्त ६०)

यूनानी मत—दूसरी कक्षा मे गरम व रूक्ष है। यह दिल, जिगर और दिमाग को ताकत देता है। शरीर मे उत्तम रक्त पैदा कर दोषो को छाट देता है। यह त्रिदोषनाशक, शान्तिदायक और कामशक्ति को बढाने वाला है। यह शरीर के रोमकूपो को खोल देता है। इसके खाने से दांत और मसूडे मजबूत होते हैं। कफ की वजह से पैदा हुआ दमा और खासी इसके सेवन से मिटते हैं। इससे गला और आवाज साफ होती है।

आधुनिक मत—डाक्टर देसाई के मतानुसार ताम्बूल उत्तम दीपन-पाचन, श्लेष्मघ्न, शोथहर, वेदना नाशक और व्रणरोपक है। ताम्बूल स्वरस प्रबल पूतिहर, यह कार्बोलिक एसिड की अपेक्षा पाच गुना अधिक बल युक्त और कीटाणुनाशक है। यह कफ प्रधान रोगो मे अति उपयोगी है। विशेषत श्वास, फुफ्फुस प्रणालीप्रदाह, स्वरयन्त्र प्रदाह में इसका बाह्याभ्यन्तर उपयोग किया जाता है। इससे श्वास का वेग कम होता है और प्रतिश्याय का बल भी घटता है।

डा० आर० एन० खोरी के मतानुसार ताम्बूल उत्तेजक, उदर वातहर और कीटाणुनाशक है।' यह आध्मान, मुखदौर्गन्ध्य, अपचन और उदरशूल पर उपयोगी है। इसका स्वरस प्रसेकमय व्याधिया, कण्ठरोहिणी तथा कण्ठ और श्वासनलिका के प्रदाह पर व्यवहृत होता है।

उदयचन्दराय के अनुसार ताम्बूल इस देश की साधारण औषधि है। बालको के विबन्ध मे एव उदर-विकार जनित अतिसार मे पान के डंठल पर तैल लगाकर गुदा मे प्रवेश कराया जाता है। इन पत्रो को बाधने मे शिर की पीडा, ग्रन्थिशोथ, स्तनशोथ आदि मिटते हैं और प्रसूता का दूध शुद्ध होकर निकलता है। क्षतस्थल पर ताम्बूलपत्र बाधने से क्षत शुद्ध होता है।

सन्याल और घोष के मतानुसार ताम्बूल सुगन्धित होता है। इसमें उडनशील तैल पाया जाता है। इस तैल मे से कास्टिक पोटास की मदद से चेवीपोल नाम का फेनाल प्राप्त किया है, जो कि कार्बोलिक एसिड से पाच गुना और यूवेनाल से दो गुना अधिक तेज होता है। इस चेटल फिनाल ही के कारण इसमे इतनी सुगन्ध पाई जाती है।

डा० कर्नल चोपरा के मतानुसार पान सुगन्धित, पेट के आध्मान को दूर करने वाला, उत्तेजक और सकोचक होता है। सर्पविष में इसे अन्त प्रयोग मे लेते हैं। डा० थामसन लिखते हैं कि इसके पत्तो का रस आखो मे डालने से आखो की बीमारी मिटती है। इससे मस्तिष्क के अन्दर होने वाले खून के जमाव पर भी लाभ पहुचता है। डाक्टर क्लेइनस्टक का कहना

है कि इसका उडनशील तैल जुकाम, गले का प्रदाह, रोहिणी रोग (डिफ्थीरिया) और खासी मे लाभप्रद है। यह कृमि नाशक है।

डिमक के लेखन अनुसार परीक्षा करके देखा गया है कि ताम्बूल तैल कफजन्य पीडा, गला, वागिन्द्रिय व श्वासनाडी शाखा (Bronchi) प्रदाह मे विशेष उपकारी है। इसमें सडन रोधक शक्ति है। डिफ्थीरिया नामक घातक गलशोथ मे इसका कवल एव धूम ग्रहण कराया जाता है। १०० ग्राम उष्ण जल मे एक बूद तैल देकर उससे उठे हुए वाष्प का आघ्राण देना चाहिए। इस देश में एक बूद तैल के बराबर चार ताम्बूल पत्र का रस दिया जा सकता है।

मिस्टर जे० वुड का कथन है कि इसके पत्तो को यदि कुछ गरम कर स्तनों पर बाधा जाय तो दूध का बहाव अवश्य बन्द हो जाता है और ग्रन्थियो की सूजन भी मिट जाती है।

सामान्य प्रयोग

बाह्य प्रयोग—

१. देहदौर्गन्ध्य—ताम्बूलपत्र, कूठ और हरीतकी को समान मात्रा मे लेकर जल मे पीसकर लेप करें।

२. पारद विकार—(क) ताम्बूल, भागरा, तुलसी तीनो का स्वरस बकरी के दूध मे मिलाकर सारे शरीर पर तीन-चार घटे तक मालिश करें, फिर शीतल जल से स्नान कर लें। इससे अशुद्ध पारद भक्षण से उत्पन्न विकारो का शमन होता है।

(ख) गन्धक को ताम्बूलपत्र एव तुलसीपत्र के साथ पीसकर लेप करने से भी लाभ होता है।

३. व्रणशोथ—ताम्बूल किंवा ताम्बूल की पुल्टिस बनाकर बाधने से शोथ-शूल का शमन होता है।

४. आघात—ताम्बूल पर कत्था-चूना लगाकर उसे तम्बाकू के साथ पीसकर गर्म कर चोट पर रख बाधने से पीडा शान्त होती है।

५. कर्णशूल—(क) कत्था-चूना लगे पान को अच्छी तरह चबाकर उसका पीक कान मे भर दें, इससे कान का उग्रशूल भी तुरन्त शान्त हो जायेगा।

(ख) ताम्बूल स्वरस को गरम कर पुन ठडा हो जाने पर कान मे डालें। स्वरस डालने के पश्चात् सेक भी आवश्यक है।

६. श्वास—तैल के दीपक के ऊपर चालनी रख दें एव कुछ ताम्बूलपत्र उस पर बिछाकर गर्म कर रोगी के पार्श्व तथा वक्ष पर रख कपडे से बाध दें। इससे कफ का विम्लापन होकर वह आसानी से निकल जायेगा तथा पार्श्व, वक्ष का शूल भी मिट जायेगा। कफ निकल जाने से श्वास रोगी को आराम मिलेगा।

७. विबन्ध—पान के डण्ठल मे नमक और घृत लगाकर गुदा मे लगाने से दस्त हो जाता है। यह ग्लेसरीन सपोजेटरी का काम करता है। इसे तैल लगाकर भी प्रविष्ट किया जा सकता है। यह विशेषत बालको के लिए उपयोगी है।

८. नेत्ररोग—(क) ताम्बूल स्वरस मे मधु मिलाकर आखो मे डालने से नेत्रशूल का शमन होता है।

(ख) नक्तान्ध्य (रतौंधी) मे भी इसका रस उपयोगी है।

(ग) वातिक अभिष्यन्द मे ताम्बूल पर घी चुपड कर आखो पर बाधने से लाभ होता है।

९ शिर.शूल—शख प्रदेश पर पान को बाधना चाहिये।

१०. स्तनरोग—स्तन पर बाधने से दुग्ध सचार बन्द होता है एव शोथ-शूल भी मिटते हैं।

११. यूका-लिक्षा—पारद मे मिलाकर रस को लगाना चाहिये।

१२. प्रतिश्याय—स्वरस का नस्य प्रतिश्याय प्रभाव को कम कर लाभ करता है।

१३. ध्वजभंग—शिश्न पर ताम्बूलपत्र बाधते हैं।

१४. यकृदाल्युदर—ताम्बूल पर तेल लगाकर यकृत् के स्थान पर रखकर बाधना उपयोगी है।

१५. वृश्चिकदंश—सोठ चूर्ण को पान-स्वरस मे पीसकर दंश स्थान पर लेप करें।

१६. परिवार नियोजन हेतु—पान-स्वरस और मधु मिश्रित तैल मे कपडे को भिगोकर सहवास से पूर्व योनि मे रखने से गर्भ नहीं रहता है।

१७. श्वसनक ज्वर—ताम्बूलपत्र पर तैल चुपड कर गरम कर छाती पर रख, उसके ऊपर अन्य एक-दो पत्र रखकर बाधने से श्वसनकज्वर, प्रतिश्याय, कास आदि से उत्पन्न वक्षशूल का शमन होता है। इसे दिन मे दो वार बाधना चाहिये। यह विशेषत बालको के लिये उपयोगी है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

१. नपुंसकता—(क) भोजन के वाद कत्था-चूना लगे पान मे सुपारी, एलु, कपूर कस्तूरी, जावित्री डालकर खाना चाहिये।

(ख) पान मे अम्बर एव कस्तूरी रखकर शीत-काल मे लाभप्रद है।

(ग) पान पर मालकागनी का तैल १० बूद लगा-कर दिन मे २-३ वार खाने से भी नपुसकता मिटती है। परन्तु इन प्रयोगो के सेवन के समय दूध-घी का अधिक सेवन करना चाहिये।

२. प्रतिश्याय—(क) तीन पान १२ तुलसीपत्र १२५ मि० लि० जल मे डालकर पकावें। आधा पानी शेष रहने पर १२ ग्राम मधु मिलाकर सेवन करने से प्रतिश्याय एव प्रतिश्याय जन्य कास का शमन होता है।

(ख) ताम्बूल स्वरस को गरम कर पीना भी उप-युक्त है।

(ग) नव प्रतिश्याय मे ताम्बूल मे अम्बर रखकर देना ठीक है।

(घ) पान की जड और मुलहठी को पीसकर मधु मिलाकर चाटें।

३. श्वास—कत्था-चूना लगे पान मे २ काली-मिर्च और एक इलायची डालकर धीरे-धीरे चवावें। इस प्रकार लगातार तीन-चार पान खावें।

४ स्वरभग—(क) ताम्बूललता के मूल के छोटे-छोटे टुकडे कर मुख मे रख चूसते रहने से स्वर शुद्ध होता है। गायकों के लिए यह उपयुक्त है।

(ख) पान चवाने से भी स्वरभङ्ग मिटता है।

५. मुखदौर्गन्ध्य—ताम्बूल पर चूना-कत्था लगा-कर, शीतलचीनी २५० मि० ग्रा०, जावित्री १२५ मि० ग्रा०, इलायचीदाना १२५ मि० ग्रा०, कपूर ३० मि० ग्रा० आदि उसमे डालकर चर्वण करें। ऐसे पान दिन मे ३-४ वार चवायें।

६. तृष्णा—पान मे पोदीना सत्व (पिपरमेंट) डालकर खावें।

७. गात्रदौर्गन्ध्य—मेदस्वी व्यक्ति के शरीर से यदि दुर्गन्ध आती हो तो वह पान में केशर रखकर खाया करें।

८. आमाशयशूल—सौंफ व लौंग पान मे रखकर खावें।

९. हृदयरोग—(क) ताम्बूल-स्वरस मे द्विगुण शर्करा मिला शर्वत वनाकर सेवन करें।

(ख) ताम्बूल मे ऐला व कस्तूरी रखकर खावें।

१०. उदरकृमि—पान मे शु० कपूर, लौंग और जायफल डालकर भोजन के वाद सेवन करना लाभ-प्रद है।

११. हिक्का—(क) पान की जड ६ ग्राम का क्वाथ वनाकर उसमे घी मिलाकर पीवें।

(ख) पान मे पिप्पली चूर्ण रखकर खाने से लाभ होता है।

(ग) पान मे स्वर्णदल (सोने का वर्क) रखकर खाने से भी लाभ होता है। —(हेमदल गिल मिश्र नागदलेतालिङ्गितम्)।

१२. बहुमूत्र—बहुमूत्र मे भी पान खाना हित-कर है।

१३. रोहिणी रोग (डिफ्थीरिया)—(क) ताम्बूल तैल की एक बूद १०० ग्रेन पानी में मिलाकर कुल्ले (गण्डूष) करने से इस रोग मे लाभ होता है।

(ख) तैल के अभाव मे चार पानो का रस निकाल-कर उसमे गरम जल मिलाकर इससे भी गण्डूष किये जा सकते हैं।

१४. कास—(क) ताम्बूललता के फल (पान पिप्पली) को पीसकर इसके चूर्ण मे मधु मिलाकर सेवन करने से कफ निकलकर कास मे लाभ होता है।

(ख) ताम्बूल मे मधुयष्टि चूर्ण खाने से भी कास मे लाभ होता है।

(ग) कुकरकास मे कीटाणु विनाश के लिये ताम्बूल स्वरस हितकर कहा गया है।

१५. योषापस्मार—दूध मे ताम्बूल स्वरस किंवा ताम्बूल अर्क मिलाकर सेवन करना लाभप्रद है। इससे अजीर्ण एव ज्वर का भी शमन होता है।

१६. गर्भस्राव—ताम्बूल स्वरस मे कपोत विष्टा मिलाकर सेवन करना हितकारी है।

१७. मुखपाक—ताम्बूल स्वरस मे मधु मिलाकर सेवन करना लाभप्रद है।

१८. अग्निमांद्य—(क) पान मे सौंफ व मुलहठी डालकर खावें।

(ख) पान मे सैन्धवलवण डालकर खाना भी हितकारी है।

१९. अहिफेन विष—ताम्बूल स्वरस को तक्र के साथ सेवन करना फलप्रद है। इस प्रयोग से अहिफेन, भाग, गाजा, मदिरा आदि के अतियोग से उत्पन्न विष का निवारण होकर लाभ होता है।

२०. ज्वर—ताम्बूल के अर्क को गर्म कर पीने से शीतकाल का ज्वर मिटता है।

२१. उन्माद—पान मे गोरोचन रखकर खाने से उन्माद-अपस्मार मे लाभ होता है।

२२. सन्धिवात—ताम्बूल मे २-४ बूद नीम तैल को डालकर सेवन करने से सन्धिवात मे लाभ होता है।

२३. आमवात—ताम्बूल मे सौंठ चूर्ण मिलाकर सेवन करें।

२४. बालरोग—चूना-कत्था सहित (सुपारी रहित) पान को पीसकर छानकर उसमे थोडा मधु किंवा आर्द्रक स्वरस मिलाकर पिलाने से बालको के प्रतिश्याय, ज्वर कास आदि का शमन होता है।

२५. श्लीपद—सात पानो को पीसकर कल्क बना उसमे ६ ग्राम सेंधानमक चूर्ण मिला जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

२६. रक्तार्श—ताम्बूल एव कालीमिरच पीसकर कल्क बना सेवन करें।

२७. वृश्चिकदंश—पान मे अपामार्गमूल रखकर चबाने से वृश्चिकदंश जन्य पीडा का शमन होता है।

२८. क्षयरोग—पान की जड को कूट-पीस छानकर मधु मिलाकर सेवन करना चाहिये।

२९. परिवार नियोजन हेतु—इसकी कोमल जड को कालीमिर्च के साथ पीसकर सेवन करने से गर्भ नही रहता है।।

३०. सर्पविष—मूल को पान के बीडे मे रखकर खिलाने से वमन होकर लाभ होता है।

३१. कुचला विष—मूल का या पान के डठलो का रस १०० मि० लि० तक पिलाते है। वमन न होने पर पुन. पिलाना चाहिये।

विविध कल्पनाए—

१. नागवल्लभ रस—कस्तूरी, दालचीनी, सोहागे का फूला तीनो १०-१० ग्राम, केशर, शुद्ध हिंगुल, पीपल तीनो २०-२० ग्राम तथा अकरकरा, जायफल, जावित्री, बच्छनाग चारो ४०-४० ग्राम लेकर सबको मिलाकर नागरवेल के पान के रस मे तीन दिन तक खरल कर ३०-३० मि० ग्रा० की गोलिया बनालें। १-२ गोली दिन मे तीन वार नागरवल के पान मे रखकर दें। यह रस कास-श्वास, क्षय, वातव्याधि मे उपयोगी है। इसमे बच्छनाग का परिमाण अत्यधिक होने से इसका उपयोग सम्भालकर ही करना चाहिए। —यो० र०

इसी प्रकार कामिनी विद्रावणरस (भै० र०), पुष्पधन्वारस (भै०र०), मृगनाभ्यादि वटी (र० ता० सा०) वीर्यस्तम्भन वटी (यो० र०), नाग- गुटिका (र० त० सा०), श्वासरोगान्तक वटी (र०त० सा०) आदि योग भी ताम्बूल स्वरस के सयोग से ही बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त हीरक भस्म, अभ्रक

भस्म आदि भस्मे भी इसके सयोग से वनती हैं, जिनका विस्तृत विवरण रसग्रन्थो मे देखना चाहिए।

२. ताम्बूल अर्क—पका हुआ पान ७ ढोली (१ ढोली मे लगभग १७५ पान होते है), धाय के फूल १० किलो, गुड १० किलो, शहद ९ किलो तथा जायफल का मोटा चूर्ण ६० ग्राम इन सवको ६० लीटर जल मे २४ घण्टे भिगोकर १० किलो अर्क खीच लें। मात्रा ६ से १२ मि० ली० तक। यह कामोद्दीपक, बलवर्धक, शोषनाशक, पाचक एव शरीर के आभ्यन्तरिक अवयवो का पुष्टिकारक है।

—धन्व० वनौ० विशे०

३. ताम्बूल शर्वत—(क) वगला पान के स्वरस २५० मि० ली० मे ५०० ग्राम मिश्री मिलाकर एक तार की चाशनी तैयार कर लें। फिर उसमे वशलोचन, छोटी पीपल, छोटी इलायची के वीज और सोठ प्रत्येक का चूर्ण ६-६ ग्राम तथा लौंग, तज, केशर ३-३ ग्राम चूर्ण कर मिलाकर खूब घोटकर, शीशियो मे भर कर रखें। मात्रा—६-१२ ग्राम तक दिन मे तीन बार चाटने से दूषित कफ निकल कर कास-श्वास मे लाभ होता है। —आत्मसर्वस्व

(ख) उत्तम पके हुये ५० पानो के छोटे-छोटे टुकडे कर १ २५ लीटर पानी मे पकावें। अर्धावशिष्ट जल रहने पर छानकर, उसमे ६०० ग्राम शक्कर मिला, एक तार की चाशनी पका कर नीचे उतार ठण्डा हो जाने पर वोतल मे भर कर रखे। २५-३० ग्राम इस शर्वतमे समभाग जल मिलाकर दिन मे २-३ वार सेवन करने से हृदय वलवान् होता है। पाचन-क्रिया मे सुधार होकर हृदय दुर्वलताजन्य श्वास का दौरा कम हो जाता है। हृदय के विकारो मे यह विशेष लाभकारी है।

यदि इस शर्वत में पाक सिद्धि के वाद केशर, लौंग व जाविश्री का योग्य मात्रा मे चूर्ण कर मिला लिया जावे तो यह और भी उत्तम गुणकारी हो वाजीकरण एव हृदय को वलप्रद हो जाता है।

—धन्व० वनौ० वि०

४. ताम्बूलासव—(क) पान का रस एक द्रोण (१२ किलो २८८ ग्राम), गुड आधा द्रोण (६ किलो १४४ ग्राम), धाय के फूल २ प्रस्थ (१ किलो ५३६ ग्राम), दालचीनी १२ ग्राम, इलायची १२ ग्राम, तेजपात १२ ग्राम और नागकेशर १२ ग्राम (इन चारो द्रव्यो को चातुर्जात कहा जाता है) लेकर इनका सन्धान करें। आसव तैयार होने पर उपयोग मे लावें। यह हृदयरोग तथा हृदरोगजन्य पादशोथ मे लाभकर है। —षोडशाङ्गहृदयम्

(ख) प्रथम शुद्ध मटके को जामुन के नवीन हरे पत्तो के क्वाथ से अच्छी तरह धोकर साफ कर, उसके भीतर लाख का लेप कर, सूख जाने पर, खाड व अगर की धूनी देकर जमीन में ऐसा गाढ दें कि आधा मटका जमीन के भीतर रहे। फिर उसमे १५०० पान कूट-पीस कर डाले तथा धाय पुष्प ३३६, सुपारी कत्याचूर्ण प्रत्येक ५०० ग्राम, शहद ५ किलो, पानी ७ ५ किलो, ककोल व पीपल चूर्ण ९६-९६ ग्राम एव हरड, वहेडा, आमला, जायफल, वडी इलायची तथा लौंग के फूलो का चूर्ण ४८-४८ ग्राम मिला, सवको ३० दिन तक स्वच्छ हाथो से मलते रहे। जव सव द्रव्य एक रस हो जावे, तथा उसमे सू-सू शब्द होने लगे तव १५ किलो गुड को १३ लीटर जल मे मिला आग पर गरम कर अच्छी तरह घोलकर उसी मटके मे डाल दें तथा मुखमुद्रा कर १ मास तक सुरक्षित रखें। फिर छानकर वोतलो मे भर रखें। इसका रङ्ग सुगन्ध व स्वाद अत्यन्त उत्तम होगा। मात्रा—१२ मि० ली० सेवन से अर्श, सव प्रकार के कफ-विकार व अश्मरी मे लाभ होता है। यह वलवर्धक, कांतिकर व वीर्योत्पादक है। एक वर्ष तक नियमपूर्वक सेवन करने से आयुष्य की वृद्धि होकर शरीर सदा स्वस्थ रहता है। यह उत्तम रसायन है —गदनिग्रह

(ग) उत्तम पानो का रस १ लीटर लेकर काच की वोतल या चीनी मिट्टी के पात्र मे भर उसमे शहद २ ५ किलो, खाड १ किलो, मद्यार्क (४५ प्रतिशत वाला) आधा किलो तथा सोठ, अतीस, अकरकरा, दालचीनी, नागकेशर व तुलसी की मंजरी का चूर्ण

४८-४८ ग्राम मिला, अच्छी तरह सधान कर १५ दिन सुरक्षित रख छान कर, काम मे लावें। १ ग्राम से १२ ग्राम तक सेवन करने से कफज, कास, अग्निमाद्य, ज्वर, दौर्बल्य आदि नष्ट होते हैं। सन्निपात की अन्तिम अवस्था मे यह उत्तम है। यह कामोद्दीपक भी है। —ध० व० वि

ताम्बूल तैल—कूटे हुये १०० पान, सोंठ आधा किलो कूटी हुई को ४ लीटर पानी मे २४ घण्टे भिगोकर २ किलो मीठे तैल मे अग्नि पर पका लेवें। यह वात व्याधि की समस्त पीडाओ को नाश करने मे श्रेष्ठ है। —वनौ० शास्त्र

ताम्बूल विहार-(क) छोटी इलायची का दाना, जायफल और मुलहठी ६-६ ग्राम लेकर महीन चूर्ण बना डालें, उसको २५० ग्राम इत्र की गाद के साथ खरल कर रख लें। यह ताम्बूल विहार थोडा सा पान के बीडा मे खाने से अच्छी गन्ध देता है। अथवा कस्तूरी और तज १-१ ग्राम, केशर ३ ग्राम, जावित्री, शीतलचीनी, लवङ्ग और कत्था ६-६ ग्राम, जायफल और छोटी इलायची का दाना १२-१२ ग्राम, चिकनी सुपारी ६० ग्राम सबका चूर्ण उत्तम गुलाबजल से एक घडी खरल मे घोल कर बाजरे के समान गोलिया बना छाया मे सुखा डालें। यह भी चित्त को प्रसन्न करने वाला सुगन्धित ताम्बूल विहार पान के बीडा में खाने योग्य होता है। —प्रयोग पुष्पावली भाग–१

(ख) पान मे चूने से दुगना कत्था और थोडी सुपारी डाल कर खाये। एक बार मे दो पान और एक सुपारी का टुकडा तथा चूना और कत्था खाना चाहिए। पान मे १२० मि० ग्राम चूना, २४० मि० ग्राम कत्था और १ ग्राम सुपारी यह मात्रा विद्वानों ने निश्चित की है। इसके अतिरिल पान मे यदि सरसो बराबर कपुर डाल दें तो शीतल, पुष्टिकारक, नेत्रो का हितकारी, मुख का स्वाद ठीक करने वाले गुणो से युक्त होता है। यदि थोडी मात्रा मे केशर या कस्तूरी मिलाकर खाया जाय तो विशेष गुणयुक्त हो जाता है। कस्तूरी वीर्यवर्धक, मुख सौगन्ध्यकारक और गर्म होती है। पान के साथ जायफल और जावित्री भी खाये जाते हैं। जावित्री हल्की गर्म और कफनाशक है। इसके अतिरिक्त लौंग भी पड़ती है यह अग्निवर्धक, खासी, वमन, शूल, अफरा आदि नाशक है। छोटी इलायची भी पान के मसालो मे एक सुन्दर वस्तु है, यह कफ, श्वास, कास, मूत्रकृच्छ्र नाशक है। अर्थात् पान सब प्रकार के रोगनाशक है। इसमें ये मसाले डालकर इसे अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। पान मे विधिपूर्वक उपयोगी उक्त मसाले डालकर ही खाना चाहिए। बाजारू पान मे अनेकानक आजकल डाले जाने वाले मसाले हानिकारक हैं। अत. उनका परित्याग कर उपर्युक्त मसालो को ही काम मे लाना चाहिए। —धन्व० जुलाई ५०

पेटेण्ट प्रयोगो मे ताम्बूल—यह पूर्व मे कहा जा चुका है कि बहुत से योगो म इसके स्वरस की भावना दी जाती है। वृष्ययोग इसके स्वरस की भावना के बिना मानो प्रभावशून्य ही रहते हैं अत प्राय. वृष्ययोगो म इसकी भावना देकर उन्हे अधिक प्रभावी बनाया जाता ह। उदाहरण के रूप मे यहा पर कतिपय पेटेण्ट प्रयोगो का उल्लेख किया जा रहा है, ये प्रयोग चिकित्सक समाज म वृष्यरोगो के नाम से जान जाते हैं। श्री मोहता रसायनशाला हाथरस द्वारा निमित 'महास्तम्भन वटो' म ताम्बूल लता की जड काम मे ली जाती है। जनहित फार्मस्युटिकल्स हापुड द्वारा जो "सेक्सो कैपसूल" बनाये जात हैं उनम कौंचमूल, असगन्ध, विदारीकन्द आदि के अतिरिक्त ताम्बूल स्वरस की भावना दी जाती है। धूतपापेश्वर के "अक्रोडेट कैपसुल" म ताम्बूल ५० मि० ग्राम होता है। य कैपसूल स्त्री-पुरुष दोनो की मैथुनशक्ति को बढ़ाते हैं। य वाक्षपन मे भो उपयोगी है। चरक फार्मा० क "पोलरीवीन" नामक वृष्यगुटिका म ताम्बूल स्वरस की भावना देकर तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ द्वारा निर्मित "सिद्ध मकरध्वज वटी" "ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ़ द्वारा निर्मित" सिद्ध

चन्द्रोदय वटी", निर्मल आयुर्वेद सस्थान अलीगढ द्वारा निर्मित "नवशशक्ति चन्द्रोदय वटी" आदि वल, पौरुषवर्धक प्रयोगो मे भी ताम्बूल स्वरस की भावना दी जाती है।

शर्मा मेडिको के कैंपसूल "मूच्छारि कवच" मे भी व्राह्मी, अर्जुन, अश्वगन्धा क्वाथ की भावना के साथ ताम्बूल पत्रस्वरस की भी भावना दी जाती है। यह कैंपसूल मूर्च्छा, भ्रम, सन्यास की प्रत्येक अवस्था मे प्रभावशील है। इसी औषध निर्माता का एक और कैंपसूल है "उन्मादारि", इसमे भी जटामासी क्वाथ, व्राह्मी स्वरस एव ताम्बूल स्वरस की भावना दी जाती है। यह कैंपसूल मानसिक रोगो मे उपयोगी है।

पाचन क्रिया की कार्य शिथिलता, शारीरिक एव मानसिक कमजोरी मे उपयोगी प्रवाही है "आयुजेम सायरप" जिसका निर्माण आय औषधि फार्मा० इन्दौर द्वारा किया जाता है। इसमे मुनक्का शर्वत, दश-मूलारिष्ट, भृगराजासव आदि के अतिरिक्त ताम्बूल स्वरस भी डाला जाता है। इसी प्रकार का शरीर मे शक्ति-स्फुर्ति लाकर शरीर को निरोग रखने वाला सामान्य वलप्रद प्रयोग है—"जायुफल सायरप"। इस प्रयोग का निमाण करने वाला फार्मेसी है—"शिल्पा-केम" (इन्दौर)। इसमे भी लगभग ८ आसवारिष्टो के साथ ताम्बूल स्वरस मिलाया जाता है। यह गर्भिणी के लिय उत्तम प्रयोग है।

अनुभूत प्रयोग—

१. गर्भ रहने की दवा—एक वगला पान, एक लौंग, अफीम उत्तम १२५ मि० ग्राम तीनो को विना जल के पीस कर गोली वनाकर ऋतुधर्म से शुद्ध होकर प्रात काल गंगाजल से खा लेवे। प्रेमपूर्वक सन्तानोत्पत्ति की भावना से रमण करने से निश्चय ही गर्भ रहेगा। —श्रीदेवीचन्द वेरी

२. कोकिलकठ वटी प्रयोग—सूखे हुए पान, वच, कुलजन, वापची इनको समान मात्रा मे लेकर चने के वरावर गोलिया वनालें। १-१ गोली चूसते रहने से गला साफ होकर कठ सुरीले हो जाते हैं। ५-६ वटी से अधिक नही चूसे। इनमे पान सुखाकर उपयोग मे लावें। —करयचित्

३. हिक्कानिवारक प्रयोग—पान की वीडी, कत्था, चूना, सुपारी सहित नग ४ ले और उसमे चार छोटी इलायची व एक ग्राम जाविश्री मिलाकर सिल-लोडी ही से चटनी की तरह थोड़ा पानी डालकर खूब वारीक पीसें और उसको १२५ मि० ली० पानी मे ठडाई की तरह छान लें, तत्पश्चात् उसमे ११ मिट्टी की कोरी ठीकरी आग मे खूब गरम करके वुलकायें और उसको कपडे से फिर छानकर थोड़ा-थोडा घूट-घूट करके थोडी-थोडी देर पश्चात् पीवें। इसके सेवन से हिचकिया चाहे जिस कारण से और चाहे जितनी अधिकता से हो अवश्य वन्द हो जावगी।

—श्री तुलसीप्रसाद अग्रवाल
(तुलसी अनुभवसार)

४. चोट लगने से यदि खून वहने लगे तो— पान का पत्ता लेकर उसे हथेली मे मसल डालो। इसका रस कटे हुये या चोट लगे स्थान पर लगादो और ऊपर से पान का मसला हुआ भाग उसके ऊपर रख दो। रक्त अविलम्ब वन्द हो जायगा। यह प्रयोग छोटी-छोटी चोट एव चाकू आदि के कटाव पर सैंकडो वार का सुपरीक्षित है। आवश्यकता के समय काम मे ले। —वैद्या श्रीमती प्रकाशवती देवी जैन
(धन्व० सिद्ध चिकित्सक)

५. छर्दि निवारक प्रयोग—पान वगला नग २, छोटी इलायची छिलके सहित कुटी हुई नग ४, पोदीना हरा या सूखा ४ ग्राम, मिश्री सफेद २५ ग्राम। मिश्री के अतिरिक्त शेष वस्तुओ का २५० मि० ली० पानी मे औटावें, जव आधा रह जावे नीचे उतार कर कपडे से छान लें और मिश्री मिलाकर ठडा होने पर थोडा-थोडा थोडी-थोडी देर पश्चात् कै और उबकाइयों के रोगी को पिलावें। इसके सेवन से कै और उवकाई को चाहे जिस कारण से हो, तुरन्त लाभ होता है। श्री तुलसीप्रसाद अग्रवाल
(तुलसी अनुभवसार)

६. स्तम्भनप्रदा वटी—लौंग, अफीम, भाग, गुजराती इलायची, कमलगट्टा, जायफल और जावित्री इन सबको समानभाग लेकर महीन पीस पान के रस मे दो ग्राम प्रमाण की गोलिया बना लें। रतिक्रिया के पहले एक गोली दूध से नित्य खाने से अत्यन्त स्तम्भन होता है। —पं० श्री बाबूलाल द्विवेदी (धन्व० अगस्त ६८)

७. विरेचन प्रयोग—चूना, सुपारी, कत्था से लगे हुए पानो के १५ बीडा पत्थर पर घोटकर जल मिलाकर नवीन कपडे मे छानकर (जितनी बार हो सके उतनी बार छानकर) पान किया जावे तो दस्त साफ हो जाता है। —श्री भागीरथ स्वामी (वनौ० शास्त्र)

८. कामशक्ति वर्धक प्रयोग—कपूर १ ग्राम, गुजराती इलायची ४ ग्राम, कौंच के बीज ४ ग्राम, अकरकरा ४ ग्राम, लौंग ४ ग्राम, अफीम ४ ग्राम, शुद्ध वत्सनाभ विष १ ग्राम, मालकांगनी ४ ग्राम एव शुद्ध सिंगरफ १८ ग्राम इन सबको महीन पीसकर ८० पानो के रस मे मुद्ग प्रमाण गोलिया बना लें। रतिक्रिया से प्रथम दूध के साथ एक वटी खावें तो अत्यन्त स्तम्भन होता है। कागजी नीबू खाने मे स्खलन होता है। —प० बाबूलाल द्विवेदी (धन्व० अगस्त ६८)

९. जगम विषोपयोगी—सर्प, वृश्चिक, लूता, छिपकली आदि विषैले जन्तुओ के काटने पर पान बीडों का लगातार प्रयोग करने से विष ज्ञान तन्तुओ पर आक्रमण नही कर पाता और योग्य तथा समयानुकूल चिकित्सा करने पर शीघ्र लाभ होता है। पान मे रहने वाले विष इन विषो पर प्रतिविषो का कार्य करते हैं। सर्प काटते ही ताम्बूलपर्ण स्वरस का इन्जेक्शन मेरुदण्ड मे कर देने से मनुष्य मरता नहीं है। —कवि० श्री विश्वनाथप्रसाद भिषगाचार्य (धन्व० जुलाई ५०)

१०. कफशामक प्रयोग—कण्ठ मे कफ जनित अवरोध होता हो तो ताम्बूल स्वरस २५ मि० लि० मे ५०० मि० ग्राम कालीमिर्च का चूर्ण और ६ ग्राम मधु मिलाकर प्रात-साय देते रहने से कफ बाहर निकल जाता है, कण्ठमार्ग खुला हो जाता है, आवाज सुधर जाती है। इससे नूतन कफोत्पत्ति मे प्रतिबन्ध होता है। अथवा दो-चार पानो के भीतर ५-५ नग कालीमिर्च डालकर खाने से भी कफ का निवारण होकर कण्ठशुद्धि हो जाती है, अथवा नागरबेल के फलो (पान पिप्पली) का चूर्ण शहद के साथ देने से भी कफ निकलकर कास दूर हो जाता है। पानों की शिराओ मे कफघ्न और वामक गुण रहा है अत नागरबेल के पानो की शिराओ को कूटकर २ तोले रस निकाल उसमे ६ ग्राम मिश्री मिलाकर प्रात-साय सेवन करते रहने से कफ पतला होकर सरलता से बाहर निकल जाता है। जीर्ण कास, जिसमे कफ सफेद या पीला और गाढा हो जाता है, तथा फुफ्फुस और श्वास प्रणालिकाए सब कफ से भरे रहते हैं, ऐसी अवस्था मे पानो की शिराओ का स्वरस अति लाभदायक है। —स्वामी श्री कृष्णानन्द जी (गावो मे औषधि रत्न १)

११. बालसखा तैल—बगला पान, भांगरा, मकोय, घृतकुमारी, छोटी दुद्धी, तालमखाना देशी इन सबका स्वरस २००-२००० मि० लीटर काले तिल का तैल १५ किलो। स्वरस तथा तैल कडाही मे डालकर मन्दाग्नि से सिद्ध कर छान उसमे दालचीनी का तैल, देशी कपूर, १०-१० ग्राम डाल शीशी में बन्द कर रखें। इस तैल मे बालक के सर्वाङ्ग में मालिश करें और कानो मे डालें तो सूखारोग, ज्वर, अतिसार सिरदर्द, दुर्बलता आदि बालको के समस्त रोगो मे लाभ होता है। —प० अनन्तदेव शर्मा वैद्य (धन्व० अनु० योगाक)

तालीस

(Abies Webbiana)



हर कवि प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर लेता है और उसके उपादानो का अपनी कविता मे सुन्दर वर्णन करता है। नित्य हरित रहने वाले तालीसपत्रो को देखकर ही मानो माखनलाल चतुर्वेदी कह उठते हैं—

इस वन मे भर आये सावन
ये हरे-हरे कोमल-कोमल
उमडे-उमडे विद्रोही दल।

इसी प्रकार हिमालय पर प्रहरी के रूप में खडे ये तालीसवृक्ष दया के शीर्ष हैं, जो हमे अपना सर्वस्व देकर उपकृत करते रहते है—

ठेठ गहरा नीर पीकर
हो खडे प्रहरी बने,
वन धरा का आसरा है
शाख, फल, पत्ती, तने।
तुम दया के शीर्ष हो पर
लोभ के हाथो छले हो
वृक्ष तुम कितने भले हो।।

—शिवशर्मा "विश्वास"

आइये, इन परोपकार पर्याय पादपों का वन्दन करें—

पतझड हो चाहे हो वसन्त
तुम सदा हरित ही रहते हो।
हिमगिरि पर पुलकित सुरभित हो
समयोग कहानी कहते हो।।
हे दया शीर्ष तालीस तुझे
शत-शत वन्दन है, अभिनन्दन।
तन सदा समर्पित करते हो
ऐसे हो नभ्रता का सुन्दर।।

यह तालीस देवदारुकुल (पाइनेसी) की वनस्पति है। महर्षि सुश्रुत ने जो शिरोविरेचनोपयोगी ३८ द्रव्य कहे हैं उनमें एक तालीस भी है। भगवान् चरक ने आश्रय भेद से नस्य (शिरोविरेचन) के ७ भेद किये है। तालीस का पत्र उपयोगी होने से यह पत्रनस्य के अन्तर्गत आता है।

आचार्य भावमिश्र ने इसका कर्पूरादि वर्ग मे वर्णन किया है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने द्रव्यगुण विज्ञान मे छेदन (श्लेष्महर) द्रव्यो के अन्तर्गत इसका विशद वर्णन किया है। जो औषधि आपस मे मिले हुए कफादि दोषो को अपनी शक्ति से फोडकर अलग-अलग कर दे तथा श्वासनलिका की श्लेष्मल त्वचा को उत्तेजित कर कफ को पतला कर खासने मे सुभीता कर दे, उसे छेदन (Stimulating Expectorent) कहते हैं।

नाम—

संस्कृत—तालीस, तालीश, पत्राढ्य, धात्रीपत्र, शुकोदर, आदि। निघण्टु ग्रन्थों मे इसके कई पर्याय दिये हैं। ये पर्याय इसके स्वरूप को प्रगट करते हैं। सभी निघण्टुओ का समन्वित रूप प्रदर्शित करने वाले निघण्ट शिरोमणि मे इसके विविध नाम ये लिखे हैं—

तालीसपत्र तालीसं पत्राढ्य च शुकोदरम्।
धात्रीपत्र चार्कवेध करिपत्र घनच्छदम्।।
नील नीलाम्बर ताल तालीपत्र तलाह्वयम्।
तालीस पत्रक चैव "राजनामनिघण्टके"।।
तथा चामलकीपत्र तद्वत्तालीसक तथा।
तमाल्कीपत्रसज्ञ तथा तमालकीच्छदम्।।
शुकोदर च पत्राढ्य प्रोक्त "धन्वन्तरौ"-
मृ्वम्।



तालीस [Abies Webbiana]

विभिन्न नाम : सं०—तालीश (स), पत्राढ्य । हि०—तालीसपत्र । अ०—हिमालयन सिल्वर फर । लै०—एबीज वेबियाना ।

प्राप्ति स्थान : सिक्किम, भूटान, पश्चिमी हिमालय ।

उपयोगी अङ्ग : पत्र । **दोषशमन** : कफवातशामक ।

रोगोपयोग : कास, श्वास, यक्ष्मा आदि ।

धात्रीपत्र कन्दपत्र तुलसीपत्रसज्ञकम् ।।
पत्र तु "केयदेवे" च "मदने" तुलसीच्छदम् ।
पत्राह्व ग्रन्थिकापत्र सप्रोक्त वैद्यनायकैः ।।

हिन्दी—तालीसपत्र ।
गुजराती—तालीसपत्र ।
मराठी—तालीसपत्र ।
बंगला—तालीशपत्र ।
तामिल—तालीसपत्री ।
तेलगु—तालीसपत्री ।
अरबी—तालीसफर ।
फारसी—जर्नब ।
अग्रेजी—सिल्वरफर (Silverfir) ।
लैटिन—एबीज वेबियाना (Abies Webbiana)

इसके लैटिन नाम मे मतभेद है । २-३ प्रकार के द्रव्यो को तालीसपत्र कहा जाने के कारण वास्तविक तालीसपत्र कौन सा है ? यह निश्चय विभिन्न विद्वानो ने विभिन्न प्रकार से किया है । पडित श्री विश्वनाथ द्विवेदी ने वास्तविक तालीस को एबीज वेबियाना नाम देते हुए लिखा है कि "तालीस पत्र के लैटिन नाम निर्देश मे मतभेद दिखलाई पडता है । इसको डिमक Taxus Baccata, रायली Rhododendron Lepidotum, एन्सली Flacourtia cataphracta, मुडेनशेरिफ Cinnanomum Tamala एव डा० उदयचन्द राय Abies Webbiana कहते हैं । किन्तु युक्त प्रदेश, आगरा व अवध या बगाल प्रभृति प्रदेशो में तालीस पत्र के नाम औषधि व्यवहार मे आती है वह एबीज वेबियाना के पत्र व क्षुद्र शाखाओं से भिन्न और कुछ नही है । साथ ही आमलकीपत्र इसका नाम होने मे पत्र आमले के पत्तो की तरह होना चाहिए वैसा ही है अत इसे मैंने एबीज वेबियाना नाम ही दे रखा है ।"

आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा, वैद्य श्री बनवारीलाल मिश्र (अभिनव वनौषधि चन्द्रिका मे), डा० श्री सतीशचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानों ने भी तालीसपत्र को [illegible] ही नाम दिया है । [illegible] रथ स्वामी, श्री चन्द्रराज भण्डारी डा० श्री कृष्णचन्द्र चुनेकर आदि विद्वानो ने इसे टेक्सस वेकेटा (Taxus Baccata) नाम दिया है और इसे ही वास्तविक तालीस माना है ।

डा० श्री वलवन्तसिह ने कहा है कि "प्राय: पूर्वी भारत मे एबीज वेबियाना के ही पत्र तालीशपत्र के नाम से वेचे जाते हैं ।" टेक्सस वेकेटा के वर्णन मे आपने लिखा है कि "आधुनिक ग्रन्थकारो ने इसे तालीश नाम दिया है और तालीश पत्र के नाम से इसके पत्र बाजार मे मिलते भी हैं परन्तु थुनेर नाम से इसके स्थौणेयक होने की अधिक सम्भावना है । क्योकि आजकल के टीकाकार स्थौणेयक को थुनेर वतलाते हैं यद्यपि थुनेर का परिचय नही देते ।"

उत्पत्ति स्थान—यह सिक्किम, भूटान तथा पश्चिमी हिमालय मे ८ से १२ हजार फीट की ऊचाई पर होता है—

तालीसो हिमवत्प्रान्तसम्भूत पत्रसवृत ।
तरुस्तस्य तु पत्र स्यान्नाम्नातालीसपत्रकम् ।।
—प्रि० निघण्टु

रासायनिक सघटन—इसके पत्र मे मुख्यरूप से स्फटिकीय क्षार तत्व तथा टेक्सीन नामक एल्कलायड होता है । पत्र मे एक उडनशील तैल भी होता है । पेड से एक सफेद राल भी निकलती है ।

वानस्पतिक परिचय—इसके ऊचे मदाहरित सघन वृक्ष होते हैं जो काले दृढ पत्रो से आच्छादित होते है । ये वृक्ष लगभग १५०-२०० फीट ऊचे होते हैं । यह अपनी हरितमा के कारण चिरहरित नाम से जाना जाता है । हमेशा इसके पत्र हरे रहते हैं, गिरते नही हैं अतएव इसे पत्राढ्य कहा गया है । इसके काण्ड की परिधि प्राय ३० फीट होती है । शीर्ष गोलाकार तथा शाखायें समानान्तर फैली रहती हैं । नवीन शाखाए प्राय सूक्ष्म और भूरे रोमो से ढकी हुई रहती हैं जो प्राय झुकी हुई होती हैं । पत्र १-२ इञ्च लम्बे १/१२ इञ्च चौडे, रेखाकार, चपटे, हरितवर्ण, चमकीले नताग्र और अग्रभाग पर दो तीक्ष्ण और कठोर [illegible]

होती है। पत्रपृष्ठ पर मध्यशिरा उठी रहती है। पत्रवृन्त अत्यन्त छोटा होता है। पत्र ८-१० वर्ष तक वृक्ष पर स्थायी रहते हैं। ये काण्ड मे पेचदार क्रम मे निकलते हैं किन्तु देखने मे दो पंक्तियों मे निकलें मालूम होते हैं। पुफल—अवृन्त एकाकी या गुच्छो मे होते हैं। स्त्रीफल लवगोल, ४-६ इञ्च लम्बा, १॥-३ इञ्च व्यास का, वर्षपाकी होता है। बीज १/२-१ इञ्च लम्बे पक्ष से युक्त अडाकार या आयताकार होते हैं। ये पकने पर गहरे बैंगनी होते हैं।

भेद—इसकी एक प्रजाति Abies Pindrow होती है जो पश्चिमी हिमालय में होती है। उपर्युक्त वृक्ष से यह बहुत मिलता-जुलता है। इसके पत्र कुछ बड़े होते हैं। इसे जौनसार मे मारिण्डा और कुमायू मे रोधा कहते हैं।

तालीस (एबीज वेबियाना) के रस गुणादि

रस—तिक्त, मधुर (अभिधान रत्नमाला में इसका कटु रस कहा गया है)।

गुण—लघु, तीक्ष्ण।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—यह उष्ण वीर्य होने से कफ-वात शामक है।

वीर्यकालावधि—एक वर्ष तक।

गुणप्रकाशिका संज्ञा—मुखरोगहर।

प्रयोज्य अङ्ग—पत्र किंवा शाखाग्रसमन्वित पत्र।

मात्रा—२-५ ग्राम।

हानिकारक—फुफ्फुसो के लिए (अति मात्रा मे)।

दर्पनाशक—मधु।

प्रतिनिधि—जीरा।

अपमिश्रण—इसमे निम्नांकित तालीसपत्र कहे जाने वाले द्रव्यो का प्राय मिश्रण किया जा सकता है। तालीसपत्र के नाम से ये द्रव्य भी लिये जाते है—

(१) टाक्सिस बक्काटा (Taxus Baccata)।

(२) रोडोडेंड्रन एन्थोपोगन (Rhododendron Anthopogon)।

(३) रोडोडेंड्रन कम्पेनुलेटम् (R. Campanulatum)।

(४) रोडोडेंड्रन लेपिडोटम् (R Lepidotum)।

१. टाक्सिस बक्काटा (Toxus Baccata)—कुछ चिकित्सक इसे ही वास्तविक तालीस मानते हैं जिसका उल्लेख पूर्व मे भी किया गया है। यह योरप तथा भूमध्यसागरी क्षेत्र मे फारस तक पाया जाता है। यह पूर्वी एशिया तथा उत्तरी अमेरिका मे मिलता है। भारत मे यह हिमालय क्षेत्र, खासी तथा जयन्तिका की पहाड़िया, नागा पहाड़ी, मणिपुर तथा बर्मा की पहाड़ियो पर सदाबहार तथा नुकीली पत्ती वाले जगलो मे १८०० मीटर की ऊंचाइयों पर पाया जाता है।

इसके पत्र आकृति मे रेखाकार, शल्याकृति कठिन, चिपटे, नुकीले २५ मि० मी० से ३७ मि० मी० लम्बे तथा २.५ मि० मी० चौड़े होते है। पत्र के मध्य एक स्पष्ट मध्य शिरा होती है। अन्य शिराए अस्पष्ट दिखाई देती हैं। पत्र ऊपरी पृष्ठ पर गहरे हरित वर्ण के तथा अध पृष्ठ पर पीताभ या मुरचई वर्ण के होते हैं। पत्रो मे एक विशिष्ट प्रकार की सुगन्धि पायी जाती है। यह सुगन्धि सूखे पत्रो में ही आती है।

ठा० बलवन्तसिंह ने इसे स्थौणेयक (थूनेर) माना है किन्तु पंडित श्री कृष्णप्रसाद जी सूरि ने कहा है कि थूनेर और इसके गुण-धर्म कुछ अशो मे मिलते है तथा पत्तो का आकार-प्रकार भी मिलता है तथापि इसे थूनेर मानना उचित नही जचता है।

श्री रूपलाल वैश्य एव श्री त्रिवेदी ने तालीस पत्र न० २ शीर्षक से इसका वर्णन किया है। यह ग्राही, अवसादक, वेदनाशामक, आक्षेपनिवारक, आर्तवजनन, वातानुलोमन और कफनि सारक है। पहाड़ी लोग इसकी चाय बनाकर पीते हैं।

मात्रा—२५० मि० ग्रा० से १ ग्राम तक।

२. रोडोडेंड्रन एन्थोपोगन (Rhododendron Anthopogon)—इसके छोटे-छोटे गन्धयुक्त क्षुप हिमालय मे कश्मीर से भूटान तक ११ से १६ हजार

फीट की ऊचाई पर, तथा मध्य एशिया मे विशेष पाये जाते हैं। इसके पत्र सनाल १ से १॥ इन्च (२५ से ३७ मि० मी०) लम्बे, अण्डाकार या चौडे आयताकार, ऊपरी पृष्ठ पर चमकदार और अध. पृष्ठ पर भूरे रोमावरण से युक्त होते हैं। आचार्य त्रिवेदी जी ने इसका तालीसपत्र नं० ३ के नाम से वर्णन किया है किन्तु आयुर्वेद महामहोपाध्याय प० श्री भागीरथ स्वामी ने कहा है कि "मेरी समझ मे धन्वन्तरि आदि अनेक निघण्टुओ के मतानुसार धात्रीपत्र, शुकोदर, नील, नीलाम्बर, आमलकीपत्र, करिपत्र, घनच्छद, लताह्वय नाम से केवल प्रथम और द्वितीय सख्या वाले ही तालीश हैं, शेष तालीस नही हो सकते।"

इसका उपयोग तालीसपत्र के नाम से नेपाल और पजाब मे अधिक होता है, इसे तालीसफर या तालिस्त्री भी कहते हैं। यह उष्ण, सुगन्धित, उत्तेजक, शिरोविरेचन है। यह श्वास एव गलरोगो मे विशेष उपयोगी है। श्वास आदि कफ-प्रधान रोगो मे पत्तो का धूम्रपान किया जाता है। पत्र चूर्ण के नस्य से छीकें आती है। श्री रूपलाल वैश्य ने अभिनव बूटी दर्पण मे तालीसफर न० १ शीर्षक से इसका ही वर्णन किया है।

मात्रा—२५० मि० ग्रा०—१ ग्राम।

३. रोडोडेंड्रन कम्पेनुलेटम् (R Companulatum)—क्रमाक २ पर वर्णित तालीसफर की ही यह एक उपजाति है। यह भी हिमालय मे कश्मीर से भूटान तक पाया जाता है। इसका क्षुप तालीसफर न० १ से वडा होता है।

पत्र—३-५ इन्च लम्बे, अण्डाकार-आयताकार, दोनो सिरो पर गोल होते हैं। नीचे के पृष्ठ पर दालचीनी रङ्ग के सघन रोमो से शिरायें ढकी रहती हैं। इसे ही चैरलु, चिमुल, गग्गर कहते हैं। यह आमवात, फिरङ्ग, गृध्रसी मे आभ्यन्तरिक तथा अर्धावभेदक प्रतिश्याय मे नस्य रूप मे प्रयोग मे लिया जाता है।

४. रोडोडेंड्रन लेपिडोटम् (R. Lapidotum)—यह भी आर. एन्थोपोगन की उपजाति है जो कश्मीर से भूटान तक पाई जाती है। टेहरी गढ़वाल मे ये दोनो उपजातिया "सिमरिस" के नाम से जानी जाती हैं। इसका क्षुप छोटा, पत्र २० मि० मी० से ४५ मि० मी० लम्बे होते है। पत्र आकृति में कुण्ठिताग्र या किंचित् नोकदार होने हैं। पत्रो का निम्न पृष्ठ श्वेताभ या धूसर रक्तवर्ण के रोमो से ढका रहता है। इसके गुण आर एन्थोपोगन के समान हैं।

गुणधर्म-विवेचना—

तालीश लघु तीक्ष्णोष्ण श्वासकासकफानिलान्।
निहन्त्यरुचिगुल्मामवन्हिमान्द्य क्ष यामयान्॥
—भा० प्र० नि०

तालीशपत्र तिक्तोष्ण मधुर कफवातनुत्।
कासहिक्काक्षय श्वासच्छर्दिदोषविनाशकृत्॥
—रा० नि०

मरुत्कासश्वासारुचिकफगदाग्माग्निमृदुता ।
क्षयान् गुल्म दूरे क्षिपति लघु तालीसकमिदम्॥
—सि० भे० म० मा०

तालीसपत्र तीक्ष्णोष्ण कफवातहृर मतम्।
कासेश्वासेऽरुचौ वन्हिमान्द्ये यक्ष्मणि शस्यते॥
—प्रि० नि०

तालीस, तिक्त, कटु, उष्ण और तीक्ष्ण होने से श्लेष्महर है। मुख्यतया श्लेष्महर होने से इसका वर्णन कफघ्न, किवा छेदन द्रव्यों के अन्तर्गत किया गया है। कफघ्न के साथ श्वासहर होने से श्वसनसस्थान की व्याधियो मे परमोपयोगी है।

कास विकृति प्राण और उदान के सघर्षण से उत्पन्न होने वाली व्याधि है। इसके साथ मे ही कफ-वृद्धि भी होती है। यह इनको सम कर कास का शमन करता है। प्राणवहस्रोतस के साथ कास मे रसवह स्रोतस में विकृति होती है। कफ-वातशामक होने के अतिरिक्त धात्वाग्निवर्धक है। सुतरा यह रसदुष्टि को समाप्त कर कास को शीघ्र नष्ट करता है। राजयक्ष्मा मे भी हृदयस्थ रस विकृति होकर ही कास आदि लक्षण प्रगट होते हैं—

रसः स्रोतसु रुद्धेपुस्वस्थानस्योविदह्यते ।
स उर्ध्वं कासवेगेन बहुरूप. प्रवर्तते ॥

कास में आचार्यों ने तालीसादि चूर्ण, तालीसादि गुटी आदि का वर्णन किया है। तालीसादि चूर्ण से कौन भिषक् अनभिज्ञ है ? यह कास, श्वास, स्वरभेद, राजयक्ष्मा की उत्तम औषधि है। आचार्य चक्रपाणिदत्त, शार्ङ्गधर आदि ने भी इसे उपयोगी पाया है। पंडित श्री विश्वनाथ द्विवेदी ने इसे पैत्तिक कास के लिये विशेषतया लाभप्रद कहा है—"पैत्तिक कास मे इसका लाभ विशेष होता है। इसके प्रयोग से अरुचि व छर्दिरोग शीघ्र रुक जाते हैं। बलवर्द्धक तथा मृदु-ज्वर नाशक भी है। पाचन-संस्थान को बलदायक तथा शोधक है। तालीसादि किंवा व्योषान्तिका गुटिका भी इन रोगों मे उपयोगी कही गई है—

तालीसवन्हिदीप्यकचविकाम्लवेतसव्योषैः ।
तुल्यैस्त्रिसुगन्धियुतैर्गुडेन गुटिका प्रकर्त्तव्या ॥
कासश्वासारोचकपीनसहृत्कण्ठवाड्निरोधेषु ।
ग्रहणीगदोद्भवेषु गुडिका व्योषान्तिका नाम ॥
—च० द०

"कफावृत वातोल्वण श्वास (तमक श्वास) मे पुराण गोघृत मे थोडा नमक मिलाकर छाती-पसली पर मलकर स्वेदन करने के पश्चात् तालीसादि वटी (चूर्ण से निर्मित) का उपयोग हितावह है। वैद्य श्री राजेश्वरशास्त्री ने तालीसादि चूर्ण मे यवक्षार मिलाकर सेवन करने के लिए लिखा है—

"तालीसादि चूर्ण ६ ग्राम, यवक्षार ५०० मि० ग्रा०—१ मात्रा को १२ ग्राम शर्बत अडूसा, १२ ग्राम शर्बत लसोडा और १२ ग्राम शर्बत गावजवां मे मिलाकर रखें। थोडा-थोड़ा लेकर कभी-कभी चाटते रहे। इस प्रकार इसे दिन-रात मे बार-बार चाटा करें।"
—चिकित्सादर्श द्वितीय भाग

कास श्वासोपयोगी शृङ्गाराभ्र रस (भै० र०), कनकासव (भै० र०) मे भी तालीस की योजना की गई है। सिद्धभेषज मणिमाला मे वर्णित राजयक्ष्मा-रोग में उपयोगी चित्तचन्दिरासव का भी तालीसपत्र मुख्य घटक द्रव्य है।

थोडा-थोड़ा तालीसादि चूर्ण सेवन करते रहने से स्वरभेद (वातज, कफज) भी शान्त होता है। तालीसादि चूर्ण के अतिरिक्त चव्यादि चूर्ण भी स्वरभेद मे लाभप्रद है। इस चूर्ण का भी तालीस मुख्य घटक द्रव्य है—

चव्याम्लवेतसकटुत्रयतिन्तिडीक
तालीसजीरकतुगादहनैः समांशैः ।
चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं
वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥
—र० सा० स०

यह तिक्त होने से रोचन दीपन एव वातानुलोमन है। एतावता अरुचि, अग्निमांद्य, आध्मान, अर्श एव गुल्म रोग मे लाभदायक है। भास्कर लवण (चरक), महाखाडव चूर्ण (शार्ङ्गधर), प्राणदावटी (ब० से० स०) आदि योगो मे इसीलिये इसकी योजना की गई है। कफघ्न होने के साथ यह ज्वरघ्न होने से वातकफोल्वणज्वरो मे भी यह लाभप्रद है। वातश्लेष्मिक ज्वर मे यह विशेषेण उपयोगी है। श्वासनलिका तथा फुफ्फुस के शोथ को यह शीघ्र समाप्त करता है। वात श्लेष्मिक ज्वर का रोगी इसके उपयोग से लाभान्वित होता है। इससे उसका कफ आसानी से निकल जाता है, छाती की पीडा समाप्त होती है और ज्वर उतरता है। आन्त्रिक ज्वर मे भी कफ शमनार्थ इसकी योजना उपयुक्त है। रसतन्त्रसार मे वर्णित मधुरान्तक वटी मे तालीस भी मिलाया जाता है।

यह मूत्रवह स्रोत के शोथ एव मूत्रकृच्छ्र आदि में भी मूत्रल होने से हितावह है। प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी आदि रोगो मे व्यवहृद शुक्रमातृका वटी में इसकी योजना करने का यही कारण है।

वेदनास्थापन होने से शिर शूल, वातव्याधि मे भी इसका मुख्यत बाह्यप्रयोग किया जाता है। शार्ङ्गधर संहिता मे वर्णित वातरोगोपयोगी धतूरादि तैल मे भी तालीस मिलाया जाता है। वेदना का निवारण करने के साथ ही यह व्रण का रोपण भी करता है। महर्षि सुश्रुत ने कहा है—

तालीसं पद्मक मासी हरेण्वगुरु चन्दनम्।
हरिद्रे पद्मवीजानि सोशीर मधुकं च तैं।
पक्व पयोव्रणेषूक्त तैलं रोपणमुत्तमम्॥
—सु० स० चि० २/७५

सुश्रुतसहिता के कल्प स्थान मे वर्णित ऋषभ, महासुगन्धि अगदो मे भी इसका वर्णन मिलता है। उन्माद-अपस्मारादि रोगोपयोगी कल्याणक घृत (सुश्रुत० कल्प ६), सर्पगन्धारिष्ट (रा० औ० यो०) मे भी इसकी योजना की गई मिलती है।

हमे अकालपलित व्यङ्गवली तिमिरनीलिका-निवारणार्थ एव कमलकान्तिसम मुख की कान्ति बनाने हेतु बहुत से वर्ण्य लेपो का वर्णन मिलता है। ये लेप ऋतु के अनुसार किये जाते हैं। आचार्य वाग्भट ने तालीसादि लेप को शिशिर ऋतु मे उपयोगी कहा है—

तालीसगुद्रापुड्राह्वयष्टीकाशनतागुरु।
—अ० हृ० सू० २२

योगरत्नाकरकार ने एक वन्ध्यापन करने वाला योग लिखा है—

'तालीस गैरिके पीते विडालपदमात्रके।
शीताम्बुना चतुर्थ्येऽन्हि वन्ध्या नारी प्रजायते॥

यह योग योगतरङ्गिणीकार ने भी लिखा है। तालीसपत्र मे स्फटिकीय क्षार, टैक्सीन एल्कलायड तथा उडनशील तैल होता है। गैरिक लौह तथा आक्सीजन का योग है। दोनो की सम्मिलित मात्रा विडालपद-कर्ष-तोला-लगभग १२ ग्राम (कर्ष के लिये सुवर्ण, पिचु, विडालपदक, अक्ष, पाणितल, उदुम्बर आदि पर्याय कहे गये हैं) ऋतु के चौथे दिन शीतल जल से सेवन करने का विधान है। डा० श्री जहानसिंह चौहान ने इसमे स्वर्ण-मुक्ता को मिलाकर अधिक प्रभावी बनाया है। कु० प्रे० व० तिवारी एव घ० चतुर्वेदी ने भी इस योग का अध्ययन कर लिया और आशाप्रद परिणाम प्राप्त किये—"तालीसपत्र चूर्ण एक गैरिक चूर्ण का अध्ययन चूहो मे गर्भनिरोधक गुण की दृष्टि से किया गया। प्रारम्भिक अध्ययन मे आशादायक परिणाम देखे गये।

(वा० अनु० दर्शिका)

यूनानी मत—यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे मे गरम और रूक्ष है। यह अर्दित, पक्षवध, रक्त-पित्त, रक्तस्राव, अतिसार बवासीर, आन्त्रक्षत मे लाभप्रद है।

आधुनिक मत—नव्यद्रव्यगुण वेत्ताओ मे आर० एन० खोरी के कथनानुसार यह आक्षेप निवारक है। श्वास, रक्तपित्त, अपस्मार एव अन्यान्य आक्षेपमूलक पीडाओ मे यह व्यवहृत होता है।

डा० देसाई के मतानुसार यह अवसादक, सकोच विकास प्रतिबन्धक और मासिकधर्म को जारी करने वाला है। थोडी मात्रा मे इसको देने से नाड़ी और श्वासोच्छ्वास की गति धीमी हो जाती है। मध्यम मात्रा मे इसको देने से श्वासोच्छ्वास जल्दी चलता है और हृदय की धडकन बढ़ जाती है। अधिक मात्रा भ्रम, वमन आदि उत्पन्न कर देती है, क्वचित् मृत्यु भी हो जाती है। इसके विष से मरे हुए मनुष्य का शव चीरकर देखने से उसके मूत्रपिण्ड, आमाशय और आतो मे होने वाली विकृति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। तालीसपत्र से गर्भाशय का सकोचन होता है। कई लोग यह समझकर कि इससे गर्भपात होता है, इसको गर्भ गिराने के लिए देते हैं किन्तु इससे गर्भपात नही होता अपितु स्त्री की मृत्यु हो जाती है।

पेरिअरा के मत से हृदय पर इस द्रव्य की क्रिया सेविन और डिजिटेलिस के बीच की होती है। सेविन की तरह इसमे मूत्रल, ऋतुस्राव नियामक और दाह-जनक गुण होते हैं। डिजिटेलिस की तरह यह औषधि हृदय की क्रिया को मन्द करती है, भारीपन लाती है और कुछ तनाव भी उत्पन्न करती है। फिर भी डिजिटेलिस की अपेक्षा यह औषधि कम खतरनाक है। डिजिटेलिस के प्रभाव शरीर क्रिया प्रणाली मे स्थायी हो जाते हैं, किन्तु इसके नही होते। जिस प्रकार सेविन और डिजिटेलिस शान्तिदायक वस्तु की तौर पर काम मे ली जाती है इसी प्रकार यह भी ली जा सकती है। पथरी, अपस्मार और आक्षेपक के अन्दर भी यह द्रव्य लाभप्रद है।

इङ्गलैण्ड मे इसके पौधो का सत् निकाला जाता है। यह सत् (सत्व) अतिसार, पित्त, नाडी की कमजोरी, दुर्बलता और ऐसा शिरदर्द जिसमे भारीपन हो उपयोग मे लिया जाता है। इसके फलो का लुआव वायुनलियो के पुराने प्रदाह में और इसके पत्ते मृगी (अपस्मार) मे लिये जाते हैं। जर्मनी के कुछ स्थानो मे इसकी जड का क्वाथ पागल कुत्ते के विष को दूर करने के काम मे लिया जाता है।

सामान्य प्रयोग

बाह्य प्रयोग—

१. **शिरःशूल** (क) तालीसपत्र को पीसकर लेप करने मे शिर शूल मिटता है।

(ख) तालीसपत्र के गोंद को गुलाब तैल मे मिलाकर लगाने से भी लाभ होता है।

२. **बहुमूत्र**—तालीसपत्र और सोठ को पानी मे पीसकर नाभि के नीचे लेप करें।

३. **व्यंग**—तालीस, मुलहठी, तगर और अगर को जल मे पीसकर लेप करने से मुख की व्यग, नीलिका आदि मिटकर मुख की कान्ति बढती है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग

१. **कास**—(क) तालीस चूर्ण को मधु मे मिलाकर सेवन करे।

(ख) चूर्ण को अद्रक स्वरस के साथ सेवन करें।

(ग) कुकरकास मे पत्र को गरम जल मे भिगोकर मसल छानकर पीना चाहिये।

२. **श्वास**—(क) तालीस चूर्ण को वासा स्वरस एव मधु के साथ सेवन करें। इससे तमकश्वास एव रक्तपित्त मे लाभ होता है।

(ख) पत्र चूर्ण एव हरिद्रा चूर्ण को चिलम मे रखकर धूम्रपान करें।

३. **क्षय**—(क) तालीसपत्र चूर्ण को वासापत्र क्वाथ से सेवन करें।

(ख) तालीसपत्र चूर्ण से दुगना सितोपलादि चूर्ण [illegible], मधु से सेवन करें।

४. **दौर्बल्य**—तालीस चूर्ण, इलायची, वशलोचन चूर्ण को मधु से खावें।

५. **अतिसार**—तालीस चूर्ण को इन्द्र जौ के साथ किंवा विल्वपानक के साथ सेवन करना हितकर है।

६. **उदरशूल**—तालीसपत्र चूर्ण मे कालानमक मिलाकर सेवन करें।

७. **स्वरभङ्ग**—तालीसपत्र क्वाथ या फाट पीवें।

८. **सूतिकारोग**—सूतिका की बलवृद्धि के लिए तालीस चूर्ण को दुग्ध के साथ सेवन करना लाभप्रद है।

९. **अरुचि**—तालीस चूर्ण एव थोडे कपूर को मिश्री की चासनी में मिलाकर गोलिया बनाकर सेवन करने से अरुचि मिटती है। यह राजयक्ष्मा जन्य अरुचि मे विशेषकर लाभप्रद है।

१०. **अपस्मार**—तालीसपत्र चूर्ण में वचा व ब्राह्मी चूर्ण मिलाकर खावें।

११. **आध्मान**—पत्र चूर्ण को अजवायन चूर्ण के साथ सेवन करें।

१२. **मुखपाक**—पत्र क्वाथ का गण्डूष धारण करना हितकर है।

१३. **बालरोग**—दात निकलने के कारण उत्पन्न ज्वर मे तालीसपत्र स्वरस ५-१० बूद जल किंवा मातृदुग्ध में मिलाकर सेवन कराना हितकारी है।

१४. **सन्ततिनिरोध हेतु**—तालीसपत्र ६ ग्राम और स्वर्णगैरिक ६ ग्राम का सूक्ष्म चूर्ण ऋतु के चौथे दिन स्त्री सेवन करें।

१५. **दन्तरोग**—(क) तालीसपत्र क्वाथ में सिरका मिलाकर गण्डूष करने से दन्तशूल मिटता है।

(ख) तालीसपत्र, रूमीमस्तगी, फिटकरी और सैन्धव चूर्ण का दन्तरोगों मे मंजन हितकर है।

विविध कल्पनाएं

१. **तालीसादि चूर्ण**—(क) तालीसपत्र, सोम, मुलहठी, अडूसे के फूल और पुष्करमूल सब समभाग लें, कपडछान चूर्ण कर, ५००-७०० मि० ग्रा० की मात्रा में दिन में ३-४ बार शहद के साथ दें। इस

चूर्ण से श्वास, खासी और जुकाम मे लाभ होता है।

—सि० यो० सग्रह

(ख) तालीसपत्र १२ ग्राम, कालीमिर्च २४ ग्राम, सोठ ३६ ग्राम, पीपल ४८ ग्राम, वशलोचन ६० ग्राम, छोटी इलायची ६ ग्राम और दालचीनी ६ ग्राम—इन सबका महीन चूर्ण कर सब द्रव्यो के चूर्ण से दुगनी (३८४ ग्राम) मिश्री या चीनी पीस कर मिलाकर रख लें। २-३ ग्राम चूर्ण प्रात -साय मधु और घी के साथ दें। इस चूर्ण के सेवन से खासी, विशेषकर सुखी खासी, जीर्णज्वर, अग्निमाद्य, सग्रहणी, अरुचि और पाचन-शक्ति की कमी आदि विकार मिटते हैं। यह चूर्ण कुछ उष्ण, पाचक, अग्निदीपक और दस्त को रोकने वाला है।

—आ० सा० स०

(ग) तालीसपत्र, काकडासिगी, पिप्पली, काली मिर्च, सोंठ, हरड, मुनक्का, लौंग, छुहारा, अनार-दाना, दालचीनी, नागकेशर, सफेदजीरा, कालाजीरा इलायची, नेत्रवाला, तोखाखीर, तमालपत्र, वश-लोचन, कचूर सब बराबर और सबके बराबर मिश्री मिला कपडछन चूर्ण कर ३-४ ग्राम रोगी को सेवन करावें तो ववामीर, श्वास, कास, उदररोग, पाण्डु, ज्वर, उदरशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, रक्तपित्त, अजीर्ण ये सब रोग दूर होते हैं।

—मेघ विनोद

(घ) तालीसपत्र, वच, वशलोचन, पीपल, पीपरा-मूल, चव्य, चित्रक, सोठ, कालीमिर्च, हल्दी, लौंग, धाय के फूल, अतीस, जायफल, अजवाइन, पाठा, मोचरस, इमली, सेंधा नमक, समुद्र नमक, अम्लवेत, हरड, बहेडा, आवला, पलाशवीज, जटामासी, नागर-मोंथा, खस, इन्द्रवारुणी की जड, हुलहुल, अजमोद, कचूर, दालचीनी, तेजपात, इलायची, कोकम, काला नमक, साभर नमक, बिड् नमक, सफेद जीरा, काला जीरा, विडङ्ग, भूमि आवला, कूठ, नागकेशर ये औष-धिया सब बराबर, इन सब औषधियो के समान अर्थात् सबके बराबर असगन्ध, असगन्ध से दुगनी (असगन्ध समेत सब द्रव्यो के बराबर) शुद्ध भाग और भाग से दुगनी किंवा समस्त द्रव्यो के बराबर मिश्री भाग को शुद्ध करें। काष्ठादि औषधियो की पृथक्-पृथक् कूटकर कपडछान चूर्ण करें। फिर शीशी का चूर्ण मिलाकर एक जीव कर लें। १-२ ग्राम दिन मे २-३ बार दें। यह उत्तम दीपन, पाचन, ग्राही, कीटाणुनाशक, वेदनाशामक, निद्राप्रद, समशीतोष्ण, कफघ्न, वातहर और बल्य है।

—र० त० स०

२. तालीसादि वटी—(क) चूर्ण के प्रसङ्ग ख मे चूर्ण को शर्करा की चाशनी बनाकर उसमे समस्त द्रव्य मिलाकर वटी भी बनाई जा सकती है।

—शा० स०

(ख) तालीसपत्र, चित्रक, अजवाइन, चव्य, अम्लवेत, त्रिकटु समभाग लेकर चूर्ण कर उसमे त्रिसुगन्धि (दालचीनी, तेजपात, इलायची) का चूर्ण सब चूर्णों का चतुर्थांश मिलाकर और सबका दूना गुड डालकर गोली बनावें। इसके सेवन से कास, श्वास, अरुचि, पीनस, हृदय-कठ, वाणी की स्तब्धता, ग्रहणी आदि मिटते हैं। यह व्योपान्तिका वटी है।

—च० द०

तालीसादि पाक—(क) तालीसपत्र १ भाग, कालीमिर्च २ भाग, सोठ ३ भाग, वशलोचन ४ भाग, पिप्पली ५ भाग, दालचीनी १/२ भाग, छोटी इला-यची १/२ भाग इन सबका महीन चूर्ण करें। फिर पिप्पली से अठगुनी (अर्थात् आठ भाग) मिश्री की चाशनी मे सबको मिला पाक जमा दें या मोदक बना रखें।

३ से ६ ग्राम तक सेवन करने से श्वास, कास, अरुचि, हृदयरोग, पाण्डु, सग्रहणी, प्लीहा, शोथ, ज्वर, छर्दि, अतिसार, शूल आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह अत्यन्त जठराग्नि दीपक है। तथा मूढवात (रुके हुये मलवात) का अनुलोमन करता है।

(ख) तालीसपत्र, तज, कालमी, पत्रज, छोटी इलायची, नागकेशर, सोठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, सारुवा के बीज, त्रिफला, जायफल, जायपत्री, चित्रक, पोहकरमूल, दोनो अजवाइन, दोनों जीरे, असगन्ध, नागौरी, नागरमोंथा, वशलोचन, भुनी कलौंजी और धनिया समभाग लेकर चूर्ण करें। पश्चात् सब चूर्ण

से दो गुना शक्कर की चाशनी मे पाक जमाकर ऊपर से चादी के वर्क लगा दें।

३ ग्राम से ६ ग्राम तक प्रात:-साय दूध के अनुपान से सेवन करने से वढा हुआ पित्तज्वर, खासी, क्षय, दाह, अजीर्ण आदि रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। शरीर मे वल की वृद्धि होती है। —वृ० पा० स०

तालिसादि तैल—तालीसपत्र, पद्माख, जटामांसी, रेणुका (सम्भालू के बीज) अगर, चन्दन, हल्दी, दारुहल्दी, कमलगट्टा और मुलहठी सव समभाग ६-६ ग्राम लेकर पीसकर कल्क वनावें, फिर उक्त प्रत्येक द्रव्य ४८-४८ ग्राम, पानी ४ लीटर ३८४ मि० ली० मे पका, चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध करें, और तैल २६४ मि० लि० मे कल्क व क्वाथ मिलाकर तैल सिद्ध कर लें। तैल सिद्ध हो जाने पर ठण्डा कर पात्रो मे रखलें।

यह तैल सव प्रकार के व्रणो के लिये उपयोगी है। इसको वनाकर व्रण वन्धन करने से व्रण का शीघ्र ही रोपण होने लगता है। —सुश्रुतसहिता

पेटेण्ट प्रयोगों में तालीस—आयुर्वेदिक और यूनानी द्रव्यो के मिश्रण से निर्मित ऊझा फार्मेसी (गुजरात) का "कफेश्वरी कफ सीरप" कास-कफ की उत्तम औषधि है। इसमे वासा, कटकारी, उन्नाव, गावजवां आदि के साथ तालीसपत्र का भी मिश्रण किया जाता है। फुफ्फुसीय अथवा अन्य अवयवो की विकृति से हुई आर्द्र किंवा शुष्क किसी भी कास मे लाभप्रद है—"डीकोफ्सिन टिकिया" जिसका निर्माण अलारसिन (वम्बई) द्वारा किया जाता है। इस योग में स्वर्णवसन्तमालती, पिप्पली, वांसा अभ्रकभस्म आदि के साथ तालीसपत्र का भी मिश्रण किया जाता है। शुद्ध फार्मेसी ललितपुर कास विनाश के लिए "खासीना" नामक सूचीवेध का भी निर्माण करती है। यह नई पुरानी खासी, श्वास, गले-फेफडे मे कफ का जमाव व गले-छाती में खराश आदि पर उपयोगी है। इसमें वासाक्षार, तालीसक्षार, मधुयष्ठीक्षार एव शृङ्गीक्षार होता है। यह सूचीवेध सप्ताह मे तीन वार लगाना चाहिए।

मलेरिया एव अन्य ज्वरों में शीघ्र प्रभावकारी टिकिया है—"क्विरोल" (नार्दर्न इण्डिया ड्रग्ज)। इसमे वहुत से ज्वरघ्न द्रव्यो के साथ तालीसपत्र का भी मिश्रण होता है। २-३ टिकिया दिन मे तीन वार लेनी पड़ती है।

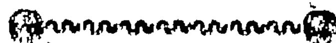
चरक फार्मास्युटिकल्स का एक महत्वपूर्ण अवलेह है—"मेनाल माल्ट।" सामान्यतया दुर्वलता को दूर करने के लिए चिकित्सक इसे उपयोग मे लाते हैं। यह रक्ताल्पता मे विशेष उपयोगी है। गर्भावस्था के समय रक्त की न्यूनता मे यह वहुत गुणकारी है। विटामिन और खनिज लवण पर्याप्त होने मे इसको सामान्य जन भी उपयोग मे लाकर अपना स्वास्थ्य वनाये रख सकते हैं। इसमे वहुत से द्रव्यो के मिश्रण के साथ तालीसपत्र का चूर्ण भी डाला जाता है।

अनुभूत प्रयोग—

१. सन्तति निरोधक प्रयोग—तालीसपत्र १२० मि० ग्राम, गेरू १२० मि० ग्राम, तेजपात ६० मि० ग्राम, मुक्तापिष्टी ६० मि० ग्राम, स्वर्णभस्म ६० मि० ग्राम। प्रथम तालीसपत्र, तेजपात को वारीक पीसकर शेष औषधियो मे मिलाकर पुन पीस लें। पश्चात् आवश्यकतानुसार शहद मिलाकर गोलिया वना लें। १-१ गोली दिन मे ३ वार सेवन करते रहने से गर्भस्थिति नही होती है। —डा० श्री जहानसिंह चौहान (सुधानिधि दिस० ८५)

२. प्रवाहिका हर प्रयोग—तालीसपत्र ६० ग्राम, तथा हरड, सौंफ, पोस्त के छिलके (डोडे), मुडी और अनार फल का छिलका १२-१२ ग्राम लेकर सवका सूक्ष्म चूर्ण कर व कडाही मे भूनकर, उसमे अन्दाज से कालानमक मिलाकर ६ ग्राम की मात्रा मे दूध (अजा का) या तक्र के साथ दिन में २-४ वार सेवन से अवश्य लाभ होता है। यह प्रवाहिका के अतिरिक्त तज्जन्य गुदभ्रंश मे भी लाभप्रद है।

—वैद्य श्री हरिशरणानन्द स्वामी (आयुर्वेद विज्ञान)



तुवरक
(Hydnocarpus Wightiana)



ठीक हैं प्राण ये पेट भर कर जियें।
एक क्षण क्या जिये, दूसरो के लिये ?
नित्य खोया वृथा प्राणधन आपने
ध्यान आया नही, ध्यान आया नही ।।

आपको-हमको ध्यान आये या न आये, इन औषधियों को सदा ध्यान आता है और ये हर क्षण दूसरो के हित समर्पित होती रहती हैं। जिन वनौषधियो की वन्दना वेदो मे की गई है उस वन्दना के स्वरो मे अनेक स्वर मुखरित होते रहे हैं। आज यह स्वर भी मिलाने का अवसर आया है—

मरते मानव के प्राणो मे
तुमने जीवन की राग भरी।
तेरे प्रयोग से बाधायें
अकुला, निकली जा दूर खडी।
परहित तन अर्पण करना
तुम ध्येय यही नित धारे हो।
तुमको प्रणाम है शत सहस्त्र
तुम तुवरक सदा हमारे हो ।।

"नवीति हिनस्ति रोगान्" रोगो को नष्ट करने वाला होने से ही इसे तुवरक के नाम से पुकारा जाता है।

यह तुवरक कुल (फ्लैकोर्टिएसी) की औषधि है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने इसे कुष्ठघ्न औषधियो के अन्तर्गत लिया है और विशद वर्णन प्रस्तुत किया है। औषधियों की कर्म प्रकाशक संज्ञाओं के मानानुसार दो वर्ग किये गये हैं—१ संशोधन वर्ग, २ संशमन वर्ग। संशमन वर्ग मे एक विशेष संज्ञा कुष्ठघ्न है। ये औषधियां जो कुष्ठ के विकारों को दूर करें कुष्ठघ्न कहलाती है। इन कुष्ठघ्न औषधियों मे तुवरक भी एक मुख्य औषधि है, जिसका वर्णन यहा प्रस्तुत है।

चरकसंहिता मे इस औषधि का वर्णन नही मिलता है किन्तु सुश्रुतसंहिता के मधुमेह चिकित्सित नामक त्रयोदश अध्याय मे संक्षिप्त वर्णन उपलब्ध होता है। यही वर्णन अष्टांग हृदय मे भी मिलता है।

नाम—

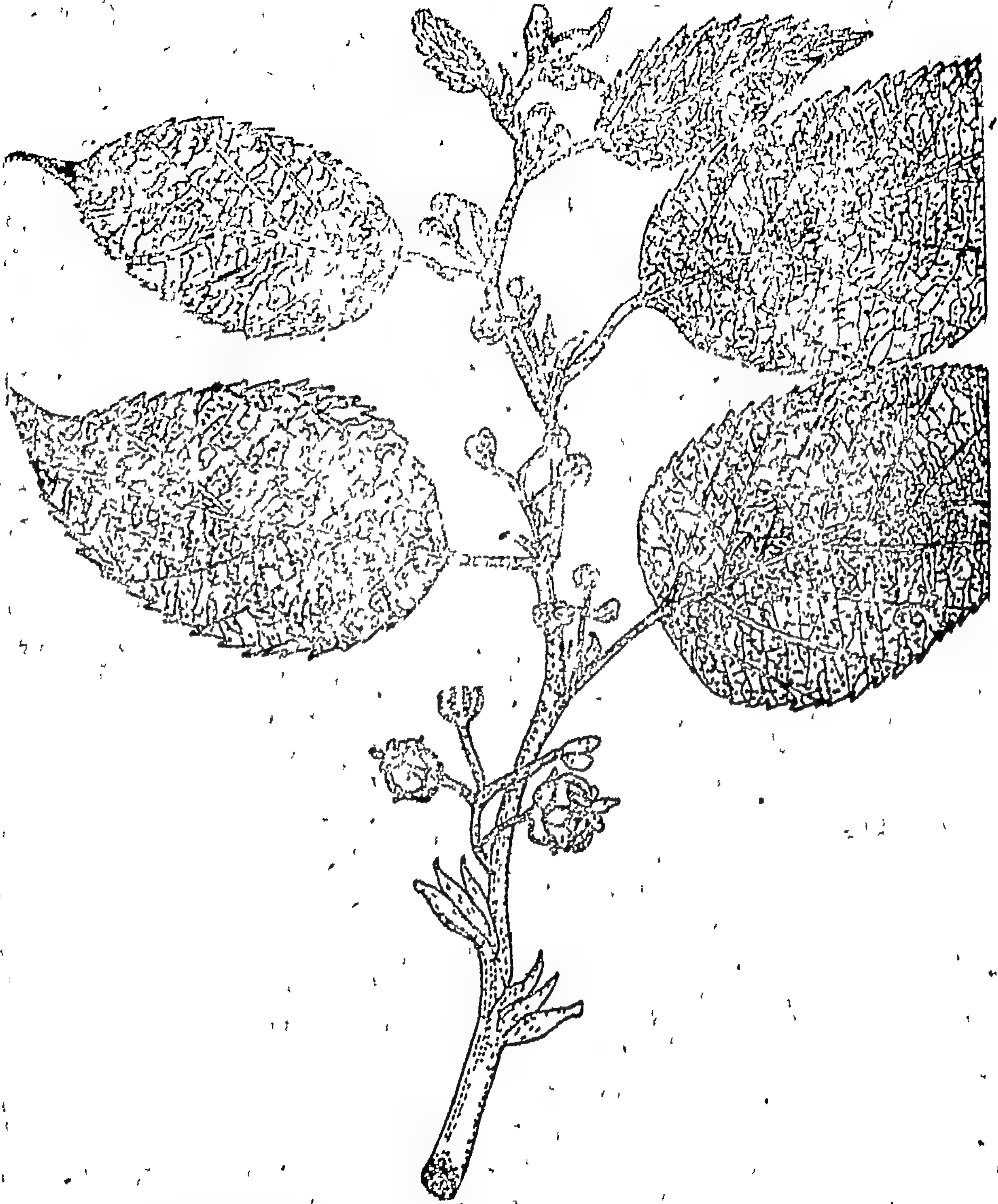
संस्कृत—तुवरक, कटुकपित्थ, कुष्ठवैरी।
हिन्दी—चालमोगरा।
मराठी—कडुक्वथ, कडकवीठ।
बंगला—चौलमुगरा।
कश्मीरी—गरुटफल।
तामिल—निरडिमुट्टु, मरवत्तायि।
तेलगु—अडविवादामु।
मलयालम—कोडि।
फारसी—विरजमोगरा।
लैटिन—हिडनोकार्पस वाइटिआना (Hydnocarpus Wightiana)।

उत्पत्ति-स्थान—दक्षिण भारत मे पश्चिमी घाट के पर्वतीय क्षेत्र गोवा, मालाबार, ट्रावनकोर मे स्वयं जात तथा रोपण किया जाता है।

रासायनिक संघटन—वीजों से प्राप्त तैल ४४ प्रतिशत होता है जिसमें चालमोगरिक एसिड २६ ९ प्रतिशत हिडनोकार्पिक एसिड ४८ ९ प्रतिशत पामिटिक एसिड, स्नेहाम्ल, ग्लिसराइड्स होते हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसका मध्यमाकार वृक्ष १०-१२ मीटर तक होता है।

पत्र—स्निग्ध, चर्मवत्, लट्वाकृति, भालाकार, दीर्घ व दन्तुरित होते हैं।



तुवरक [Hydnocarpus Wightiana]

विभिन्न नाम : संस्कृत–तुवरक, कुष्ठवैरी। हिन्दी–चालमोगरा। म०–कडकवथ। बं०–चौलमुगरा। लैटिन–हिड्नोकार्पस वाइटि आना।

प्राप्ति स्थान : दक्षिण भारत में पश्चिमी घाट के पर्वतीय क्षेत्र।

उपयोगी अङ्ग : बीज, तैल। **दोषशमन** : कफवातशामक।

उपयोग : कुष्ठ, मधुमेह, मेदोरोग आदि।

पुष्प—छोटे गुच्छो मे व श्वेतवर्ण के होते हैं।

फल—गोल १००-१३० मि०मी० व्यासयुक्त छोटे सेव के बराबर होते हैं।

बीज—अनेक, २० मि०मी० पीत बादाम सदृश होते हैं।

भेद—इण्डियन फार्माकोपिया के अनुसार हिडनोकार्पस वाइटिआना की ही एक दूसरी प्रजाति हिड्नोकार्पस लारिफोलिया (Hydnocarpus Laurifolia) है। दोनो ही दक्षिण भारत मे उत्पन्न होने वाले हैं। अत इन्हे दक्षिण भारतीय चालमोगरा भी कहते हैं। सुश्रुतोक्त तुवरक वृक्ष इन्हे ही मानने की सम्भावना की जाती है।

उत्तरी भारत मे भी यह पाया जाता है जिसे चालमोगरा कहा जाता है। इसका कुल भी पूर्वोक्त ही है। इसे वैज्ञानिक भाषा मे हिड्नोकार्पस कुर्जाई कहा जाता है। हिडनोकार्पस कुर्जाई के उत्पत्ति स्थानो मे ही एक दूसरा वृक्ष भी इससे मिलता-जुलता होता है—जिसे गाइनोकार्डिया ओटाराटा है। इन्हे उत्तरी भारतीय चालमोगरा कहते हैं।

डा० रामसुशीलसिंह ने उपर्युक्त हिडनोकार्पस वाइटिआना को तुवरक और हिडनोकार्पस कुर्जाई को चालमोगरा के नाम से व्यक्त किया है। वर्णन सौकर्य की दृष्टि से श्रीकृष्णप्रसाद त्रिवेदी ने हिडनोकार्पस वाइटिआना को चालमोगरा न० १, हिडनोकार्पस कुर्जाई को चालमोगरा न० २ तथा गाइनोकार्डिया ओडाराटा को चालमोगरा न० ३ के नाम से वर्णित किया है। देहरादून के वैज्ञानिक उद्यान मे दोनो (उत्तरी और दक्षिणी) लगाये हुए हैं। उत्तरी भारतीय चालमोगरा का प्राकृतिक उत्पत्ति स्थान पूर्वी भारत (बगाल, आसाम) तथा बर्मा है। पूर्वी बगाल मे सिलहट, चटगाव के वन्य प्रदेशो मे इसके स्वय जात वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं। चालमोगरा न० २ (हिडनोकार्पस कुर्जाई) वृक्ष भी मध्यमाकार सदा हरित रहने वाला है। इस वृक्ष की छाल धूसरवर्ण की स्निग्ध व चमकीली होती है। पत्र सरल धार वाले १८—२५ से० मी० लम्बे भालाकार या आयताकार-भालाकार होते हैं। निचले पृष्ठ पर शिरायें बहुत स्पष्ट होती है। पुष्प हलके पीताभ एव सुगन्धित होते है। फल नारगी या बेल फल जैसे गोल, मटमैले रङ्ग के होते है। फल का गूदा प्रारम्भ मे काला भीतर पीताभ श्वेत किन्तु कुछ समय पश्चात् यह कृष्णाभ पीत एव गन्ध-स्वाद रहित हो जाता है। बीज मखमली या मृदु रोमश, किंचित् लाल या भूरे रङ्ग के त्रिकोणाकार होते हैं। इनके बीजो का छिलका पतला व खाकी रङ्ग का होता है जो मसलने पर सहज मे ही दूर हो जाता है जबकि चालमोगरा न० १ के बीजो का छिलका कठोर होने से सहज मे ही दूर नही होता है।

इसी कुल की एक वनौषधि गायनोकार्डिया ओडीरेटा (Gynocardia Odorata, R. Br Family Flaccourtiaceae) है। जो स्वरूपत. चालमोगरा न० २ के वृक्षो से प्राय मिलता है एव जहा-जहा उक्त चालमोगरा के वृक्ष पाए जाते हैं, वही-वही यह भी पाया जाता है। इसका उपयोग व्यावसायिक लोग अथवा सग्रहकर्त्ता चालमोगरे के मिलावट ((Adulteration) के लिये करते हैं। इसे ही चालमोगरा न० ३ के नाम से जाना जाता है।

चालमोगरा (हिडनोकार्पस कुर्जाई) के सम्बन्ध मे श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालकार ने विपुल साहित्य प्रस्तुत किया है। उन्होने कहा है कि—"वेबस्टर, चेम्बर आदि कोषो मे इस चालमोगरा शब्द की निस्पत्ति बगला से की है। गैंकर कोल और वर्थ (१९३२) ने बताया है कि चालमोगरा (चालमुग्रा) बर्नी नाम है। मुझे यह ठीक प्रतीत नही होता। रॉक (१९२२) और बंकिल (१९३४) की रचनाओ से भी इस बात की पुष्टि नही होती। इसका आसामी नाम लेमताम, अराकानीज नाम तोङ् पुङ्, मिकिर नाम थिबोङ्थार, काचीन नाम सेर बुलिबाफङ् और मिरि नाम सीरी एसिग है। ऐलोपैथी के चिकित्सा ग्रन्थो मे वैज्ञानिक (लैटिन) नाम के सम्बन्ध मे बहुत सम्भ्रम रहा है। वर्गीकर औद्भिदी (सिस्टमेटिका बाटनी) मे इसे

हिडनोकार्पस कुर्जाई कहते हैं। इसके पुराने नाम थे टैराक्टोजेनोस कुर्जाई और गाइनोकार्डिया प्रेनी (सचित्र आयुर्वेद सित०५१)।"

आपके द्वारा वर्णित ब्रह्मदेश की प्राचीन कथा एवं अन्य इतिहास सम्बन्ध में लिखना भी यहा उपयुक्त होगा।

इतिहास—सुश्रुतकाल के पश्चात् बहुत समय तक औषधि अन्वेषण की परम्परा टूट जाने से अन्य बहुत सी वनौषधियों की भाति चालमोगरा का भी ज्ञान विस्मृत किंवा विलुप्त हो गया था। एतावता सुश्रुत के पश्चात् लिखे गये निघण्टु ग्रन्थों मे चालमोगरा का वर्णन नही उपलब्ध होता। बौद्धकाल में ब्रह्मदेश मे स्थित बौद्धों ने इसका पता लगाकर "महाविम" नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ मे उल्लेख किया। उन्होने इसे कलववृक्ष नाम दिया। इसके आरोग्यकारी गुणो के विषय मे इस सम्बन्ध की एक कथा का भी वर्णन किया। कथा इस प्रकार है—

प्राचीन काल मे (बौद्ध से पूर्व) एक राम नाम का बनारस का राजा था। दैववशात् उसे कोढ़ हो गया। अत वह अपनी सन्तति को इस संक्रामक व्याधि से बचाने के लिये अपने पुत्र को बनारस का राजा बनाकर स्वय जगल मे जाकर रहने लगा। उसी समय उत्तरी भारत मे एक "ओकास गरित" नामक एक अन्य राजा भी राज्य करता था। उसके दो रानिया थी। बडी रानी के पाच पुत्र तथा पाच पुत्रिया थी। छोटी रानी के मात्र एक ही पुत्र था। राजा छोटी रानी के पुत्र से अधिक स्नेह रखता था और उसे ही राजा बनाना चाहता था। राजा के इस व्यवहार से बडी रानी के सभी पुत्र खिन्न थे। आखिर वे एक दिन अपना घर छोड़ कर अन्यत्र जाने लगे तो उनकी पाचो बहिने भी उनके साथ हो गयी। सबसे बडी बहिन का नाम पिया था। दुर्भाग्यवश उसे भी कोढ़ हो गया। सभी भाई-बहिन अपनी बड़ी बहिन का बहुत आदर करते थे किन्तु कोढ़ के आपस मे फैल जाने के भय से पर्याप्त खाद्य-सामिग्री लेकर वन-विहार के बहाने पिया को वे जगल मे ले गये। जगल मे एक आवास योग्य गुफा थी। पिया उसी मे रहने लगी।

एक दिन एक शेर पिया की गुफा के सामने से गुजर रहा था तो उसे मनुष्य की गन्ध आई। तब वह उस गुफा मे प्रवेश होने हेतु प्रयास करने लगा किन्तु वह गुफा मे प्रविष्ट नही हो सका और आखिर वह सारे प्रयास व्यर्थ हो जाने पर चला गया। जब शेर गुफा मे प्रविष्ट होने के लिये पूर्ण प्रयास कर रहा था तो पिया जोर-जोर से चिल्लाने लगी थी। उसके थोडी सी दूर पर वह बनारस का राजा राम एक बड़े वृक्ष की खोह में घर बनाकर रहता था। उसने पिया की आवाज सुनी किन्तु सामने शेर को देखकर वह उसके पास आ नही सका। शेर के चल जाने के पश्चात् राम पिया की गुफा के सामने जा पहुचा और उसे बाहर आने हेतु आवाज लगाने लगा किन्तु वह लज्जावश बाहर न आकर अन्दर से ही अपनी कहानी सुनाने लगी। आग्रह के पश्चात् भी जब पिया बाहर नही आई तो राम उस गुफा मे घुस गया और उसे भी अपने बनाये हुए घर मे ले गया।

जहा पर राम का घर बना हुआ था वहा पर कलव नामक वृक्ष बहुत थे। राम उस वृक्ष के फलो को ही आहार रूप मे काम मे लाता था। वह उसके पत्ते व जड आदि को भी औषधि के रूप मे प्रयोग करता था।

उसने पिया को भी फल पत्ते एव जडे खिलाना प्रारम्भ किया। कलव वृक्ष के प्रयोग से राम कुष्ठमुक्त हो गया था और कुछ दिनो बाद इन्ही के प्रयोग से पिया भी रोगमुक्त हो गई। राम ने उसे अपनी पत्नी बना लिया। पिया सोलह प्रसवो मे युग्म सन्तानो को उत्पन्न कर वह बत्तीस सन्तानो की मा बन गई।

एक दिन बनारस का रहने वाला एक शिकारी शिकार करने हेतु उसी जंगल मे गया। उसने राजा पहचान लिया। उसने बनारस मे आकर राजा को

जो राम का ही लडका था कहा—वह साज-सामान व दल-बल के साथ अपने पिता के पास आया और पुन वनारस लौट चलने का आग्रह करने लगा किन्तु राम ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । राम ने वही नगर वसा कर रहने की इच्छा प्रकट की। अपने पुत्र की सहायता से उस जगल को कटवाकर नगर वसाया । कलव वृक्ष वहा बहुतायत से होने के कारण उस-नये वसाये गये नगर का भी नाम कलव-नगर ही रखा गया। अथवा कलव के प्रयोग से वे पुन. स्वस्थ हुय थ अत' कलव की प्रशस्ति मे नगर का नाम कलवनगर रखा गया।

डा० विलियम राक्सवर्ग ने सन् १८१४ मे अपने हार्टस वेंगालिन्सि (कलकत्ता मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की औद्भिदी वाटिका मे उगे हुये पौधो की सूची) मे कलव क बीजो का चालमोगरा के बीज सूचित किया था । लगभग सन् १९०० मे भारत की आर्थिक उपजो के प्रतिवेदक जार्जवट ने चटगाव मण्डल के वन-सरक्षक द्वारा असली चालमोगरा कोक स्सालोग (चटगाव) के वना स सग्रह करवाया । अमेरिका मे विदशी पौधा आर बीजो पर अनुसन्धान करने वाले कार्यालय के अध्यक्ष डावट फेयर चाइल्ट की प्ररणा से प्रो० रॉक न चालमोगरा क बीजो का वास्तविक स्रोत खोजा । उनकी खाजे सर्वाधिक मान्य हुई । वे स्वय सम्भवत सन् १९२५-३० म भारत आये । उन्होने चालमागरा क लम्बे इतिहास म इसकी जातियो का सग्रह कर, फोटो लकर प्रामाणिक जानकारी एकत्रित की । य फोटो अधिक स्पष्ट नही थे एव उनमे चालमागरा का विविध जातियो क फूलो क फोटो भी नहीं थ । सन् १९५५ में श्री रामशवदी जी आयुर्वेदालकार न इस कर्मी को अनुभव कर चालमोगरा की विविध जातियो का पृथक्-पृथक् सम्यक्तया ज्ञान कराने क दृष्टिकोण स इनक फूलो, फलो तथा पत्तो के फाटो लकर चिकित्सक समाज के सामने प्रस्तुत किय । य फाटो एव उनका विवरण उन्होने "सचित्र आयुर्वेद" मासिक म भी प्रकाशित करवाये । अध्ययन-अध्यापन का दृष्टि से उनके ये फोटो एव उनका विवरण अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ । इस निमित्त वनौषधि विषयक जिज्ञासा रखने वाले व्यक्ति श्रीवेदी जी के कृतज्ञ रहेंगे ।

गुण—तीक्ष्ण, स्निग्ध ।

रस—कटु, तिक्त, कषाय ।

वीर्य—उष्ण ।

विपाक—कटु ।

दोषकर्म—कफ-वातशामक ।

गुणप्रकाशिका सज्ञा—तुवरक, कुष्ठवैरी ।

प्रयोज्य अङ्ग—बीज, बीजतैल ।

मात्रा—बीज चूर्ण १-२ ग्राम ।

तैल—सशमन हतु-१० मि० लि० सशमन हेतु ५-१० बूद ।

क्रमश वढाकर कल्परूप मे ५०-६० बूदें या इससे भी अधिक दिया जाता ह । इसे घृत, नवनीत, सन्तानिका मे मिलाकर किंवा कवच (कैपसूल) मे रख कर देना चाहिए ।

मुख द्वारा प्रयोग करने के अतिरिक्त इसका आक्रान्त स्थान मे सूचिकाभरण (इञ्जेक्शन) भी लगाया जाता है—यह अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है । जब इसकी बड़ी मात्रा देनी पडती है तब इञ्जेक्शन मास के अन्दर लगाए जाते हैं । सूचिकाभरण हर तीन दिन के वाद करना चाहिए । रोगी सहन कर सके तो यह क्रम पाच महीने या अधिक दिनों तक चलाना चाहिए ।

अतियोग—वैसे सशोधन हेतु इसकी अधिक मात्रा दी जाती है । किन्तु सशमन हेतु भी इसकी मात्रा सोच समझ कर ही देनी चाहिए । रोगी की प्रकृति, वय, सात्म्य आदि पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए । कुछ व्यक्तियो को सामान्य मात्रा से भी अतिसार होने लग जाते है, उन्हे यह अन्य ग्राही औषधियो के साथ देना चाहिए । अत्यधिक स्थिति मे इसका प्रयोग वन्द ही कर दना चाहिए ।

क्वचित् शरीर मे इसकी अधिक मात्रा पहुच जाने से विविध उपद्रव होने लगते है । मन्दाग्नि वाल व्यक्ति

को इसे सोच-समझ कर देना चाहिए। अति मात्रा अग्निमाद्य, वमन, अतिसार, रक्तापुहानि, रक्तमेह, उर.शूल, उदरशूल, ज्वर, सन्धिप्रदाह, वृषणप्रदाह, नेत्रप्रदाह आदि उग्र लक्षण उत्पन्न कर सकती है अत इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक ही करना चाहिए।

दर्पनाशक—हरी कासनी।

प्रतिनिधि—दरियाई नारियल।

परीक्षा—परखनली मे तुवरक तैल लेकर गन्धक का तेजाब १ मि० ली० डालने पर रङ्ग भूरा लाल हो जाता है। बाद मे यह भूरे रङ्ग का हो जाता है। यदि ऐसा नही होता है तो तैल की शुद्धता मे सन्देह करना चाहिए।

गुणधर्म विवेचना—

महावीर्यस्तुवरक कुष्ठमेहापह. पर।

—सुश्रुत सहिता

महावीर्य —महाप्रभाव', पर उत्कृष्टतम।

—डल्हण

तुवरस्तुवरश्चोष्णो रसे पाके च तिक्तक।
कफव्रणकृमिमेहकुष्ठज्वरविनाशन.॥
आनाहमर्श शोफ च नाशयेदिति' तेजगु।

—निघण्टु रत्नाकर

"कुष्णातीति कुष्टम्" शरीर किंवा अङ्गो को विकृत करने वाले रोग को कुष्ठ कहा जाता है। इसके मुख्य कुष्ठ तथा उपकुष्ठ ये दो भेद किये गये हैं। मुख्य कुष्ठ (महाकुष्ठ) वात, पित्त, कफ, वातपित्त, कफपित्त, वातकफ और त्रिदोष की प्रधानता के अनुसार सात प्रकार का कहा गया है, जिन्हें क्रमश. कपाल, औदुम्बर, मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरीक, सिध्म और काकण सज्ञा दी है। इस कुष्ठ मे जाति किंवा अवस्था या लक्षणो के अनुसार भेद नही होते। क्वचित् यह कुष्ठ उपदशज विष के रक्त मे लीन हो जाने से उत्पन्न होता है। त्वक् पारुष्य, अकस्मात् रोमहर्ष, कण्डू, स्वेदबाहुल्य, अस्वेदन, अङ्गप्रदेशो में शून्यता क्षतविसर्पण एव रक्त की श्यामता आदि लक्षणों से कुष्ठरोग की सम्भावना की जा सकती है। कुष्ठ दीर्घरोगाणाम्"—के अनुसार कई वर्षों तक इस कुष्ठ का उक्त पूर्वरूप ही चलता है, तदनु व्यक्तरूपावस्था मे यह सागोपाग अपना परिचय देता है।

सामान्यतया सभी कुष्ठभेदो को आधुनिकोक्त लेप्रोसी न कहकर गलित् कुष्ठ को ही लेप्रोसी कहा जाता है। रसरत्नसमुच्चयकार तथा आयुर्वेद प्रकाशकार आदि ने गलकुष्ठ पृथक् सज्ञा देकर इसका निरूपण किया है। सामान्यरूपेण कुष्ठ से प्राय. सभी त्वक् विकारो का परिगणन हो जाता है किन्तु विशेषतया कुष्ठ का अर्थ गलित कुष्ठ (Leprosy) ही समझा जाता है। तुवरक प्राय. सभी कुष्ठभेदो का शमन करने मे श्रेष्ठ है पुनरपि यह गलित कुष्ठ की प्रमुख औषधि है। यह कुष्ठरोग की परमौषधि होने पर भी महर्षि सुश्रुत ने इसका मधुमेह चिकित्सित अध्याय मे तथा आचार्य वाग्भट ने रसायन प्रकरण मे वर्णन किया है। महर्षि सुश्रुत ने तुवरक के ६ प्रकार के प्रयोग निर्दिष्ट किये हैं—

१ पञ्चाहिक प्रयोगेण तैल कुष्ठहर।

२ पञ्चाहिक प्रयोगेण खदिराम्बुसिद्ध तैल विशिष्ट कुष्ठहर।

३ तदेव सर्पिर्मधुखदिरकषायविधिना विशिष्ट कुष्ठहर।

४ पञ्चाशदाह्निको नस्य प्रयोग रासायनिक।

५ मज्ज प्रयोग शोधन।

६ तुवरकमज्ज-सैन्धव-स्रोतोञ्जनत्रितयमन्तर्धूमेन दग्धस्य अञ्जनप्रयोग नेत्ररोगहर।

कुष्ठघ्न होने के साथ ही रक्तप्रसादन (रक्त मे उत्पन्न विकृति को दूर कर उसे शुद्ध करने वाला) होने से सभी रक्त विकारो का शमन करने मे श्रेष्ठ है। सामान्य कण्डू से लेकर महाकुष्ठ तक त्वक् रोगों की यह रामबाण औषधि है। विधि पूर्वक सेवन करने से इस व्याधि के समस्त उपद्रवों का उपशम होता है। उपदश की दूसरी अवस्था मे प्रयोग मे लाने पर तज्जन्य समस्त उपद्रव भी दूर होकर रोग शान्त होता है। पथ्य के साथ विधिपूर्वक इसका सेवन अनिवार्य है अन्यथा लाभ प्राप्त नही किया जा सकता है।

यह कटु तिक्त रस युक्त होने से मेहहर (कफहर, क्लेदमेद उपशोषण) भी है। जैसाकि सुश्रुतसंहिता मे कहा गया है। वामक (अधिक मात्रा मे), रेचक और कृमिघ्न होने से उदररोग एव उदरकृमि को नष्ट करने मे उपयोगी है। वेदना को शान्त करने के लिये नाडीशूल, आमवात, वातरक्त आदि विकारो मे इसका बाह्याभ्यन्तर प्रयोग हितावह है। फलमज्जा की अन्तर्धूम भस्म का अञ्जन नेत्ररोगो मे लेखन कर्म के लिये किया जाता है। व्रणो मे भी इसका तैल लाभप्रद है। विशेषतया क्षयोत्पादक जन्तुओ से उत्पन्न गडमाला, नाडीव्रण, अस्थिव्रण आदि मे यह तैल लगाया जाता है।

ऊपर कहा गया है कि नेत्ररोगो मे भी, यह उपयोगी है जिसका श्लोक है—

मान्तर्धूमस्तस्य मज्जा तु दग्ध
क्षिप्तस्तैले सैन्धव चाञ्जन च।
पैल्य हन्यादर्मनक्तान्ध्यकाचान्
नीलीरोग तैमिर चाञ्जनेन॥

— सुश्रुत सू० १३/३५

यद्यपि व्याख्याकार डल्हण ने लिखा है कि "मज्जादिक त्रितयमन्तर्धूमेन दग्धम्" किन्तु श्रीकृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी ने स्रोतोञ्जन एव सैन्धव को बाद मे मिलाकर उपयोग मे लाने हेतु लिखा है।

स्रोतो के अनुसार तुवरक के कर्म निम्नाकित निर्धारित किये गये हैं —

स्रोतकर्म बाह्य -बाह्य प्रयोग मे यह कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, जन्तुघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण और लेखन है।

आभ्यन्तर प्रयोग—

वातवह स्रोत- वेदनास्थापन।
अन्नवह स्रोत—वामक।
पुरीषवह स्रोत – रेचक एव कृमिघ्न।
मूत्रवह स्रोत प्रमेहहर।
स्वेदवहस्रोत– स्वच्य।
रक्तवहस्रोत --रक्तप्रसादन।
मेदोवहस्रोत –मेहहर।
मांसवहस्रोत—कुष्ठघ्न।

इसके उपयोग की विधि का वर्णन सभी निघण्टु वेत्ताओ किंवा कुशल चिकित्सको ने किया है। वैद्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य ने सिद्धयोग सग्रह मे इसके उपयोग की विधि का वर्णन किया है। यह वर्णन सुश्रुतसहिता के आधार पर ही किया गया है।

यूनानी मत—यूनानी मतानुसार यह तीसरे दर्जे मे गर्म और खुश्क है। यह दाद, खाज, कुष्ठ और चर्मरोगो मे बहुत मुफीद है। इसके अलावा कण्ठमाला, पुरानी गठिया, गरमी तथा तपेदिक मे इसकी सिफारिश की गई है। इसको अकेले मालिश करने से चमडे पर जलन पैदा होती है। इसलिए इसको तिगुने या चौगुने नीम के बीजो के तैल मे मिलाकर लगाना चाहिए।

मखजनूल अदविया के मतानुसार इसमे विष के उपद्रवो को मिटाने की तासीर है।

पाश्चात्य मत—सल्फोन समुदाय की औषधियों के आविष्कार के पूर्व चालमोगरा तैल का प्रयोग, एक समान विशिष्ट औषधि के रूप मे किया जाता था। एतदर्थ सादे तैल (Crude oil) का व्यवहार तो स्थानिक प्रयोग के लिये चकत्तों (Patches) पर मालिश के लिए तथा सार्वदैहिक प्रभाव के लिए हिडनोकार्पिक एसिड एव चालमूग्रिक एसिड के एथिल ईस्टर्स भी व्यवहृत किये जाते हैं। क्योकि सादे तैल के व्यवहार मे नाना प्रकार के उपद्रव होते थे। इस रूप मे इनका सेवन मुख द्वारा तथा अधस्त्वक्, पेशीगत एव शिरागत इन्जेक्शन द्वारा होता है। अब कुष्ठ की चिकित्सा मे प्रधान औषधि के रूप मे तो सल्फोन्स का व्यवहार किया जाता है और हिडनोकार्पस तथा चालमोगरा का चिकित्सा क्रम सहायक औषधि के रूप मे दिया जाता है। किन्तु केवल सल्फोन्स के प्रयोग से कुष्ठार्बुदों (Lepromate) एव कुष्ठज गिल्टियो (Indurated Areas) का विलयन नही होता। इसके लिए अब भी चालमोगरा ही विशिष्ट औषधि है। —पाश्चात्य द्रव्यगुण विज्ञान

यह तैल बाहर त्वचा पर मालिश करने से स्थानिक रक्तप्रवाह एवं नाडियो पर कुछ उत्तेजनामय प्रभाव करता है। यदि यह मालिश अधिक देर तक की जाय तो रक्तिमोत्पादक प्रभाव होता है।

आभ्यन्तर प्रयोग से ये तैल आमाशयान्त्र प्रणाली पर क्षोभक प्रभाव करते हैं एतावता इससे वमन, मतली आदि लक्षण होते हैं। कुष्ठ की तो यह अद्वितीय औषधि है। कुष्ठ के जीवाणुओ पर इसकी क्रिया किस प्रकार होती है, इस पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं। एक मत है कि यह तैल कुष्ठ के अम्लग्राही जीवाणुओं (Acid fast bacilli) पर प्रत्यक्ष घातक प्रभाव करता है। दूसरा मत है, कि यह रक्त में मेद-पाची (Lipase) घटकों को बढ़ाता है, जिनसे कुष्ठ के जीवाणुओं का मेदीय आवरण गल जाता है, जिससे परिणामस्वरूप उक्त जीवाणुओं का विनाश सुलभ हो त्वचा की सुरक्षात्मक शक्ति की वृद्धि में तुवरक सहायता करता है।

यूरोपियन डाक्टरो ने कुष्ठ के अतिरिक्त क्षय, क्षयजन्य कास, कण्ठमाला, क्षय जन्तुओं के द्वारा उत्पन्न हुये व्रण, नाडीव्रण और अस्थि के नाडीव्रण, जीर्णश्वासनलिका शोथ, आमवात, ग्रन्थिवात और स्नायु रोगों पर भी इसका बाह्याभ्यन्तर प्रयोग लाभप्रद बतलाया है। यूरोप एव अमेरिका के चिकित्सक रक्त रोगो पर विशेषतया कुष्ठ पर इसका खूब प्रयोग करते हैं। डा० कोचरेन चालमोगरा के ताजा बीज पीसकर रोगी को भोजन के बाद दोनो समय देने की राय देते हैं।

"इण्डियन प्लान्ट्स एण्ड ड्रग्स" नामक ग्रन्थ मे डा० नाडकरनी ने कहा है कि चालमोगरे का तैल वातरक्त और कुष्ठ रोग के लिये हिन्दुस्तान मे बहुत प्रसिद्ध है। कंठमाला, चर्मरोग और प्राचीन संधिवात पर भी यह औषधि विजयी साबित हुई है।

कुष्ठ के चकत्तो मे सूचिकाभरण (इन्जेक्शन) भी करना लाभप्रद है। यह सूचिकाभरण अधस्त्वक् किया जाना चाहिए। १/२ मि० ली० से मात्रा प्रारम्भ की जानी चाहिए। इन्जेक्शन सप्ताह मे केवल एक बार दिया जाता है। प्रति सप्ताह इतनी ही मात्रा बढ़ाकर उत्तरोत्तर १० से १५ मि० ली० तक मात्रा प्रविष्ट की जाती है। चकत्तों पर त्वचान्तर्गत इन्जेक्शन चारों तरफ घुमा-घुमाकर देना चाहिए। अधिक मात्रा पेशीगत इन्जेक्शन द्वारा प्रविष्ट करनी चाहिए। पेशीगत इन्जेक्शन नितम्ब प्रदेश मे ही देना चाहिए। इन्जेक्शन लगाने मे पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए। इन्जेक्शन से गृध्रसी नाडी पर आघात नही पहुचना चाहिए एव दवा सिरा मे नही जानी चाहिए। तैलीय स्वरूप में होने से कभी-कभी इन्जेक्शन के स्थान पर दर्द अधिक होने लगता है। शोषण ठीक न होना, गाठ या विद्रधि भी बन जाती है। प्राय अधस्त्वक् सूचिकाभरण द्वारा इन उपद्रवो की आशका अधिक रहती है।

इन्जेक्शन के अतिरिक्त स्थानिक प्रयोग के लिए इसका साबुन भी आता है जो हिडनोकार्पस सोप (Hydnocarpus Soap) के नाम से उपलब्ध होता है।

चालमोगरा तैल निकालने एवं सिद्ध करने की विधि

वर्षाऋतु के आरम्भ मे फल पक जाने पर वृक्ष से उन्हे तोड लेना चाहिए (तेषां फलानि गृह्णीयात् सुपक्वान्यम्बुदागमे) अन्यथा जगली जानवर उन्हे नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। जगली सूअर एव भालू इन फलो को बडे चाव से खाते हैं। चालमोगरा न० ३ (Gynocardia Odorata) अधिक विषाक्त होने से जो जानवर इन फलो को खाते हैं उनका मास खाने से मनुष्यो को वमन या मितली उत्पन्न होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। यायावर वनकर देश-विदेश मे भ्रमण कर वनौषधियो का अन्वेषण करने वाले श्रीयुत रामेश वेदी आयुर्वेदालकार ने एक लेख में लिखा है कि सिक्किम के पहाडी लोग मछलियो को विषाक्त करने के लिये इनको प्रयोग मे लाते हैं।

इन फलो को ७-८ दिनो तक धान के तुष मे दबाकर रखने से फल अच्छी तरह से पक्व हो जाते

है तब शीघ्र उनका तैल निकाल लेना चाहिए। अधिक पुराने फलो से निकाला गया तैल अधिक गुणकारी नही होता।

पके फलो के भीतर से बीज निकाल कर सुखा लें। अच्छी तरह से सूख जाने पर ऊपर का छिलका दूर कर मज्जा (गिरी-मीगी) को कोल्हू मे पेलकर तैल निकाल लें। तैल निकालने के पश्चात् उसे छान-कर काम मे लावें। इससे जो तैल निकलता है वह प्रायः फलो का अष्टमाश होता है। इस विधि से निकाला गया तैल किंचित् पीताभ होता है। गोवा के ग्रामीण जन इस विधि से ही तैल निकालते हैं।

तैल निकालने की एक दूसरी भी विधि है—मीगी को सुखाकर ओखली मे कूट कर पानी मिलाकर आग पर चढाने से तैल पानी पर निथर आता है। उसे शनै शनै उतार कर अन्य पात्र मे एकत्रित कर लें। इस तैल मे रहे कुछ जलीयाश को समाप्त करने के लिये पुन उसे मन्द आग पर पकावें। जलीयाश के समाप्त हो जाने पर उसे किसी स्वच्छ घडे मे वन्द कर चारो ओर से सम्पुट कर शुष्क कण्डो के चूर्ण में १५ दिनों तक रख दें। इसके पश्चात् उसे निकाल कर कपडे से छानकर काच पात्र मे सुरक्षित रख लें। और आवश्यकता पर काम मे लावें। सुखस्मरणार्थ किंवा महर्षि की वाणी के रसास्वादन हेतु श्लोक अंकित किये जाते हैं—

तेभ्यो मज्जानमादाय शोषयित्वा विचूर्ण्य च।
तिलवत् पीडयेद्द्रोण्या स्रावयेद्वा कुसुम्भवत्॥
त तैल सहृत भूय पचेदातोयसक्षयात्।
अवतार्य करीषे च पक्षमात्र निधापयेत्॥

—सुश्रुत० म० सू० १३।२२–२३

तत्तु करीषराशौ पक्ष निधात् प्रयोजयेत् विशिष्ट-तमशक्त्युत्पादनार्थम्।

सम्पुट कर कडो में रखने से तैल की विशेष शुद्धि तथा गुणो मे वृद्धि होती है। इससे पूर्व त्रिगुण खदिर-क्वाथ से तैल को सिद्ध कर लेने पर यह अधिकतम कुष्ठघ्न हो जाता है क्योंकि भगवान् चरक ने यज्ज पुरुषीय अध्याय मे खदिर को कुष्ठघ्न द्रव्यों में श्रेष्ठतम कहा है। एतावता खदिर सिद्ध तैल मे कुष्ठ को शीघ्र दूर करने की कार्मुकता अधिक वढ जाती है।

उत्तर भारतीय तुवरक (चालमोगरा न० २) के बीजो मे तैल निकालने के लिए मींगी को धूप में सुखा कर केन्विस की थैलियो मे भरकर या टाट मे बाधकर कल या माचे मे दवाकर तैल निकालना चाहिए। यह तैल चतुर्थाश निकलता है। इसमे जो प्रारम्भ मे तैल निकलता है वह निर्मल एव सूखे घास के रङ्ग वाला होता है। इसके पश्चात् जो तैल निक-लता है वह मटमैला होता है। —बूटी दर्पण

"सचित्र आयुर्वेद" मासिक के फर० ५७ के अक मे श्रीयुत रामेश वेदी जी ने दवाकर तथा सस्कारित कर तैल निकालने की विधियो का वर्णन कर उनके गुणो की तुलना की है—आम्मस दवाव (Hydraulic Pressure) से केवल ३० ६ प्रतिशत तैल प्राप्त होता है परन्तु दक्षु निस्सार (Ether Extraction) रीति से परिमाण वढाकर ३८ १ प्रतिशत तक पहुच जाता है। दोनो की रीतियो से प्राप्त तैलो के गुण इस प्रकार हैं—

द्रावाक (Melting Point)	२२–२३°	२२–२३°
आपेक्षिक गुरुत्व २५° श० पर	० ९५१	० ९५२
अम्ल अर्हा (Acid Value)	२३ ६	६ ५
साबुनीकरण अर्हा	२१३ ०	२०८ ०
जाम्बुकी अर्हा (Iodine Value)	१०३ २	१०४ ४
आपेक्षिक आवर्त (Specific Rotation)	५० ०°	५१ ३°

इनमे चालमोगरा न० १-२ के तैल अधिक श्रेष्ठ माने जाते हैं क्योकि—

१ इसके वीज तैल निकालने के लिये विना कठिनाई के उपलब्ध हो जाते हैं और ताजे मिल जाते हैं जबकि अन्य जाति के तुवरक वृक्ष घने जगलों मे होने मे ताजे वीज सहज से ही उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।

२ इसके तैल मे समगतिशील शक्ति (Rotation Value) अन्य जाति के वृक्षो के तैलो की अपेक्षा ५-५ डिग्री अधिक उच्च कोटि की है —नाडकर्णी

सुतरा अन्य तैलो की अपेक्षा कुष्ठ विनाश हेतु अप्रतिम विशिष्ट प्रभावशाली होने से श्रेष्ठ है।

यहा पर चालमोगरा न० ३ से न० १-२ श्रेष्ठता-प्रदर्शित की गई है। क्योकि न० १ एव न० २ के गुणो मे तो प्राय: समानता ही है।

तुवरक तैल की उपादेयता—तुवरक तैल मे समगतिशीत शक्ति (Rotation Value) अन्य जाति के वृक्षो के तैलो की अपेक्षा ५-५ डिग्री अधिक उच्च कोटि की है। यद्यपि तुवरक तैल के अभाव मे चालमोगरा (न० २,३) उपयोग मे लाया जाता है किन्तु महाकुष्ठ मे तुवरक तैल के समान अन्य जाति के तैल उतने लाभप्रद नही सिद्ध हुये हैं। यदि इसे इन्जेक्शन के रूप मे प्रयुक्त करना हो तो सादे तैल की अपेक्षा सस्कारित तैल (इञ्जेक्शन आफ हिडनाकार्पस आयल) को ही उपयोग मे लाना चाहिये।

तुवरक तैल-चालमोगरा न० १	चालमोगरा तैल (न० २-३)
१. इण्डियन फार्माकोपिया मे यह हिडनोकार्पस आयल के नाम से निर्धारित है।	१ इण्डियन फार्माकोपिया मे यह चालमोगरा आयल के नाम से निर्धारित है।
२. यह वम्बई के बाजार मे अधिकतर मिलता है।	२ यह कलकत्ते के बाजार मे अधिकतर मिलता है।
३ यह प्राय: पीला या हलका पीला होता है।	३. यह भूरापन लिये पीला होता है।
४. २० अश या इससे कम तापमान पर यह मटमैले सफेद रङ्ग का घी के समान जमे हुए रूप मे प्राप्त होता है।	४. २५ अश से कम तापमान पर यह जमी हुई अवस्था मे (बिगडे हुये मक्खन के समान) मिलता है।

बाह्य प्रयोग—

१. कुष्ठ—(क) तुवरक तैल २ भाग, बाकुची तैल भाग और चन्दन तैल १ भाग मिलाकर लगाने से कुष्ठ, पामा, विर्चाचिका मिटते हैं।

(ख) तुवरक तैल मे शुद्ध सौभाग्य [सुहागा] मिलाकर भी लगाया जा सकता है।

(ग) तैल को नवनीत मे या तिल तैल [६ गुना] मिलाकर भी महाकुष्ठ व क्षुद्र कुष्ठो मे लगाया जा सकता है।

(घ) तुवरक तैल मे समभाग नीम का तैल मिलाकर लगाना भी उपयोगी है।

२. व्रण—तुवरक तैल मे कपडा भिगोकर व्रण पर रखकर बाधने से लाभ होता है।

आभ्यन्तर प्रयोग—

, सेवन करने की विधि का पृथक वर्णन किया गया है जो कुष्ठ, मधुमेह आदि मे लाभदायक है। दूध मे भी २-४ बूद डालकर सेवन की जा सकती है। इससे दुर्बलता भी नष्ट होती है। कर्नल डा० वर्डवुड के अनुसार उत्तम गोद का पानी ४ मि० लि०, स्वच्छ जल १५ मि० लि० मे ५ बूद तुवरक तैल को मिलाकर सेवन करना कुष्ठ मे हितावह है। इसका नस्य भी बलप्रद कहा गया है।

तैल सेवन की प्रशस्त विधि--प्राच्य प्रतीच्य सेवन विधियो के अध्ययन के पश्चात् आचार्य त्रिवेदी जी ने जो सेवन विधि लिखी है, उसे हम यहां उद्धृत कर रहे हैं—

रोगी के बलानुसार स्नेहन स्वेदनादि साधारण पधकर्म द्वारा रोगी को शुद्धि कर पेया, विलेपी के सेवन से लगभग १५ दिन बाद बल की प्राप्ति होने पर शुक्ल पक्ष के शुभ दिन (पुष्य, हस्त, जेष्ठा, रोहिणी, श्रवण, अश्वनी, स्वाति आदि नक्षत्र शुभ होते हैं) प्रात काल तैल को "मज्जसार महावीर्य सर्वान् धातून विशोधय। शख चक्र गदापाणिस्त्वामाज्ञापयतेऽच्युत." इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर १२ ग्राम की मात्रा मे (प्रथम दिन ५ बूद की मात्रा) प्रात-साय गाय के ताजे मक्खन या दूध की मलाई के साथ देवें। फिर प्रति चौथे दिन ५-५ बूद बढ़ाते हुए २०० बूद तक, या सहन हो जाय वहा तक बढ़ावें। मात्रा अधिक हो जाने से उबकाई, वमन, रेचन आदि होने लगते हैं, ऐसा होने पर मात्रा घटा दें। प्रात इसे खाली पेट न दें। भोजन के आधा घण्टा बाद ही दें। रोगी को भोजन मे पथ्यान्न—चावल-दूध आदि ही खिलावें। वमन-विरेचन द्वारा (यह वमन विरेचन तब ही होते हैं जबकि सुश्रुत की मात्रा म यह देवें) रोगी के दोष एक साथ बाहर निकलते हैं—फिर रोगी को प्रतिदिन सायकाल स्नेह आर लवण रहित (या अल्पस्नेह लवण युक्त) शीतल यवागू पिलावें। इस विधि से पाच दिन (या १ माह तक ४-४ दिन के अन्तर से वृद्धि-ह्रास क्रम से) प्रात सेवन करें। इस प्रकार फिर १५ दिन बन्द रखकर पुन. सेवन करें इस प्रकार एक (या दो) माह तक आलस्य रहित क्रोधादि का त्याग कर सयम-पूर्वक इसके सेवन तथा मूग के यूप के साथ चावल का भोजन करने से रोगी शीघ्र ही कुष्ठ से मुक्त हो जाता है। रोग की विशेष दशा मे कभी-कभी इसका सेवन ६ माह या कुछ अधिक दिन तक पथ्य-पालन पूर्वक कराना आवश्यक होता है। साथ ही साथ इस तैल की मालिश करनी चाहिये और इसमें शुभ्र वस्त्र भिगोकर व्रणो पर बाधना चाहिये। इससे व्रण भी शीघ्र ही भर जाते हैं। जिस कुष्ठ रोगी का स्वरभेद हो, नेत्र लाल हो, मास गल गया हो, कृमि पड गये हों वह भी इस विधि के अनुसार सेवन करने एव लगाने से सुधर जाता है। इस प्रकार यह प्रभावशाली तुवरक कुष्ठ एव प्रमेह को नष्ट करने मे उत्कृष्ट-तम है।

सेवन काल मे पथ्यापथ्य—प्रात-साय केवल दूध, दोपहर को मोसम्बी, मीठा अनार, सेव, केला, मीटा अगूर आदि मीठे फल लें। दूध और फलों के बीच तीन घण्टे का तो अन्तर होना ही चाहिये। यदि यह पथ्यपालन न हो सके तो पुराने चावल का भात, जौ-गेहू की रोटी रोगी दूध के साथ लेवें। घृत, नव-नीत, मधु भी सेवन किये जा सकते हैं। गुड, लवण, अम्ल एव चरपरे पदार्थ अपथ्य कहे गये हैं अत इनका सर्वथा परित्याग करना, चाहिये। मास, मदिरा, तम्बाकू भी अपथ्य है। कुछ लोग गाजा पीने का परा-मर्श देते है।

सामान्य प्रयोग (बीज)

बाह्य प्रयोग—

१. पामा—बीजो को गोमूत्र मे पीसकर लगाना चाहिए। यह खसरा मे भी उपयोगी है।

२. कुष्ठ—(क) बीजो को पीसकर नवनीत में मिलाकर लगाने से सभी कुष्ठ ठीक होते हैं।

(ख) बीज, मोम तथा गन्धक को एकत्र मिलाकर लेप करना भी कुष्ठ मे हितकारक है।

३. सद्योव्रण—क्षत आदि से हुए सद्योव्रण के रुधिरस्राव को बन्द करने के लिये बीजो का चूर्ण घाव मे भर देना चाहिए। इससे रक्तस्राव बन्द होकर व्रण का शीघ्र रोपण होता है।

४. उपदंशज व्रण—बीजमज्जा को बारीक कतर कर तिल तैल मे तलकर मर्दन करने से उपदशज व्रण मिटने लगते हैं।

५. मूर्च्छा—मूर्च्छारोग से ग्रस्त व्यक्ति के मस्तक के बाल दूर कर बीज चूर्ण मलना हितकारी है।

आभ्यन्तर प्रयोग—

१. कुष्ठ—(क) बीजमज्जा ५०० मि० ग्राम को घृत, मधु (असमान) मे मिलाकर सेवन करना कुष्ठ मे फलप्रद है।

(ख) बीज चूर्ण जल के साथ भी सेवन किया जा सकता है।

२. मधुमेह—(क) मधुमेह मे इसकी मींगी का चूर्ण २ ग्राम तक दिन मे २-३ बार जल के साथ सेवन कराते हैं।

(ख) मींगी का चूर्ण शालसारादिगण की औषधियों की उपयुक्त कल्पना [क्वाथ, चूर्ण आदि) के साथ देना भी उपयोगी सिद्ध होता है।

३. विसूचिका—५०० मि० ग्रा० से १ ग्राम तक तुवरक फलमज्जा के टुकडे गुलाबजल मे घिसकर पिलाने से विसूचिका मे उपकार होता है।

४. बालरोग—गर्मी के दिनो मे अधिक गर्मी से जब बालक प्यास, दाह, अतिसार आदि रोगो से व्याकुल हो तब इसको केवडे के अर्क या शीतल जल मे घिसकर पिलाना चाहिये।

५. कंठमाला—फलमज्जा (मींगी) चूर्ण दिन मे तीन बार २५० मि० ग्रा० देना चाहिये। धीरे-धीरे इसकी मात्रा बढ़ानी चाहिए। उपद्रव होने पर औषधि कुछ समय बन्द कर देनी चाहिये। सहन होने पर भी २-३ ग्राम से अधिक मात्रा नही देनी चाहिए। यह ल्प, कुष्ठ, मधुमेह, जीर्ण सन्धिवात मे भी लाभद है।

विविध कल्पनायें—

१. वटी—(क) तुवरक की मींग, बाकुची बीज, चित्रक, हरिद्रा, विडङ्ग, त्रिफला और शुद्ध भिलावा समभाग लेकर गुड़ मिलाकर २५० मि० ग्राम की गोलियाँ बना लें। १-२ गोली दिन म २-३ बार खाने से सब प्रकार के रक्त-विकार, कुष्ठ आदि नष्ट होते हैं। —अभि० बू० द०

(ख) तुवरक की मींग, शुद्ध भिलावा, बाकुची बीज, शिलाजीत समभाग लेकर गोलिया बनाकर सेवन करने से कुष्ठ, वातरक्त नष्ट होकर बलवीर्य की वृद्धि होती है। —अभि० बू० द०

(ग) तुवरक की मींग १२ ग्राम, शुद्ध कुचिला ३ ग्राम मे अमलतास, नीम और सप्तपर्ण के रस की भावना देकर ५०० मि० ग्राम की गोलियां बना लें। यह कुष्ठ, वातरक्त, शीतपित्त आदि को दूर करने मे श्रेष्ठ है। —अभि बू० द०

२. तुवरक भस्म—तुवरकफलमज्जा को बारीक पीसकर उसमे किंचित् इसी का तैल मिलाकर पुनः घोटकर मटकी मे रखकर अच्छी तरह शराव सम्पुट कर कडो की आंच मे रखकर भस्म बना लें। इस अन्तर्धूम भस्म के अजन से रतौंधी, तिमिर, श्वेत और नीला मोतियाबिन्दु, परवाल, नेत्रव्रण आदि नेत्ररोगो मे लेखन होकर लाभ होता है। इस भस्म मे सैन्धव लवण एव स्रोतोञ्जन समभाग लेकर पीसकर लगाने से लेखन विशेष होता है। —सुश्रुतसहिता

३. मलहम—(क) तुवरक तैल ४ ग्राम और सादा वैसलीन ३० ग्राम लेकर भलीभाति एकत्र फेंटकर मलहम तैयार कर लें। यह मलहम कुष्ठ, कण्डू पर बाह्य प्रयोग के लिये लाभप्रद है। —ध० व० वि०

(ख) तुवरक तैल, एरण्ड तैल समानभाग लेकर इनमे भली-भाति मिश्रण होने योग्य गन्धक, सिन्दूर मिला लें। फिर इसमे नीबू स्वरस डालकर खूब फेंटने से यह मलहम तैयार हो जायेगा। इसमे थोड़ा कपूर मिलाकर चौडे मुख की शीशी मे रख ढक्कन लगाकर रखें। आवश्यकता पड़ने पर थोड़ा-थोड़ा कुछ समय तक निरन्तर लगाने से फोड़े-फुंसी और खुजली मिट जाते हैं। रोमान्तिका (खसरा) मे भी इसे लगाने से लाभ होता है। —ध० व० वि०

पेटेण्ट प्रयोगो मे तुवरक—यह पूर्व मे कहा गया है कि तुवरक तैल को कैपसुल मे रखकर या सूचीवेध के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। सुतरा आयुर्वेदीय सूचिकाभरण बनाने वाले प्राय. सभी इसके इन्जेक्शन तैयार करते हैं। बुन्देलखण्ड फार्मा० झासी चालमोगरा के नाम से इन्जेक्शन तैयार करती है, जिसका एक इन्जेक्शन मासपेश्यान्तर्गत या अधः त्वचान्तर्गत निरन्तर लगाया जाता है। इसके प्रयोग से व्रणशोधन, रोपण तथा कृमिविनाश होकर त्वचा कोमो

मे कोषो का नवीनीकरण होता है। पामा, विर्चचिका, कुष्ठ आदि समस्त चर्मरोगो मे यह हितावह है। जी० एं० मिश्रा फार्मेसी भी तुवरक के दो इन्जेक्शन तैयार करती है। एक चालमोगरा के नाम का है जिसमे चालमोगरा १८ मि० ग्रा०, स्वर्णक्षीरी ६ मि० ग्रा० और नीवू ६ मि० ग्रा० होता है। यह कुष्ठ, उपदश, व्रण, विद्रधि, अर्श, भगन्दर आदि रोगो मे लाभप्रद है। दूसरा कुष्ठहर के नाम का है, जिसमें कुष्ठकुठार १५ मि० ग्रा० तथा चालमोगरा १५ ग्राम है। यह विशेषतया गलितकुष्ठ के लिए लाभप्रद है। इसी प्रकार कुष्ठार नाम का, प्रतापफार्मा भी इन्जेक्शन तैयार करता है, जो चालमोगरा तैल, जैतून तैल एव मल्ल के सम्मिश्रण से तैयार किया जाता है। यह कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, पामा, कण्डू आदि त्वचा के रोगो मे लाभप्रद है।

प्सोरा नामक कैपसूलो (अश्विनी फार्मास्युटिकल्स) में चालमोगरा तैल, नीम तैल, नारायण तैल, वाकुची तैल के अतिरिक्त पचतिक्त घृत गुग्गुल भी होता है। यह कुष्ठ, नाडीव्रण, शीतपित्त, पामा, अर्बुद, भगन्दर, विर्चचिका आदि को नष्ट करने मे श्रेष्ठ है। दिन मे २-३ कैपसूल भोजनोपरान्त लेने चाहिये।

नवशक्ति का मन्दार टूथ पाउडर है जिसमे अनेक द्रव्यो के साथ तुवरक बीज भी डाले जाते हैं। यह दन्तविकारो को नष्ट कर दातो को चमकीले एव मुख को सुगन्धित बनाता है।

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, अमृतसर भी डरमासिड नामक ट्यूब का निर्माण करता है, जो दाद, खाज, फोडे-फुसी एव सडे-गले घावो को ठीक करती है। इसमे तुवरक तैल के अलावा कूपूर, गन्धक, रसकपूर, तुत्थ, दालचिकना आदि हैं।

भारतीय औषधि निर्माणशाला (वान) डर्मफेक्स तैल नामक एक तैल प्रस्तुत करती है। इस तैल मे तुवरक तैल, वाकुची तैल, करज तैल, निम्ब तैल, सर्षप तैल, तिल तैल, जैतून तैल और कपूर का सम्मिश्रण किया जाता है। यह तैल सक्रामक रोग-प्रतिकारक है। यह कुष्ठ, दद्रु, कण्डू, शीतपित्त के अतिरिक्त व्रण एव कुत्ते के काटने व जन्तु के काटने आदि मे प्रभावी है। दिन मे तीन-चार वार रोगाक्रान्त स्थाल पर लगाकर धीरे-धीरे मलना चाहिए।

वि० अनुभूत प्रयोग—

१. कुष्ठनाशक चूर्ण—चालमोगरा की मीगी २५० ग्राम, नीमपत्ती, बीज (दोनों) २० ग्राम, घुषकोरैया १२५ ग्राम, कूठ १० ग्राम, कुटकी १० ग्राम, जावित्री १० ग्राम, केशर ६ ग्राम। सभी का चूर्ण बना कर रख लें।

मात्रा—३-३ ग्राम की मात्रा मे प्रातः-साय मधु के साथ लें।

उपयोग—यह समस्त कुष्ठनाशक योग है। लम्बे समय तक प्रयोग करना चाहिए। प्रयोग करने से पहले जुलाब लेकर पेट साफ करा देना चाहिए।

—महन्त साधुशरणदास
(धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयोगांक भाग ४)

२. चर्मरोगारि तैल—तुवरक बीज ६० ग्राम, चक्रमर्द बीज १२५ ग्राम, वाकुची ६० ग्राम, अमलतास के बीज १२५ ग्राम, काले धतूर बीज १८० ग्राम, स्वर्णक्षीरी बीज १८० ग्राम, तुत्थ ३० ग्राम, चौकिया सुहागा १२० ग्राम, सफेद राल १२० ग्राम, कसीस हरा ६० ग्राम, दाल चिकना १०० ग्राम, रसकर्पूर २० ग्राम, हरताल ३० ग्राम, मैनसिल ३० ग्राम, गन्धक ६० ग्राम, फिटकरी ६० ग्राम, कबीला ४० ग्राम, नीम का तैल १८० ग्राम, चालमोगरा तैल १८० ग्राम, गर्जन का तैल १८० ग्राम।

विधि—प्रथम की ६ औषधिया स्वच्छ कर अलग रख दें। बाद की शेष १० वस्तुओ को खूब बारीक पीस कर इन्हे खरल मे डालें। फिर ३ दिन नीम के तैल मे ३ दिन चालमोगरे के तैल मे तथा ३ दिन गर्जन के तैल मे खरल करें। पश्चात् प्रथम ६ औषधियो के साथ इन्हें मिलाकर पातालयन्त्र द्वारा तैल निकाल कर सुरक्षित रखें। यह चर्मरोगारि तैल है। यह प्रत्येक चर्म रोगो पर उपयोगी है।

—सुधानिधि प्रयोग सग्रह

३. खुजली नाशक मिश्रण—चालमोगरे का तैल ४ औंस, टकणक्षार २० ग्रेन, गन्धक २० ग्रेन, सन्तरे का रस १० बूद । चालमोगरे के तैल मे गन्धक और सुहागे का क्षार मिलाकर ऊपर से सन्तरे का रस डाल दें, इससे गन्धक की दुर्गन्ध दूर हो जाती है। जहां-जहां खुजली हो वहां इस दवा को रोगी के लगावें और उसे धूप में लेटे रहने को कहे तथा दो घण्टे बाद स्नान करावें। इससे केवल ३-४ दिनों मे ही भयंकर खुजली ठीक हो जाती है।

—प० सालिगराम पुजारी
(स्वास्थ्य जुलाई ७८)

४. उपदंशजन्य चर्मरोगहर प्रयोग—तुवरक के बीजों के साथ समभाग जगली मूंग के बीज को जौकुट कर भृङ्गराज के स्वरस मे तीन दिन भिगोकर महीन पीस उसमे थोडा चन्दन तैल या नारियल तैल या आवला तैल मिलाकर उवटन जैसे मर्दन करें। फिर ३-४ घण्टे बाद स्नान कर लें। इस प्रयोग से कुछ दिनों में उपदशरोग के कारण उत्पन्न शरीर पर हुये चकत्ते मिटने लगते हैं। —व० गु०

५. तुवरक तैल का कुष्ठ मे प्रयोग, एक अनुभव—एक रोगी-आयुर्वेद विद्यालय मे सम्बद्ध चिकित्सालय उदयपुर के वहिरङ्ग विभाग में मेरे सम्पर्क में आया। इतिवृत्त एव लक्षणो के आधार पर रोगी को गलित कुष्ठ समझ कर उपचार प्रारम्भ किया। एक माह तक निरन्तर अन्य उपचार चलता रहा। पुनर्विचार के क्रम मे सभी औषधिया बन्द कर केवल तुवरक तैल-३-३ बूद दिन मे दो वार कैपसूल मे बन्द कर निगलवाये गये। उष्ण खाद्य-पेय निषिद्ध कर दिये गए। चाय-दूध भी ठण्डा लेने के लिये कहा गया। आग एव धूप से वचने के निर्देश दिये। यह व्यवस्था एक सप्ताह तक देने से ही अच्छा लाभ हुआ। ओजोवृद्धि, त्वक्मावर्ण्य, बलसजनन, स्फूर्ति आदि होकर वेदना शमन हो गया। लगभग एक माह वाद पुन सम्पर्क मे आया। इस वार व्याधि का आक्रमण दोनो हाथो एव दोनो पैरो की अगुलियों में फैल गया था। पुनश्च, तुवरक तैल पूर्व विधि से दिया गया जो डेढ माह तक निरन्तर रखा। सभी लक्षण शान्त होकर इस अवस्था मे भी अपने को सशक्त ओजस्वी अनुभव करने लगा। तुवरक तैल के बाद पंचतिक्त घृत एवं महातिक्त घृत (पचतिक्त घृत अनुपलब्ध होने से) एक-एक सप्ताह दिया। तदन्तर अभी भी वह गत एक वर्ष मे मेरे सम्पर्क में है कोई भी उपद्रव दृष्टिगत नही हुए। पथ्य पालन निरन्तर है। सामान्य घरेलू कार्य एवं विद्यालय आने जाने के लिए धूप मे आता जाता है किन्तु धूप में खडा रह कर बात करना या काम करना निषिद्ध है।

—वैद्य श्री कनकप्रसाद व्यास
(धन्व० सित० ७७)

६. अरुंषिकाहर प्रयोग—तुवरक तैल में चूने का पानी मिलाकर लकडी से हिलावें जब वह मक्खन जैसा श्वेत हो जाय तव सिर पर नित्य दिन में चार वार लगावें। इसके तीन दिन के लगाने से ही सिर पर हुई छोटी फुंसिया मिट जाती हैं। —व० वि०

७ श्वित्रहर प्रयोग—तुवरक के बीज छील मन्द आच पर भूनकर + घी मे भुनी, हीग १/८ भाग + १/२ भाग शुण्ठी-चूर्ण + १ भाग मिश्री मिलाकर ६ से १२ ग्राम तक दिन मे दो वार सेवन करें। साथ में ही गुनगुने पानी मे थोडा स्वर्जिका क्षार मिला श्वित्र को पोछ कर तुवरक तैल का अभ्यङ्ग करें। सप्ताह मे दो वार तो अभ्यङ्ग अवश्य करना चाहिए।

—श्री अशोककुमार वैद्य
(धन्व० नव० ८१)

तुलसी
(Ocimum Sanctum)



माता मे ईश्वर को देखने की सीख प्रारम्भ से ही दी जाती रही है। तब ही तो कैवल्य की साक्षात प्रतिमा वैराग्य के अकलुष ज्योतिस्तम्भ भगवान् शकराचार्य ने सन्यास के प्रतीकपुज होते हुए भी माता के चरणों मे अपना मस्तक रखकर अपने को धन्य समझा था। वस्तुत मानव जाति के होठो पर जो सबसे सुन्दर शब्द है, वह है—माता और सबसे जो सुन्दर सम्बोधन है, वह है—मेरी माता। यह आशा और प्यार से भरा शब्द है। हृदय की गहराइयो से निकलने वाला मधुर और दयालु शब्द है। तब ही तो हिन्दुओ ने विद्या मे, श्री मे, भाषा मे, सरिता मे, धेनु मे, नगर-ग्राम-खेडो मे (वस्ती माता), और समस्त धरती मे माता के ही दर्शन किये हैं। हिन्दुओ ने तुलसी को देखा तो हाथ जोड लिये और वन्दना प्रारम्भ की—

जय जय तुलसी माता।
सब जग की सुख दाता वर दाता॥
सब योगो के ऊपर सब रोगो के ऊपर।
रुज से रक्षा करके भव त्राता॥
जय जय तुलसी माता।

क्योकि यह रोग-शोक हरने वाली है, सुख-सौभाग्य का अक्षयवर देने वाली है। इसे देखने मात्र से ही हर्ष की लहर दौडने लगती है—

नव तुलसिका वृन्द तह देख हरख कविराय।
—रा० च० मा० सु० का०

इस तुलसी के लिये मेरा भी शत-शत नमन—

या दृष्टा निखिलाघसघशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी,
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवत कृष्णस्य सरोपिता,
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नम॥
—पद्मपुराण पा० ७६/६६

पाप हरे अवलोकन से अरु छूवत गात पवित्र बनावे,
रोग निवारण शीघ्र करे जब शीप तहा दिन रैन नवावे।
सिचन से यम का भय भागत रोपण से मुरलीधर पावे,
मुक्ति मिले, पद शीष धरे तुलसी-तुलसी कह जो गुण गावे॥
—गोपेश

इसका कुल तुलसी कुल (लेविएटी–Labiatae) है। भगवान् चरक ने इसे मुख्यतया श्वास हर एवं महर्षि सुश्रुत ने शिरोविरेचनोपयोगी कहा है। इसके अतिरिक्त इसके नाम से एक गण का भी उल्लेख किया है। इस गण के गुणो मे कहा गया है—

सुरसादिगणो ह्येष कफहृत् कृमिसूदन।
प्रतिश्याया रुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधन॥
—सुश्रुत सं० सू० ३८

सुरसे द्वे श्वेतकृष्णकुसुमे, ते च लोके 'तुलसी' इति प्रसिद्धे।
—डल्हण

आचार्य वाग्भट ने इसी गण को मेदोहर भी कहा है। आचार्य भावमिश्र ने 'पुष्पादि वर्ग' मे इसका वर्णन किया है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने कृमिघ्न एव विषमज्वरघ्न द्रव्यो के अन्तर्गत इसका विशद वर्णन किया है।

नाम—

संस्कृत—

वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी।
पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्ण जीवनी॥
—देवी भागवत ९/२५/३२

सुरसा सु तुलसी कृष्ण कायस्था बहुमजरी।
चक्रपर्णी नागमाता सुरभिर्देव दुन्दुभि ॥
—अभिधानरत्नमाला

तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमञ्जरी।
अपेतराक्षसी गौरी शूलघ्नी देवदुन्दुभि ॥
—भा० प्र० नि०

तुलसी सुरसा गौरी भूतघ्नी बहुमञ्जरी।
—म० वि० नि०

अलसा तुलसी रम्या सुरसा बहुमञ्जरी।
कृष्णप्रिया सदा वृन्दा दैत्यघ्नी देवदुन्दुभि ॥
—गौरीतन्त्र

रोगों का संहार करने में जिसकी तुलना मे कोई अन्य न होने से इसे तुलसी कहा जाता है (कुलामादश्य क्याति नाशयति)—

नरा नार्यश्च, ता दृष्ट्वा तुलना दातुमक्षमा ।
तेन नाम्ना च तुलसी तां वदन्ति पुराविद ॥
—ब्र० वै० पुराण

हिन्दी—तुलसी।
गुजराती—तुलसी।
मराठी—तुलसी।
बंगला—तुलसी।
तामिल—तुलसी, अलगाई।
तेलगु—तुलसी, गग्गेरा।
कन्नड—श्रीतुलसी।
मलयालम—मित्तवु।
राजस्थानी—तुलसी, तुलसा।
फारसी—रहा, रेहान्।
अरबी—तुलसी, वदरूत, शाहशफरम।
अंग्रेजी—होली वेसिल (Holy Basil)। सेक्रेड बेसिल (Sacred Basil)।
लैटिन—ओसिमम सैंक्टम। (Ocimum Sanctum)।

उत्पत्ति स्थान—यह भारत में प्राय सब स्थानों पर पाई जाती है। हिमालय पर ६ हजार फीट की ऊचाई तक यह मिलती है। ब्रह्मा, लका, आस्ट्रेलिया आदि स्थानो पर भी यह पाई जाती है। हिन्दू इसे प्राय अपने घरो में बोते हैं। क्वचित् जगलो मे भी यह स्वयजात रूप से उगी हुई मिलती है।

रासायनिक सघटन—इसके पत्र एव पुष्पमजरी से एक लवगगन्धि उडनशील पीताभ हरित उडनशील तैल होता है। यह कुछ समय तक रखा रहने से स्फटिकाकार हो जाता है। तब इसे तुलसी कपूर (Basicamphor) कहते हैं। इसमे फैनोल ४५-७६ प्रतिशत तथा अल्डीहाइड १५-२५ प्रतिशत होता है। पत्तो मे ऐस्कार्बिक एसिड और कैरोटीन होते हैं। बीजो से एक स्थिर तैल निकलता है। इसके अतिरिक्त पौधे मे क्षाराभ, ग्लाइकोसाइड और टैनिन होते हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसका शाखा प्रशाखा युक्त रोमश वर्षायु क्षुप २-४ फीट ऊचा होता है। सारा क्षुप बैगनी रङ्ग का दिखलाई देता है। पत्र—१—२॥ इञ्च चौडे, अण्डाकार, आयताकार, लट्वाकार, अखण्ड या दन्तुर, तीक्ष्णाग्र या गोलाग्र दोनो पृष्ठो पर रोमश, अध पृष्ठ पर सिराओ के बीच मे ग्रन्थियुक्त होते हैं। बैगनी रङ्ग के छोटे-छोटे पुष्प ६-८ इच लम्बी मञ्जरियो मे सघन चक्रों मे आते हैं। पुष्पवृन्त बाह्यकोष के बराबर होता है। बाह्यकोष छोटा, भीतर की ओर चिकना, बाहर से ग्रन्थिल होता है। इसके निचले दो दात बहुत लम्बे शूक से युक्त तथा ऊपरी आयताकार दात से लम्बे होते हैं। पार्श्विक दात लट्वाकार, निचले दातो से छोटे होते हैं। अन्त कोष बहुत छोटा प्राय बाह्यकोष के बराबर होता है। पुकेशरसूत्र बाहर निकलते रहते हैं। बीज—अण्डाकार या गोलाकार, कुछ चपटे, प्राय चिकने, भूरे या रक्ताभ, छोटे काले धब्बों से युक्त होते हैं। पुष्प और फल शीत ऋतु मे आते हैं।

भेद—चरक सहिता मे इसकी ९ जातियों का उल्लेख मिलता है—सुमुख, सुरस, कुठेरक, अर्जक, गण्डीर, कालमालक, पर्णास, क्षवक और फणिज्झक सुश्रुतसहिता मे सुरसादिगण के अन्दर तुलसी, कालीतुलसी, फणिज्झक, अर्जक, सुमुख, कालमालक और

क्षवक का उल्लेख मिलता है। वनस्पति शास्त्र के विद्वानो ने तुलसीगण मे साठ जातियों के पौधो को ढूढ निकाला है। ये जातिया भारत, अफ्रीका, अरब और ब्राजील आदि उष्ण प्रदेशो मे मिलती है। इनमे मुख्यतया निम्नाकित है।

१ तुलमी (ओसिमम सैक्टस)।
२ वर्वरी (ओसिमम) वैमिलिकम)।
३ वनतुलसी (ओसिमम केनम)।
४ रामतुलसी (ओसिमम गेटिमिमम)।
५ कर्पूरतुलसी (ओमिमम किलिमण्डस्चेरिकम)।
६ मरुवक (मेजोराना हार्टेन्सिस)।
७ तुलसी वालगा (लाल्लेमेटिया रायल्नियना)।
८. तुलसी मूत्रल (ओसिमम ग्रेण्डिफ्लोरम)।

इनमे प्रथम आसीमम् सैक्टम को प्रधान तुलसी माना गया है अत यहा इसका ही विशेप वर्णन किया है। इसकी भी प्रधानतया दो प्रजातिया हैं।

१. तुलसी या श्वेत तुलसी।
२ कृष्णा तुलसी।

गुण धर्म की दृष्टि से काली तुलसी को ही श्रेष्ठ माना जाता है। परन्तु अधिकाश विद्वानो का मत यही है कि दोनों ही गुणो मे समान हैं। भावमिश्र कहते हैं—

"शुक्ला कृष्णा च तुलमी गुणैस्तुल्या प्रकीर्तिता।"

तुलमी के उक्त भेदों का आगे पृथक् वर्णन किया जायेगा अत यहा पर केवल तुलसी का ही अग्रिम विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

रस—कटु तिक्त।
गुण—लघु, रूक्ष।
इसके बीज स्निग्ध एव पिच्छिल होते हैं।
वीर्य—उष्ण।
बीजो का वीर्य शीत होता है।
विपाक—कटु।
प्रभाव—कृमिघ्न (जन्तुघ्न)।
दोष कर्म—कफ वात शामक।

सिद्धमन्त्र में पित्तल कफ वातघ्न द्रव्यो के अन्तर्गत तुलसी को कहा है।

प्रयोज्य अङ्ग—पत्र, पुष्प, बीज, मूल।

मात्रा—
पत्र चूर्ण—१-३ ग्राम।
बीज चूर्ण—१-१ ५ ग्राम।
पत्र स्वरस—५-१० मि० लि०।
पत्र कल्क—१०-२० ग्राम।
क्वाथ—२०-५० मि० लि०।

वीर्य कालावधि—१ वर्ष।

गुण प्रकाशक संज्ञा—भूतघ्नी, शूलघ्नी।

हानिकारक—अधिक मात्रा मे मस्तिष्क के लिए हानिकारक है।

दर्पनाशक—गुलकन्द।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—तुलसी के बीज लगभग १/१६ इञ्च लम्बी, रूपरेखा मे आयताकार, एक पार्श्व में कुछ उन्नतोदर तथा दूसरी ओर चपटे, तथा काले रङ्ग के होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—उपयोगी अङ्ग को सुखाकर मुख बन्द पात्रो मे अनार्द्र शीतल स्थान में रखें। सर्वत्र एव सर्वदा सुलभ होने से पत्तों का व्यवहार ताजी अवस्था मे ही किया जा सकता है।

सयोग विरुद्ध—तुलसी खाकर दूध नहीं पीना चाहिए क्योकि इससे कुष्ठादि त्वचारोगो के होने का भय रहता है—

न मूलकलशुनकृष्णगन्धार्जकसुमुखसुरसादीनि भक्षयित्वा पय सेव्य, कुष्ठावाधभयात्।
—चरक० सू० २६/८४

गुण धर्म—

हिक्काकासविष श्वासपार्श्वशूलविनाशन।
पित्तकृत् कफ वातघ्न. सुरस समुदाहृत.॥
—च० सू० २७

कफानिलविष श्वासकादौर्गन्ध्य नाशन।
पित्तकृत् पार्श्वशूलघ्न. सुरस. समुदाहृतः॥
—सु० सू० [illegible]

तुलसी लघुरूष्णा च रूक्षा कफविनाशिनी ।
क्रिमिदोष निहन्त्येषा रुचिकृद् वन्हिदीपनी ॥
—ध० नि०

तुलसी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तकृत् ।
दीपनी कुष्ठकृच्छ्रास्रपार्श्वरुक्कफवातजित ॥
—भा० प्र० नि०

तुलसी कटुतिक्तोष्णा सुरभि श्लेष्मवातजित् ।
जन्तुभूतक्रमिहरा रुचिकृद वातशान्तिकृत् ॥
—रा० नि०

तुलसी तुवरा तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कटुपाकिनी ।
रूक्षा हृद्या लघु कट्वी दाहपित्ताग्निर्द्धनी ॥
जयेद्वातकफ श्वासकासहिध्मावमिक्रमीन् ।
दौर्गन्ध्यपार्श्वरुक्कुष्ठविषकृच्छ्रास्रहृग्गदान् ॥
—कै० दे० नि०

तुलसी पित्तकृद्वातक्रिमिदौर्गन्ध्यनाशिनी ।
पार्श्वशूलाऽरति श्वासकासहिक्काविकारजित् ॥
—राजवल्लभ

सुलभा पवनश्लेष्मकुष्ठकृच्छ्रास्रशूलनुत् ।
—सि० भै० म० मा०

तुलसी कटुका तिक्ता वीर्योष्णा कफवातहृत् ।
पित्तला दीपनी कासज्वर श्वासामयापहा ॥
—प्रि० नि०

तुलसी भारतभूमौ गेहे-गेहे सुपूजिता लसति ।
कफवातघ्नी श्वासज्वरकासादीन् द्रुत हन्ति ॥
—शोढशाङ्गहृदयम्

विषमज्वर धातुवैषम्यजन्य एव जीवाणुजन्य दो प्रकार का है, जिसे निज और आगन्तुज नाम दिया गया है। जीवाणुजन्य (भूतातिजन्य) विषमज्वर को मलेरिया कहा जा सकता है। तुलसी इन दोनो मे ही लाभप्रद है। आयुर्वेद केशरी वैद्य श्री अम्बालाल जोशी सुधानिधि के ५/८ अक मे "क्या तुलसी व नीम का देश मलेरिया से हार गया ?" नामक शीर्षक से इसकी उपादेयता को प्रकट करते हुये लिखते हैं कि "तुलसी जहा है उस देश में मलेरिया कभी नही रह सकता है। यह हमारी निश्चित घोषणा है।" यह कास, श्वास, यकृत्वृद्धि आदि उपद्रवो को शान्त करने के कारण श्रेष्ठ औषधि कही जाती है। पित्तोल्वणता की स्थिति मे इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। उक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि यह विषमज्वरनाशक एव प्रतिषेधक है। जिस घर मे तुलसी का क्षुप होता है वहा मलेरिया के जीवाणु नहीं आ सकते हैं। तुलसी मे जो एक विशिष्ट गन्ध होती है उसके कारण मच्छर कीट आदि नही आ सकते हैं। पद्मपुराण का यह कथन यहा कितना सार्थक सिद्ध होता है—

तुलसीकाननञ्चैव गृहे यस्यावतिष्ठति ।
तद् गृह तीर्थभूत हि नायान्ति यमकिङ्करा. ॥

अब शास्त्रों मे वर्णित उपयोगी उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

सुरसानिम्बभङ्गार्कपल्लवाना वटी भज ।
विषमज्वरजा बाधा यदि बाधितुमिच्छसि ॥
—सि० भै० म० २।१२।८

पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजोरस ।
निहन्ति विषमज्वरान् ॥
—शा० स० पू० ख०

रसेन साक तुलसीदलानां
सञ्जीवनय सहिता मरीचं ।
सक्षौद्रय पीता विषमज्वराणां
प्रणाशिनी वै विकसद्विलासे ॥
—स० साम्रा०

शीतज्वरस्य सुरसार्जकशिग्रुपत्र-
लेप. कवोष्णसलिलेन शमाय शस्त ॥
—त्रिशती ७३

तुलसीवरकन्याभ्या पृथक्पक्व महौषधम् ।
शीतकि कम्पबहुल शमयेच्च चिरन्तनम् ॥
—क्वा० म० मा०

(वर्णित शास्त्रीय उद्धरणो का सामान्य प्रयोग किंवा कल्पना प्रसगो मे हिन्दी अनुवाद लिख दिया जाता है अत यहा पर उनका अनुवाद नही किया

गया है। सामान्य पाठक इनके भावों को वहां समझ सकते हैं। यह सभी आलेखो मे ध्यान रखना चाहिए।)

विषमज्वर के अतिरिक्त वातश्लेष्मिक ज्वर व जीर्णज्वर मे भी इसका उपयोग लाभप्रद पाया गया है। प्रतिश्याय की तो यह सर्वप्रसिद्ध औषधि है। प्राणवहस्रोतस पर इसका विशेष प्रभाव होता है। प्राणाचार्य श्री सदानन्द शर्मा ने जो कफनाशक गण (र० त० र०) कहा है, उसमे तुलसी का भी उल्लेख किया गया है। यह कासश्वासहर एव क्षयनाशक है।

सक्षौद्रा कफकासघ्ना सुरसस्यासितस्य च (रसा)॥

—चरक० चि० १८

सुरसादिगण श्लेष्ममेद कृमिनिषूदन।
प्रतिश्यायारुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधन ॥

—अ० हृ० सू० १५

"दशेमानि श्वासहराणि" मे एक तुलसी भी कही गई है। पुष्करमूल, शटी आदि के संयोग से यह उत्तम कास श्वासपार्श्व शूलहर कही गई है। तुलसीमञ्जरियो मे घी मिलाकर निर्धूम अगारो पर रख धूम्रपान से भी कास का सहार होता है। यह वर्णन चरकसहिता मे मिलता है। वासास्वरस एव तुलसी स्वरस की उपादेयता कफजन्य प्रतिश्याय मे कही गई है।

श्लेष्मिके सुरसावासारसेन विहित च तत्।

—हारीत सहिता

जीर्ण प्रतिश्याय किंवा पूतिनस्य मे इसके स्वरस का नस्य हितावह कहा गया है। यह जन्तुघ्न, शोथहर एव शिरोविरेचन होने से लाभ पहुचाती है। चक्रदत्त मे वर्णित विविध तैल प्रयोगो मे तव ही तो इसकी योजना का वर्णन मिलता है। व्याघ्री तैल, निकट्वादि तैल, कलिङ्गाद्यवपीड और दार्व्यादि धूमवर्तिका के प्रयोगो को देखने से इसकी महत्ता सिद्ध हो जाती है। चरकसहिता के सूत्रस्थान अध्याय द्वितीय मे, विमान स्थान के अध्याय अष्टम मे तथा सुश्रुतसहिता के सूत्रस्थान अध्याय ३९ मे वर्णित शिरोविरेचनोपयोगी द्रव्यो मे तुलसी एव उसके भेदों का उल्लेख किया गया है। इसका शिरोविरेचन (नस्य) निम्नांकित रोगो म उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

गौरवे शिरस शूले पीनसेऽर्धावभेदके।
क्रिमिव्याधावपस्मारे घ्राणनाशे प्रमोहके ॥

—चरक० सू० २।६

यह हृदयोत्तेजक, रक्तशोधक, शोथहर एवं स्वन्दोषघ्न है। भगवान् चरक ने इन विविध रोगों मे इसे उपयोगी कहा है—

कुष्ठ हरिद्रे सुरसं पटोल
निम्बाश्वगन्धे सुरदारु शिग्रू।
ससर्षप तुम्बुरुधान्यवन्य चण्डा
च चूर्णानिसमानिकुर्यात् ॥
तैस्तक्रयुक्त. प्रथम शरीर
तैलाक्तमुद्वर्तयितु यतेत्।
तेनास्य कण्डू पिडका सकोठा
कुष्ठानि शोफाश्चशय वजन्ति ॥

—च० सू० ३

तुलसी जन्तुघ्न होने से इन रोगो में विशेष उपयोगी है। इसमे विद्यमान उडनशील तैल तिक्त कटु होने से सूक्ष्मतम धातु प्रवेश कर चर्मरोगो को नष्ट करता है। कुष्ठ रोगाधिकार मे वर्णित (भै० र०) "पञ्चानन तैल" श्वेतकुष्ठ को नष्ट करने मे उत्तम है। इस तैल मे भी तुलसी डाली जाती है। व्रणों मे जब कृमि पड जाय तो इसके रस से नष्ट हो जाते हैं। कहा भी है—

सुरसादि प्रयुञ्जीत तत्र धावनपूरणे।

—अ० हृ० सू० २९

रक्त मे कुछ पिच्छिल और स्निग्ध द्रव्य होते है जो अधिक मात्रा मे बढ जाने पर रक्त को गाढा कर देते हैं। इन्हे घुलाकर पुन रक्त मे वहने योग्य बनाने वाले द्रव्य रक्त सघातभेदी (Anticoagulatings) कहलाते हैं। तुलसी भी ऐसा ही एक रक्त सघातभेदी द्रव्य है। यह अपने कटु तिक्त रस एव रूक्ष लघु गुण से रक्त सघात को मिटाकर रक्त शुद्धि करती है।

अशुद्ध पारद के सेवन से भी शरीर पर फोडे-फुसी आदि विकार हो जाते हैं, उन विकारो को नष्ट करने में भी तुलसी हितकारक है। पारद विकारो को नष्ट करने मे जो कूष्माण्डादिगण (र० त० ७) कहा गया है इसमे तुलसी है। अन्य प्रयोगो में भी वर्णन मिलता है—

नागिनीदलकल्केन युक्तेन सुरसाद्रवैः ।
गात्रलेपाय वितरेद् गन्ध रसचिकित्सक ॥
—र० त० ७/१११

नागवल्लीरसप्रस्थं भृङ्गराजरसं तथा ।
तुलस्याश्च रस प्रस्थ छागदुग्ध समाशकम् ॥
मर्दनं सर्वगात्रेषु यामयुग्म दिनत्रयम् ।
स्नान शीतलतोयेन सूतदोषप्रशान्तये ॥
—यो० र०

इसके अतिरिक्त यह कर्णरोग व नेत्ररोगो मे भी उपयोग में लाई जाती है। कर्ण के शूल, शोथ, स्राव, कृमि आदि विकारों को दूर करने मे तुलसीपत्र स्वरस लाभप्रद है। अपने वीर्य एव गुणो से शीघ्र ही कर्णगत आभ्यन्तर अवयवों मे सात्म्य होकर सत्वर लाभ पहुचाती है। गन्धयुक्त स्वरस वातनाडी सूत्रो के क्षोभ को दूर कर स्रोत शोधन करता है। इसी प्रकार नेत्ररोगों में भी यह लाभप्रद है। इसको अञ्जन, आश्च्योतन, आलेपन आदि सेवन प्रकारो के माध्यम से उपयोग में लाया जा सकता है—

तुलस्या चिल्वपत्रस्य रसो ग्राह्य समाशक ।
ताभ्यातुल्य पयो नार्यास्त्रितय कास्यपात्रके ॥
गजवल्या द्दढ मर्द्यं ताम्रेण प्रहर पुन ।
कज्जलत्व समुत्पाद्य तेनाञ्जितविलोचन ॥
सद्यो नेत्ररुज हन्ति सशूल पाकसभवाम् ।
—यो० र०

कपित्थस्याऽटजीना च पत्राणि सुरसस्य च ।
अजाक्षीरेण पिष्टानि कुर्यादाश्च्योतन भिषक् ॥
—का० सहिता खिल स्थान

भेकराजीं चनीलीं च सुरस गौरसर्षपा ।
हरिद्रां चैव तद् सर्व कल्क कुर्वीत भागश. ॥
एतद् आलेपन कुर्याद् रोगघ्न नयनामये ।
वेदनामक्षिरोगं च क्षिप्रमेवापकर्षति ॥
—का० स० खि० स्थान

काश्यपसहिता कौमारभृत्य का सर्वोत्तम सहिता-ग्रन्थ है। उपर्युक्त अक्षिरोगोपयोगी प्रयोगद्वय कुकुणक चिकित्सा हेतु कहे हैं। श्री कृष्णराम भट्ट ने भी बाल-रोगोपयोगी एक आभ्यन्तरीय प्रयोग कहा है जो कफ-जन्य उदररोग कास, श्वास और ज्वर आदि का शमन कर बालको को स्वस्थ रखने मे सहायक सिद्ध होता है—

ध्वस्तोदर श्वसनकासविपद् गणानि ।
पिष्ट्वा लवङ्गतुलसीदलटकणानि ॥
सम्पाययेत् कफकृतज्वरकर्षणानि ।
बालान् प्रदर्श्य वरकाञ्चनककणानि ॥
—सि० भे० म० मा०

यह वेदनाहर एव आक्षेप नाशक होने से अनेक वातरोगो में लाभप्रद है। श्री लोलिम्बराज घृत, मरिचयुक्त तुलसी स्वरस को इन रोगो मे उपयोगी कहते हैं—

घृततीक्ष्णयुत सुरसास्वरसो
लघुराजमृगाक इति प्रथित ।
अपहन्त्यनिलान्सवलान्बहुलान्
निजभक्तरिपूनिव चक्रधर ॥
—वैद्य जीवन ४/४०

वातव्याधि मे शोथ शूल शमन हेतु स्वेदन का विशेष महत्व है। तुलसीपत्र भी स्वेदन मे प्रयुक्त होता है। भगवान् चरक ने सू० स्था० १४/३२ मे नाडी-स्वेद हेतु इसे उपयोगी कहा है। इसी प्रकार उरुस्तम्भ चिकित्सा (चि० स्था० अ० २७) मे भी इसके पचाग के क्वाथ से सेचत एव दही, सैन्धव के साथ पत्रो के प्रलेप का भी उल्लेख किया है।

यह दीपन, पाचन, अनुलोमन एव कृमिघ्न होने से अग्निमाद्य, अजीर्ण, विवन्ध, उदरशूल, छर्दि, कृमिरोग आदि मे भी प्रयुक्त होती है। अम्लपित्त, तृष्णा आदि मे योगरत्नाकरकार ने एक क्वाथ उद्धृत किया है—

तुलसीमञ्जरी शुण्ठीकणाद्रा क्षालवङ्ग कं ।
नागवल्लीपर्णवृन्तत्वक्खर्जूरैश्च कार्षिकै ॥
कर्षार्धलोध्रसयुक्तैर्विहितोऽय कषायक ।
तृष्णादाहग्लानिहृरास्त्रिदोषशमन पर ॥

—यो० र०

स्त्रियो के लिये रज कृच्छ्रता मे तुलसीपत्रक्वाथ उपयोगी कहा है। रजो दर्शन के पश्चात् इसके सेवन से गर्भाधान की भी सम्भावना नही रहती है। गर्भावस्था मे किक्किस (उदर स्तन जघा पर कण्डूसे) के निवारणार्थ तुलसी पत्र को निम्बपत्रादि के साथ पीस कल्क बनाकर मलना चाहिये। कहा गया है कि—"निम्बकोलसुरसमञ्जिष्ठाकल्कै. स्तनोदर विमृदनीयात्" (चरक० शा० ८/३२)। मक्कलशूल मे भी—

सुरसादलनिष्यन्द पुराणगुड़मद्यखण्डसमिश्र. ।
पीत प्रसूतिसमयादनन्तर शूलमपहरति ॥

—रा० मा०

तुलसी बीज क्षीणशुक्र पुरुष मे शुक्रल होने से शुक्र की वृद्धि कर उसे वृष के समान बना देते हैं। ये बीज कटु रस प्रधान सूक्ष्मगुण युक्त होने से ध्वजभग रोगी में भी हर्ष उत्पन्न कर देते हैं। पडित हरि शास्त्री ने लिखा है कि—

कृष्णा तुलसिका बीजै सम सञ्जीवनी वटीम् ।
ताम्बूलदलगा प्राश्य पुमान् स्त्रीषु वृषायते ॥

—स० साम्राज्यम्

ये बीज मूत्रल होने से मूत्रकृच्छ्र मे भी उपयोगी कहे हैं। पूयमेह, मूत्रदाह, वस्तिशोथ और अश्मरी मे तब ही तो इन बीजो को चिकित्सक काम मे लाते हैं। प्रमेह (शुक्रमेह, स्वप्नमेह आदि) मे पत्र, मूल, बीज आदि उपयोग मे लाये जाते हैं। अधिक लाभ के लिए बङ्गभस्म के साथ तुलसीपत्रों के उपयोग का विधान है—

तुलसीदलसयुक्त बङ्ग मेहान् निवारयेत् ।

—र० त०

अपस्मार उन्माद आदि रोगों मे भी इसका बहिःपरिमार्जन औषधि के रूप में उपयोग किया जाता है, ऐसा उल्लेख मिलता है—

अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिचोरकै. ।
उत्सादन मूत्रपिष्ट मूत्रैरेवावसेचनम् ॥

—च० द० अ० चि० ८

ब्राह्मीमैन्द्री विडङ्गानि व्योष हिंगु सुरां जटाम् ।
विषघ्नी लशुन रास्ना विशल्या सुरसा वचाम् ॥
ज्योतिष्मती नागर च अनन्तामभया तथा ।
सौराष्ट्री च समाशानि गजमूत्रेण पेषयेत् ॥
छायाविशुष्कास्तद्वर्तीर्योजयेद्भिषिकोविद. ।
अवपीडेऽञ्जनेऽभ्यङ्गे नस्ये धूमे प्रलेपने ॥

—सुश्रुत० उ० त० ६२

यह वल्य (बीज) होने के साथ ही विषशामक भी है। यह सामान्यतया सभी प्रकार के विषो मे विशेषतया सर्पविष मे लाभप्रद है। चरकसहिता के चि० स्था० अ० २३ में कई सामान्य प्रयोग एव विशेष अगद प्रयोगों का वर्णन किया है, जिनमे तुलसी का उपयोग किया गया है। इन अगदो के नाम हैं—मृतसंजीवनी अगद, महागन्धहस्ती अगद, क्षारागद, अमृतघृत और परम अगद, सुश्रुतसहिता में वर्णित अगद है—ऋषभागद, महासुगन्धी अगद और मण्डली विषहर अगद। इसी प्रकार भावप्रकाश के विषहर मृत्युपाशच्छेदिघृत मे तथा योगरत्नाकर के मृत्युच्छेदिघृत मे भी तुलसी की योजना मिलती है। तुलसी सयुक्त ये प्रयोग पान, नस्य, अञ्जन एवं लेप के रूप प्रयुक्त किये जाते हैं। इस हेतु तुलसी के बीज, पुष्प एव मूल उपयोग मे लाये जाते हैं। इस विषय का विशद वर्णन अनेक लेखकों के इन मन्तव्यों एव अनुभवो के द्वारा यहा किया जा रहा है—

तुलसी की आश्चर्यजनक विष नाशक शक्ति—

१ जिला चौबीस परगना ग्राम गोबरगाड़ा निवासी डीडया माली ने पेड के नीचे पड़ा हुआ एक आम का फल उठाकर खा लिया था खाने के आधा घण्टा पश्चात् उसके शरीर मे सनसनाहट उत्पन्न हुई, सारा शरीर नीलवर्ण होकर वह अचेत हो गया। और बहुत जल्द धराशायी हो गया दौड धूप शुरू हो गई डाक्टरो के अनेक उपचार हुए कोई भी कारगर न हुआ। रोगी मुर्दा घोषित कर दिया गया दैवयोग

थे पं० हृदयभूषण महाचार्य वैद्य आ गये उन्होने रोगी के नेत्रों मे अपने शरीर की परिछाई देखकर जीने की आशा पर तुलसी माता का आह्वान किया। अपने हाथों से लगभग १२५ ग्राम स्वरस निकाला रोगी के मुख, कान, नाक, आखो मे भरवाया, सर्वाङ्ग में भली-भांति मालिश करवाई। आध घण्टे बाद रोगी ने कुछ हरकत की अर्थात् मुख में भरे हुये स्वरस को पीने की चेष्टा करता हुआ मालूम पडा यह देखकर लोगो का हौसला बढा, और विशेष रूप से सुश्रुषा करने लगे, दो घण्टे बाद रोगी उठ बैठा और कहने लगा मेरे शरीर मे भयकर दाह हो रही है। वह दाह बहुत देर तक नहीं रही अल्पकाल में ही रोगी चङ्गा हो गया। तुलसी की यह आश्चर्यजनक शक्ति देखकर सभी लोग दङ्ग रह गये।

—वैद्यराज प० श्री महेन्द्रनाथ अग्निहोत्री
(अनु० योगमाला वन० विशे०)

बगाल के "प्रबुद्ध भारत" पत्र के आधार से कलकत्ता के गार्डनरीव्यू पत्र ने अपने अक्टूबर सन् १६२६ के अक में एक घटना प्रकाशित की थी वह इस प्रकार है।

"प्रबुद्ध भारत" पत्र ने हाल ही मे यह प्रकाशित किया है कि थोडे समय पहले हमारे आश्रम मे यह खबर आयी कि पास ही के एक गाव मे एक स्त्री को सांप ने काटा है। यह सुनते ही हमारे आश्रम के दो स्वामी उसकी चिकित्सा के लिये वहा से निकले। सौभाग्य से आम रिवाज के मुताबिक उस व्यक्ति को जिस स्थान पर सांप ने काटा था उस स्थान के कुछ ऊपर रस्सी का बन्द लगा दिया गया था। मगर बन्द कुछ देरी से और कुछ ढीला लगने की वजह से स्वामी जी के पहुंचने के पहले ही वह स्त्री बेहोश हो गई थी। स्वामी जी ने वहा पहुचते ही तुरन्त तुलसी मगाई और उसको कूटकर उसका रस निकाल लिया। साथ ही केले के पिंड का थोडा सा रेशा मंगाकर उसका भी रस निकाल लिया। तुलसी का रस रोगी के मस्तक पर, कपाल और छाती पर खूब मालिश किया गया और केले का रस आधा औंस पिलाया गया। यह प्रयोग प्रति पाच मिनट अथवा दस मिनट के अन्तर से चालू रखा गया। इस प्रकार से ६-७ घण्टे के लगातार उपचार के पश्चात् रोगी को होश आने लगा। इतनी देर लगने का कारण यह था कि रोगी को साप काटे आठ घण्टे हो चुके थे इसके पश्चात् इलाज शुरू किया गया था।

रोगी को होश आने के पश्चात् दश स्थान पर चाकू से आडे-टेढ़े चगदे लगाए गए और फिर मुर्गी का एक बच्चा लेकर उसकी गुदा पर के पंख साफ करके उस पर भी आडे-टेढे चगदे लगाए गए और उसकी गुदा का स्थान साप काटी हुई जगह पर जोर से चिपका दिया गया। ३-४ मिनट मे मुर्गी का वह बच्चा सर्प विष के प्रभाव से मर गया। उसके पश्चात् क्रमश ४ मुर्गी के बच्चे उसी प्रकार उस जगह पर चिपकाए गए और वे चारों ही थोडी-थोडी अधिक देरी से मर गए। जब छटा मुर्गी का बच्चा उसको लगाया गया तब उस बच्चे पर जहर का असर नहीं हुआ। तब यह समझ लिया गया कि उसका जहर नष्ट हो गया है। तब उसको एनीमा लगाकर दस्त करा दिया और २४ घण्टो में वह रोगी स्त्री पहिले ही की तरह स्वस्थ हो गई।"

उपरोक्त पत्र लिखता है कि सर्प विष के प्रत्येक केस मे अगर मुर्गी वाला प्रयोग सम्भव न हो सके और उसमे हिन्सा की भावना मालूम पडे तो सिर्फ तुलसी का रस और केले के पिण्ड का रस देते रहने से बहुत उत्तम परिणाम नजर आता है। कोई भी ऐसे प्रसग पर जबकि रोगी के जीवन की आशा छोड दी गई हो वह बेहोश हो गया हो और उसके जीवन के लक्षण भी नष्ट हो गये हो ऐसी स्थिति मे भी उसके सारे शरीर पर तुलसी के रस की मालिश करते रहने से और केले का रस उसके मुह मे टपकाते रहने से कभी-कभी आशा के विपरीत भी रोगी की जीवन रक्षा हो जाती है। एक स्वामीजी ने तुलसी के पत्तों के रस से भयकर से भयकर जहर भी उतारा था।

—वनौ० चन्द्रोदय

३ प्रसिद्ध लेखक श्री ई रावर्टस् ने अपनी पुस्तक "नेटिव रेमेडीज यूज इन स्केन वाईवाइटस्" में साप काटने पर तुलसी के कई प्रयोगो का वर्णन किया है।

४ महाकोशल मे गोड आदि जगली जातिया फनियर के काटने पर विष उतारने के लिये तुलसी का प्रयोग करती है। इनकी साधारण विधि यह है कि ताजे या सूखे पत्तो को रगड कर मक्खन मे मिलाकर डसे हुये स्थान पर लेप कर दें। विष के कारण जब लेप का रङ्ग काला पड जाय तो उसे उतार दें और नया लेप लगा दें। जब तक लेप का रङ्ग बदलता जाय तब तक इसी प्रकार करते रहे। इस तरह दश-स्थान से सारा विष तुलसी के पत्तो में खीच लिया जाता है और रोगी ठीक हो जाता है।

५ आचार्य सत्यनारायणलालजी ने सर्पदश के एक व्यक्ति के सिर, छाती और कपाल पर तुलसी के रस का लेप कर तथा केले के पिण्ड का रस १ औंस १०-१० मिनट वाद पिलाकर स्वस्थ कर दिया था। डा० श्री कमलसिंह (आयु० विकास ४/६)

तुलसी और विद्युत् शक्ति—प्राचीन काल में मनुष्य गृह-निर्माण के समय मकान की नीव में एक घडे के अन्दर हल्दी से रगे कपडे मे तुलसीमूल रखते थे, जिसके प्रभाव मे उस मकान पर बिजली गिरने की आशका नही रहती थी। जिस मकान मे तुलसी का पौधा लगा हुआ रहता है वहा कभी भी बिजली गिरने का भय नही रहता है। कई पुरुष हल्दी से रगे कपडे मे तुलसी की लकडी, हल्दी की गाठ, तावा और सुपारी को बाधकर मकान के द्वार पर बाध देते हैं। इससे भी बिजली के आघात का भय नही रहता है। पुराने मठ, मन्दिर आदि भव्य किंवा ऐतिहासिक भवनों की बिजली मे सुरक्षा हेतु वहां पर तुलसी के पौधे लगाने का भी यही मुख्य कारण है। धर्मपरा-यण धनाढ्य व्यक्ति आम्र के साथ तुलसी का विवाह समारोहपूर्वक रचाते हैं इससे भी आम्रवृक्ष की बिजली आदि से सुरक्षा होती रहती है। ऐसे ही वृक्षों की भी रक्षा की जा सकती है।

जिस व्यक्ति को बिजली के करेन्ट से बेहोशी आ गई हो या उस पर बिजली गिरने का असर हुआ हो तो तत्काल तुलसीस्वरस का सारे शरीर पर मर्दन करना चाहिए। मर्दन शनै शनैः एव पुन ताजा स्वरस लेकर निरन्तर करते रहना चाहिए। आत्ययिक स्थिति मे कस्तूरीभैरव, हिरण्यगर्भ-पोटली आदि भी तुलसीस्वरस से ही रोगी को सेवन कराने चाहिए। यदि रोगी चेतनावस्था में हो तो वह स्वय अन्यथा परि-जन तुलसी के इस नामाष्टक स्त्रोत को जप करता रहे-

वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी।
पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्ण जीवनी॥

तुलसी की लकडी की माला पहनने से भी बिजली का भय कम हो जाता है। इसके पहनने से भी शारीरिक विद्युत् सुरक्षित रहती है जिससे कोई रोग आक्रमण नही कर सकता एव व्यक्ति सदाचारी और दीर्घजीवी होता है। इस माला के पहनने से भूतबाधा का भी भय नहीं रहता है। वृन्दावन मे उत्पन्न हुई तुलसी की माला अधिक उपयोगी कही गई है—

ये वृन्दावनोद्भवास्तुलसीकाष्ठाङ्कितमाला कण्ठे धारयति ते कृतार्थता प्राप्नुवन्ति।

—सामरहस्योपनिषद्

तुलसी के क्षुप के नीचे की मिट्टी मे तुलसी की विद्युत् शक्ति भरी रहती है, अत यह भी लाभदायक है। कहा गया है—

पत्र पुष्प फल मूल शाखात्वक्स्कन्धसञ्ज्ञितम्।
तुलसीसम्भव सर्व पावन मृतिकादिकम्॥

—पद्मपुराण ३०३४/२

तुलसी के क्षुप के समीप दूषित वातावरण नहीं होता सुतरा उसके समीप की मिट्टी आदि भी शुद्ध होकर तदनुरूप प्रभावी सिद्ध होती है। तुलसी के मूल मे विद्युत्-शक्ति अधिक होती है।

यदि हम वर्ष में तीन द्रव्यो का सेवन करते रहे तो स्वस्थ रह सकते हैं। दोष प्रकोप के अनुसार कफ दोष को स्वस्थ रखने के लिये तुलसी वसन्त ऋतु में एक-दो सप्ताह सेवन करनी चाहिये। पित्त दोष को स्वस्थ

रखने के लिये शरद् ऋतु मे १५ दिन तक हरीतकी का सेवन करना चाहिये। इसी प्रकार वातदोष को स्वस्थ रखने के लिये वर्षा ऋतु मे आर्द्रक किंवा शुंठी का सेवन करना हितावह है। इसी प्रकार अन्य द्रव्यो की योजना की जा सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा एव रोगी के रोग निवारण मे पूर्णतया समर्थ है। तुलसी विषयक कुछ सामग्री यहा प्रस्तुत की गई है। इस पर विपुल साहित्य उपलब्ध हैं। विषयानुसार पूर्ण विवेचना से कई ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। श्री रामेशवेदी एव श्री ब्रह्मदत्त आयुर्वेदालकार आदि कई विद्वानो ने इस पर स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे हैं। साहित्यकारों ने भी इसकी प्रशसा मे यत् किंचित् कहा है उसे यहा उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है—

हमारे यहा एक पौधा है—तुलसी। रात्रि के आलोक में उसकी पत्तियो से तेल निकलता है—गुण-वर्धक, स्वास्थ्यकारक। गोधूलिवेला की पछुआ और उषाकालीन पुरवा मे जब वह महमहा उठती है, सारा वन-प्रान्तर उमस और बोझिलता से मुक्त होकर नवस्फूर्ति से गमक उठता है। हम इसे तुलसी मैया कहते हैं। यह हमारी सस्कृति है। परिवार की स्वास्थ्य और कल्याण कामना की इच्छा से मातायें सन्ध्या होते ही तुलसी बिरवा को प्रज्वलित दीप अर्पित करती हैं। ऐसा कौन सा रोग है जिसमे तुलसी का प्रयोग न किया जा सके।

—श्री कमलाप्रसाद चौरसिया
(मधुमती नव० ८६)

इसकी सम्पूर्ण उपादेयता को आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने जिस श्लोक मे समेटकर प्रकट किया है वह काव्यानन्द प्रदायक भी हैं—

सदा गेहे-गेहे लसति सुतरा फुल्लकुसुमा,
पर पूजास्थान हृदयरसधारा सुरसिता।
रुजा नृणा सर्वा परिहरति सा रक्षतिभयात्,
तुलाभावात्तुल्या न हि जगतिमस्याश्चतुलसी॥
—प्रियनिघण्टु ३/१५१

अर्थात् जो सर्वदा घर-घर में प्रफुल्लित हो शोभित होती है, श्रेष्ठ पूजा की पात्र है, हृदयरस की धारा से सुसिञ्चित है तथा मनुष्यो के सभी रोगों को दूर करती है और भय से उनकी रक्षा करती है, उसके समान ससार में कोई अन्य न होने से वह तुलसी कहलाती है।

धार्मिक महत्व—वैदिक पुरुष-सूक्त मे जिस परमात्मतत्त्व का निरूपण किया गया है, वह विष्णुतत्त्व ही है। भगवान् विष्णु की महिमा का सभी शास्त्रो मे गान हुआ है। उनकी दिव्य व्यापकता जिस प्रकार निर्गुण-निराकार रूप मे है, उसी प्रकार सगुण-साकार रूप मे भी है। जिस प्रकार परतत्त्व भगवान् विष्णु समय-समय पर अवतार लेते हैं, उसी प्रकार भगवती श्री लक्ष्मी भी अवतार लेती हैं। भगवान् के नित्य धाम गोलोक मे स्थित रहने वाली श्री लीला विभूति मे राधिका बन जाती है। वृन्दावन विहारी के रूप मे अवतीर्ण हुए श्रीकृष्णनारायण की लीलाओं मे सहयोग करने वाली एक गोपी वृन्दा ही गोपीभाव के शरीर का परित्याग करने पर तुलसी के नाम से प्रसिद्ध हुई। भगवान् शालिग्राम साक्षात् नारायण-स्वरूप हैं और तुलसी के बिना उनकी कोई पूजा सम्पन्न नही हो सकती नैवेद्य आदि के अर्पण के समय मन्त्रोच्चारण और घण्टानाद के साथ तुलसीपत्र का समर्पण भी उपासना का मुख्य अङ्ग माना जाता है। प्रतिमा चाहे विष्णु, राम, कृष्ण आदि किसी की, भी हो उसके हाथो मे तुलसी अर्पित की जाती है—

गृहाण पुष्पाणि हरे तुलस्या।
मिश्राणि साक्षान्नवमजरीभि॥
—गर्गसहिता वि खं अ ९

भगवान् और देवी के प्रतिनिधि रूप मे प्रतिमा पूजा हेतु शालिग्राम और तुलसी का सानिध्य आवश्यक है। केवल शयनकाल के अतिरिक्त ये शालिग्राम तुलसी से कभी अलग नही रहते। अत शयन कराने के बाद तुलसीपत्र को शालिग्राम शिला के ऊपर से हटाकर पार्श्व मे रख दिया जाता है। यदि कई शालिग्राम हो तो सबसे उतारकर एक वस्त्र मे शिलाओ के पीछे

रखने की परम्परा है। विधिपूर्वक ताम्रपात्र मे तुलसी और शालिग्राम को रखकर शख में जल के द्वारा घंटा वजाते हुये तथा पुरुषसूक्त का पाठ करते हुये शालिग्राम भगवान् का अभिषेक किया जाता है। श्रद्धापूर्वक इस चरणोदक का पान करने से सभी व्याधिया नष्ट हो जाती हैं। मृत्यु के समय तुलसीदल युक्त इस चरणोदक के पान से सद्गति प्राप्त होती है—

तुलसी तोयकणिका मृत्युकाले च यो लभेत् ।
रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठ सम्प्रयाति हि ॥

—हरिभक्ति विलास

यदि दाह संस्कार के समय अन्य लकड़ियों के भीतर एक भी तुलसी का काष्ठ हो तो करोड़ो पापों से युक्त होने पर भी मनुष्य की मुक्ति हो जाती है—

यद्येक तुलसी काष्ठ मध्ये काष्ठशतस्यहि ।
दाहकाले भवेन्मुक्ति: कोटिपापयुतस्य च ॥

—पद्मपुराण उ० २४/६

विष्णुभक्त स्नान कर पवित्र वस्त्र धारण कर हाथ जोड़कर तीन बार तालियां वजाकर निम्नाकित स्तुति के साथ धीरे-धीरे तुलसी पत्रो एव मजरियो को तोड़े—

मोक्षैकहेतो धरणीप्रशस्ते,
विष्णो समस्तस्व गुरो प्रियेति ।
आराधनार्थं वरमजरीक,
लुनामि पत्र तुलसि क्षमस्व ॥

—गरुण पुराण

ऐसा विश्वास है कि तुलसी की जड मे सभी तीर्थ मध्य मे सभी देव देविया और ऊपरी शाखाओ मे सभी वेद स्थित हैं। इस पौधे की पूजा विशेषकर स्त्रिया करती हैं। वैसे वर्ष भर तुलसी की पूजा होती है परन्तु विशेषरूप मे कार्तिक मे इसे पूजते हैं। पुराणो मे तुलसी का विवाह करने का भी उपदेश किया गया है। श्री रामेशवेदी की मान्यता है कि लोगो को कन्यादान के महत्त्व का पता लगे और लडकियों का वध करने की जो घृणित प्रथा मध्यकाल मे चल पडी थी वह रुक जाय, इस उद्देश्य से शायद तुलसी विवाह किया जाने लगा हो।

तुलसी वन मे या तुलसी क्षुप के समीप किया गया कोई भी अनुष्ठान, जप, तप तथा रामायण गीता, भागवत आदि के पाठ अधिक प्रभावी होते हैं। श्रीमद् भागवत के अनुसार वैकुण्ठ मे श्रीहरि तुलसी के आभूषण धारण करते हैं और उसकी सुगन्ध का सम्मान करते हैं अतएव तुलसी को हरिप्रिया कहा जाता है। वैष्णवो मे तुलसी की कण्ठी भी पहनने का नियम है। गौरीतन्त्र मे पार्वती को भगवान् शिव कहते हैं कि तुलसी माला न पहनने वाला वैष्णव कैसे हो सकता है? माला धारण करते समय कृष्ण का प्रिय बनाने की प्रार्थना इस मन्त्र द्वारा की जाती है—

तुलसीकाष्ठसम्भूते माले विष्णुजनप्रिये ।
वध्नामि त्वामह कण्ठे कुरु मा कृष्णवल्लभम् ॥

—गौरीतन्त्र तु० मा०

भगवान् विष्णु के तथा उनके सभी अवतारों के मन्त्र तुलसीमाला पर ही जपने से सद्यः सिद्धि मिलती है। वैसे अन्य भी देवी के मन्त्र, सात्विक मन्त्र तथा नाममन्त्र भी तुलसी की माला पर जपे जाते हैं।

अन्त मे इस प्रसङ्ग मे ब्रह्मवर्चस् का यह महत्वपूर्ण कथन लिखना आवश्यक समझता हू—"वनस्पति को प्रत्यक्ष देव मानने और घर-घर में इसे लगाकर पूजा करने के पीछे सम्भवत यही कारण है कि यह सर्वदोष निवारक औषधि सर्व सुलभ तथा सर्वोपयोगी है। वातावरण मे पवित्रता प्रदूषण का शमन, घर-परिवार मे आरोग्य की जड़ें मजबूत करने, श्रद्धातत्व को जीवित करनें जैसे अनेकों लाभ इसके हैं। तुलसी की सूक्ष्म व कारण शक्ति अद्वितीय है। यह आत्मोन्नति का पथ प्रशस्त करती है तथा गुणों की दृष्टि से सजीवनी है।"

विविध मत एवं वैज्ञानिक प्रयोगों के निष्कर्ष—"इण्डियन ड्रग्स" पत्रिका (अगस्त १९७७) के अनुसार तुलसी मे विद्यमान रसायन गुण वस्तुत. उतने ही हैं जितना वर्णन शास्त्रो मे किया गया है। यह कीटनाशक है, कीट प्रतिकारक तथा प्रचण्ड जीवाणुनाशक

है। विशेषकर एनार्फिलिस जाति के मच्छरो के विरुद्ध इसका कीटनाशी प्रभाव उल्लेखनीय है। डा० पुष्पनन्दन एव सेवती ने अपने खोजपूर्ण लेख मे बडे विस्तार से विश्व मे चल रहे प्रयासो की जानकारी दी है।

"एण्टीवायटिक्स एण्ड कीमोटोरेवी" पत्रिका के अनुसार तुलसी का ईथर निष्कर्ष टी० बी० के जीवाणु माइकोवैक्टीरियम ट्यूवर-कुलोसिस का वढाना रोक देता है। सभी आधुनिकतम औषधियो की तुलना मे यह निष्कर्ष अधिक सान्द्रता मे श्रेष्ठ ही बैठता है। श्री रामास्वामी एवं सिरसी द्वारा दिये गये शोध परिणामों (व इण्डियन जनरल ऑफ फार्मेसी गई १९६७) के अनुसार तुलसी की टी० बी० नाशक क्षमता विलक्षण है इस जीवाणु के "ह्यूमन स्ट्रेन" की वृद्धि को भी यह औषधि रोकती है।

वेल्थ ऑफ इण्डिया के अनुसार तुलसी का स्वरस तथा निष्कर्ष कई अन्य जीवाणुओ के विरुद्ध भी सक्रिय पाया गया है। इनमे प्रमुख है—स्टेफिलोकोकस आरियस साल्मोनेला टाइकोसा और एवकेरेशिया कोलाई। इसकी जीवाणुनाशी क्षमता कार्वोलिक अम्ल से ६ गुना अधिक है। नवीनतम शोधो म तुलसी की जीवाणुनाशी सक्रियता अन्यान्य जीवीणुओ के विरुद्ध भी सिद्ध की गई है। डा० कौल एव डा० निगम (जनरल ऑफ रिसर्च इन इण्डियन मेडीसिन योगा एण्ड होम्योपैथी—१२/१९७७) के अनुसार तुलसी का उत्पत तैल क्लेवसिला, न्यूमोनी, प्रोटिस, वलगेरिस, केन्डीडा एल्वीकेन्स जैसे घातक रोगाणुओ के विरुद्ध भी सक्रिय पाया जाता है।

डा० भाट एव बोरकर के शोध निष्कर्षों के अनुसार (जे. एस. आय आर.) तलसी के बीजो मे एण्डोक्रोएगुलेस सघटक होता है जो स्टेफिलोएगुलेस के रक्त मे प्रभाव को निरस्त करता है। इनके अतिरिक्त तुलसी के मधुमेह प्रतिरोधी गर्भ निरोधी तथा ज्वर नाशी प्रभावों पर भी विस्तार से वैज्ञानिक अध्ययन चल रहा है। सम्भावना है कि शास्त्रोक्त सभी प्रभावो को अगले दिनो प्रयोगशाला मे सिद्ध किया जा सकेगा। —जडी बूटियो द्वारा स्वास्थ्य सरक्षण

सरजार्ज वुड ने २९ अप्रैल सन् १९४०के 'टाइम्स' नामक अग्रेजी अखवार मे लिखा है कि वम्बई के 'विक्टोरियागार्डन' और 'अलवर्ट' से जब किसी प्रकार मलेरिया ज्वर दूर नही हुआ तव वहा तुलसी के पौधे लगाये गये जिससे मच्छर भी नष्ट हो गये और मलेरिया भी जाता रहा। १७०७ ई० मे 'इम्पीरियल मलेरिया कान्फ्रेन्स' ने इस वात को सहर्ष स्वीकार किया कि काली तुलसी से मलेरिया का उपद्रव वहुत ही कम हो जाता है। लन्दन के 'इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट के डा० मोल्डिग और डा० पेली ने यह वतलाया है कि तुलसी के अन्दर एक ऐसा उडनशील तैल है, जो हवा मे मिलकर ज्वर को उत्पन्न करने वाले सब जन्तुओ को नष्ट कर देता है। आयुर्वेद शास्त्र के प्रायः सभी प्रसिद्ध ग्रन्थो मे तुलसी को सर्प-विष के लिए उपयोगी वतया गया है। तुलसी के उचित समय पर उपयोग करने से साप के काटे गये कई व्यक्तियो के प्राण वच गये। अग्रेजी के सुप्रसिद्ध मासिक पत्र "मार्डन रिव्यू" (अक्टूवर १६२६) मे तुलसी द्वारा सर्प-विष से प्राण वचने की घटनायें छपी है।

—श्री प० हरिशकर शर्मा
(धन्व० सित० ४८)

यह विविध प्रकार के ज्वरो, प्रतिश्याय, कास, श्वास आदि रोगो मे रामवाण का काम करती है। इसके अतिरिक्त अन्य कई चिकित्सा के प्रयोगो मे इसका उपयोग होता है। इस पौधे के पार्श्ववर्ती क्षेत्र मे दूषित कीटाणुओ तथा विविध रोगों को उत्पन्न करने वाले तत्वो तथा क्षुद्र जीव-जन्तुओ का प्रवेश नही हो पाता और शुद्ध वायु तथा सात्विक भावो का स्वाभाविक रूप से सचार होता है, जिससे मन शुद्धि और शरीर स्वास्थ्य मे भी आशातीत लाभ होता है। कुछ अनुसधान कर्त्ताओ के मतानुसार या शूल और प्लीहा का भी निवारण करती है तथा गाय के दही के साथ कुछ अधिक मात्रा मे दीर्घकाल तक प्रयोग करने से

कैंसर आदि भयकर रोगो का भी विनाश हो जाता है।

—श्री राधेश्याम खेमका
(कल्याण देवताङ्क)

चूहो पर प्रयोग मे इसके पत्रों के जलीयसत्व मे गर्भरोपण विरोधी क्रिया पायी गई। साथ मे अन्य द्रव्यो के सत्वो का भी अध्ययन किया गया है। इन अध्ययनो मे ऐसी विधि अपनाई गई है कि जिससे किसी भी प्रकार की गर्भ हानिकर या विरोधक क्रिया का पता लग सके।

एस० वी० वोहरा, एस० के० गर्ग, एव आर० आर० चौधरी सार, २०वी इडि० फार्मे० कांग्रेस, इडि० जर० फार्मेसी, ३०, १२, १९६८, २८७, २८७। वा० अनु० दर्शिका।

अरविन्द आश्रम पाडिचेरी की श्री मा का कहना है कि "कैंसर रोग मे शरीर के कोषाणुओ का फैलना बन्द हो जाता है, तुलसी के पत्ते कोषाणुओ के फैलाने में सहायक हैं। जवाहरलाल स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान एव अनुसधान सस्थान नई दिल्ली क वैज्ञानिको के अनुसार तुलसी क ताजे पत्तो के निरन्तर सेवन से गर्भ निरोध हो सकता है।

—डा० श्री कमलप्रकाश अग्रवाल
(धन्व० सित० १९८७)

अनुसन्धान से विदित हुआ कि तुलसी म थायमल नामक एक तत्व पाया जाता है जो कुष्ठ जैसी महाव्याधियो के लिये भी गुणकारी प्रमाणित हुआ है। क्षय रोगियो क शरीर पर भी यदि तुलसी का रस मला जावे तो क्षय रोग नष्ट हो जाता है।

—डा० श्री रामचरण महेन्द्र

तुलसी की एक बहुत वडी विशेषता यह भी है कि जहा पर गर्भ निरोध का कार्य करती है, वहा विधिपूर्वक लेने से सन्तानोत्पत्ति के लिये भी काम मे लाई जा सकती है। इसके लिये पहले क्वाथ बनाकर पीने से प्रजनन अङ्ग को शुद्ध कर लिया जाय और फिर वीजो के चूर्ण और तुलसी के शर्बत से गर्भाशय को शक्तिशाली वनाया जाय तो सन्तानोत्पत्ति की सम्भावना निश्चित रूप से बढ जाती है। सम्भव है प्राचीन काल मे इसी दृष्टि से तुलसी पूजा और सेवा का नियम प्रचलित किया गया था। पर अब लोग इसमे शारीरिक और मानसिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य और विधि को तो भूल गये और केवल ऊपरी पूजा और तुलसी विवाह जैसी दिखावटी बातो मे ही कर्तव्य को इति श्री मानने लग गय।

—श्री भारतीय योगी
(सरल-घरलू-चिकित्सा)

स्वास्थ्य-सुधार के लिए आजकल पुराने रोगियो को पहाडो पर भेजने के लिये चिकित्सक आदेश दिया करते हैं। हमारे देश में एक समय रोगियो को तुलसी के जगलो या वगीचो मे रखने का रिवाज रहा है। तुलसी मे से उडने वाले सुगन्धित तल आस-पास की वायु म भर रहन स उस वायु का सुगन्धित और शुद्ध रखते हैं। यह वायु अन्त श्वास म जब फेफड़ो क अन्दर पहुचती है तो सामान्य रक्तसचार मे तुलसी के नि सक्रमण करने के तथा दूसरे प्रभावो को पहुचा देती है जिससे शरीर के प्रत्येक कोष पर इसका सूक्ष्म असर पडता ह, फेफड़ निरोग होत है, शरीर का हरेक अवयव, चाह वह सूक्ष्म हा या स्थूल, नयी स्फूर्ति और प्रेरणा पाता है। दुसाध्य रोगी भी स्वस्थ हो जाता है। —श्री रामेश वेदी (तुलसी)

आर. एन. खोरी क कथनानुसार तुलसा कफनि.सारक व ज्वरनाशक ह। इसक पत्ता का चूण पीनस और कफ विनाश क लिए प्रयुक्त होता ह। सोठ के साथ इसका सेवन सतत या पुनरावर्तक ज्वर मे हितकारी है। इसक बीज पिच्छिल एव मूत्रल होव स मूत्रकृच्छ्र म लाभप्रद हैं।

डा० खगेन्द्रनाथ वसु ने तुलसी की विद्युतीय शक्ति को स्वीकार किया है। इन्होंने कहा ह कि तुलसी का थोडा सा भी शरार से सम्पक सक्रामक व्याधियो को नष्ट कर देता है। तुलसी के पौधे के नीचे की मिट्टी क प्रयोग स भी लोग व्याधि मुक्त होते पाये गये है। इस कथन मे कितनी सत्यता है, इसका विश्लेषण तो वैज्ञानिक शोध प्रक्रिया द्वारा ही सम्भव

है। सम्भवतः इसी कारण मन्दिर, मस्जिदो तथा गिरजाघरो के आस-पास तुलसी के पौधे लगाये जाने का प्रावधान रहा हो।

डा० नादकर्णी के अनुसार तुलसी मे कुछ ऐसे गुण है जिनके कारण यह शरीर की विद्युतीय संरचना को सीधे प्रभावित करती है। तुलसी की लकड़ी से बने दानो की माला गले मे पहनने से शरीर मे विद्युत शक्ति का प्रभाव बढ़ता है तथा जीव कोशो द्वारा उनको धारण करने की सामर्थ्य मे वृद्धि होती है। बहुत से रोग इस प्रभाव से आक्रमण करने के पूर्व ही समाप्त हो जाते है तथा व्यक्ति की जीवनावधि बढती है। श्री नादकर्णी के अनुसार कमजोर व्यक्ति यदि स्वल्प मात्रा म भी तुलसी की जड का चूर्ण प्रातः-साय घृत के साथ सेवन करे तो उनका ओजस् व बल बढ़ता है।

प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री डा० आवेन ने लिखा है कि—तुलसी मे रक्त साफ करने तथा विजातीय कीड़ो को मारने की अद्भुत शक्ति है। आतो म इकट्ठे हुए विष का शोधन करने तथा ज्वरो को हटाने की इसमे पर्याप्त शक्ति पायी जाती है।

डा० शरद्चन्द्र घोष एम डी. ने "दि हनिमैनियम ग्लीनिंग्स" पत्र के अप्रैल ३६ के अक म तुलसी के सम्बन्ध मे एक विस्तृत लेख लिखा था जिसमे कई प्रमाण एव पेटेन्ट औषधि निर्माण के अनुभव व प्रयोग बतलाये गये थे।

डा० वेल्ज ने सुस्त और फिसड्डी बच्चो मे जब बहुत सी ऐलोपैथिक दवाओ को निष्फल देखा तो उसने तुलसी के काढे को बरता और इसे लाभदायक पाया।

होम्योपैथिक मत—भारतीय व यूरोपीय दोनो ही होम्योपैथ सिद्धान्त तुलसी को अमृतोपम मानते है। बगाल के डा० विश्वास से कहते हैं कि तुलसी अनेकानेक लक्षणो मे लाभकारी औषधि है। सिर मे दर्द, स्मरण-शक्ति मे कमी, बच्चो का चिड़चिड़ापन बालों की लाली एलर्जी के कारण छींक आना, नाक बहना, मुह मे छाले, गले मे दर्द, पेशाब मे जलन, दमा तथा जीर्ण ज्वर जैसे बहुत प्रकार के लक्षणो मे तुलसी को होम्योपैथी में स्थान दिया गया है। इसकी २,३,६,३० तथा २०० वी पोटेन्सी मे प्रयोग कर इन सभी रोगो मे लाभ पाये गये है।

बम्बई से प्रकाशित होने वाले "दि हनीमेनियन ग्लीनिंग्स" के अप्रैल १९३६ के अक मे डा० शरद्चन्द्र घोष एम० डी० का तुलसी पर बड़ा लेख छपा था। होम्योपैथिक मात्राओ म अन्त. प्रयोग करने से रोगो के कई बड़े समूहो को नष्ट करने में तुलसी अत्यन्त प्रभावकारी औषधि है। शरीर के प्रत्येक सस्थान और प्रत्येक अवयव पर इसका सूक्ष्म आध्यात्मिक काय भी उन्होने विस्तार से दिखाया है। अपने लेख मे उन्होने बगाल के कुछ अन्य होम्योपैथो की ओर भी सकेत किया है जो उनके पर्यवेक्षणो को पुष्ट करते हैं। मस्तिष्क, आँख, कान, मुख, चेहरा, गला, आमाशय, आतें, पेट, छाती, मूत्र, त्वचा, आदि के बहुत से रोगो मे इन चिकित्सको ने तुलसी को लाभदायक पाया है। बच्चो के ज्वरों मे, दन्तोद्गम के ज्वर मे, अतिसार मे और पेट के कीडो मे वे इसे देते हैं। इन्फ्लुएञ्जा, निमोनिया, टायफायड आदि म वे इसका सफलता से प्रयोग कर रहे हैं।

यूनानी मत—यूनानी मतानुसार तुलसी हृदयोत्तेजक, बलदायक, शोथहर, शिर शूलहर है। पत्ते सूघने से मूर्च्छा मिटती है तथा चबाने से मुख की दुर्गन्ध दूर होती है।

इसके बीज तुखमरेहा के नाम से प्रसिद्ध है जो शक्कर के साथ प्रवाहिका मे हितकारी हैं। जो व्यक्ति सोते समय अधिक खरखराहट करते हैं उनके लिये यह लाभप्रद है। इसके अतिरिक्त सूखी खासी का भी ये बीज मिटाते है। शुक्र को गाढ़ा करने मे इनको उपयोग मे लाया जाता है।

परन्तु यूनानी चिकित्सक तुखमरेहा के स्थान पर तुलसी के बीजो को व्यवहार में नही लाते। वे बर्बरी (वन तुलसी) के बीजो को तुखमरेहा की जगह काम मे लाते हैं।

सामान्य प्रयोग

वाह्य प्रयोग—

१. कर्णशूल—(क) तुलसी पत्र स्वरस गर्म कर कान मे डालें।

(ख) तुलसीपत्र स्वरस और भृङ्गराज स्वरस भी लाभ पहुचाता है। कर्णस्राव मे भी डालें।

(ग) सरसो के तैल मे तुलसी पत्र डाल औटावें। जब पत्तिया जल जावें तो तैल छानकर एक शीशी मे रख लें और कान मे टपकाने से भी कर्णशूल नष्ट होता है एव कर्णवाधिर्य, कर्णक्ष्वेड़ आदि कर्ण रोगो मे भी लाभ होता है।

२. नाक की पिड़िका—नाक के भीतर फुन्सी हो गई हो तो तुलसीपत्र को वारीक पीसकर सुघनी की तरह सूघनी चाहिए।

३. नेत्र रोग—तुलसी बीज २ ग्राम, रसौत २ ग्राम, आमाहल्दी २ ग्राम, अफीम १२० मि. ग्रा इन सवको पीसकर आखो के चारों ओर लेप करने से आखों का दर्द और सुर्खी मे लाभ होता है।

(ख) तुलसी स्वरस मे असली मधु मिलाकर शीशी मे भर रखलें। इसकी २-३ बूद आंखो मे टपकावें। यह अभिष्यन्दादि नेत्र रोगो मे लाभप्रद है।

(ग) तुलसी क्वाथ मे थोड़ी पिसी हुई फिटकरी मिला दें। जब क्वाथ गुनगुना रहे तब साफ रुई को उसमे भिगोकर वार वार पलकों को सेकें। एक दो वार सेकने से आखों की सूजन, पीडा और खुजली मिट जाती है।

४ केश रोग—तुलसी के पत्ते और आंवले को वारीक पीसकर सिर मे मलने से वालो का गिरना और असमय मे सफेद होना ठीक हो जाता है।

५. कक्षा (काखौरी)—तुलसीपत्र, राई, गुड और गूगल वरावर लेकर पानी मे पीसकर गर्मकर वांधने से आराम होता है।।

६. दद्रु—(क) तुलसीपत्र को नीबू के रस में मिलाकर लेप करें।

(ख) तुलसी स्वरस में सैंधानमक मिला लेप करें।

७. व्रण—(क) तुलसीपत्र कल्प बाधने से व्रण का शोधन हो जाता है।

(ख) शुष्क तुलसीपत्रो के सूक्ष्म चूर्ण का व्रण पर अवधूलन (छिडकना) से व्रण का शीघ्र पोषण होता है।

(ग) तुलसीपत्र क्वाथ से व्रण को धोने से व्रणगत कृमि नष्ट हो जाते हैं।

८. अग्निदग्ध व्रण—तुलसी स्वरस में नारियल तैल मिलाकर लगावे के दाह दूर होता है और फफोले मिट जाते हैं।

९. मसूरिका—तुलसीपत्र स्वरस के साथ अजवायन पीसकर लगाने से रुकी हुई माता निकल आती है।

१०. अर्बुद—(क) तुलसीपत्र, इन्द्र जौ, सहजने के वीज, मूली बीज और सरसो को भैंस के दूध की छाछ मे पीसकर लेप करने से अर्वुद, ग्रन्थि आदि ठीक होते हैं।

(ख) तुलसीपत्र एव एरण्डपत्र का कल्क बनाकर बाधने से भी अर्बुद ग्रन्थि आदि मे लाभ होता है।

११. शिरःशूल—(क) तुलसीपत्र चूर्ण का नस्य शिर.शूल मिटता है।

(ख) तुलसीपत्र स्वरस मे कपूर घिसकर ललाट पर लेप करने से भी सिर का दर्द मिट जाता है।

१२. मुखदूषिका—(क) तुलसीपत्र स्वरस में आर्द्रक मिलाकर मुख पर लगाने से मुखी की पिड़कायें, दाग-धब्बे दूर होकर मुख पर निखार आ जाता है।

(ख) तुलसीपत्र को सन्तरे के रस मे पीसकर रात्रि मे सोते समय मुख पर लेप करलें, प्रातः सुखोष्ण जल से मुख धोने से मुहासे आदि मिटते हैं।

(ग) तुलसी स्वरस मे नीबू स्वरस मिलाकर मुख पर लगाने से भी मुखदूषिकायें मिटकर मुख पर निखार होता है।

(घ) तुलसी व कसोद्री का स्वरस मलने से भी लाभ होता है।

१३. पार्श्वशूल—तुलसी स्वरस में आधा भाग पुष्करमूल चूर्ण मिलाकर गर्म कर लेप करने से पार्श्व-शूल मिट जाता है।

१४. भूतज्वर—तुलसीपत्र स्वरस में त्रिकटु चूर्ण मिलाकर सूंघने से जीवाणु जन्य ज्वर मे लाभ होता है।

१५. परिवार नियोजन हेतु—(क) तुलसीस्वरस में थोडा शहद मिलाकर और तिल तैल मिलाकर उसमे कपडा भिगोकर सहवास से पहले योनि मे रखने से गर्भ निरोध होता है।

(ख) तुलसीपत्र चूर्ण को मधु मे मिलाकर, सहवास से पूर्व योनि मे लगाने से भी गर्भाधान नही होता है।

१६. योनिभ्रंश—तुलसी बीज और आमाहल्दी को समभाग लेकर पीसकर योनि में छिडकने से योनि स्थिर होती है।

१७. किक्किस—तुलसीपत्र को पीसकर मलने से गर्भवती की पेट व जाघो पर चलने वाली खुजली मिट जाती है।

१८. उपदंश—तुलसीबीज पीस कल्क बना उसमे पुराना नीम तैल मिलाकर आग पर रखें। जब कल्क (बीजो की लुगदी) जलकर काला पड जाय तो तैल को उतार कर ठण्डा हो जाने पर शीशी मे डाल लें। इस तैल को शिश्न पर लगाने से उपदंश जन्य घाव ठीक होता है। इसके प्रयोग से अन्य घावो में भी लाभ होता है।

१९. श्वित्र—तुलसीपत्र और तुलसीमूल की मिट्टी को खूब बारीक पीसकर श्वित्र पर लगाना चाहिए। इससे लाभ होता है।

२०. स्नायुक (नाहरु)—तुलसी की जड़ को पानी मे घिसकर लगाने से स्नायुक निकल जाता है।

२१. गृध्रसी—तुलसीपत्र क्वाथ का स्वेदन लाभप्रद कहा गया है।

२२. पूतिनस्य—तुलसी पत्र स्वरस मे कपूर मिलाकर सूघने से नाक की दुर्गन्ध और कृमि नष्ट हो जाते हैं।

२३. रक्तपित्त—तुलसीपत्र स्वरस नाक मे टपकाने से गिरता रक्त रुकता है

२४ पारद विकार—(क) अशुद्ध पारद से निर्मित औषधि के सेवन से उत्पन्न त्वचा के रोगो मे तुलसी स्वरस मे गन्धक और ताम्बूल (पान) के पत्ते पीसकर लेप करने से ठीक रहता है।

(ख) तुलसी स्वरस एव भृङ्गराज स्वरस मे बकरी का दूध मिलाकर शरीरपर लगाने से भी लाभ होता है।

२५. दन्तशूल—तुलसीपत्र और कालीमिर्च चूर्ण को मिलाकर दातो के नीचे रखने से दात का दर्द मिट जाता है।

२६. पीनस—पत्र या मजरी चूर्ण का नस्य हितकारी है।

२७. अपस्मार—(क) ताजे पत्तो को पीसकर शरीर पर उबटन करने के लिये चरकसहिता मे कहा गया है।

(ख) तुलसी स्वरस मे सेंधानमक मिलाकर नस्य लेने से भी अपस्मार में ठीक रहता है।

२८. शोथ—पत्तो को पीसकर शोथ स्थान पर लगाने से शोथ का शमन होता है।

२९. चर्मरोग—तुलसी क्षुप के नीचे की मिट्टी लेकर शरीर पर मलने से चर्मरोगो मे लाभ होता है।

३०. नक्तांध्य (रतौंधी)—पत्रस्वरस आखो मे डालना चाहिये।

३१ मूर्च्छा—पत्रस्वरस मे थोडा नमक मिलाकर नाक मे टपकाने से मूर्च्छा दूर हो जाती है।

३२. कर्णमूलशोथ—तुलसीपत्र, एरण्ड के नये पत्ते और नमक को पीसकर थोडा उष्ण कर लेप करने से शोथ मिटता है।

३३. अर्श—पत्रस्वरस को मस्सो पर लगाने से वे मुरझाकर नष्ट होने लगते हैं।

३४. ध्वजभङ्ग—तुलसी की जड को पानी में घिसकर शिश्न पर लेप करें।

३५. उरुस्तम्भ—(क) तुलसी के बीजो को पीसकर पीडित स्थान पर लेप करें।

(ख) तुलसीपत्र और सेंधानमक को दही मे पीसकर लेप करने से भी लाभ होता है।

(ग) तुलसी पचाङ्ग का क्वाथ बनाकर पैरों को धोने से भी लाभ होता है।

३६. मूषकविष— मूषकदश के स्थान पर तुलसी स्वरस मे अफीम घिसकर लगाना चाहिये।

३७. मक्षिकादंश—तुलसीस्वरस सेंधानमक और घृत को मिलाकर लगाना चाहिए। इससे मक्षिका व ततैया के द्वारा दशित स्थान पर अधिक सूजन नही आती और पीडा मिटती है।

३८. वृश्चिकदंश—(क) तुलसीमूल को जल मे पीसकर गोली बना लें। दश स्थान पर यह गोली रगड दें।

(ख) तुलसीपत्र स्वरस मे थोडा नमक मिलाकर लगाने से भी लाभ होता है।

(ग) स्वरस को सिर से पैरो की ओर मलने से भी आराम होता है।

३९. सर्पविष—(क) मजरी या जड को पीसकर दश स्थान पर लेप करना चाहिए। इससे पूर्व चीरा लगाकर विष एव दूषित रक्त को निकालना चाहिये।

(ख) बेहोशी की दशा मे तुलसीस्वरस को कान व नाक मे डालना चाहिये।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

१. सामान्य ज्वर—(क) तुलसीपत्र २१ नग के साथ श्वेतजीरा ३ ग्राम, छोटी पीपल ३ ग्राम एकत्र कर ६० ग्राम शक्कर मिलाकर सेवन करने से सामान्यतया सभी ज्वरों का शमन हो जाता है।

(ख) तुलसीपत्र ६० ग्राम, लौंग १२ ग्राम, कालीमिरच ९ ग्राम को पीसकर मटर के बराबर गोली बनाकर सेवन करने से ज्वर, कास और श्वास मिटते हैं।

(ग) तुलसीपत्र, कालीमिर्च और पिप्पली का क्वाथ बनाकर उसमें मिश्री मिलाकर पीने से ज्वरों का शमन होता है।

(घ) तुलसीस्वरस और पोदीने के स्वरस में खाड मिलाकर सेवन करने से भी ज्वर मे लाभ होता है।

(ङ) तुलसीपत्र, सूरजमुखीपत्र को पीस छानकर पीने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं।

२. वातश्लेष्मिक ज्वर—(क) तुलसीपत्र स्वरस, निर्गुण्डीपत्र स्वरस ६-६ ग्राम पीपरि चूर्ण १ ग्राम और शहद मिलाकर सेवन करें।

(ख) तुलसीपत्र, सोठ और अजवायन के चूर्ण को शहद के साथ सेवन करने से भी लाभ होता है।

३. आन्त्रिक ज्वर—(क) तुलसीपत्र १०, जावित्री १ ग्राम को पानी मे पीसकर थोडा गरम कर मधु मिलाकर दिन मे ३-४ बार देना चाहिये।

(ख) स्वरस मे केसर और मुनक्का पीस देने से दाने शीघ्र निकल आते हैं।

४ विषम ज्वर—(क) तुलसीपत्र, देवदारु, पिप्पली और धमासा का क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये।

(ख) तुलसीस्वरस मे कालीमिर्च डालकर पीना हितकारी है।

(ग) तुलसीपत्र ६, कालीमिर्च ४ और पीपल १ को पीसकर उसमे १२ ग्राम मिश्री मिलाकर पीने से भी लाभ होता है।

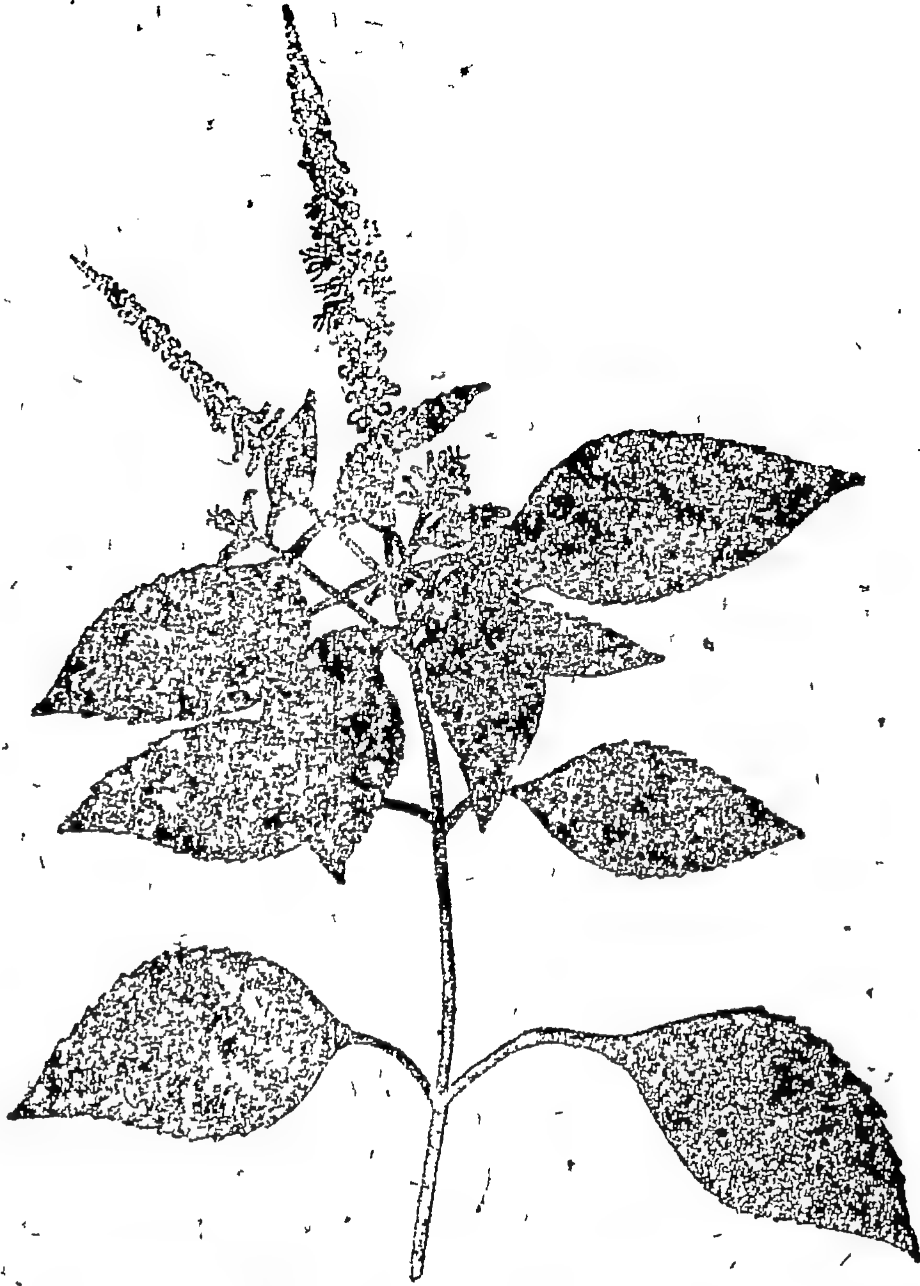
(घ) तुलसीपत्र और कालीमिर्च का क्वाथ बनाकर पीना भी लाभप्रद है।

(ङ) तुलसीस्वरस और शोभाञ्जन स्वरस पान भी हितावह है।

(च) तुलसीपत्र ७, बिल्वपत्र ७, हारसिंगारपत्र १ और कालीमिर्च ९ पीसकर सेवन करने से भी लाभ होता है।

५. जिह्वाजाड्य—तुलसीबीज, कालीमिर्च, सोठ, अकरकरा, इन्द्रजो और चिरायता को पीसकर बिजौरे नीबू के रस मे मिलाकर जीभ पर मलने से जीभ की जडता नष्ट होकर वह मुलायम हो जाती है।

६ बालरोग—(क) तुलसीपत्र चूर्ण को अनार के रस मे मिलाकर मलने से बच्चो के दांत सरलता



तुलसी (Ocimum Sanctum)

विभिन्न नाम : सं०—सुरसा, वृन्दा। हि०—तुलसी। गुज०, म०—तुलसी। अ०—होली वेसिल। लैं०—ओसिमम सैंक्टम।

प्राप्ति स्थान : भारत में प्राय सभी स्थान।

उपयोगी अङ्ग : पत्र, पुष्प, वीज, मूल। **दोषशमन** : कफवातशामक।

रोगोपयोग : कास, श्वास, प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, विष आदि।

मुख्य योग : तुलस्यादि क्वाथ, तुलस्यादि वटी, तुलस्यादि घृत आदि।

से निकल जाते हैं एव उत्पन्न विकार भी नष्ट होते हैं। अनार रस के अभाव मे अनार शर्वत से भी दे सकते हैं।

(ख) तुलसीबीज और छोटी इलायची के दाने पीसकर १००-२०० मि ग्राम लेकर शहद से बालक को चटाने से बालातिसार मिटता है।

(ग) तुलसीस्वरस को गरम कर पिलाने से बालको के उदरकृमि नष्ट हो जाते हैं।

(घ) तुलसीस्वरस, अदरकस्वरस और अजवायन चूर्ण समानभाग लेकर घोटकर उसमे बराबर मधु मिलाकर ३०-४० बूद बच्चो को सेवन कराने से प्रतिश्याय व कास मिटते है।

(ङ) तुलसीपत्र चूर्ण, काकडासिंगी और अतीस को समान मात्रा मे लेकर चूर्ण २५० मि ग्राम को मधु मे मिलाकर मा के दूध के साथ देने से खासी मे लाभ होता है।

(च) तुलसीपत्र, फुलाया सुहागा और लौंग समभाग लेकर जल के साथ खरल कर लें। सुखोष्ण कर शिशु को पिला देवें। इससे कफजन्य उदररोग, ज्वर, श्वास, कास आदि दूर होते हैं।

(छ) तुलसीमजरी को अदरक के रस मे पीसकर शहद मिला चटाने से कुकरकास मे भी लाभ होता है।

(ज) तुलसीमजरी, वच, पीपल ६-६ ग्राम मिश्री २५ ग्राम एक किलो पानी मे औटावें। जब पककर आधा रह जाय तो ५०-५० मि लि दिन मे कई बार पिलाने से भी कुकरकास मे लाभ होता है।

(झ) तुलसीमजरी, वच, पीपल, मुलहठी १०-१० ग्राम, मुनक्का व शक्कर ५०-५० ग्राम जौकुट कर एक किलो पानी मे क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर यथोचित मात्रा मे पिलाने से कुकरकास मे लाभ होता है।

(ञ) तुलसीमजरी, सौंठ चूर्ण, प्याज का रस और मधु मिलाकर चटाने से बच्चो के उत्फुल्लिका (डब्बा रोग), खांसी आदि रोग मिट जाते हैं।

(ट) तुलसी-पचाङ्ग और अमलतास की नावुत फली को जलाकर भस्म बना २०० मि ग्राम तक मधु या दूध से देने पर भी बच्चो के उक्त डब्बारोग आदि मिटते है।

७ शीतपित्त-- (क) तुलसीपत्र १० नग, कालीमिर्च १० नग, लौंग ५ नग को २५० मि लि पानी में उबालकर आवश्यकतानुसार मीठा डालकर पिलावें एव रोगी को ओढकर सोने का निर्देश दें। इससे आधे घटे बाद पसीना आकर शीतपित्त का शमन हो जाता है।

(ख) तुलसीमजरी और पुनर्नवापत्र समानभाग लेकर क्वाथ बनाकर पीने से भी शीतपित्त का निवारण होता है। खाना भी उपयोगी है।

(ग) तुलसीबीज चूर्ण आवले के मुरब्बे के साथ।

८. उष्णवात--(क) तुलसीबीज, जीरा १-१ ग्राम और मिश्री ३ ग्राम को दूध के साथ सेवन करें।

(ख) २५० मि लि दूध, ३७५ मि लि जल मे २५ मि लि तुलसीस्वरस मिलाकर पीना भी लाभप्रद है।

९. पूयमेह --(क) तुलसीस्वरस मे मधु मिलाकर सेवन करना हितकारी है।

(ख) तुलसीबीज, छोटी इलायचीदाना और कलमीशोरा समान ले मिलाकर पीस ३०० मि ग्राम खाकर ऊपर दूध मे दुगना पानी मिलाकर पीना भी पूयमेह मे हितावह है।

१०. अजीर्ण--(क) तुलसीमंजरी और काला नमक मिलाकर खाने से भी अजीर्ण मे लाभ होता है।

(ख) तुलसीपत्र स्वरस भी अजीर्ण को नष्ट करता है।

११. आमवात--(क) तुलसीस्वरस मे अजवायन चूर्ण मिलाकर खाना उपयोगी है।

(ख) तुलसीपचाङ्ग चूर्ण को गोदुग्ध से सेवन करना भी ठीक है।

(ग) तुलसीपत्र, निर्गुण्डीपत्र और अपामार्ग चूर्ण को समभाग ले के सेवन कराना भी हितकारी है।

१२. वातरक्त—कुछ समय तक नियमित तुलसी-स्वरस का पान करने से लाभ होता है।

१३. विबन्ध—तुलसीस्वरस और गोमूत्र १०-१० ग्राम को गरम कर पीने से विबन्ध एवं विबन्धयुक्त ज्वर का शमन होता है।

१४. छर्दि—(क) तुलसीस्वरस में मधु मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।

(ख) तुलसीस्वरस में इलायची का या दालचीनी का चूर्ण मिलाकर सेवन करना भी हितकारी है।

(ग) तुलसी बीज चूर्ण को गोदुग्ध से सेवन करना भी लाभप्रद है।

१५. अर्श—बीज चूर्ण को दही के साथ सेवन करना गुणकारी है।

१६. अतिसार—(क) तुलसीपत्र १० और जीरा एक ग्राम को पीसकर सेवन करने से अतिसार मिटता है।

(ख) पत्रस्वरस में मिश्री मिलाकर सेवन करने से अतिसार, रक्तातिसार और प्रवाहिका नष्ट होती है।

(ग) बीजचूर्ण को गाय के दही के साथ सेवन करने से भी उक्त दोष नष्ट होते हैं।

१७. मुखदौर्गन्ध्य—२-४ पत्ते भोजन के बाद चबाने से मुख की दुर्गन्ध समाप्त होती है। कई व्यक्तियों की जो यह धारणा है कि तुलसी में पारद होता है अतः उसे दांतों से नहीं चबाना चाहिए, निराधार है।

१८. प्रतिश्याय—कालीमिर्च चूर्ण में तुलसी स्वरस की २१ भावना देकर रख लें। इस चूर्ण को ५०० मि० ग्रा० तक लेकर शहद के साथ या उष्ण जल से सेवन करने से प्रतिश्याय में लाभ दृष्टिगोचर होता है।

(ख) तुलसीस्वरस, आर्द्रकस्वरस में मधु मिलाकर सेवन करने से प्रतिश्याय, कास, ज्वर, श्वास आदि में लाभ होता है।

(ग) तुलसीपत्र-स्वरस में मिश्री मिलाकर चाशनी बनाकर रख लें। इस शर्बत को दिन में ३-४ बार लगभग १५-२० मि० ली० पीना हितकारी है।

१९. कास—(क) तुलसीबीज, अमृता, सोंठ, कटेरीमूल समानभाग लेकर चूर्ण कर ५०० मि. ग्रा. चूर्ण मधु से सेवन करें।

(ख) तुलसीपत्र के क्वाथ में मधु और गोदुग्ध मिलाकर पीने से कास, प्रतिश्याय आदि नष्ट होते हैं।

(ग) तुलसीपञ्चाङ्ग क्षार को मधु के साथ सेवन करना हितकारी है।

(घ) शुष्क तुलसीपत्र और मिश्री चूर्ण को उष्ण जल के साथ सेवन करना भी हितकारी है।

(ङ) तुलसीस्वरस में मुलहठीसत्व मिलाकर सेवन करने से कास मिटता है।

(च) तुलसीपत्र, हल्दी व कालीमिर्च को क्वाथ बनाकर सेवन करने से कास, ज्वर, प्रतिश्याय आदि मिटते हैं।

(छ) सूखी खांसी में यदि गला बैठ गया हो तो तुलसीपत्र, खसखस, मुलहठी बराबर मात्रा में पीसकर समान भाग वाला गुड़ मिलाकर उष्ण जल के साथ सेवन करें।

(ज) उक्त स्थिति में मधुयुक्त तुलसीस्वरस भी उपयुक्त है।

(झ) तुलसीस्वरस व वासास्वरस में बड़ी इलायची चूर्ण मधु मिलाकर सेवन करें।

२०. श्वास—(क) तुलसीपत्र, पिप्पली, हरिद्रा, कालीमिर्च, कण्टकारी, तालीसपत्र का क्वाथ तमक श्वास में लाभप्रद है।

(ख) पत्र, सोंठ, कटेरी, ब्रह्मदण्डी, कुलथीक्वाथ में उपयोगी है।

(ग) तुलसीपत्र ११ नग, बहेड़ा चूर्ण १ ग्राम, हरिद्राचूर्ण ३ ग्राम, कालीमिर्च ४ नग, गुड़ १० ग्राम का फाण्ट बनाकर सेवन करना गुणकारी है।

(घ) तुलसीपत्र और काला नमक मुख में रख धीरे-धीरे रस चूसते रहने से लाभ होता है।

२१ मसूरिका—तुलसीपत्र १५ नग और कूठ ६ ग्राम का क्वाथ बनाकर पिलाना हितकारी है।

२२. भ्रम—पत्रस्वरस में मधु मिलाकर पीना चाहिए।

२३. यकृदाल्युदर—तुलसीपत्र क्वाथ लाभप्रद है।

२४. अतिसार—तुलसीफाट, जायफल चूर्ण मिलाकर सेवन करना चाहिए।

२५. तृषा—तुलसीमजरी का सेवन हितावह है।

२६. ज्वरातिसार—तुलसीपत्र २१, लोग ५, बेल का गूदा ६ ग्राम को पीसकर १२५ मि० ली० जल मे पका कर आधा शेष रहने पर छानकर पिलाना सुखावह है।

२७. वातरोग—तुलसीपत्र, कालीमिर्च चूर्ण को घृत के साथ उष्णकर सेवन करने से वात का शमन होता है।

२७. अरुचि—तुलसीस्वरस मे २५० मि० ग्रा० चूना मिलाकर सेवन करें।

२९. कृमिरोग—पत्रस्वरस मे विडङ्ग चूर्ण घोट कर ७५० मि० ग्रा० की गोलिया बनाकर प्रात -साय १-१ गोली जल के साथ सात दिनो तक सेवन करें।

३०. नपुंसकता—(क) तुलसीवीज चूर्ण गाय के दूध के साथ ५-६ सप्ताह पर्यन्त सेवन करें।

(ख) तुलसीमजरी अथवा जड २-३ ग्राम लेकर समान गुड मिलाकर धारोष्ण दूध के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

(ग) वीज चूर्ण और काली मूसली समान भाग का चूर्ण धारोष्ण दुग्ध के साथ सेवन करना हितकारी है।

(घ) मूल चूर्ण और जिमीकन्द चूर्ण २५० मि० ग्रा० पान मे रखकर खावें।

(ङ) केवल वीज चूर्ण भी पान मे रख खाये जा, सकते हैं।

(च) तुलसी वीज और सफेद मूसली चूर्ण मे समान भाग मिश्री चूर्ण व मिलाकर सेवन करना भी हितकारी है।

३१. शीघ्रपतन—(क) रविपुष्य के दिन तुलसीमूल उखाड कर सुखाकर चूर्ण बनालें। यह चूर्ण १ ग्राम असगन्ध चूर्ण १ ग्राम रात्रि को दूध के साथ पीने से शीघ्रपतन मिटता है।

(ख) तुलसी के बीज १० ग्राम, अकरकरा २० ग्राम, शर्करा ३० ग्राम पीस चूर्ण बनालें। १ ग्राम चूर्ण प्रात -साय दूध के साथ सेवन करने से भी लाभ पाया जाता है।

३२. शुक्रमेह—(क) वीज चूर्ण का जल के साथ सेवन करना लाभप्रद है। इस चूर्ण मे मिश्री भी मिलाई जा सकती है। यह स्वप्नमेह मे भी लाभप्रद है।

(ख) तुलसीस्वरस और दूर्वास्वरस मे मधु मिलाकर सेवन करें।

(ग) तुलसीमूल या वीजो का शीतकषाय भी इस रोग मे हितकारक वताया गया है।

३३. दौर्बल्य—(१) ब्राह्ममुहूर्त मे उठ स्नानादि से निवृत हो प्रतिदिन तुलसी के ५ पत्ते एक घूट जल से निगल जाने से वल, तेज़, मेधा आदि बढ़ते है।

(ख) वीजो का चूर्ण भी दुर्बलता को मिटाता है।

३४. मूत्रकृच्छ्र—(क) वीजो का लुआव बनाकर सेवन करना गुणकारी है।

(ख) तुलसीस्वरस मे नीबूस्वरस मिलाकर सेवन करना चाहिए।

(ग) वीजो का क्वाथ बनाकर सेवन करना भी क्वचित् लाभप्रद होता हैं।

३५. मुख दुर्गन्ध—३-४ पत्र भोजन के बाद खावें।

३६. हिक्का—तुलसीपत्रस्वरस मे मधु मिलाकर पीने से हिक्का मिटती है।

३७. रक्तप्रदर—(क) वीज चूर्ण को अशोक पत्र स्वरस से सेवन करना गुणकारी है।

(ख) तुलसीस्वउस चावलो के माड के साथ सेवन कराना हितकारी हैं।

३३. मक्कलशूल—तुलसीस्वरस और मृतसजीवनी वटी सुरा मे गुड मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।

३९. कामला—पत्र ३ ग्राम, पुनर्नवामूल ३ ग्राम को २०० मि० ली० जल मे पीसकर पीना हितावह है।

४० विषरोग—तुलसीपत्र को गोघृत मे मिलाकर खिलाने से हर प्रकार का जहर उतर जाता है।

(ख) तुलसीस्वरस २५ मि० ली० मे १० काली-मिर्चों का चूर्ण डालकर गरम कर आध-आध घण्टे पर पिलाने से सर्प विष मे लाभ रहता है। स्वरस-पत्र, मजरी व कोमल जड़ का उपयोगी है।

(ख) कुत्ता काटने पर इसके पत्तो का चूर्ण जल से प्रात-साय सेवन करना चाहिए।

(ग) तुलसीपत्र चौगुने जल मे घोट कर पाच-पाच मिनट मे पिलाने से बिच्छू का जहर उतर जाता है।

४१. परिवार नियोजन—तुलसी के पत्र क्वाथ को रजोदर्शन के बाद तीन दिनो तक यदि स्त्री पी लिया करे तो उसको गर्भ नही रहता है। (पत्र ५० नग, जल १०० मि० ली० शेष जल २५ मि० लि०)

४२. रक्तविकार—(क) तुलसी और गिलोय ३-३ ग्राम का क्वाथ बनाकर मिश्री मिलाकर सेवन कराने से रक्तविकार मिटता है।

(ख) तुलसी पत्रस्वरस और निम्बुस्वरस मिलाकर पिलाना भी लाभप्रद है।

(ग) तुलसी पत्रस्वरस मे मधु मिलाकर सेवन करना भी हितकारी है।

४३. मुखपाक—तुलसी व चमेलीपत्र चबाने से मुखपाक मे लाभ होता है।

४४ अंसुघात—तुलसीस्वरस मे लवण मिलाकर सेवन कराना लाभप्रद है।

४५ शिरःशूल—तुलसीपत्र २, बादाम २, काली-मिर्च ५ लेकर चबाने से शिर शूल एव प्रतिश्याय मे लाभ होता है।

(ख) तुलसी मजरी चूर्ण (छायाशुष्क) २ ग्राम मधु के साथ सेवन से अर्धावभेदक मिटता है।

४६. उदरशूल—(क) २० ग्राम पत्र, कालानमक ५ ग्राम दोनो को पीसकर चूर्ण बनालें। अजीर्णजन्य उदरशूल मे २-२ ग्राम चूर्ण उष्ण जल से सेवन करना हितकारक है।

(ख) तुलसीस्वरस और अदरकस्वरस समभाग लेकर गर्मकर पिलाने से भी उदरशूल मिट जाता है।

विविध कल्पनायें—

क्वाथ—(क) तुलसीपत्र २ भाग, देलपत्र १ भाग, बनफ्सा १ भाग, दालचीनी १ भाग, इलायचीदाना १ भाग, कालीमिर्च १ भाग, तेजपात आधा भाग, मिश्री ८ भाग का क्वाथ बनाकर पीने से सामान्य प्रतिश्याय, ज्वर का शमन होता है

—अनुभूत योगमाला जन० ६१

(ख) तुलसी के पत्ते, खूबकला, गावजवां, ब्राह्मी नीमगिलोय, सोठ मिर्च, पीपर, अमलतास का गूदा इन सब चीजो को दो-दो ग्राम लेकर कुचल कर २५० ग्राम पानी मे औटाना चाहिए। जब ८०-९० ग्राम तक पानी रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिए। इस क्वाथ को बराबर पिलाने से सब प्रकार के ज्वरो मे बड़ा लाभ होता है और शान्ति मिलती है। —वनौ० चन्द्रो०

(ग) तुलसी, हल्दी, फणिज्जक, (तुलसी भेद-मरा), आक की जड की छाल, कुठेरक (वन तुलसी), कासारि, (कसौंदी) और सभालू समान लेकर क्वाथ करें। इसमे ढाक के बीजो का चूर्ण मिला पीने से कृमि नष्ट हो जाते हैं। —गदनिग्रह

(घ) तुलसीपत्र शुष्क ३ ग्राम, दालचीनी १॥ ग्राम, सौंफ ६ ग्राम, गुलबनफ्सा ६ ग्राम, इलायची बड़ी दाना एक नग तथा काली मिर्च ७ नग।

सबको कुचल कर २५० ग्राम जल मे उबालें, जब चौथाई शेष रह जाय तब १ चम्मच मीग डाल-कर प्रात-साय दोनो समय सेवन करावें।

उपयोग—प्रतिश्याय तथा तत्सम्बन्धी अन्य विकारो मे लाभदायक है।

यह वातज तथा वातपित्त जनित प्रतिश्याय मे विशेष लाभदायक है। यदि कफ एव वातदोष जनित प्रतिश्याय हो तो इसमे १॥ ग्राम अदरक भी कुचल-कर मिला सकते हैं। प्रतिश्याय के साथ यदि मलाव-रोध हो तो उसमे अमलतास का गूदा बीज रहित १० से २० ग्राम तक साथ मे औटा सकते हैं। यदि साथ मे शुष्क कास हो तो अदरक के स्थान पर मूल-

हठी ३ ग्राम कुचलकर मिला सकते हैं। यह क्वाथ सब ऋतुओं में आबाल वृद्ध सबको समान रूप में आयु के अनुसार मात्रा देने से प्रतिश्याय से सम्बन्धित समस्त कष्ट सुगमता से दूर करने वाला है।

—प्रयोग संग्रह अङ्क भाग २

(ङ) तुलसी, पारपाठा और सोंठ का यथा-विधि क्वाथ बनाकर पीने से कम्पाहट से युक्त शीतज्वर का शीघ्र ही शमन होता है। —क्वाथ मणिमाला

(च) तुलसीमंजरी, सोंठ, पिप्पली, मुनक्का, लौंग, पान के डण्ठल, दालचीनी, खजूर प्रत्येक ५-१ ग्राम, लोध्र ५०० मि० ग्रा० क्वाथ बनाकर पीवें। इससे घृणा, अम्लपित्त, अरुचि आदि नष्ट होते हैं।

—यो० र०

२. देशी चाय और तुलसी (फाण्ट कल्पना)—देशी कुनैन में जिस प्रकार तुलसी की उपादेयता है उसी प्रकार देशी चाय में भी तुलसी की उपादेयता प्रसिद्ध है। आजकल जहां दिन रात विषैली चाय पी जाती है उसके स्थान पर तुलसी की देशी चाय पीना अधिक लाभप्रद है। किसी भी अवस्था में तुलसी की चाय अत्यन्त श्रेयस्कर है। इससे बनी चाय स्फूर्ति और आराम देने वाली होती है। वर्षा ऋतु में मलेरिया की रोक-थाम के लिए और शीत ऋतु में शीत से बचने के लिए इसकी चाय अधिक लाभप्रद है। इसके नियमित सेवन से बहुत से रोगों से बचा जा सकता है एवं रोग की स्थिति में उससे छुटकारा पाया जा सकता है। मञ्जूषाकार ने ऐसी ही चाय की महत्ता प्रकट की है और कुञ्चिकाकार ने चाय से उत्पन्न हानियों का वर्णन कर इस देशी चाय को उपयोगी कहा है—

सम मरीचैस्तुलसीदलानि
क्षीरेऽथ नीरेऽपि परिप्लुतानि।
विपाच्य पूतं शुचिशर्कराढ्यं
मनोहरं चायमिदं वदाम ॥

—सि० भै० मञ्जूषा २।३५

"एकविंशतिम्लुलसीदलानि मरिचान्यपि तावन्ति पूर्वं नीरे विपाच्य क्षीरं मेलनीयमुपरिष्टाच्छुद्धशर्करा सिता वा प्रक्षेप्या। तदिदं चेतोहारि "देशी चाय" इति लोके प्रसिद्धयति। प्रतिश्याये तज्जनिते ज्वरे च पेयमिदम्। ... कर्तव्यकार्येषु स्फूर्तिजननाय भारतीयानामप्रान्तऽन्येषु कतिपयप्रान्तेषु विदेशेषु च समुत्पद्यमानस्य कस्यचिद्वृक्षस्य कषायकटुकरसानां शुष्कपत्राणां पूर्वाऽभिधया निर्मायाङ्ग्लैस्तद्व्यवाद्ययायिभिः कृततारतम्यं भारतीयैः कैश्चिदन्यैरपि प्रत्यहं बहुकृत्व पेपीयमानस्य क्वाथविशेषस्य "चाय" इति संज्ञा विदेशीयैः प्रचारितं व्यसनभूतं, मदजनकं शुक्रहानिकरं तन्न पेयमिति बहूनां मतम्।"

—कुञ्चिका टीका

इस देशी चाय की कुछ विधियां यहां प्रस्तुत हैं—

(क) गुरुकुल चाय—छाया में सुखाये हुए तुलसी के पत्ते तीन किलो, दालचीनी ५०० ग्राम, तेजपत्र एक किलो, सौंफ दो किलो, इलायची १ किलो, अगियाघास तीन किलो, बनफशा २५० ग्राम, ब्राह्मी-बूटी एक किलो और लाल चन्दन दो किलो। गण्डासे से कुतरकर इनके जौ बराबर छोटे-छोटे टुकड़े करलें।

विधि—एक किलो स्वच्छ उबलते पानी में १२ ग्राम डालकर उतार लें। जरा ढांक दें। फिर छान कर इच्छानुसार दूध और मीठा डालकर पियें।

लिपटन आदि विविध ब्राण्डों की चाय दिल और दिमाग को कमजोर करती है ज्ञानवाही तन्तुओं को निर्बल बनाती है और रक्तवाहिनियों की दीवारों को कठोर बना देती है। परिणाम यह होता है कि समय से पूर्व ही बुढ़ापे के चिह्न प्रकट होने लगते हैं। यह सुगन्धित और ताजगी देने वाला पेय इन सब से बचाता है और सच्ची स्फूर्ति और आनन्द प्रदान करता है।

आर्य-संस्कृति के प्राचीन केन्द्र गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय हरिद्वार में जब चाय पीने की आदत वाले अतिथि आया करते थे तो कुलपति स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी उन्हें तुलसी के पत्तों की बनी

चाय पीने को दिया करते थे। भारत के भूतपूर्व वायसराय लॉर्डचेम्सफोर्ड और संयुक्त प्रान्त के सेवा मुक्त गवर्नर लॉर्डमेस्टन तथा उस समय के अनेक अंग्रेज कमिश्नरो के आतिथ्य मे तुलसी की चाय ही दी जाती रही है। जल-पान के समय उन अभ्यागतो में यह वातचीत तथा एक मनोरंजक विषय रही है।

जुकाम, खासी, कफ, गले के रोग तथा सब प्रकार के ज्वरो में इसे पीने को दिया जाता है।

—तुलसी (श्री रामेशवेदी)

(ख) शिवशक्ति चाय—तुलसीपत्र ११, कालीमिर्च ५ नग, थोडा सा अदरक या सोठ डालकर उबालें, सुहाता गर्म रहने पर मल-छानकर यथा रुचि साफ गुड अथवा देशी शक्कर मिलाकर पीवें यह एक मात्रा है। भोजन त्याग कर दिन मे ३-४ वार पीने से सर्दी, जुकाम, खासी, श्वास, जूडी ज्वर, वाय, नाय (अङ्गो मे ऐंठन) दूर हो जाती है। पसीना आता है। टट्टी-पेशाव खुलकर होता है।

—अनु० योगमाला वनस्पति विशे०

(ग) विषमज्वरहर चाय—तुलसीपत्र १०, कालीमिर्च ५, लवङ्ग ३, अदरक १ ग्राम, पानी २५० ग्राम, दूध २५० ग्राम, मुनक्का २० ग्राम की चटनी सबको मिलाकर उबा लें। दूध शेष रह जाने पर छानकर २-२ घटे के अन्तर पर तीन वार पिलाने से मल-मूत्र का उत्सर्ग होकर तथा स्वेद आकर ज्वर उतर जाता है। ज्वर पुन न हो इस हेतु ज्वर उतर जाने के वाद करंजादि वटी २-२ गोलिया ३-३ घटे बाद जल के साथ दें। या सप्तवर्णघन वटी का प्रयोग करायें। यह चिकित्सा व्यवस्था आधुनिक औषधि क्विनाइन से सस्ती, लाभदायक तथा हानिरहित है। क्विनाइन की तरह हृदय, मस्तिष्क विकार उत्पन्न नहीं करती। कर्णनाद तथा पित्त सम्बन्धी उपद्रवो से रहित है। —आयुर्वेद विकास अप्रैल ८१

(घ) प्रतिश्यायहर चाय—तुलसीपत्र पचाङ्ग १ किलो, छोटी कटेरी ५०० ग्राम, गुलवनफसा २५० ग्राम, खतमी ६२ ग्राम, उन्नाव ६२ ग्राम, गावजवा २५० ग्राम, मुनक्का १२५ ग्राम तथा देवदार व कीकर छाल २५०-२५० ग्राम लेकर जौकुट करें।

मात्रा—३ ग्राम, २५० ग्राम जल मे उबालकर १२५ ग्राम जल शेष रहने पर मिश्री और दुग्ध डालकर पीवें।

उपयोग—प्रतिश्याय, कास, कण्ठरोग, गले के रोग तथा ज्वर को नष्ट करती है।

—धन्व० अक्टू० ६५

(ङ) प्राकृतिक चाय—तुलसी की सूखी पत्ती ६० ग्राम, पोदीना की सूखी पत्ती ६० ग्राम, पीपल के सूखे पत्ते ६० ग्राम, लौंग ६० ग्राम, कालीमिर्च ३० ग्राम, सौंफ ६० ग्राम तथा छोटी इलायची ६० ग्राम। इन सवको अधकुट करके और एक मे मिलाकर रख छोड़ें। चाय वनाने के लिये इसमे से थोडा सा लेकर और पानी मे उबालकर दूध गुड के साथ चाय की तरह सेवन करें। यह प्राकृतिक चाय अत्यन्त स्वादिष्ट एवं रुचिकारक तो होती ही है, साथ ही साथ त्रिदोष नाशक, स्फूर्तिदायक और रक्तशोधक होती है तथा शूल, श्वास, कास, विष, वमन, ज्वर आदि अनेक रोगो को शीघ्रातिशीघ्र नष्ट कर देती है।

—धन्व० दिस० ६५

(च) त्रिदोषशामक चाय—तुलसी, आम, जामुन, वेल, विजौरा नीबू और अशोक की कोमल पत्तियां समभाग लेकर छाया मे सुखाकर कूट लें। जरूरत के समय थोडा सा चूर्ण लेकर इसकी चाय वनावें और छानकर दूध और गुड मिलाकर इस्तेमाल करें। इस चाय के वरावर पीते रहने से वात, पित्त और कफ—तीनो शान्त रहते हैं। —धन्व० दिस० ६५

(छ) रक्तदोषहर चाय—तुलसी, कटेरी, वेलपत्र, लाजवन्ती और आम की पत्तियो को अलग-अलग छाया मे सुखाकर और उनका चूर्ण बनाकर एक रस करके रख लें। चाय की आवश्यकता पड़ने पर इसमे से थोडा चूर्ण लेकर और जल मे उबालकर पीवें। इस चाय के इस्तेमाल से रक्त के सारे दोष दूर हो जाते है।

(ज) **दीपन चाय**—तुलसी के शुष्क पत्र ३ ग्राम, छोटी इलायची ३ मि ग्राम, केसर ३७५ मि. ग्राम और दालचीनी ३७५ मि ग्राम। इन सबको ३७५ मि लि खौलते हुये पानी मे डालकर, ढक दे, दो-तीन मिनट बाद उतारकर छान लें और दूध, शर्करा डालकर पीवें।

(झ) **स्वादिष्ट चाय**—तुलसीपत्र १२ ग्राम, सोठ १२ ग्राम, जायफल ६ ग्राम, जावित्री ६ ग्राम, दालचीनी ६ ग्राम, छोटी इलायची के बीज ६ ग्राम, बडी इलायची के बीज ६ ग्राम। इन सबको दरदरा कूटकर रख लें। आवश्यकतानुसार इसमे से कुछ लेकर पानी मे उबालकर दूध, शर्करा डालकर पुन उबालकर छानकर पीना हितकारी है।

३. **चूर्ण**—(क) तुलसी की मजरी १२ ग्राम, कटेरी (छोटी) की जड १२ ग्राम, अडूसा १२ ग्राम, छोटी बच १२ ग्राम, आक के फूल ६ ग्राम, पीपल ६ ग्राम इन सब चीजो को कूट-पीस छानकर १॥ ग्राम से ३ ग्राम तक की मात्रा मे देने से हर प्रकार की खासी और कुकुर खासी दूर होती है।

—वनौषधि चन्द्रोदय

(ख) तुलसी के बीज ५० ग्राम, गोखरू ५० ग्राम, पोस्त डोडे ४० ग्राम, मूसली ४० ग्राम, कौंच के बीज ३० ग्राम, मिश्री ६० ग्राम इन सबका चूर्ण करके रख लेवें। इस चूर्ण की आधा ग्राम की मात्रा सेवन करने से वीर्य की निर्बलता दूर होती है। —तुलसी (वेदी)

(ग) तुलसी ६ भाग, निर्गुण्डी जड ४ भाग, भागरा ६ भाग, मालकागनी की जड २ भाग, सोठ १ भाग, सहजना की छाल १ भाग, पीपल १ भाग, इन सबको पीसकर चूर्ण करलें। ३ ग्राम चूर्ण शहद के साथ लेने से अनेक प्रकार के वायुरोग दूर होते हैं। धनुर्वात में इस औषधि को तुलसी, लहसुन और प्याज के स्वरस के साथ देनी चाहिए। साथ ही साथ सारे शरीर पर तुलसी के स्वरस की मालिश भी करनी चाहिए। —धन्व० जुलाई ५२

(घ) तुलसी (काली) के पत्तों का रस ५०० मि० लि०, कटेरी का रस ५०० मि० लि०, अडूसे का रस २५० मि० लि० और दशमूल चूर्ण ५०० ग्राम। दशमूल को खरल मे डालकर उक्त सभी रसो की क्रमश: भावना देकर खूब घोटें। जब सारी औषधि सूख कर चूर्ण रूप मे हो जाय तब निकालकर शीशी में रखलें। १-३ ग्राम चूर्ण रोग के लक्षणो के अनुसार दिन में ३-४ बार गर्म जल, मधु या अदरक स्वरस के साथ सेवन करावे। यह कफज्वर उपद्रव सहित कफोल्वण सन्निपात को शीघ्र शान्त करता है। विभिन्न प्रकार की खासी, क्षय, कफयुक्त निमोनिया पर भी शीघ्र लाभ करता है। जीर्णज्वर मे भी लाभप्रद योग है।

—सुधानिधि प्रयोग सग्रह भाग २

(प्रसूता ज्वर पर दशमूल क्वाथ के स्थान पर इस चूर्ण का सेवन करने से अधिक लाभ देखने को मिला है। कफज काम मे भी बहुत लाभ करती है।

—वैद्य श्री गोपालशरण गर्ग।

४. **शीतकषाय**—१२ ग्राम तुलसी के बीजों को कूटकर ६ गुने पानी मे, मिट्टी या काच के पात्र में डाल कर रात भर भिगो प्रात मल-छानकर उसमे श्वेत जीरा, शक्कर और दूध मिलाकर ५०-१०० ग्राम तक की मात्रा मे दिन मे तीन बार पिलाने से लाभ होता है। यह सुजाक, वस्तिशोथ, मूत्रदाह, वृक्काश्मरी और रक्तातिसार में लाभप्रद है।

—धन्व० वनौ० विशेषाक

५. **तुलस्यादि वटी**—(क) तुलसीपत्र, कालीमिर्च, छोटी पीपल प्रत्येक १२-१२ ग्राम, शुद्ध कपूर ३ ग्राम—इनको नीम की कोपल के रस मे और गूमा के रस मे ३-३ भावना देकर ५०० मि ग्राम की गोलिया बनालें। यह वातिक ज्वर, मलेरिया और औपसर्गिक सन्निपात (प्लेग) मे लाभप्रद है। प्लेग के रोगी की अवस्था देखकर चार गोली तक दिन मे २-२ घण्टे पर देने से ज्वर का वेग कम हो जाता है। प्लेग के वाताधिक्य मे इसे उपयोग मे लाना चाहिए।

(धन्वन्तरि सिद्ध चिकित्साङ्क)

(ख) तुलसीपत्र ४० ग्राम, काली मिर्च ४० ग्राम, नीम के पत्ते २० ग्राम और फिटकरी भुनी हुई १० ग्राम इन सबको खरल मे डालकर अच्छी तरह मिला-

कर गोलियां बनालें। ज्वर आने से पहले २-२ गोली १-१ घटे के अन्तराल से देने से ज्वर का संहार होता है। (आयुर्वेद विकास जन० ८६)

(ग) तुलसी के वीज, छोटी इलायची के दाने गिलोय सत्व तीनो समभाग ले जल के सयोग से पीस मूग बराबर बटी बनावें। १-१ गोली मा के दुग्ध से ज्वरो मे बच्चो को देते हैं। (धन्व० नव० ६४)

(घ) शुद्ध सिंगरफ, जायफल, जावित्री, सोंठ का चूर्ण छना हुआ, तुलसी पचाङ्ग, पीपल—ये छ' द्रव्य १२-१२ ग्राम, शुद्ध जमालगोटा ६२ ग्राम लें, तुलसी के रस मे ३ दिन खरल कर मूग के बराबर गोलिया बना रखें। इसके प्रयोग से कफ शमन हो जाता है। १ २ दस्त हो जाते हैं। डब्बा रोग, कफ, श्वास, कास कफ ज्वर, मलेरिया आदि रोग दूर हो जाते हैं। दस्त हो जाने के बाद फिर इसे नही देना चाहिए।

मात्रा—१-१ गोली बच्चों २ गोली की मात्रा मे युवको को भी देते हैं। गर्भवतियो को न दें।

अनुपान—जल। (धन्व० नव० ६४)

(ङ) तुलसी, गूमा के पत्ते, कालीमिर्च, छोटी पीपर १२-१२ ग्राम, शुद्ध कपूर ३ ग्राम, सब चीजों को पीसकर नीम की कोपल के रस मे खरल करके ५००-५०० मि० ग्राम की गोलिया बना लेवें।

मात्रा—रोगी की अवस्थानुसार एक से चार गोली तक ३-३ घण्टे के अन्तर पर जल के साथ खिलाते रहने से प्लेग और विषम ज्वरो मे आश्चर्यजनक फल दिखाती।

(अनुभूत योगमाला . वनौ० विशेषांक)

(च) तुलसीपत्र २४ ग्राम, धनिया ६ ग्राम, गिलोय सत्व १२ ग्राम, कासनी बीज ६ ग्राम, लौंग ग्राम, इलायची ६ ग्राम, बशलोचन तुलसी के रस मे घोटकर उर्द के समान गोलिया बनानी चाहिए। मियादी बुखारों मे मंधुवा के विष को निकालती है। सगर्भा स्त्रियो, शिशुओं को ताप उतारने हेतु निर्भय होकर दी जा सकती है। २ से ४ गोली १ समय मे दें। (धन्व० नव० ६०)

(छ) तुलसी के पत्ते १२ ग्राम, कालीमिर्च १२ ग्राम, करेले के पत्ते १२ ग्राम, कुटकी १८ ग्राम—इन सबको खरल मे खूब घोटकर मटर के बराबर गोली बनावें। जाडा देकर आने वाले बुखार मे, ज्वर आने से पहले और सायकाल २-२ गोली जल के साथ लेने से बुखार दूर होता है। मलेरिया के मौसम मे अगर प्रतिदिन एक गोली खाते रहे तो ज्वर का भय नहीं रहता। ये गोलिया दो महीने के बाद गुणहीन हो जाती हैं। —सरल घरेलू चिकित्सा

(ज) रससिन्दूर १२ ग्राम, गोदुग्ध मे औटाया हुआ संखिया १२ ग्राम दोनो को तुलसी के स्वरस मे घोटकर बाजरे प्रमाण गोलिया बना सुखाकर रख लें।

मात्रा—१ गोली।

अनुपान—बगले पान का स्वरस।

गुण—इसकी एक गोली शीत ज्वर तथा शीताङ्ग सन्निपात को नष्ट करती है।

—सरल सि० यो० संग्रह

(झ) तुलसीपत्र २४ ग्राम, गिलोय का सत्त १२ ग्राम, लौंग, वशलोचन, धनिया, कासनी के बीज, छोटी इलायची के बीज सब ६-६ ग्राम, कूट कपडछन कर तुलसीपत्र स्वरस की भावना दे, उडद प्रमाण गोलियां बनाकर रख लें।

मात्रा—१ गोली जल अथवा दार्व्यादि क्वाथ से।

गुण—इससे म थर ज्वर नष्ट हो जाता है बलाबल देखकर दिन मे तीन बार दें।

—सरल सि यो सग्रह

(ञ) तुलसी का स्वरस, शुद्ध पारद, शुद्ध अफीम १२-१२ ग्राम तीनो को लोह खरल मे एकत्र नीम के डडे से ८ घटे तक खरल कर, उसमे शुद्ध सुहागा १२ ग्राम मिला, पुन तुलसी स्वरस से ३ घटे घोटकर—जावित्री, जायफल, अकरकरा, खुरासानी अजवायन का चूर्ण ३०-३० ग्राम मिलाकर, पुन पर्याप्त तुलसी स्वरस से एक घटा घोटकर चने जैसी गोलिया बना छाया शुष्क करें।

होने तक गर्म सुखोष्ण जल का सेवन किया जाय तथा रिष्ठ भोजन में परहेज रहे। —अनुभूत योगमाला (वनस्पति विशेषांक)

८. तुलसी कल्प (रसायन) —प्रतिपदा से प्रति-दिन सायं-प्रातः १-१ तुलसीदल बढ़ा कर अमावस्या को [illegible] १५ + १५ = ३० पत्र खाकर १-१ प्रतिदिन घटाकर पूर्णिमा को समाप्त करें [illegible] [illegible] पदार्थ [illegible] का पालन करते रहने से [illegible] निर्मल हो जाता है। अनेक रोगों से शरीर सुरक्षित हो जाता है।

—तुलसी

९. तुलस्यादि आसव—(क) [illegible] किलो शुद्ध [illegible] पुराना गुड़ १ किलो, [illegible] मि० लि० तथा [illegible] १ [illegible] मिला, १५ दिन तक सन्धान करें। पश्चात् छानकर [illegible] मात्रा १ ग्राम से १२ ग्राम तक। यह प्रसव [illegible] तथा सूतिका के मुख को [illegible] है।

(ख) तुलसी [illegible] २५०-२५० ग्राम [illegible] १२५ ग्राम लेकर [illegible] १० [illegible] पानी में भिगो रखें। पश्चात् [illegible] शीशियां में भर [illegible] ६ मि० लि० से १२ मि० लि० तक, सैंधव लवण युक्त उष्ण जल से सेवन करें। [illegible] शीघ्र लाभ होता है। —[illegible] विशेषांक

१०. तुलस्यादि शर्बत—तुलसीदल, [illegible] के पत्र, [illegible], [illegible] और [illegible] ६०-६० ग्राम लेकर १ किलो गुलाबजल और ५०० [illegible] में रात्रि को भिगो दें। सुबह उबालें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छान लेवें। पश्चात् १ किलो ५०० ग्राम चीनी का शर्बत बनाकर उसमे मिला देवें। यह प्रयोग श्री पं० गुरुशरणदासजी का है।

मात्रा —२५ से ५० मि० ली० जल मिलाकर देवें।

लाभ—यह शर्बत जुकाम, कण्ठदाह, निद्रानाश, नाक मे खून आना, हृदय की दुर्बलता, दिमाग की कमजोरी, सूक्ष्मज्वर, मलावरोध आदि को दूर करता है। —धन्व० अंक्टू० ६५

११. तुलस्यादि घृत (सौरेश्वरघृत)—तुलसी, देवदारु, त्रिकटु, त्रिफला, पाचो नमक (सेंधा नमक, काला नमक, विड्नमक, साभर तथा समुद्री नमक) वायविडङ्ग, चित्रक की जड़, चव्य, पीपरामूल गुग्गुलु, हाऊबेर, वच, यवक्षार, पाढ़, कचूर, इलायची, विधारा सबको १२-१२ ग्राम लेकर कल्क करे। इस कल्क के साथ घी २ प्रस्थ (१४९४ ग्राम), दशमूल का काढ़ा १ प्रस्थ (७४७ ग्राम), धान्य यूष से सिद्ध की गई काजी १ प्रस्थ, दही का पानी १ प्रस्थ, जल १ प्रस्थ इनको एकत्र कर विधिवत् पकाना चाहिए। इसकी मात्रा २४ ग्राम है (आजकल इसे ६ ग्राम से १२ ग्राम तक सेवन करना चाहिए) इससे कफवातजन्य, मासगत, भेद तथा पित्त से उत्पन्न हुआ श्लीपद दूर होता है। और अपची, गण्डमाला, अन्त्रवृद्धि, अर्बुद, संग्रहणी, शोथ, अर्श तथा कोष्ठ के कृमि भी दूर होते हैं। जठराग्नि अत्यन्त प्रदीप्त होती है। सौरेश्वर नामक यह घृत श्लीपद को विशेषतया दूर करता है। इसको जीवक (बृहस्पति) ने बनाया था। इससे सभी रोग दूर होते है। —च० द०८

१२. तुलसी तैल—(क) शुद्ध तिल तैल अथवा शुद्ध सरसों तैल २।। किलो तक लेकर उसमे तुलसी स्वरस ६० ग्राम से १२० ग्राम तक मिलाकर बोतल मे भरकर मजबूत डाट लगाकर ७ दिन तक तेल धूप मे रखें। फिर छानकर उसमे यथा रुचि सन्तरा या गुलाब का रूह मिला लें। इसे लगावे या नस्य लेवें मात्र से पुरानी सिर पीड़ा दूर होती है। सिर में जूं लीख हो तो इसे लगाने से नष्ट होते हैं व मच्छर पास नही आते हैं। चेहरे पर लगाते रहने से कांति बढ़ती हैं। इसे शरीर मे भी लगा सकते हैं।

—धन्व. वन विशे०

१३. तुलस्यादि लेप—तुलसी के पत्ते, सिरस की छाल, दन्ती, हुलहुल के बीज, वट की कोपलें, पीपल फल इन सबको पानी में पीसकर लेप करने से गलगड, गडमाला, अपची, अर्बुद दूर होते हैं।

(ख) तुलसी, कूठ, छोटी हरड़, जटामासी तथा भटऊंरं (चाकर) इन सबको गोमूत्र में पीसकर उबटन (उत्सादन) लगाने के कुछ समय बाद गोमूत्र से स्नान करने पर अपस्मार रोग में आराम होता है। —चक्रदत्त

(ग) तुलसी, कुठेरक और शोभाञ्जन (सँजना) इनके पत्तों को गरम जल में पीसकर लेप करने से शीतज्वर शान्त होता है। —त्रिपाठी

१४ तुलस्यादि अंजन—तुलसी और बलपत्र का रस समभाग, तथा दोनों के बराबर स्त्री का दूध लेकर तीनों को कांसे के बर्तन में लोहे के घोटने से खूब घोटें फिर एक पहर ताम्र के घोटने से घोटें। जब काजल के समान हो जाय तो इसे आंखों में आंजें। इससे सारे नेत्ररोग दूर हो जाते हैं। —यो र

१५. तुलस्यादि मंजन—तुलसी की सूखी पत्ती १२ ग्राम, जटामासी १२ ग्राम, अकरकरा ६ ग्राम, सेंधानमक ६ ग्राम, भुनी सुपारी ६ ग्राम, रूमी-मस्तङ्गी १२ ग्राम, बादाम के छिलके की राख १२ ग्राम, इलायची छोटी ३ ग्राम। सबको चूर्ण करके कपडछन कर लें। इस मंजन से दांतों के सारे रोग दूर हो जाते हैं और दांत मोती की तरह चमकने लगते हैं। —धन्व० दिसम्बर ६५

पेटेण्ट प्रयोगों में तुलसी—सिद्धि फार्मेसी ललितपुर द्वारा निर्मित "ज्वरीना" नामक सूचीवेध में तुलसीक्षार, पित्तपापडाक्षार, खूबकलाक्षार और नायक्षार है। ज्वर के वेग को कम करने के लिए यह उपयोगी है। इसका उपयोग विस्फोटक ज्वरों में उसकी तीव्रता कम करने के लिये होता है। मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स जो "तापीकर" नामक इन्जेक्शन तैयार करता है इसमें तुलसी है। यह इन्जेक्शन श्वास, कास, प्रतिश्याय, नपुंसकता, अर्दित आदि में उपयोगी है। यह हृदय को भी उत्तेजित करता है। इसी प्रकार का प्रतापफार्मा भी इन्जेक्शन तैयार करता है—जिसका नाम भी "तापीकर" ही है और घटक द्रव्यों में भी प्रायः समानता ही है। यह भी मार्तण्ड के तापीकर की भांति ही उपयोगी है।

क्षय में शरीर की प्रतिकार शक्ति को बढ़ाने वाली चरक फार्मा० की गोलियां "... टिना"। इसमें अभ्रक, मुक्ता, स्वर्ण आदि के साथ तुलसीपत्र का घनसत्व भी डाला जाता है। पद्मावस, ... और रीमानील (चरक) गोलियों में भी तुलसी का सत्व होता है जो क्रमशः प्रतिश्याय, नपुंसकता एवं वातव्याधि में उपयोगी हैं। इसके अतिरिक्त चित्र-रोगोपयोगी पिगमेण्टो मलहम में भी तुलसी एक मुख्य घटक द्रव्य है। हिमालय ड्रग कम्पनी द्वारा निर्मित रूमालया टिकिया और क्रीम में तुलसी का मिश्रण किया जाता है। ये प्रयोग आमवात में आभ्यान्तर व बाह्य उपयोग हेतु लाभप्रद हैं। हिमालय ड्रग कम्पनी की प्रसिद्ध सिस्टान (अश्मरी) में भी तुलसी स्वरस की भावना दी जाती है। मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स द्वारा निर्मित अश्मरी रोग नाशक "स्टोनसाल टेबलेट में बहुत से अन्य अश्मरीनाशक द्रव्यों के साथ में तुलसी का भी मिश्रण किया जाता है। शिलाकेम (इन्दौर) द्वारा निर्मित "शिलपाकफ टेबलेट" जो प्रतिश्याय, कास में उपयोगी है, उसमें मुलहठीसत्व, वासासत्व आदि के साथ तुलसीसत्व भी डाला जाता है जिससे यह सब प्रकार के कास को मिटाकर श्वसन-संस्थान को स्वस्थ करती है। श्री मोहता रसायनशाला हाथरस ने नपुंसकता को दूर करने का एक उत्तम प्रयोग तैयार किया है—"महास्तम्भनवटी।" यह एक उत्तम वृष्ययोग है। इसमें लोह, अभ्रक, वंग, स्वर्ण-माक्षिक भस्मों के साथ में गोखरू, पान की जड़ व तुलसी की जड़ भी होती है।

अरण्य तुलसी की उपादेयता विविध प्रयोग प्रगट करते हैं। बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक यूनानी फार्मेस्युटिकल वर्क्स झांसी "वन तुलसी" नामक इन्जेक्शन का निर्माण करता है। इसमें केवल अरण्यतुलसी सत्व

होता है। यह विसंक्रामक, मूत्रजनन, स्वेदजनन एवं वेदना स्थापन गुण के प्रभाव से हिक्का, ज्वर, अश्मरी, विषमज्वर तथा संक्रामक ज्वरों पर लाभ करता है। सिद्धि फार्मेसी ललितपुर भी "अरण्य तुलसी" नामक इन्जेक्शन का निर्माण करती है। इसमे अरण्यतुलसी सत्व और अरण्यतुलसी क्षार होता है। यह वात-व्याधि, प्रतिश्याय, ज्वर, शिर शूल शोथ आदि मे लाभप्रद है।

इसके अतिरिक्त निम्नांकित तरल प्रयोगो मे भी तुलसी डाली जाती है।

क्र०	नाम प्रयोग	निर्माता	मुख्य द्रव्य	गुण-धर्म
१	माधुरी कफ सीरप	श्री रुद्रदेव आयु० भवन नयागाव (विहार)	तुलसी, जूफा, मुलैठी, द्राक्षा, कण्टकारी, वासा आदि।	कास, श्वास, प्रतिश्याय मे लाभप्रद।
२	माल्टोफेराल सीरप	,,	तुलसीघन, असगन्धघन, आवला घन, गिलोयसत्व आदि।	रक्ताल्पता, क्षय, गर्भावस्था मे उपयोगी।
३	अम्थश्लेमक्योर सीरप	कौशिक आयु० भवन, सालासर (राजस्थान)	तुलसी, कण्टकारी, वासा, भारङ्गी, सोमलता, त्रिकटु आदि।	श्वास, कास, हिक्का, क्षय, प्रतिश्याय आदि।
४	रक्तगदान्तक सीरप	,,	तुलसी, नीम, स्वर्णक्षीरी, उशवा, अनन्तमूल आदि।	समस्त चर्मरोग, शीतपित्त, रक्तविकार, दाह आदि।
५	शीतज्वरारि पेय	श्री मोहता रसायन शाला हाथरस (उ प्र)	तुलसी, गुडूची, कुटकी, चिरायता, त्रिफला, महासुदर्शन क्वाथ आदि।	विषमज्वर मे उपयोगी।
६	कान्वीग्नोल (नासिकाविन्दु)	,,	तुलसी, कन्नेर, विडग, चमेली कटुतैल आदि।	जीर्ण प्रतिश्याय, पूतिनासा, आदि मे नाक मे डालें।
७	ईयर क्योर	,,	तुलसी, देवदारु, रसोन, हरिद्रा, नोवूरस आदि।	कर्ण रोगों मे उपयोगी।
८	टू कोफ सीरप	सुमित फार्मा अहमदाबाद	तुलसी, कटकारी, वासा आदि।	सव प्रकार की कास मे उपयोगी।
९.	तुलसी कफ सीरप (क्वस)	भारतीय औषधि निर्माणशाला राजकोट	तुलसी, यवक्षार, मुलैठी, नवसादर आदि।	प्रतिश्याय, कास, श्वास आदि मे कफ निकालने वाली शामक औषधि है।
१०.	तुलसी कम्पाउन्ड	,,	तुलसी, लवङ्ग तैल, दालचीनी तैल, कपूर, नीलगिरी तैल आदि।	प्रतिश्याय, कास, श्वास, कठरोग आदि मे आभ्यन्तरीय प्रयोगार्थ तथा व्रण, नाड़ीव्रण, दन्तशूल, आमवात आदि मे वाह्य प्रयोगार्थ उपयोगी।
११	लिवर सीरप	कौशिक आयु० भवन, सालासर	श्यामतुलसी, रोहितक, पुनर्नवा, चित्रक, त्रिफला, निशोथ आदि।	यकृत्प्लीहावृद्धि, पाण्डु, कामला आदि।
१२	लिवोवेस सीरप	शिल्पा केम इन्दौर	श्याम तुलसी, विडग, भृङ्गराज, पुनर्नवा, कालमेघ आदि।	,,
१३.	लिवोमीन सीरप	चरक फार्मा वम्बई	श्यामतुलसी, भृङ्गराज, गुडूची, मकोय आदि।	,,
१४	तुलसी कफ सीरप	डेकन आयुर्वेदाश्रम हैदरावाद	तुलसी, वासा, सोठ, पुदीना फूल आदि।	सव प्रकार की खासी में उपयोगी।

अनुभूत प्रयोग—

१. दन्तशूलहर प्रयोग—तुलसी और अरणी के पत्ते समान मात्रा में लेकर पानी में उबालें। फिर उस जल के गुनगुन रहने पर कुल्ले करें। कुल्ला करने के बाद तुलसी की तीन पत्ती दांत से दबा कर सो जाय, दर्द शान्त हो जायेगा।

—श्री रामप्रसाद खाजूराणा
(धन्व० नव० ६०)

२. वृश्चिक दंशहर प्रयोग—तुलसी के १५-से २० पत्र लेकर मुख में रख कर चबाओ मुख बन्द करके तुलसीपत्र की गैस होने दो। वृश्चिक दंश के रुग्ण के कान में तुलसीपत्र की गैस की फूंक मारो। इस प्रकार चार-पांच बार फूंक मारने से वृश्चिक दंशजन्य वेदना का शमन होता है।

—वैद्य श्री नटवरलाल पण्ड्या
(धन्व० शूलनिदान चिकित्साङ्क)

३. बालोपयोगी प्रयोग—तुलसीपत्र ५ नग, काला जीरा १ ग्राम, काली मिर्च १ नग को २५ मि० ल० जल में छान कर गुनगुना कर बच्चे को पिलाने से उसकी जूड़ी जाती रहती है।

—श्री वेदव्रतशर्मा
(धन्व० अगस्त ६४)

४. विषमज्वरहर प्रयोग—तुलसी के पत्ते, काली मिर्च २०-२० ग्राम, करेले के पत्ते ४० ग्राम, कुटकी ८० ग्राम। सबको कूट कपड़छान कर तुलसी के पत्ते के रस में मोठ मटर के बराबर गोली बनालें। २-२ गोली दिन में ३ बार सेवन कराने से सब तरह के शीतज्वर, तृतीयक, चतुर्थिक आदि में लाभ हो जाता है।

—डा० श्रीरामविलास चौरसिया
(धन्व० गु० सि० प्र० भा० २)

५. कालज्वरातिसारहर प्रयोग—तुलसीपत्ती हरी १२ ग्राम, पुदीनापत्ती हरी १२ ग्राम, हर्र का छिलका (गुठली निकालकर) १२ ग्राम, नागरमोथा १२ ग्राम, निशोथ श्वेत बीच की नसें निकालकर १२ ग्राम, अतीस ३ ग्राम। इन सब औषधियों को पीस-कर १२५ मि० ग्राम प्रमाण की गोली बनाकर माता का दूध या शहद के १ से ६ गोली तक सेवन कराने से बालकों का ज्वर, श्वास, कास, वमन अतिसार रोगों को नष्ट करती है।

—श्री भिनगोविन्दप्रसाद गुप्त
(धन्व० मई ६५)

६. सामान्य ज्वरहर प्रयोग—आजकल लोगों की प्रवृत्ति है कि ज्वर आते ही दवा देना चाहिए। ऐसे समय में बहुत से वैद्य असमंजस में पड़ जाते हैं। ऐसे समय में नीचे लिखे अनुसार चिकित्सा करे—

ज्वर का कारण मलबद्धता हो या न हो एनीमा से पेट साफ कर ले या हल्का सा रेचक दे तदुपरान्त तुलसीपत्र स्वरस ६ ग्राम, मधु ६ ग्राम, खांड २५० मि० ग्रा०, प्रवालभस्म, चन्द्रपुटी १२५ मि० ग्रा० दिन में ३ खुराक दे। साधारण ज्वर २-३ खुराक में दूर हो जाता है। जीर्णज्वर को धार-धार कम कर देता है। अपकार बिल्कुल नहीं करता।

पथ्य—केवल दूध दें। फलों का रस भी दे सकते हैं अन्न बिल्कुल बन्द कर दें।

—वैद्य श्रीरामचन्द्र गणपत वारी
(धन्व० नव० ५०)

७. विषमज्वरहर प्रयोग—शुष्क तुलसीपत्र, करञ्ज बीज, मींगी, शुष्क निम्बपत्र, फुलाया हुआ टंकण, फिटकरी श्वेत का फूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, शुद्ध हरिताल, शुद्ध मैनसिल प्रत्येक समभाग।

विधि—पहले हरिताल को खूब मर्दन कर पुनः क्रम से मैनसिल और हिंगुल मिला काष्ठादि दवाओं का कपड़े से छना हुआ चूर्ण तैयार करवा कर पूर्व लिखित भेषजों के साथ मिलाकर एक सप्ताह तक तुलसीपत्र स्वरस के साथ मर्दन कर २५०-२५० मि० ग्रा० की वटिकायें बनाकर छाया में सुखा लेनी चाहिए।

मात्रा—एक बार दो गोली दिन में तीन बार साधारण पानी या दूध के साथ देवें। यह योग विषम-ज्वर के वेग को निश्चितता से रोक देता है। वेग

रुकने के बाद ४-५ दिन तक लेने से पुनः विषमज्वर का प्रकोप नहीं होता। पुराने विषमज्वर में कुछ अधिक समय लगता है। इसके अतिरिक्त यह वातज्वर, कफज्वर एवं वातकफज्वर में भी लाभदायक है।

उक्त योग के प्रत्येक द्रव्य के शास्त्रीय गुणों का अनुशीलन करने से यह विषमज्वर को रोकने में ७५-८० प्रतिशत तक लाभदायक सिद्ध हुई हैं। निर्माण-विधि पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है सभी काष्ठादि भेषज नवीन होनी चाहिए। ज्वर अवस्था में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसे मैंने भूतघ्नी नाम दिया है।

—श्रीयुत वैद्य शंकरलाल शर्मा शास्त्री (स्वास्थ्य फर० ५१)

८ अर्द्धाङ्ग वातहर प्रयोग—तुलसीपत्र १०० ग्राम में ५ ग्राम शुद्ध पारद डालकर खरल करें। जब घोटते घोटते पारद बाहर आ जाय तब पारद को निकाल लें और शुद्ध गन्धक २५ ग्राम तुलसी पत्र की लुगदी में डालकर घोटें। जब पारद का भाग गंधक में मिलकर एक जीव हो जाय तब शुद्ध कुचलो का चूर्ण, अकरकरा की छाल का चूर्ण, लवङ्ग का चूर्ण प्रत्येक १०-१० ग्राम डालकर तुलसी रस में घोटें। १२५-१२५ मि० ग्रा० की वटी तैयार करें। यह पक्षाघात को दूर करने में उत्तम है।

मात्रा—२-२ वटी सुबह-शाम दशमूलक्वाथ के साथ दें। यह योग मेरे गुरुवर पं० श्री कन्हैयालाल जी ढंढ का है। इस वटी से सुगनचन्द जी पारख को आशातीत लाभ हुआ था। —श्री चन्द्रशेखर व्यास (धन्व० अक्टू० ८४)

९ क्रिमिनाशहर प्रयोग—तुलसीपत्र ६ ग्राम, वायविडङ्ग तथा कबीला १२-१२ ग्राम चूर्ण बना कपडछन करके तुलसीपत्र स्वरस और गुम्मा के स्वरस में भावना देकर वटी बना लें। थोडा गुड मिलाकर एक घण्टे बाद गर्म पानी के साथ खाने से उदरकृमि नष्ट हो जाते है। —श्री रमेशकुमार सारथी (धन्व० जून० १९५८)

१०. प्रतिश्यायहर प्रयोग—तुलसीपत्र २०० मि० ग्रा०, मरवापत्र, गाजवान, कण्टकारी, वासा-अफती मूल प्रत्येक १०० मि० ग्रा० लेकर क्वाथ कर चाशनी बनायें शीतल होने पर गुलाब अर्क १०० मि० लि० एवं अगूर का सिरका १०० मि० लि० मिलाकर शीशियों में भरें यह जुकाम कुण्ठदाह, नक्सीर, हृदय की निर्बलता, सूक्ष्मज्वर और खासी मे उपयोगी है सुबह-शाम दो-दो चम्मच जल के साथ देने पर प्रतिश्याय रोगो मे अतिविशिष्ट कार्य करता है। —वैद्य प० श्री प्रह्लादराय शर्मा (योगरत्नसार)

११. सुख प्रसवकारक प्रयोग—तुलसी की पत्ती २४ ग्राम, पानी ५०० ग्राम तुलसी की पत्ती को मात्रानुसार पानी में पकालें, जब १२५ ग्राम शेष रह जाय तो आग पर से उतार लें और छानकर घी २४ ग्रा० और खाड २४ ग्राम मिलाकर चाय की तरह गरम-गरम पिला दें।

गुण—यदि किसी स्त्री को प्रसव वेदना प्रारम्भ हो और बच्चा बाहर न आता हो व कष्ट बहुत हो रहा हो तो उस समय ऊपर लिखित काढा पिलाने से बच्चा बिना तकलीफ के हो जाता है।

—हकीम श्री श्यामकृष्ण अरोरा (धन्व० दिस० ५४)

१२. उरस्तोय पर तुलसीपत्र स्वरस—तुलसी-पत्रस्वरस १/२ औंस (१५ ग्राम) प्रातः-साय उरस्तोय रोगी को कुछ दिन निरन्तर सेवन कराने से आशुकारी गुण देखने को मिलता है। निकटतम रोगी को सात दिनो मे तथा साधारण रोगी को तीन दिनो मे ही लाभ देखने को मिलता है।

—कविराज श्री देशराज बी० ए० (धन्व० जून० ८२)

१३. शीतलाशामक प्रयोग—तुलसी के पत्ते, ब्राह्मी, काली मरिच, हसराज प्रत्येक २०-२० ग्राम तथा गोरोचन ३ ग्राम। सबको मिलाकर तुलसी के स्वरस में १२ घण्टे खरल कर ६०-६० मि० ग्रा० की

गोलिया बना लें। १-२ गोली ४-४ घण्टे पर दिन में २ वार तुलसी रस मे देने मे शीतला तथा रोमान्तिका (खसरा) के दाने जल्दी बाहर निकल आते हैं।

—वैद्य श्री गोपाल जी कुंवरजी ठक्कर
(सुधा० पृ० स० ४)

१४. आयुर्वेदिक कुनैन—तुलसी हरी ५ किलो, गिलोयहरी ५ किलो, चिरायता पंचाङ्ग हरा ५ किलो, नीम की अन्तर्छाल हरी ५ किलो, करज पत्र हरा ५ किलो।

विधि—सब वस्तुओ को किसी पत्थर की कुण्डी मे खूब कूटकर चतुर्गुण पानी मे डालकर मिट्टी की किसी नाद या हौज मे डाल दें। आठ दिन भीगे रहने के बाद ९वें दिन हाथो से खूब घोटें और मसलें ताकि पानी मे सब औषधियों का सत्व घुल जाय फिर ऐसे ही छोड दें। तीसरे दिन फिर फेंटें तथा छोड दें तीन दिन पश्चात् ऊपर-ऊपर का नितरा हुआ पानी किसी दूसरी नाद मे उतार लें इसी प्रकार हर २४ घण्टे पर ७ वार इसी प्रकार नितरा हुआ पानी उतारते रहें सातवी बार के पानी को नाद मे ही धूप द्वारा सूख जाने दें बिल्कुल सफेद रग का सत्व नाद मे जम जावेगा उसको एकत्र कर व्यवहार में लावें। उत्तम तरह से बनाने पर बिल्कुल क्विनीन जैसा सत्व प्राप्त होता है।

मात्रा—बालको को १ ग्रेन से २ ग्रेन तथा युवा को ५-१७ ग्रेन तक है। यह जल या दूध से ली जा सकती है।

उपयोग—यह क्विनेन के समान गुणकारी औषधि है लेकिन क्विनेन की तरह इसमे अवगुण नहीं हैं। मलेरिया ज्वर में निश्चित प्रभावकारी योग है।

—राजवैद्य श्री इन्द्रदत्त शर्मा
(धन्व० अनु० योगाक)

१५. लावण्यप्रद प्रयोग—तावे के वर्तन मे एक दिन भर नीबू का रस भरकर रखना चाहिए। फिर उसमें समानभाग तुलसी का रस और काली कसोदी का रस डालकर धूप मे रख देना चाहिए। जब वह रस गाढा हो जाय तो उसको चेहरे पर लगाने से चेहरे की झाईं, काले दाग, फीलें इत्यादि नष्ट हो चेहरा सुन्दर हो जाता है। इस औषधि को निरन्तर लगाते रहने से शरीर के सफेद दाग भी मिट जाते हैं।

—कविराज श्री रामचन्द्र [illegible]

तुलसी को जातिया—तुलसी की विविध जातियों का उल्लेख पूर्व मे किया गया है। इनमे प्रमुख जातियों का यहा पुन विस्तृत वर्णन किया जा रहा है। शास्त्रोक्त नो जातियो के नाम अन्य वनौषधियों के नाम होने से कई विवाद उत्पन्न हो गये हैं। विविध व्याख्याकारो के विविध मन्तव्य विविध भ्रम उत्पन्न कर देते हैं। अजगन्धा नाम से कई व्यक्ति बर्बरी और कई अन्य तुलसी भेदों को ग्रहण करते हैं। वैसे अजगन्धा नाम सुवर्चला (हुलहुल) के लिए विख्यात है। भावमिश्र ने अजगन्धा नाम का उल्लेख नहीं किया है वे अजगन्धिका शब्द बर्बरी के लिए प्रयुक्त करते है। स्वामी श्री भागीरथ जी के "अजगन्धा का विनिश्चय विचार" नामक शीर्षक में अजगन्धा से हुलहुल का ही निर्णय लिया है किन्तु तुलसी भेदो मे अजगन्धा वनतुलसी का ही ग्रहण किया है। आपने अजगन्धा क्षुद्रा (रामतुलसी) का उल्लेख पृथक् किया है। इसी प्रकार गण्डीर नाम भी सन्दिग्धता उत्पन्न करता है। गण्डीर से गण्डदूर्वा प्राय ली जाती है। श्री हरिप्रपन्न जी शास्त्री गण्डीर से तुलसी कुल की गर्भर (कोलियस वार्बेटस) के ग्रहण करने का ही परामर्श देते हैं।

१. बर्बरी—बबई तुलसी (आसिममबेसिलिकम्)—भावमिश्र ने इसके तीन प्रकार कहे हैं। १ अर्जक—इसके पुष्प श्वेत होते हैं। २. कुठेरक—इसके पुष्प नीलाभ या बैंगनी होते हैं। ३ वटपत्र—इसके पत्ते वट पत्र के आकार के होते हैं। गुणो मे कहा है

बर्बरीत्रितय रूक्षमुष्ण कटु विदाहि च।
तीक्ष्ण रुचिकर हृद्य दीपन लघुपाकि च॥
पित्तल कफ वातास्रकण्डूकृमिविषापहम्॥

—भा० प्र०

इसके बीज स्निग्ध शीत होते हैं जो दाह शोथ



बर्बरी [Ocimum Basilcum]

विभिन्न नाम : सं०—बर्बरी, खरपुष्पा। हि०—बबई तुलसी। गु०, म०—सबज। अं०—स्वीट बेसिल। लै०—ओसिमम बेसिलिकम।

प्राप्ति स्थान : विशेषत्र पश्चिमोत्तर भारत।

प्रयोज्य अङ्ग : मूल, पत्र, बीज। **दोषशमन** : कफवातशामक।

रोगोपयोग : कास, श्वास, अग्निमांद्य, अरुचि आदि।

करसे

शामक कहे गये हैं—

बीज चास्या दाहशोषनाशक परिकीर्तितम् ।

—कै० नि०

इसके बीज व्रणरोपण, स्नेहन, रक्तरोधक वृष्य एव बल्य होते हैं। अत पत्र एव मूल कफ वातविकारों मे एव बीज वातपैत्तिक रोगो मे उपयोगी है।

आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने इसका कृमिघ्न वर्ग मे वर्णन किया है। कृमि के अतिरिक्त अरुचि, अग्निमाद्य, रक्तविकार, हृदयदौर्बल्य, कास, श्वास विषमज्वर आदि में उपयोगी है। पत्र कष्टार्तव मे लाभप्रद है। पत्र लेप शोथयुक्त वेदना को नष्ट करता है। पत्र का नस्य मूर्च्छा, शिरोरोग तथा पीनस मे लाभप्रद है। पत्र तथा मूल विषाक्त अवस्थाओ मे भी प्रयुक्त होते हैं।

पश्चात्यमतानुसार यह पसीना लाने वाली वायु नाशक एव उष्ण है। यह आमातिसार, पूयमेह, जीर्णज्वर, कफ रोग, वमन एव मक्कशूल मे उपयोगी है। यह रक्तमेह, वृक्कशूल, कास और रक्तातिसार में भी लाभप्रद है। पत्र स्वरस कर्णशूल को मिटाता है।

यह पर्शिया, सिन्ध देश व दक्षिण पूर्व एशिया का मूल द्रव्य है। भारत के उष्ण प्रदेशो मे प्राय बोई जाती है। सिन्ध-पजाब आदि में यह स्वयजात रूप मे पाई जाती है। बगाल मे यह बोई जाती है। बम्बई मे यह सब्वा के नाम से मिलती हैं, जिसे मुसलमान प्रति शुक्रवार को कब्रो पर चढाते हैं।

इसके वर्षायु क्षुप सरल, कोमल, स्निग्ध, सुगन्धित बहु शाखायुक्त होते हैं। कांड व शाखाओ का वर्ण हरित किंवा नीलाभ होता है।

पत्र—१-३ इञ्च लम्बे, तीक्ष्ण, स्निग्ध, हरित, सुगन्धित, अखण्डित कुछ दानेदार होते हैं। पुष्प श्वेत या हलके बैंगनी रङ्ग के अनेक सघन मजरियो मे होते हैं।

बीज—काले वर्ण के, अण्डाकार या आयताकार होते हैं। ये बीज सुगन्धरहित होते हैं, जिन्हे जल में भिगोने पर लुआब होता है। इन्हें तुकमशर्बती या तुकमेहरा या लोकमारी कहते हैं।

रस—कटु, तिक्त।

वीर्य—उष्ण।

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—कफवात शामक (बीज वातपित्त शामक)।

प्रयोज्य अङ्ग—मूल, पत्र, बीज।

मात्रा—फाण्ट-५०-१०० मि०लि०, बीज चूर्ण-१-३ ग्राम, पत्रक्वाथ-५० मि० लि०, पत्र चूर्ण-५-१० ग्राम।

हानिकारक—अधिक मात्रा मे यह दृष्टिदौर्बल्यकारक है।

हानिनिवारक—सिरका, खीरा या कुलफा का सेवन हानिनिवारणार्थ किया जाता है।

प्रतिनिधि—इसके अभाव में कलोजी प्रतिनिधि रूप मे ली जाती है और इसके पत्र लौंग के प्रतिनिधि रूप में लिये जाते हैं।

इसके पत्तो मे सुगन्ध होने से, इन्हें मसालो में डालते हैं। इसकी चटनी भी बनाई जाती है। ज्वर मे इनका फाण्ट उपयोगी है। जीर्णज्वर को इसका क्वाथ लाभप्रद है। शोथ-वेदनायुक्त स्थानो मे इसका लेप हितावह है। मूर्च्छा, शिरोरोग व पीनस मे स्वरस का नस्य हितकारी है। पत्रस्वरस पान से आमाशय को बल मिलता है। मूत्र एव आर्तव की प्रवृत्ति होती है। कृमि नष्ट होते हैं पत्रस्वरस मे मधु मिलाकर सेवन करने से कास, श्वास, कण्ठरोगों मे लाभ होता है। इससे बच्चों की कुकरकास में भी लाभ होता है। बच्चो के दात निकलते समय हुये अतिसार को मेटने के लिए बीज हितकारी है। बीज का शीत निर्यास प्रसव के पश्चात् की वेदनाओं को शान्त करने मे श्रेष्ठ है। साप काटने पर बीज मुख में रखकर चबाये जाते हैं। लुआब बन जाने पर आधा खा लिया जाता है और आधे को दश स्थान पर लेप किया जाता है। इसका सुगन्धित सुनहरा पीतरङ्ग उड़नशील तैल सुगन्धों (पर्फ्यूमरी) व विभिन्न पेयों में काम आता है।

(२) वन तुलसी—यह बबई तुलसी का ही एक जंगली भेद है। सुतरा आचार्य भावमिश्र ने इसका बर्बरी तुलसी के अन्तर्गत ही वर्णन किया है। यह शुष्क वातावरण में उत्पन्न होने से भिन्न नाम रूपादि वाली हो गई है। इसके पुष्प बबई से बहुत छोटे होते हैं। इस पर छोटे-छोटे खुरदरे रोम अधिक छाये रहते हैं। इसकी गन्ध बहुत तेज होती है। इसके पुष्प पत्र आदि सूखने पर शीघ्र ही चूर्ण हो जाते हैं, किन्तु बबई के पुष्प पत्रादि सूखने पर भी शीघ्र चूरा नहीं होते।

इसका क्षुप बहुशाखी, छोटा, सीधा १॥-२ फुट ऊंचा, तेज गन्ध वाला होता है। पत्र—कटावदार किनारे वाले होते हैं। पुष्प—श्वेत रङ्ग के चक्राकार गुच्छो मे आस-पास लगे हुये होते हैं, प्रत्येक गुच्छे मे प्राय. ६ पुष्प होते हैं। बीज—कुछ गुलाबी आभायुक्त काले रङ्ग के खस-खस के आकार वाले होते हैं।

भगवान् चरक ने इसका अर्जक के नाम से पदे-पदे वर्णन किया है। सुश्रुतोक्त सुरसादि गण में भी इसे पढ़ा गया है। इसका लैटिन नाम ओसिममकेनम (Ocimum Cannm) है। यह बगाल, बिहार, आसाम, मध्य प्रदेश से दक्षिण में सीलोन तक के मैदानो में एवं छोटी पहाड़ियो पर अधिक पाई जाती है। पजाब के मैदानो के सूखे प्रदेशों मे स्वयजात रूप मे पाई जाती है। यह काली व श्वेत भेद से दो प्रकार की होती है। श्वेत का वर्णन राम तुलसी के प्रसङ्ग में देखें।

सामान्य प्रयोग (बाह्य)—

१. दद्रु—वनतुलसीपत्र, चक्रमर्द, सेंधा नमक, और हरड़ को काजी तथा मट्ठे मे पीसकर तीन दिन तक लेप करें।

२. पार्श्वपीड़ा—पत्रस्वरस में अदरक स्वरस और पुष्करमूल चूर्ण मिला उष्ण कर लेप करें।

३. दन्तकृमि—पत्रस्वरस को कान मे डालने से दांतो के कृमि नष्ट होते हैं।

४. किक्किस—गर्भिणी स्त्री की छाती तथा पेट की खुजली पर बीजों को पीसकर लेप करने या मर्दन करने से लाभ होता है।

५. ज्वर—इसके पत्तो को पीस कर हाथ-पैरों पर लेप करने से ज्वर का वेग कम होता है।

६. शय्याव्रण—शुष्क पत्तो के सूक्ष्म चूर्ण का अवधूलन करना चाहिए।

७. शिरःशूल—जलते कोयलो पर इसके सूखे फूल एव काली मिर्च के चूर्ण को डालकर धूम को सूघने से शूल मिटता है।

८. आमवात—पत्र क्वाथ से पीडित स्थान का स्वेदन सुखावह है।

९. नेत्ररोग—नेत्र रोगो मे इसका पत्रस्वरस डालना लाभप्रद है। नेत्राभिष्यन्द में इसके पत्रस्वरस में मधु मिलाकर अञ्जन करना चाहिए।

१०. वृश्चिक दंश—पत्र का कल्क बनाकर दंश स्थान पर लेप करना चाहिए।

११. कर्णशूल—कान मे पत्रस्वरस डालने से कर्णशूल मिटता है। यह कर्णबाधिर्य मे भी उपयोगी है।

१२. व्रण—बीजो को पीसकर व्रणबन्धन करने से व्रण शीघ्र भर जाते हैं।

१३. अपस्मार—पत्रस्वरस मे सैन्धव मिलाकर नाक मे टपकाने से अपस्मार का वेग दूर होता है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

१. मुख दुर्गन्ध—वनतुलसी, जायफल, जावित्री, केसर, और गुड का संमिश्रण कर गोली बनाकर मुख में धारण करने से मुख की दुर्गन्ध मिटती है।

२. अतिसार—पचाङ्ग का स्वरस लाभप्रद है। पत्तों के फाण्ट जायफल का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से भी अतिसार नष्ट होता है।

३. आमातिसार—पत्रफाण्ट मे, घृत मे भुनी हुई हींग का चूर्ण और मिश्री मिलाकर सेवन करने से आमातिसार मे लाभ होता है।

४. ग्रहणी—पत्रचूर्ण मे समभाग मिश्री मिलाकर सेवन करने से ग्रहणी विकार का शमन होता है।

५. प्रवाहिका—पचाङ्ग स्वरस उपयोगी है। बीजो को पानी मे भिगोकर मिश्री या शक्कर मिलाकर सेवन करने से रक्तप्रवाहिका मिटती है।

६. छर्दि—पत्रक्वाथ पीने से छर्दि का सहार होता है।

७. मूत्रकृच्छ्—बीजों को भिगोकर उसके लुआब में मिश्री मिलाकर पीने से पेशाब खुलकर आने लगता है।

८. मूत्राघात—बीजो को रात्रि के समय ठण्डे पानी मे भिगोकर प्रात उसमे गाय का ताजा दूध २५० मि० लि० तथा मिश्री २० ग्राम मिलाकर पीने से मूत्र एव वीर्य सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं। कोष्ठ की उष्णता एव मूत्रदाह की यह श्रेष्ठ औषधि है।

९. शीतज्वर—पत्रस्वरस मे सोठ और मरिच का चूर्ण मिला सेवन करने से शीतज्वर मे लाभ होता है। पत्र और काली मिर्च को जल मे पीस मधु मिलाकर पिलाने से विषमज्वर का भय नहीं रहता है। इससे कास, श्वास मे भी लाभ होता है।

१०. अग्निमांद्य—पत्र ४ ग्राम और ५-७ कालीमिर्च को पानी मे पीस पिलाने से भूख लगने लगती है।

११. अपस्मार—इस रोग में कंठान्तर्गत कफ को निकालने के लिये इसकी जड़ का क्वाथ पिलाया जाता है।

१२. पूयमेह—पत्रस्वरस (ताजा) पिलाना चाहिए

विविध कल्पनायें—

१. क्वाथ—वनतुलसीपत्र, करज बीजो की गिरी, नीम की छाल, अपामार्ग के बीज, गिलोय और इन्द्रजौ का मिश्रित यवकुट चूर्ण का क्वाथ सिद्ध कर थोड़ा-थोड़ा बार-बार पिलाते रहने से विषूचिका मे लाभ होता है। —च० द०

२. वटी—(क) वनतुलसीपत्रस्वरस १२ ग्राम, सोंठ चूर्ण १२ ग्राम लेकर दोनो को घोट कर उसमें पुराना गुड २४ ग्राम अच्छी तरह मर्दन कर छोटे बेर के समान गोलिया बना, दिन-रात में तीन बार सेवन करने से अजीर्ण, अग्निमाद्य तथा अन्य उदर विकारो का शमन होता है। —वनौ० विशे०

(ख) वनतुलसी के पचाङ्ग के रस या पत्ररस में शिलाजीत, लोहभस्म और स्वर्णभस्म (समभाग) मर्दन कर १२० मि० ग्रा० की गोलिया बनाकर छाया में सुखाकर रख लें। इसके प्रयोग से आन्त्रिक ज्वर में विशेष लाभ होता है। १/२ से १ गोली पीस शहद मिला चटाई जाती है। इसमे ३० मि० ग्रा० मुक्ताभस्म मिलाकर देने से निरन्तर रहने वाला ज्वर उतर जाता है। यह मसूरिका, विस्फोटक, लोहितज्वर एव सब प्रकार के व्रणो मे भी लाभप्रद है। इसे इन्दुकलावटी कहते हैं। —मै० र०

३. चूर्ण (क) वनतुलसी बीज एक भाग, ईसबगोल ४ भाग दोनो मे समभाग सौंफ का चूर्ण मिला, इन तीनो के बराबर शक्कर मिलाकर चूर्ण बना लें। ८-१० ग्राम तक यह चूर्ण दुग्धानुपान से शक्ति के अनुसार सेवन करने से आन्त्रिक उष्णता समाप्त होती है।

(ख) वनतुलसीपत्र ४० ग्राम, सेंधानमक, सोंठ, कालीमिर्च व सफेद जीरा १०-१० ग्राम, कालानमक एव धनिया २०-२० ग्राम लेकर महीन चूर्ण कर, इसमे १२० ग्राम खाड मिलाकर रख लें यह क्षय में लाभप्रद है।

इस चूर्ण मे अम्लवेतस या आम्रातक तथा अनारदाना ४०-४० ग्राम मिला देने पर यह स्वादिष्ट बन जाता है। इसे ४ ग्राम तक की मात्रा में खाद्य वस्तुओ के साथ सेवन कराने से भोजन मे रुचि उत्पन्न होती है। इससे जठराग्नि भी प्रदीप्त होती है। इसके अतिरिक्त कास, श्वासकष्ट, पार्श्वशूल आदि लक्षणों का शमन कर यह चूर्ण रोगी के बल को बढाता है। यह सैन्धवादि चूर्ण के नाम से जाना जाता है।

—चरकसंहिता चि० ११

४. फाण्ट (चाय)—वनतुलसी, गोरखपान, लालचन्दन, बबूल छाल, तेजपात, बड़ी इलायची,

सौंफ, मुलहठी, गुलबनफ्सा, लौंग, दालचीनी, कालीमिर्च, सोंठ और वासापत्र का समभाग यवकुट चूर्ण कर लें। ५ ग्राम को उबलते पानी में डालें और दूध-शर्करा मिलाकर छानकर पीने से नजला जुकाम, शिर.शूल ज्वर आदि रोगों में लाभ होता है। इसे अनुपान के रूप में भी लिया जा सकता है। यह देशरक्षक औषधालय कनखल—हरिद्वार का पेटेण्ट प्रयोग है जो हिमालय हर्बल चाय के नाम से मिलता है।

अनुभूत प्रयोग—

१. एपेन्डीसाईटिस (आन्त्रपुच्छशोथ) पर सफल प्रयोग—वनतुलसी को पीसकर कल्क बनाकर लोहे की करछुली मे गरम कर (भूनकर नहीं) उस पर थोड़ा सा नमक छिड़क दें और दर्द के स्थान पर उस कल्क की टिकिया रखकर ४८ घण्टे में तीन बार बदलकर बांधें। इस बीच रोगी को आराम करना चाहिये। यह परीक्षित नुस्खा है। जिन्होंने इसको अपनाया है, पूर्ण लाभ उठाया है। मैंने कई रोगियों पर इसका प्रयोग करके शत-प्रतिशत सफलता पायी है।

—श्री विष्णकुमार जिन्दल

(कल्याण वर्ष ६५ संख्या ८)

२. कृमिजन्य शिरोरोगहर प्रयोग—जंगली तुलसी (वन तुलसी) के पत्ते और देशी तमाखू के पत्ते (दोनों छायाशुष्क) १२-१२ ग्राम, पवार के बीज ६ ग्राम और पोटासपरमेगनास (जो दवा कुओं में छोड़ी जाती है) ३७५ मि० ग्राम, इन सबका महीन चूर्ण कर रोगी को नस्य देवें, और उसे द्रोणपुष्पी (गूमा) के क्वाथ का बफारा कपड़ा उढ़ाकर देवें। समस्त कृमि झड़ जाते हैं। रोगी स्वस्थ हो जाता है।

—प० श्री कृष्णप्रसाद त्रिवेदी

(धन्व० जुलाई ५०)

३. श्वेतकुष्ठ विनाशक योग—वनतुलसी ८० ग्राम, पवार बीज ५ ग्राम, कालीजीरी ५ ग्राम, रसमाणिक्य ५ ग्राम, त्रिफला १० ग्राम, रक्तचन्दन १५ ग्राम, आरोग्यवर्धिनी वटी ५ ग्राम, खदिर अन्तर्छाल ५० ग्राम, तुलसी स्वरस (भावनार्थ)।

क्रम १ से ८ तक की महौषधियों को सूक्ष्म चूर्णित कर तुलसी स्वरस की ग्यारह भावनायें दें। अचूक महौषधि तैयार है।

मात्रा—१२५ मि० ग्राम से २५० मि० ग्राम प्रतिदिन दो बार।

अनुपान—मधु।

उपयोग—श्वेतकुष्ठ में उपयोगी योग है।

नोट—इसके सेवन काल मे खदिरारिष्ट भोजनोपरान्त १० ग्राम समभाग जल मे सेवन करने पर शीघ्रातिशीघ्र लाभ होता है। —वैद्य श्री बवरी व्यास

(सफल सिद्ध प्रयोगाक)

४. प्रदरनाशक चूर्ण—वनतुलसी के बीज, श्वेत राल, पठानीलोध २४-२४ ग्राम, चिकनी सुपारी, मोचरस, खूनखराबा, कमरकस, धाय के फूल ६०-६० ग्राम। सभी को कूट-छानकर शीशी मे रख लेवें।

प्रयोग—३-३ ग्राम सुबह-शाम दवा फाककर ऊपर से चावल का धोवन (पानी) पीवें।

गुण—हर प्रकार का प्रदर श्वेत या लाल, पीला काला इसके पीने से ठीक होता है। रक्तप्रदर मे लालचन्दन व मिश्री पीसकर दवा लेनी चाहिये।

—वैद्य श्री लक्ष्मीचन्द जमोरिया

(धन्व० दिस० ५५)

(३) **रामतुलसी**—वनतुलसी की श्वेतजाति रामतुलसी के नाम से जानी जाती है। कोई इसे ही मरुबक (मरुवा) मानते हैं किन्तु मरुवक इससे भिन्न है, जिसका आगे वर्णन किया जायेगा। इसका अंग्रेजी नाम श्रबी बेसिल (Shrubby Basil) और लैटिन नाम—ओसिमम ग्रेटिसिमम (Ocimum Gratissimum) है।

यह लंका, दक्षिण समुद्र द्वीप, नेपाल, बंगाल आदि स्थानों पर स्वयंजात होती है तथा बोई जाती है। इसके पौधे सब तुलसी भेदों से बड़े, बहुशाखायुक्त, झाड़ीदार होते हैं। काड (तना) चौकोर, रोमश होता है।

शाखायें—चूल व रोमश होती हैं।

पत्र—खुरदरे, २-४ इन्च लम्बे, दांतेदार, रोमश एवं सब तुलसी भेदो की अपेक्षा अधिक सुगन्धित होते हैं।

पुष्प—लम्बे, मंजरियो में श्वेत, पीताभ छोटे-छोटे होते हैं।

बीज—हरिताभ, पीतवर्ण, त्रिकोने, जीरे के आकार के होते हैं। वर्षा व शीत ऋतु मे इस पर पुष्प लगते हैं। शीतकाल मे बीज पक जाते हैं।

यह उत्तेजक, दीपन, मूत्रल एवं शोणित स्थापन है। कास नाशक मिश्रणो मे यह मिलाकर देने से कफ का नि.सरण होता है। यह राजयक्ष्मा मे विशेष उपयोगी है। बालको के अपचन मे इसका बीज चूर्ण मधु के साथ चटाया जाता है। आमवात, पक्षाघात आदि मे इसके पञ्चाङ्ग क्वाथ से स्वेदन करना हितकारक है। पचाङ्ग स्वरस को चारपाई मे डालने से खटमल भाग जाते हैं—

गच्छन्ति मत्कुणा सर्वे तत्पञ्चाङ्ग सुगन्धिना।

शिर.शूल, नाडीशूल मे इसके बीज उपयोगी हैं। ये बीज पौष्टिक होते हैं। वीर्यस्तम्भनार्थ बीज चूर्ण पान मे रखकर खाना हितावह है। पत्र क्वाथ भी वीर्य की निर्बलता को मिटाता है। इसकी सुगन्धित जड को पानी मे पीसकर उष्ण कर लेप करने से वेदना दूर होती है। यह वेदनाहर होने से इसी प्रकार के वेदनाशामक प्रयोगो के साथ इसे उपयोग में लाया जा सकता है।

मेजर डी० आर० थामसन ने बीजो को पारद-विषजन्य आमवात किंवा मुखपाक मे उपयोगी कहा है। बीजो का फाण्ट पूयमेह, उष्णवात मे लाभदायक है। इनमे पत्तो का स्वरस तण्डुलोदक (चावलो के पानी) के साथ भी दिया जा सकता है। अग्निमांद्य, उदरशूल, आध्मान, अर्श, यकृत्प्लीहा विकार मे पत्र-स्वरस उपयोगी कहा गया है। पत्र-स्वरस का नस्य नासादुर्गन्धि को मेटता है।

मात्रा—बीज, पत्र, क्वाथ—५०-१०० मि० लि०।
चूर्ण—१-५ ग्राम।

हानिकारक—अति मात्रा से शिर:शूल उत्पन्न हो जाता है।

निवारण—गुलबनफसा और सिकंजबीन।

(४) कपूर तुलसी—तुलसीगण की इस औषधि से कपूर निकाले जाने से इसे कपूर तुलसी कहा जाने लगा है। वनौषधि रत्नाकर के द्वितीय भाग में पृष्ठ २६२ पर भारतीय कपूर के नाम से इसका उल्लेख किया गया है।

आजकल जो तारपीन के तैल से कृत्रिम कपूर तैयार किया जाता है वह आभ्यन्तर प्रयोगो मे बहुत हानिकारक होता है। अत. औषधियों मे शुद्ध कपूर ही ग्रहण करना चाहिए। यह कपूर कपूर वृक्ष के अतिरिक्त अन्य कई क्षुपों से भी प्राप्त किया जाता है उनमे कपूर तुलसी प्रमुख है। इसका लैटिन नाम ओसिमम किलिमंण्डस्चेरिकम (Ocimum Kilima-ndscharicum) है। यह प्राकृतिक कपूर का उत्तम स्रोत है। इसके बहुवर्षीय क्षुप ४-५ फीट ऊंचे होते हैं। पुष्प मंजरी रूप मे गुच्छो मे आते हैं। भाद्रपद आश्विन मे इस पर पुष्प आते हैं। इसी समय इस पर पत्तो की अधिकता होती है। इन पत्तो से ही कपूर का निर्माण किया जाता है। कपूर निर्माण अत्यधिक सर्दी पड़ने पर ही किया जाता है क्योंकि इन दिनो मे पानी अधिक ठण्डा होने से वाष्पीकरण के समय अधिक कपूर निकलता है, अन्यथा कपूर तैल अधिक रहता है। १५ किलो शुष्क पत्तो से एक या सवा पौण्ड कपूर व कपूर तैल प्राप्त होता है। इसके पत्तो से कपूर निर्माण के समय जो अन्त मे शेष जल रहता है वह "अर्क कपूर" होता है। यह अर्क कपूर भी अजीर्ण, शूल, छर्दि आदि मे उपयोगी है।

मुख्यरूप से यह कपूर तुलसी पूर्वीय अफ्रीका के केनिया प्रदेश की वन-सम्पत्ति है। अब इसका आयुर्वेदीय निघण्टुओं मे वर्णन उपलब्ध नहीं होता है। भारत मे सर्वप्रथम इसके पौधे देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला मे लगाये गये थे। यह कपूर भी सामान्यतः कपूर की भांति ही उपयोग मे लाया जाता

है। जिन योगों मे कपूर डालने का विधान हो उनमें इसे निस्संकोच डाला जा सकता है। कर्पूर के गुण-धर्म के लिये पूर्व वर्णित कर्पूर का प्रकरण देखना चाहिए। यहा पर इस वनौषधि के पत्र प्रयोग पर कुछ प्रकाश डालना अभीष्ट है। इसके पत्तों का प्रयोग विशेषतया पाचन-क्रिया के लिये किया जाता है। यह बाह्य उपयोग में भी आते हैं। पक्व व्रण-शोथ का विदारण करने के लिये इन पत्तों को सिरके में पीसकर लेप करना चाहिए। पत्तों को पानी में पीसकर गरम कर लेप करने से श्वसनकज्वर आदि में पार्श्वशूल समाप्त होता है। पत्तो के कल्क को तिल तैल के साथ मन्दाग्नि पर पकाकर तैल सिद्ध कर लेना चाहिए। इस तैल का कर्णपूरण करने से कर्णशूल एव अभ्यङ्ग करने से अन्य वातव्याधिया दूर होती हैं।

(५) मरुबक—यह भी तुलसीकुल की ही औषधि है। हिन्दी में इसे मरुवा और अंग्रेजी मे स्वीट मार्जोरम कहते हैं। इसका लेटिन नाम—मेजोराना हार्टेन्सिस (Mozorana Hartensis) है। इसका शाखा-प्रशाखायुक्त सुगन्धित क्षुप होता है। जिसके पत्र आयताकार-लट्वाकार, दीर्घवृन्त होते हैं और पुष्प श्वेत या बैगनी गुच्छो में होते हैं। इसके बीज अण्डाकार, छोटे एव भूरे रंग के होते हैं। कश्मीर से सिक्किम तक उत्पन्न होने वाले "ओरिगेनम वलगेयर" नामक मरुवक भेद को ही आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने प्राचीन मरुवक माना है। निघन्टुग्रन्थों मे इसके गुणों के विषय में कहा गया है—

मरुवकः कफहरो रुच्यो मुखसुगन्धकृत्।
—ध० निघ०

मरुव. कटुतिक्तोष्ण. कृमिकुष्ठ विनाशनः।
विड्बन्धाध्मानशूलघ्नो मांद्यत्वग्दोषशान.॥
—रा० नि०

मरुदग्निप्रदो हृद्यस्तीक्ष्णोष्णः पित्तलो लघुः।
वृश्चिकादिविष श्लेष्मवातकुष्ठ कृमिप्रणुत्॥
कटुपाकरसो रुच्यस्तिक्तो रूक्षः सुगन्धिकः॥
—भा० प्र० नि०

चरकोक्त फणिज्जक ही मरुबक है। इसमे एक उड़नशील तैल और एक स्थिर तैल होता है। ये शिरःशूल, कर्णशूल, दन्तशूल, सन्धिशूल आदि में बाह्य प्रयोगार्थ तथा अजीर्ण मन्दाग्नि, स्थौल्य व रज कृच्छ्रता में आभ्यन्तर प्रयोगार्थ उपयोगी है। इस तैल की मात्रा २ बूद से ५ बूंद तक है। तैल के अतिरिक्त इसका पंचाङ्ग ही काम मे लिया जाता है। इसका स्वरस ५-१० मि०लि० तथा फाण्ट १०-२० मि०लि० उपयुक्त है। इसका फाण्ट विबन्ध मे लाभप्रद है।

यह रोचन, दीपन, वातानुलोमन तथा कृमिघ्न होने से अरुचि, अग्निमांद्य, आध्मान, उदरशूल व उदरकृमि में लाभप्रद कहा गया है। हृदयदौर्बल्य, ज्वर, चर्मरोग, कष्टार्तव, हिक्का, कास, श्वास आदि रोगो मे भी इसकी उपादेयता प्रसिद्ध है। सामान्यतः यह तीक्ष्ण-उष्ण होने से कफवातजन्य विकृतियों मे प्रयुक्त होता है।

इसके पचाङ्ग का शीतनिर्यास मज्जातन्तुओं की विकृति से उत्पन्न शिरःशूल को समाप्त करता है। आमवात, सन्धिवात आदि वेदनामय शोथपूर्ण व्याधियो में इसके क्वाथ से स्वेदन करना हितकारी है। वृश्चिकदंश पर इसका प्रलेप लाभदायक है। यह विषघ्न होने के अतिरिक्त शोथहर, वेदनास्थापन, दुर्गन्धनाशन व व्रणरोपण होने से व्रणो पर विशेष लाभप्रद है। इस निमित्त इसका स्वरस किंवा भस्म उपयोग मे लाई जा सकती है। व्रण को विषैला (Septic) न होने देने के लिए इसके रस के प्रयोग का निर्देश है—

शस्त्रेण दशे परिमृज्यमाणे
समुद्धृते तद्गत कण्टके च।
फणिज्झनिर्यासभृतेऽथ दंश
भवेत् प्रणाशो वरटी विषस्य॥
—राजमार्तण्ड

डा० आर० एन० खोरी के मतानुसार यह स्निग्ध एव वातशामक है। अन्यान्य कफघ्न औषधियो के साथ यह कफजन्यरोगो में व्यवहृत होता है। यह शोथ उष्णवात, मूत्रमेह आदि रोगों में उपयोगी है।

हाथ पैरों की सूजन मे इसका प्रलेप हितकारी है। इसके क्वाथ से स्नान करना एवं धूमग्रहण करना (वफारा) आमवात मे हितकारक है।

(६) **तुलसी बालंगा**—यह तुख्म बालङ्गा, तूतमलङ्गा, तोकमलङ्गा, बालङ्गा आदि नामों से भी जानी जाती है। इसका लैटिन नाम लाल्लेमेंटिया रायलियन (Lallemantia Royleana) है। तुलसी कुल की इस वनौषधि के बीज ही औषधि रूप में प्रयुक्त होते हैं। इसकी उपयुक्त मात्रा ५-७ ग्राम है। इसका आयात मुख्यतः फारस से होता है। फारस के अतिरिक्त यह बलूचिस्थान एवं भारतवर्ष मे पंजाब के मैदानो में होता है। इसके छोटे बहुशाखी क्षुप होते हैं। पत्र—साधारण तुलसी जैसे किनारे कटावदार लम्बे नोंकदार व पुष्प—तुलसी की मजरी जैसी मजरियों मे अनेक लगते हैं। बीज ईसबगोल के जैसे किन्तु काले रङ्ग के तिकोने, चिकने होते हैं। जल में भिगोने से फूलकर शीघ्र एक प्रकार के चिपचिपा पारदर्शक, स्वादरहित, भूरे लुआब से ढंक जाते हैं।

यह सौमनस्य जनन एव हृद्य होने से हृद्द्रव व हृदयदौर्बल्य में हितकारी है। पिच्छिल और शीतसग्राही होने से प्रवाहिका, रक्तातिसार मे लाभप्रद है। बीजों को भूनकर, जौकुट कर पानी मे मिला शक्कर का सम्मिश्रण कर पेय. रूप मे सेवन करने से अधिक तृष्णा का निवारण होकर शान्ति मिलती है। यह पौष्टिक भी है। मूत्रजनन एवं शामक होने से मूत्ररोगों में उपयोगी है। प्रमेह मे गोदुग्ध में मिलाकर सशर्करा सेवन किया जाता है। व्रण विद्रधि पर बीजो को जल में भिगोकर पुल्टिस बनाकर लगाने से लाभ होता है।

इसका उपयुक्त मात्रा से अधिक सेवन आमाशय के लिए हानिकारक है। दर्पविनाशार्थ (हानिनिवारणार्थ) सिता या शर्करा देनी चाहिए। इसके अभाव मे तुलसी के बीज ही लिए जाते हैं।

(७) **तुलसी मूत्रल**—तुलसी कुल का यह पौधा आसाम, बर्मा तथा दक्षिण भारत में पाया जाता है। यह पौधा १-२ फीट ऊंचा होता है। इसके पत्र आदि दमनक (दवना) के समान होते हैं। इसमें एक आर्थोस्फोनिन नामक ग्लूकोसाइड तथा प्रभावशाली तैल होता है। इसका मराठी नाम मूत्री तुलस और लैटिन नाम ओसिमम ग्रैण्डिफ्लोरम (Ocimum Grandiflorum) है। जावा टी (Java Tea) इसका अंग्रेजी नाम है।

यह मूत्र सम्बन्धी विकारों को दूर कर मूत्र खुल कर लाने के कारण मूत्रल तुलसी कही जाती है। वृक्कजन्य विकृतियां इसके प्रयोग से नष्ट होती हैं। इन विकारो में इसके पत्तो का फाण्ट बनाकर पिलाया जाता है। हालैण्ड और फ्रान्स मे इसे जननेन्द्रिय के रोगों में प्रयुक्त किया जाता है।



तेजोवती

(Zanthoxylum Alatum)

किलक अरे, मैं नेक निहारू,
इन दांतो पर मोती वारू।
पानी भर आया फूलो के मुह में आज सवेरे।
हा, गोपा का दूध जमा है, राहुल ! मुख मे तेरे।।

राष्ट्र कवि स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त के काव्य "यशोधरा" का प्रसङ्ग है—राहुल के दात निकल आये हैं, यशोधरा उन पर मोती वार देती है—इतने हैं वे सुन्दर, क्यों भला ! गोपा ने राहुल को जो दूध पिलाया है, वही तो जमकर दात बन गये। गोपा का स्नेह ही तो राहुल को इतना विकसित कर सका कि उसके मुख में मोती उग आये।

वस्तुतः सुन्दर दात मोती तुल्य ही होते हैं, वालको के दात प्राय सुन्दर ही होते हैं। वे दात गिर जाने के पश्चात् पुन दात आते हैं, उन्हें स्वच्छ चमकीला बनाये रखने के लिये उनका नियमित सम्यक् शोधन आवश्यक है। इनके शोधन के लिये दातुन एव दन्त मजनो को उपयोग मे लाया जाता है। दन्त मजन के लिये बहुत से द्रव्यों के उपयोग का विधान कहा गया है। इस निमित्त उन उपयोगी द्रव्यो में से एक द्रव्य है—तेजो-वती। तेजोवती (तेजबल) की छाल का चूर्ण तथा इसका फल (तुम्बुरु) दोनो ही मजन के लिये उपयोगी हैं। तेजोवती की ताजी पतली शाखा दातून के लिए भी लाभप्रद है। सुतरा, यह कहा जा सकता है कि—

जीवन शोभा स्वस्थ तन, तन शोभा मुख स्वच्छ।
मुख की शोभा दन्त तो, दन्त बनज से अच्छ।।

भगवान् चरक ने इसका कटुक स्कन्ध एव शिरो-विरेचनगण में उल्लेख किया है। चरकसहिता सूत्र० अ० २ में केवल तुम्बुरु का ही उल्लेख मिलता है किन्तु विमान स्थान अ० ८ में तुम्बरु एव तेजोवती दोनों का उल्लेख किया गया है। द्रव्य के प्रयोगभाग के अनुसार शिरोविरेचन के सात प्रकार निर्दिष्ट किये गये हैं। फल शिरोविरेचन मे तुम्बुरु का तथा त्वक् शिरोविरेचन में तेजोवती का उल्लेख किया है।

इसका कुल—जम्बीरकुल (रुटेसी–Rutaceae) है। भावप्रकाशनिघण्टु के हरीतक्यादि वर्ग मे तुम्बुरु एव तेजोवती दोनो का ही पृथक्-पृथक् वर्णन मिलता है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने द्रव्यगुण विज्ञान (औद्भिद औषधि द्रव्य) मे दन्त शोधन प्रकरण मे इसका विशद वर्णन किया है। इस प्रकरण मे मात्र तेजोवती का ही वर्णन किया गया है, फल (तुम्बुरु) का पृथक् वर्णन नही किया है।

चरकसहिता एव सुश्रुतसहिता के व्याख्याकार आचार्य चक्रपाणि एव डल्हणाचार्य आदि ने तेजोवती से प्राय चविका (चव्य) एवं काकमर्दनिका (ज्योतिष्मती–मालकागनी) लिया है। किन्तु चरकसहिता के कटुकस्कन्ध मे चव्य और तेजोवती का पृथक् पृथक् उल्लेख किया है अत चव्य से तेजोवती पृथक् है। तेजोह्वादि चूर्ण (च० चि० २६/९०-९१) मे तेजोह्वा (तेजोवती) और ज्योतिष्मती का भी पृथक् पाठ है अत यह सिद्ध होता है कि चव्य और ज्योतिष्मती तेजोवती से भिन्न हैं।

इस समाधान के पश्चात् एक प्रश्न यह भी उठता है कि तेजोवती और तुम्बुरु पृथक्-पृथक् है या एक ही ? आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी, ठाकुर श्री बल-वन्तसिंह, आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा, वैद्य श्री बनवारी लाल मिश्रा आदि वनौषधि विशारदो ने एक मत से यह स्वीकार किया है कि तुम्बुरु (नेपाली धनिया) तेजोवती (तेजबल) का फल है। उपर्युक्त शिरोविरेचन द्रव्यों मे तुम्बुरु के फलो का एव तेजोवती की त्वचा (छाल) के प्रयोग का विधान किया है किन्तु इस

आधार पर इनकी भिन्नता सिद्ध करना उपयुक्त नहीं क्योंकि इस प्रकरण मे अनेक द्रव्यों का पुन उल्लेख प्रयोज्याङ्ग भेद से हुआ है, जैसे हरिद्रा, शृङ्गवेर आदि के पत्र का और पुन कन्द का, अर्क के मूल का एव पुन. कन्द का उल्लेख हुआ है।

नाम—

संस्कृत—वृक्ष-तेजोवती, तेजोह्वा, तेजनी—
"तेजोह्वा तेजोवती तेजनी च" —द्र० दी० नि०

फल—तुम्बुरु, सौरभ, वनज—
"तुम्बुरु. सारज सागे वनज सानुजोऽनुज ।"
—अभि० र० मा०

हिन्दी—वृक्ष-तेजबल, फल-तुम्बुल, नेपाली धनिया।

बंगला—फल-नेपाली धने।

अरबी—फागिरा कबाबा खदा।

फारसी—कबाबा दहन कुशादा।

अंग्रेजी—टूथेक ट्री (Toothache Tree)।

(दन्तशूल की प्रशस्त औषधि होने से तेजबल को दन्तशूल वृक्ष टूथ एक ट्री नाम दिया गया है)।

लैटिन—जेन्थोक्सिलम एलाटुम (Zanthoxylum Alatum)।

प्राप्ति स्थान—हिमालय की उष्ण तराइयो मे जम्बू से भूटान तक, नागाखासिया के पर्वत पर २-६ हजार फीट की ऊचाई पर होता है। टेहरी-गढ़वाल में विशेष होता है। सइया से चकरौता के बीच सड़क के किनारे इसके छोटे-छोटे पेड मिलते हैं। तुम्बुरु का सूडान व जेरबाद से आयात विशेष होता है। आयात नेपाल से होने के कारण इसे नेपाली धनिया कहा जाता है। भारत मे इसका आयात नेपाल से तथा विदेशों मे सूडान आदि से होता है।

रासायनिक सघटन—वृक्ष की त्वचा मे बर्बेरिक, डिक्टेम्निन, मैगनोफ्लुओरिन, जेन्थोप्लेनिन, स्किमियानिन नामक क्षाराभ, उड़नशील तैल तथा राल होते हैं। फल में उड़नशील तैल पीताभ, कटुसुरभित [illegible] होता है। जिसका मुख्य घटक लाइनालूल है। पत्तियों में सुदाब तैल के समान एक सुगन्धित तैल होता है। —द्रव्यगुण विज्ञान

वानस्पतिक परिचय—इसका गुल्माकृति छोटा वृक्ष होता है। वृक्ष सघन पर्णों से आच्छादित लगभग २० फीट या इससे अधिक ऊचा होता है। इसके काण्ड और शाखाओ पर काटे होते हैं। ये काटे तीक्ष्ण, चपटे लगभग १ इच लम्बे होते है। इसकी छाल हल्की भूरी फटी हुई सी होती है। पत्रकों और पत्रनालों पर भी ये काटे होते हैं।

पत्र—१॥ इच से ८ इच लम्बे विषमपक्षवत् दो उपपत्रीय कण्टकों से युक्त होते है।

पत्रक—२-६ जोड़े, लट्वाकार, भालाकार, तीक्ष्णाग्र या लबाग्र, १-४ इच लम्बे, सरल या दन्तुर होते हैं। पत्र वृन्त और पत्र की मध्य सिरा विस्तृत सपक्ष होती है।

पुष्प—अत्यन्त छोटे, लगभग १/८-१/४ इच लम्बे, २-६ इच लम्बी सघन शीर्षस्थ या विरल कक्षीय मजरियो मे, हरित या पीतवर्ण होते हैं।

फल—बड़े धनिये के समान दिखलाई देता है। ये १/६-१/५ इच व्यास के होते हैं। यह वर्ण गोलाकार या अण्डाकार रक्ताभ भूरे रङ्ग का होता है। फलों के साथ प्राय एक छोटा वृन्त लगा रहता है। फल शीर्ष की ओर से आधार की ओर आधे हिस्से तक फटा हुआ होता है। बाह्य पृष्ठ दानेदार होता है। ये दाने तैलीय रालीय सूक्ष्म-सूक्ष्म ग्रन्थियों के कारण होते हैं। फल अन्दर से प्राय. खोखले होते हैं। कभी-कभी इनमें गोल काले चमकदार बीज फल के अन्दर स्थित एक पतली श्वेत झिल्ली से आवृत रहते हैं। बीजो के निकल जाने से यह झिल्ली सकुचित हो जाती है। फल (तुम्बुरु) मे एक तीक्ष्ण मनोरम गन्ध आती है। फल को हाथ से मसलने पर गन्ध अधिक उग्र हो जाती है।

पुष्प वर्षा ऋतु मे तथा फल शरद् ऋतु मे आते हैं। फल ही क्या, वृक्ष के सारे अवयव सुगन्धित होते हैं किन्तु फलो मे विशेष सुगन्ध आती है। सुगन्ध के-



तेजोवती (Zanthoxylum Alatum)

विभिन्न नाम : सं०—तेजोवती, तेजोह्वा । हि०—तेजबल (नेपाली धनिया) । अं०—टूथेक ट्री । लै०—जेन्थोक्सिलम एलाटुम ।

प्राप्ति स्थान : हिमालय की उष्ण घाटियों में जम्मू से भूटान तक ।

उपयोगी अङ्ग : त्वचा, फल । **दोषशमन** : वातकफशामक ।

रोगोपयोग : दन्तरोग, मुखरोग, हृदयरोग आदि ।

अतिरिक्त वृक्ष के सभी अवयव कटु होते हैं। इसकी छाल तो लालमिरच जैसी चरपरी होती है। अतएव टेहरी गढ़वाल की ओर के ग्राम वासी इसे लालमिरच के समान ही उपयोग मे लाते हैं।

इसकी लकडी भी बहुत मजबूत होती है। हरिद्वार के बाजार मे इसके छोटे-बडे गोल चिकने डडे मिलते है। बद्रीनाथ-केदारनाथ की पद-यात्रा करने वाले इन डडो को लेकर यात्रा करते हैं। औषधि घोटने के खरल के मूसल भी इसके बनते हैं।

वृक्ष से एक प्रकार का निर्यास गोद भी निकलता है।

भेद—इसकी विविध जातिया होती हैं, जिनमें मुख्य है—

(क) Z Rhetsa–तिरफल किंवा चिरफल।

(ख) Z Oxyphyllum।

(ग) Z Hamiltonianum)।

(क) तिरफल किंवा चिरफल का प्रयोग दक्षिण भारत मे किया जाता है। इसका फल असली तुम्बुरु से बड़ा (मटर के समान) किन्तु झुर्रीदार होता है तथा इसमे असली तुम्बुरु के समान वाह्य पृष्ठ पर तैलीय गोलीय ग्रन्थिया तथा अन्दर श्वेत झिल्ली नही होती है। स्वाद मे यह पहले अम्लतिक्त (नीबू के फल के वाह्यफलावरण के समान) बाद मे असली तुम्बुरु के समान तीक्ष्ण होता है। (ख-ग) दोनो जातियो के फल असली तुम्बुरु के समान होते है किन्तु इनके फल अधिकतर फलवृन्त रहित होते है तथा स्वाद मे कटु तिक्त न होकर अम्लतिक्त रस युक्त होते हैं।

—द्रव्य परीक्षा (वैद्य श्री बनवारीलाल मिश्रा)

रस—कटु, तिक्त।

चरकसहिता के विमान स्थान अ० ८ मे कटुकस्कन्ध मे तेजोवती व तुम्बुरु का तथा तिक्तस्कन्ध मे तुम्बुरु का उल्लेख किया गया है। अभिधान रत्नमाला (षड्रसनिघण्टु) के तिक्तद्रव्यस्कन्ध नामक चतुर्थस्कन्ध मे तुम्बुरु का नाम आया है।

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

प्रभाव—मुखशोधन और हृद्य।

वीर्यकालावधि—एक वर्ष।

दोषकर्म—कफ-वात शामक तथा पित्तवर्धक।

वैद्याचार्य केशव विरचित "सिद्धमन्त्र" मे कफवातघ्नवर्ग के अन्तर्गत तुम्बुरु एव तेजोवती दोनो की ही गणना की गई है।

उत्सर्ग—इसका उत्सर्ग त्वचा से होता है।

प्रयोज्य अङ्ग—त्वचा (मूल छाल) फल।

मात्रा—त्वचा, फल चूर्ण १-२ ग्राम।

त्वचा फाण्ट—१०-२० ग्राम।

गुण प्रकाशक सज्ञा—तेजोह्वा (तीक्ष्ण होने से)।

हानिप्रद—अधिक मात्रा मे तुम्बुरु शिर शूल उत्पन्न करता है।

दर्पनाशक—नीलोफल, कपूर।

प्रतिनिधि—(तुम्बुरु) कबाबचीनी।

अपमिश्रण—तुम्बुरु मे इसकी विविध जातियों की मिलावट के रूप मे या स्वतन्त्र रूप से ही प्रयोग किया जाता है। इन जातियो की पहिचान पूर्व वर्णन के अनुसार कर लेनी चाहिए। वैसे इसकी कई जातिया हैं किन्तु पीछे इसकी मुख्य जो तीन जातिया कही गई हैं जिनकी तुलना असली तुम्बुरु (फल परिचय के वर्णित) से कर लेनी चाहिए। असली तुम्बुरु से ही वाञ्छित लाभ प्राप्त किया जा सकता है, अत. इसे ही ग्रहण करना चाहिये।

गुणधर्म विवेचना—

तेजस्विनी कफ श्वास कासस्यामय वातहृत्।
पाचन्युष्णा कटुस्तिक्ता रुचि वह्नि प्रदीपिनी ॥
—भा० प्र० नि०

गण्डीरो जल पिप्पल्यस्तुम्बरु शृङ्गवेरिका।
तीक्ष्णोष्णकटुरूक्षाणि कफवातहराणि च ॥
—चरक सू० २७

तुम्बरु कटुतीक्ष्णोष्ण कफमारुतशूलजित्।
अपतन्त्रोदराध्मानक्रमिघ्नो वह्निदीपन. ॥
—प्र० नि०

तुम्बरु: कथित तिक्त कटु पाकेऽपि तत्कटु।
रूक्षोष्णं दीपन तीक्ष्ण रुच्य लघु विदाहि च ॥
वातश्लेष्माक्षिकर्णौष्ठशिरोरुग्गुरुताकृमीन् ।
कुष्ठशूलारुचि श्वासप्लीहकृच्छ्राणि नाशयेत् ॥
—भा० प्र० नि०

कटूष्णतिक्तो रुचिदोऽग्निदीप्तिदो
हितोऽक्षिकर्णोदररुक् किं गुरु.।
क्षणात् क्षिणोति श्वसनप्रभञ्जनो
कफक्रिमिप्लीहरुजोऽपि तुम्बुरु. ॥
—सि० भं० म० मा०

तुम्बरु कटुतीक्ष्णोष्ण लालास्रावि विदाहकृत्।
शस्यते कफवातघ्न मुखरोगे विशेषत ॥
—प्रि० नि०

बालको के प्रथम दात लगभग ६ मास की अवस्था मे निकलने प्रारम्भ होते है, परन्तु बीज रूप से मसूढो अन्दर इनका विवेक गर्भ के अन्दर चतुर्थ मास मे ही हो जाता है—नृणा तु चतुर्थादिषु मासेषु दन्ता निषिच्यन्ते (काश्यपसहिता)। रक्त ही परिवर्तित होकर दातों का रूप धारण करता है। धीरे-धीरे उन बीज रूप से विद्यमान दातो मे अस्थिनिर्माण प्रारम्भ होता है तथा दात आकृति धारण करते हैं। २॥ वर्ष की अवस्था तक मे दूध के दात पूरे निकल आते हैं। ये दात शिशु की ५-६ वर्ष की अवस्था तक स्वयमेव गिर जाते हैं तथा उसके बाद स्थायी दात धीरे-धीरे निकलने प्रारम्भ होते हैं, जो कि २०-२५ वर्ष की अवस्था तक पूर्ण होते हैं। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए इन दोनों की स्वच्छता अत्यावश्यक है। दन्तशोधन के लिए तेजोवती के चूर्ण का मजन करने का भी निर्देश है—

चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्तान्नित्य विशोधयेत्।
एकैकं घर्षयेद् दन्त मृदुना कूर्चकेन च ॥
—सुश्रुत० चि० २४

यह जन्तुघ्न, पूतिहर, कोथ प्रशमन और उत्तेजक होने से दातो को रोगो से बचाता है। दन्तरोगो का यदि प्रादुर्भाव हो गया हो तो इसके उपयोग से उनका भी शमन होता है। सुतरा प्राय. दन्त रोग नाशक प्रयोगो मे इसकी योजना की गई है—

तेजाह्वार्भयामेला समङ्गा कटुका घनम्।
पाठा ज्योतिष्मती लोध्र दार्वी कुष्ठ च चूर्णयेत्।
दन्ताना घर्षण रक्तस्रावकण्डूरुजापहम् ॥
—चरक चि० २६

शुण्ठीपिप्पलिमरिच कलितरुधात्रीफले नवेत्वभया।
तुल्यं सैन्धवलवण पत्तङ्ग, मदफल ग्राह्यम् ॥
सौवर्चलञ्च तुम्बुरु कर्पूर तुल्यभागिकं सर्वम्।
सर्वसम स्याद् गैरिकमेतद् दन्तास्यरोगघ्ननम् ॥
—षोडशाङ्गहृदयम्

इसके पेड की छाल का चूर्ण पेड की टहनी (तेजोवती) एव फल तुम्बुरु का मजन एव दातून के रूप मे उपयोग किया जा सकता है। दन्तरोगो मे ही नही प्राय समस्त मुखरोगो मे इसकी उपादेयता प्रसिद्ध है। कहा गया है—

गृहधूमो यवक्षार. पाठा व्योष रसाञ्जनम्।
तेजोह्वा त्रिफला लोध्र,चित्रकश्चेति चूर्णितम् ॥
सक्षौद्र धारयेदेतद्गलरोगविनाशनम् ।
कालक नाम तच्चूर्ण दन्तास्यगलरोगनुत् ॥
पिप्पल्यगुरुदार्वीत्वग्यवक्षाररसाञ्जनम् ।
पाठा तेजोवती पथ्या समभाग विचूर्णयेत् ॥
—चरक० चि० २६

यवाग्रज तेजवती सपाठा रसाञ्जन
दारुनिशा सकृष्णाम्।
क्षौद्रेण कुर्याद् गुडिका मुखेन ता
धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥
—भै० र० मुख० ७८

मुख, दन्त तथा गले के रोगों मे इसके स्वरस किंवा क्वाथ से गण्डूष करना भी हितकारी है। इस प्रकार दन्त-शोधन की प्रमुख औषधि होते हुए भी समस्त मुखरोगो मे ही उपयोगी है।

दीपन-पाचन एवं रोचन होने से आहारसंस्कारार्थ इसका फल काम मे लिया जाता है। भगवान चरक ने आहारयोगिवर्ग मे इसका उल्लेख किया है—

कारवी कुञ्चिकाजाजी यवानी धान्यतुम्बुरु ।
रोचन दीपन वातकफदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥
—च० सू० २७

कफजन्य अरोचक मे—

लोध्र तेजोवती पथ्या त्र्यूषण सयवाग्रजम् ।
—मं० र०

उक्त कर्मों के कारण इसका अग्निमाद्य, अजीर्ण, अरुचि, अर्श आदि रोगो मे हितावह है । यकृदुत्तेजक होने से यकृत्प्लीह वृद्धि एव कृमिघ्न होने से कृमिरोग को भी यह नष्ट करता है । गुल्म एव शूलरोग में श्री गोविन्ददास ने तुम्बुर्वादि चूर्ण को उपयोगी कहा है ।

यह तीक्ष्ण होने से हृदयोत्तेजक है सुतरा हृदय-दौर्बल्य की स्थिति मे इसका (फल का) उपयोग निरन्तर करते रहना चाहिए । हरी अवस्था मे (ताजे) भोजन के साथ सेवन किये जाने वाले द्रव्यो का भगवान् चरक ने हरितवर्ग मे वर्णन किया है । वृद्ध वाग्भट ने भी अष्टाङ्गसग्रह मे शाकवर्ग के अन्तर्गत कुठेरादिगण को हरितवर्ग कहा है । अष्टांगहृदयकार ने इस वर्ग के द्रव्यो को शालन (मसाले) कहा है । अष्टागसग्रह के हरितवर्ग मे तुम्बुरु भी है । अत. यह हृद्य भी है—

वर्गो. हरितकाख्योऽयमुपदशेषु युज्यते ।
वासको व्यञ्जनाना च हृद्यो रोचनदीपन ॥
—अ० स०

भोजन के साथ इसकी (तुम्बुरु की) सुगन्धित चटनी बनाकर उपयोग मे लाई जा सकती है । इसमे सेंधा नमक और भुना हुआ जीरा मिलाकर इसे अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है ।

वातहर एव नाडियों के लिये उत्तेजक होने से वातव्याधि मे भी इसका उपयोग किया जाता है । पक्षाघात, आमवात, अपतन्त्रक आदि मे इसे पथ्य के रूप मे सेवन करना चाहिए । औषधि के रूप में भी इसका चूर्ण निर्दिष्ट है ।

तुम्बुरुण्यभयाहिङ्गु पुष्करं लवणत्रयम् ।
पिबेदुष्णाम्बुना वापि शूल गुल्मापतन्त्रकी ॥
—मं० र०

कफघ्न होने से कास-श्वास मे यह उपयोगी है । चरक चि० स्थान अ० १७ एव अष्टागहृदय चि० अ० ४ मे वर्णित तेजोवत्यादि घृत कास-श्वास आदि रोगों मे उपयोगी है । कई टीकाकारो ने तेजोवती का चविका (चव्य) या ज्योतिष्मती (मालकागनी) अर्थ किया है जिसका स्पष्टीकरण पूर्व मे किया जा चुका है । प्रतिश्याय की चिकित्सा मे भी इसका उल्लेख है—

मुस्तातेजोवती पाठा कट्फल कटुका वचा ।
सर्षपा पिप्पलीमूल पिप्पल्य. सैन्धवाग्निकौ ॥
तुल्य करञ्जबीज च लवण भद्रदारु च ।
एतै. कृत कषाय तु कवलं सम्प्रयोजयेत् ॥
—सुश्रुत० उ० २४

मुस्तादिभि कृत. कषाय सान्निपातिके प्रतिश्याये हित. सर्वेषु प्रतिश्यायेषु हित इत्यन्ये ।
—डल्हण

मूत्रजनन होने से मूत्रकृच्छ्र में एवं स्वेदजनन होने से त्वचा के रोगो को नष्ट करने मे श्रेष्ठ है । मधुमेह मे इसकी छाल हितावह है एव मधुमेहजन्य तथा कुष्ठजन्य व्रणो मे महर्षि सुश्रुत ने इसकी उपादयता प्रगट की है—सुश्रुत चि० अ० ३ । इसके अतिरिक्त नाड़ीव्रण के शोधन व रोपण हेतु भी यह उपयुक्त है—

रसाञ्जन हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठानिम्बपल्लवा: ।
त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को नाड़ीव्रणापह. ॥
—सुश्रुत चि० ८

ज्वरघ्न एव कटुपौष्टिक होने से सामान्य ज्वरो में तथा सामान्य दौर्बल्य मे भी इसका प्रयोग किया जा सकता है । वातशामक होने से मूढ गर्भ के नि.सरण के पश्चात् इसको क्वाथ के रूप मे प्रयुक्त करने का भी विधान निर्दिष्ट है—

कटुकातिविषा पाठा शाकत्वाग्घिङ्गुतेजिनी: ।
तद्वच्च दोषस्यन्दाथ वेदनोपशमाय च ॥
—अ० हृ० शा० २/४२

संशोधन हेतु इसकी उपयोगिता का वर्णन पूर्व मे किया जा चुका है ।

यूनानी मत—यूनानी मत से तेजोवती-तेजबल गरम है । खांसी, बवासीर, जुकाम और दन्तशूल में

वह फायदा पहुंचाती है। कफ और वायु के रोगों में वह उपयोगी है। तेजवल के सेवन से अफीम का जहर उतर जाता है। इसके गोंद को पीसकर भुरभुराने से जखम भर जाते हैं। दन्तशूल को नष्ट करने के लिये इसकी विशेष प्रशसा की ग है।

यूनानी मत के इसके फल (तुम्बुरु) सुगन्धित, तीक्ष्ण और पौष्टिक होते हैं। अपने संकोचक गुण की वजह से यह अतिसार मे बहुत लाभ पहुंचाता है। पेट का अफरा, छाती के रोग, मस्तिष्क के रोग, पागलपन और रक्तविकार भी इसके प्रयोग से मिटते हैं। इसके सेवन से यकृत् बहुत मजबूत होता है। इससे जठराग्नि प्रबल होती है और मुख की सूजन मिटती है।

आधुनिक मत—कर्नल चौपरा के कथनानुसार यह (तुम्बुरु) सुगन्धित, पौष्टिक होने के साथ ज्वर, अग्निमाद्य तथा हैजे में यह लाभ पहुचाता है।

सामान्य प्रयोग

बाह्य प्रयोग—

१. **व्रण**—(क) जड की छाल के क्वाथ से व्रण को धोना चाहिए। इसमे व्रण का शोधन होता है।

(ख) छाल के सूक्ष्म चूर्ण को या इसके गोंद को पीसकर घाव पर बुरकने से व्रण का रोपण होता है।

२. **शिर शूल**—छाल को जल मे पीसकर मस्तक पर लेप करें।

३. **नाड़ीव्रण**—इसकी छाल, निशोथ, दन्तीमूल निम्बपत्र, मजीठ, रसाञ्जन और दारु हल्दी का कल्क कर बाधना चाहिए।

४. **भ्रम**—फल चूर्ण, कालीमिर्च के चूर्ण को नारियल के तैल मे मिलाकर ललाट एव शङ्ख प्रदेश पर लेप करने से वातज भ्रम मिटता है।

५. **कण्ठशोथ**—ताजे पत्तों को पीसकर चावल के आटे के साथ गरम कर बाधने से गले की सूजन मिटती है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

१. **दन्तशूल**—(क) छाल के चूर्ण का मजन या ताजी लकडी की दातुन करें।

(ख) फलो को चबावें या फलो को धूप मे सुखाकर सूक्ष्म चूर्णकर मजन करें। थोड़े चूर्ण को दर्द वाले दात के नीचे दबा कर रखें एव लार टपकाते रहे।

२. **अरोचक**—तेजवल (छाल), लोध्र, हरीतकी, त्रिकटु एवं यवक्षार के चूर्ण को उष्ण जल मे या मधु, तैल मे मिलाकर कवल धारण करने से कफज अरुचि नष्ट होती है।

३. **अहिफेन विष**—तेजवल के पानी मे घोटकर उस पानी को २५० मि०ली० तक बार-बार पिलावें।

४. **अजीर्ण**—(क) तेजबल का फाण्ट बनाकर सेवन करना हितकारी है।

(ख) तुम्बुरु चूर्ण को गुड में मिलाकर १२५ मि० ग्रा० की गोलिया बनाकर घृत के साथ सेवन करें।

५. **अग्निमांद्य**—तुम्बुरु को मिश्री के साथ पीसकर सेवन करने से अग्निमाद्य दूर होता है।

६. **आमवात**—(क) तेजवल का क्वाथ या चूर्ण को मधु के साथ सेवन करना उपयोगी है।

(ख) तुम्बुरु चूर्ण को भी मधु के साथ सेवन किया जा सकता है।

७ **व्रण**—तुम्बुरु खिलाना हितकारी है।

८. **पित्तातिसार**—तुम्बुरु चूर्ण को बिल्व के शर्बत मे मिलाकर चाटने से पित्तातिसार मिटता है।

९. **श्वास**—फल या बीजों को हुक्के मे रखकर धूम्रपान करना लाभदायक है।

१०. **पक्षाघात**—तेजवल (छाल) को चबाते रहने से जिह्वा की क्रिया ठीक होती है।

११. **विशूचिका**—तेजवल का क्वाथ हितावह है।

१२. **प्रतिश्याय**—तेजवल, नागरमोथा, कट्फल, पिप्पली, पिप्पलीमूल, चित्रक के क्वाथ मे सैंधानमक मिलाकर सेवन करें।

१३. कण्ठरोग—तेजवल, यवक्षार, पाठा, रसाञ्जन, दारुहरिद्र, कालीमिर्च के चूर्ण मे मधु मिलाकर गोली बनाकर मुख मे धारण करना चाहिये।

विविध कल्पना

(१) चूर्ण—(क) तेजवल, हरड, इलायची, मंजीठ, कुटकी, नागरमोथा पाठा, मालकागनी, लोध्र, दारुहरिद्रा और कूठ को समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण वनालें। इस चूर्ण का मञ्जन करने से दातो के रोग यथा—शूल, रक्तस्राव, कण्डू आदि नष्ट होकर दात स्वच्छ व स्वस्थ होते हैं। —चरक० संहिता

(ख) तुम्वुरु, हरड, हीग (भुनी हुई), पोहकरमूल, सैंधानमक, कालानमक सब समान भाग लेकर चूर्ण वनालें। इसे ३ ग्राम की मात्रा में उष्ण जल से सेवन करने पर वातज उदरशूल गुल्म और अपतन्त्रक आदि रोग नष्ट होते हैं। —भै० र०

(ग) तुम्वुरु, पीपलामूल, एरण्डमूल की छाल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, अजमोद, यवक्षार एव सैंधानमक का समभाग चूर्णकर उष्ण जल से सेवन करने पर भी कफजन्य शूल का शमन होता है। —हा० स०

(घ) तुम्वुरु, सैंधानमक, कालानमक, अजवाइन, पोहकरमूल, यवक्षार, हरीतकी, भुनी हुई हीग एव वायविडङ्ग को समभाग लेकर चूर्ण वनावें। इसमे श्वेत निशोथ चूर्ण ३ भाग मिलाकर रखले। ३ ग्राम तक गरम जल या जौ के क्वाथ के साथ सेवन करने से सब प्रकार के उदरशूल, आध्मान एव उदररोग मिटते हैं। —ध० व० वि०

(२) वटक—तेजवल की छाल का चूर्ण १ किलो लेकर उसे ८ किलो दूध मे पकावें। जब खोया हो जाय तो उसमे त्रिकटु, हरड, मोथा, वायविडङ्ग, चित्रक, पीपलामूल, अजमोद, वच, कूठ, असगन्ध, देवदारु का चूर्ण ६०-६० ग्राम एव थोडा घृत मिलाकर वटक (गोलियां) वनालें। इसे ३-६ ग्राम तक सेवन करें। घृत एव मधु का सहपान के रूप मे प्रयोग करें। इससे वात रोगो मे लाभ होता है। —भै० र०

(३) घृत—तेजवल, वडी हरड, कूठ, छोटी पीपल, कुटकी, अजवायन, पोहकरमूल, ढाक के बीज, चित्रक, कचूर, कालानमक, आवला, सेंधानमक, वेल का गूदा, तालीसपत्र, जीवन्ती, वच, १२-१२ ग्राम, हींग ३ ग्राम लेकर कल्क करें। ७६८ ग्राम घृत से चौगुना जल मिलाकर घृत सिद्ध करें। इसे वल के अनुसार ६ ग्राम से १२ ग्राम तक सेवन करने से हिक्का, श्वास, शोथ, वातजन्य अर्श, ग्रहणी, हृदयशूल तथा पार्श्वशूल आदि रोग नष्ट होते हैं। यह तेजोवत्यादि घृत है। —चरक संहिता

(४) तैल—तेजवल, वडी इलायची और नरकचूर १२५-१२५ ग्राम, लौंग, सफेद चन्दन, छरीला, छोटी इलायची, कपूर कचरी, नागरमोथा, वालछड़, ६०-६० ग्राम, कपूर ३० ग्राम, पिपरमेन्ट १२ ग्राम, तिल का तैल २·५ किलो। पहले तिल के तैल को काच के वर्तन मे डालें, फिर सब औषधिया अधकुट कर उस वर्तन मे डाल दें। वर्तन का मुख वन्द करदें। यह ध्यान रहे वर्तन मे हवा नही निकलनी चाहिए। उस वर्तन को १० दिन तक धूप में तथा रात मे ओस मे रखा रहने दे। दिन मे २-३ वार उसे हिला दिया करें। यह हिमसागर तैल सिर मे लगाने से सिर के दर्द को हटाकर दिमाग को तर रखेगा एव आखो की रोशनी वढायेगा।

(५) पारद भस्म—एक लोहे के चम्मच मे ४८ ग्राम सरसो का तैल, कोयलो की आच पर खूब गरम कर उसमे १२ ग्राम शुद्ध पारद डाल नीचे उतार कर उसे पत्थर के खरल मे डाल दें। इसी समय एक दूसरी चम्मच मे १२ ग्राम वङ्ग डाल, कोयलो की आच पर रख पिघल जाने पर उसे भी खरल मे डाल बहुत शीघ्रता के साथ अच्छी तरह घोटें। दोनो एक रूप डली के समान हो जाने पर उसे साफ कपडे से अच्छी तरह पोछ लें। फिर इसकी ताजी छाल (तेजोवती-मूलत्वक्) ३६० ग्राम की लुगदी बनाकर उसमे उक्त डली को रख, ऊपर से श्वेत कपडे की दो किलो तक कतरन लपेट कर गोला सा वना, रात्रि मे निवात स्थान पर रख उसमें आग लगा दें। दूसरे दिन खोले

का जला हुआ कपड़ा हलके हाथ से धीरे धीरे दूर कर अन्दर की भस्म को निकाल लें। इस क्रिया से वह कच्ची रह कर अलग बैठ जाती है और पारे की बताशे जैसे खिली हुई भस्म प्राप्त होगी। इसे निकाल कर सुरक्षित रखें।

सेवन विधि—एक छुहारे को बीच से से चीर कर गुठली निकाल दें, तथा १२० मि० ग्रा० पारद भस्म छुहारे में भर इस पर कच्चा सूत लपेट दें, २ किलो गौ दुग्ध में, दोलायन्त्र की विधि से पकावें। दूध रबड़ी जैसा हो जाने पर उसमें ३६ ग्राम देशी शक्कर डाल-कर उतार लें। पारद भस्म वाले छुहारे को खाकर ऊपर से वह दूध पीलें। इस प्रकार २१ दिन तक यह प्रयोग करें। जब तक प्रयोग चले स्नान, तैल, मिर्च, खटाई व नमक का परित्याग करें। घी दूध का सेवन विशेष करें। २१ दिन तक प्रयोग करने के बाद पूर्ण चन्द्रोदय या सिद्ध मकरध्वज के समान किसी पौष्टिक रसायन का सेवन कर लेने से कष्ट-साध्य नपुंसकता भी दूर हो जाती है। इसमें काम-शक्ति अत्यन्त वेगवती हो जाती है इस भस्म के सेवन के समय बाह्यप्रयोगार्थ उत्तम तिला भी प्रयुक्त करना चाहिए। —औषधि चन्द्रोदय

पेटेण्ट प्रयोगों में तेजोवती—दन्तरोगों की प्रशस्त औषधि होने से प्राय दन्तमंजनों में इसका समिश्रण किया गया है। जनहित फार्मेस्युटिकल्स (हापुड़) "हर्बल टूथ पाउडर" नाम से दन्तमंजन का निर्माण करता है जो मसूड़ों व दांतों की हर प्रकार की बीमा-रियों को दूर कर दांतों को चमकीला बनाता है। इसमें तेजोवती, बकुल (मौलश्री), त्रिकटु, सुहागा, सुपारी आदि का समिश्रण होता है। इसी प्रकार देश-रक्षक औषधालय कनखल (हरिद्वार) "दन्तमोहिनी मंजन" का निर्माण करता है। इसमें भी लवंग, पुदीना, सैन्धव, सौवर्चल, अकरकरा आदि द्रव्यों के साथ तेजोवती भी है। इस मंजन के दैनिक एवं निर-न्तर व्यवहार से पायोरिया, दन्तशूल, शीताद (स्कर्वी) आदि समस्त दन्त रोगों का शमन होता है। इसे नित्य प्रातः तथा सोते समय अंगुली से दांतों पर ५-७ मिनट तक मलना चाहिए। देशरक्षक औषधालय का ही एक और पेटेण्ट प्रयोग है—"काकोल लाजेन्जेज"। इसमें तेजबल छाल के अतिरिक्त दालचीनी, मुलहठी, टंकण, वासामूल आदि भी हैं। यह समस्त कंठरोग, कास, श्वास, मुखपाक, स्वरभेद आदि रोगों में चूसी जाती हैं। मुखपाक में शीघ्र आराम पाने के लिये है—श्री रुद्रदेव आयुर्वेद भवन का "जीभामृत पाउडर" इसमें स्वर्णगैरिक कुलिंजन, खैरसार, समुद्रफेन के साथ तुम्बुरु भी डाला जाता है। पाउडर को अंगुली से मुख में लगाया जाता है तथा गर्म पानी में मिला-कर कुल्ले किये जाते हैं।

अनुभूत योग—

१ शूलहर—तुम्बुरु २४ ग्राम, लौंग, सेंधानमक, भुना हुआ जीरा १२-१२ ग्राम, काला नमक ६ ग्राम और भूनी हींग १ ५ ग्राम लेकर अलग-अलग कूट पीस एवं कपड़छन कर एकत्र मिलाकर रख लें। ३ ग्राम की मात्रा में गरम जल के साथ ३-३ घण्टे के अन्तर से सेवन करावें। यह उदरशूल तथा शिर शूल के लिये अनुभूत योग है। औषधि जब तक दर्द बन्द न हो जारी रखनी चाहिए। —अनु० यो० भा० १

२ तेजबल और फिटकरी का चमत्कार—एक बार लाला किशोरीलाल मेरे पास आये और उन्होंने बताया कि मेरे एक रिश्तेदार लाला ज्वालाप्रसाद बहादुरगढ़ वाले को गले में दर्द निकली हुई है। डाक्टरों का इलाज बराबर चल रहा है और कोई आराम की हालत नहीं। डाक्टर चल कर देखो। मैं उसके साथ चला गया, रोगी चारपाई से उठ भी नहीं सकता था उसके चारों ओर लोग बैठे हुये थे। मैंने हालत देखकर बताया कि इसे दो दिन में पूर्ण आराम आवेगा। सब लोगों ने आश्चर्य से कहा—दो दिन में आराम! कोई जादू-मन्त्र है।

उसी समय फिटकरी की दो-दो रत्ती की तीन पुड़िया बनाकर दे दी गईं और आठ बजे प्रातः इलाज प्रारम्भ हुआ। एक पुड़िया शीतल जल से रोगी को

खिलाई गई। लगाने के लिये तेजवल की लकड़ी को हुक्के के पानी मे (जो नीचे के भाग में गन्दा पानी रहता है) घिसा गया और साथ ही पांच लौंग भी घिसी गईं। बारीक पीसकर लेप चढ़ा दिया गया। पुड़िया लेते ही उसे सर्दी लग कर तीव्र ज्वर हुआ। ज्वर तो उसे रहता ही था परन्तु बढ़ गया। बारह बजे दोपहर एक पुड़िया और दी गई लेप वही लगा रहा। दूसरी पुड़िया देने पर भी उसे सर्दी लगी और ज्वर बढ़ा। चार बजे तीसरी पुड़िया दी गई और लेप भी बदला गया, क्योंकि रात्रि मे लेप लगाना आयुर्वेद के अनुसार निषेध है। दूसरे दिन के लिये तीन पुड़िया बनाकर दी गयीं और लेप की दवा तैयार करके रख दी और बता दिया कि हुक्के का पानी मिलाकर लेप को पतला कर प्रात ४ बजे और साय चार बजे लगा देना और परसों प्रात काल मेरे पास पता देना कि क्या हाल रहा। तीसरे दिन प्रात मुझे बुलाने लाला किशोरीलाल आया उसने बताया कि ब्रद का पता ही नही कहा चली गई। सब लोगों को बहुत आश्चर्य है। रोगी प्रसन्न है, आपको बुलाया है। मैं उसके साथ गया तो देखा तो लाला ज्वाला-प्रसाद चारपाई पर बैठे थे और प्रसन्न चित्त थे। उन्होंने उठ कर मेरे पैर छूये और कहा आपके कहे अनुसार दो दिन में ही पूर्ण आराम आ गया और अब मैं ठीक हू। पहले दिन जो मनुष्य कह रहे थे कि दो दिन में आराम कैसे आ जायेगा बाबू मन्न थो नही उन्होने भी आश्चर्य किया। अब लेप की आवश्यकता तो ही नहीं, मैंने छ खुराक भुनी फिटकरी की बनाकर दी और दो दिन तक पहले की तरह पानी से लेने को कहा। फिटकरी ने तो मूत्र द्वारा गन्दे माद्दे को खारिज कर दिया। तेजवल ने ऊपर से उठे ठीक कर दिया।

तब से आज १२ वर्षों तक इसी एक रोगी ने ११० केस बद के मेरे पास भेजे, सबकी चिकित्सा फिटकरी और तेजवल से की गई। दो दिन मे पूर्ण लाभ होता है। इसके लिये कच्चा छिलका अधिक लाभ करता है। अभाव में पसारियों के मिलने वाला पक्का छिलका भी लिया जा सकता है।

—कवि० श्रीराम शर्मा

(धन्व० दिस० ५७)



त्रिवृत्

(Operculina Turpethum)

●

सांख्यदर्शन सत्व रज और तम की साम्यावस्था को प्रकृति कहता है और इसी त्रिगुणात्मिका प्रकृति का परिणाम पञ्चमहाभूत है। इन भूतों से उत्पन्न विभिन्न कार्य द्रव्यों की भांति शरीरावयव परमाणु भी पाञ्च भौतिक कार्य द्रव्य ही हैं। इनमें भी भौतिक त्रिगुण अधिक विकसित रूप में उपस्थित रहते हैं। स्थूल रूप में शरीरावयव परमाणु के आधार द्रव्य को कफ, बाह्यवस्तुओं को पाकादि क्रिया से परमाणु के अनुकूल बनाकर इसकी सत्ता के कारणभूत विभिन्न रासायनिक द्रव्य को पित्त और इस कोषाणु के क्रिया नियामक सूक्ष्म तत्व के आधार को वायु संज्ञा दी गई है। इनमें से पित्त के अन्दर पचमहाभूतान्तर्गत अग्नितत्व की प्रधानता होने से 'पित्तमेवाग्नि' अर्थात् पित्त ही अग्नि है, ऐसा कहा जाता है। इस पित्तदोष की विकृति के उपक्रमों में विरेचन को सर्वश्रेष्ठ कहा गया—"विरेचन तु सर्वोपक्रमेभ्यः पित्ते प्रधानतमं मन्यते भिषज." —च० सू० २०-१६। विरेचन करने वाले अनेक द्रव्यों में से सुखपूर्वक विरेचन कराने में "त्रिवृत् मूल" श्रेष्ठ द्रव्य है—"त्रिवृत् सुखविरेचनानां श्रेष्ठम्" —च० सू० २५-४०।

सम्प्रति पुरीषग्रह होने ही विरेचन देने की प्रथा अधिक है। परन्तु पुरीषग्रह मे यदि पित्त की तीक्ष्णता कारणभूत हो तब ही विरेचन द्रव्य का उपयोग करना चाहिये। पित्त की समता होने की स्थिति में विरेचन प्रयोग अग्निमांद्य को उत्पन्न कर देता है। पुनः-पुनः पुरीषग्रह होने का यह ही कारण है। सुतरा पित्तवृद्धिजन्य रोगों में पुरीषग्रह को समाप्त करने के लिये त्रिवृत् सर्वथा उपयोगी है। पुरीषग्रह न होने पर भी वृद्धिभूत पित्त को अधोभाग से बाहर निकालने के लिये त्रिवृत् लाभप्रद सिद्ध होती है। सशोधन की शास्त्रोक्त विधि से प्रयुक्त त्रिवृत् से ही पूर्ण लाभ की प्राप्ति होती है। पित्त की वैषम्यता से रहित पुरीषग्रह निवारणार्थ अन्य द्रव्यों को उपयोग मे लाना चाहिए। वैसे विरेचन की आवश्यकता निम्नांकित रोगों में होती है—

पित्ते विरेचनं दद्यात् आमोद्भूते गदे तथा।
उदरे च तथाध्माने कोष्ठशुद्धे विशेषत ॥
—शा० सं० उ० ख० ४/४

चरकसहिता में इसे भेदनीयगण में प्राथमिकता दी है। सुश्रुतसहिता मे श्यामादिगण एवं श्लेष्मसंशमन वर्ग के अन्तर्गत त्रिवृत का उल्लेख किया गया है। अष्टाङ्गसंग्रह एव अष्टाङ्गहृदय मे विरेचनीय गण तथा निरूहगणों में त्रिवृत् को लिखा गया है। उपजाति एवं पुष्पिताग्रा वृत्तो में हृदयकार ने कहा है—

निकुम्भकुम्भत्रिफला गवाक्षी ।
दुग्ध च मूत्रं च विरेचनानि ॥
मदनकुटजकुष्ठ देवदाली ।
मधुलवणं त्रिवृता निरूहणानि ॥
—अ० हृ० सू० १५

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह त्रिवृत् कुल (कन्वॉल्वुलेसी–Conuolvulaceae) की वनौषधि है।

भावप्रकाशनिघण्टु के गुडूच्यादि वर्ग में इसका वर्णन मिलता है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने सुख विरेचन द्रव्यों के अन्तर्गत इसका विशद वर्णन किया है।

नाम—

संस्कृत—त्रिवृत्, त्रिवृता, त्रिपुटा, त्रिवेला, त्रिभण्डी, सरला, सुवहा, सर्वानुभूति।

सर्वानुभूति. सरला त्रिपुटा त्रिवृता त्रिवृत्।
त्रिभण्डी रेचनी श्यामापालिन्द्यौ तु सुषेणिका ॥
—अमरकोष

हिन्दी—निशोथ, निसोत, पित्तोहरी।

गुजराती—निसोतर।

मराठी—निशोत्तर, तेड।

बगला—तेउडी, तेधाडी, पितारी।

पजाबी—तिरवी, चितबकुम।

सिन्धी—तिरिस्मबलु।

तामिल—शिवदै, चिवतै।

तेलगु—तेगड, पेगड।

मलयालम—चिवक, तकोलपर्थोन्न।

कन्नड—विलितिगडे।

उडिया—दुधोलोमी।

अरबी—तुर्बुद।

अग्रेजी—टर्पेथ (Turpeth), इण्डियन जालप (Indian Jalap)।

लैटिन—ओपर्क्युलिना टर्पेथम् (Operculina Turpethum)।

उत्पत्ति स्थान—भारतवर्ष म प्राय सभी प्रान्तो मे यह मिलती है। परन्तु अधिक ऊचाई (तीन हजार फीट की ऊचाई से अधिक) पर यह नही होती। आर्द्र भूमि मे यह अधिक होती है।

रासायनिक सघटन—इसकी मूलत्वक् मे १० प्रतिशत ग्लाइकोसाइडमय राल होती है। इसमे टर्पेथिन नामक एक ग्लूकोसाइड होता है, इसके कारण ही रेचन की क्रिया होती है। इसके अतिरिक्त दो और ग्लाइकोसाइड, उड़नशील तैल, पीतरजक द्रव्य (Yellow colouring Matter) आदि होते हैं। यह राल विदेशी जालप (Exogonium purge) की राल के समान कार्यकारी होता है और उसका उत्तम प्रतिनिधि है।

वानस्पतिक परिचय—

मूल रक्तानिभ [illegible] राल मत राम्रश,
वल्ली वेरिलति सुप्रभूतप्रसरा त्वा[illegible] कचिदद्रमम्।
अन्न कोटरपुष्पक सितदल वृत्त फल क्षुद्रक,
श्रेष्ठा सर्वविरेचने सुखदा वैद्यैर्मता सा त्रिवृत् ॥
— प्रि० नि०

इसकी बडी, बहुवर्षायु गहुवरलता होती है। इसका काण्ड व उससे निकलने वाली शाखाएँ त्रिकोणाकार होती हैं। इस पर लम्बाई में धारियां पाई जाती हैं। काण्ड रोमश होता है।

पत्र—२-५ इच लम्बे होते हैं। नीचे के भाग मे पाये जाने वाले पत्र ताम्बूल (पान) के समान हृदयाकार होते हैं। परन्तु ऊपर के भाग में पाये जाने वाले पत्र लम्बे व पतले होते हैं। पत्र दूरी-दूरी पर लगते हैं।

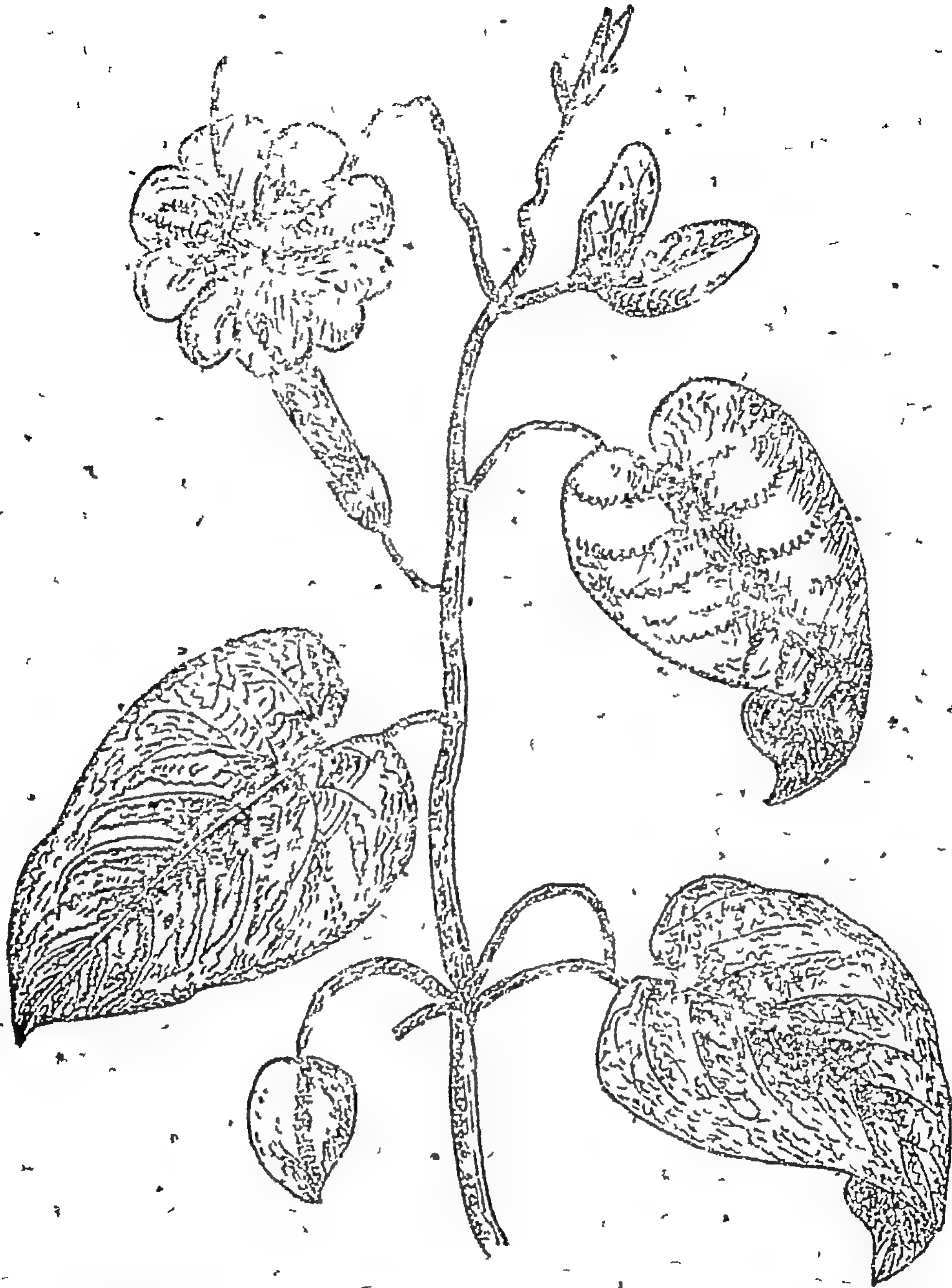
पुष्प—पुष्पमजरी १-४ इच लम्बी ३-५ शाखायुक्त होती है, जिसमे घंटिकाकार श्वेत पुष्प लगते हैं। बाह्यदल [illegible] इच लम्बे, आयताकार, प्राय. गुलाबी, कलिकायुक्त होते हैं। बहिर्दल नलिका—१॥ इच लम्बी और १॥-२ इच व्यास की होती है। परागाशय ऐंठे हुए होते हैं।

फल—ये गोलाकृति लिये हुये होते हैं। एक फल के अन्दर प्राय ४ बीज पाये जाते हैं। बीजो का रग, काला होता है। ये आकृति मे त्रिकोणाकार होते हैं। फल बीच मे फट जाता है, जिसमे गोलाकार पारदर्शक द्विकाष्ठीय अन्तर्मज्जा दीखने लगती है।

मूल—इसका मूल लम्बा व शाखायुक्त होता है। हरी अवस्था मे इसे तोडने पर दुग्धवत् एक तरल पदार्थ निकलता है। इसी मे विरेचन की शक्ति होती है। सुतरा इसके मूल का ही विशेष रूप से प्रयोग होता है।

आर्द्रावस्था मे जो दुग्धवत् तरल होता है वही सूखने पर राल की तरह जम जाता है। मूल की त्वचा पतली और आर्द्रावस्था मे सरलता से पृथक् हो जाती है। यदि मूल को चौडाई मे छेद लें तो निम्न रचना दिखलाई देती है—

१. बाह्य भाग—यह भाग बहुत पतली त्वचा वाला होता है। मृदु स्पर्श वाला होता है। इसका वर्ण कुछ रक्ताभ श्वेत होता है।



त्रिवृत् [Operculina Turpethum]

विभिन्न नाम : सं०–त्रिवृत्, त्रिवृता, सरला। हि०–निशोथ। गु०, म०–निसोतर। अ०–टर्पेथ, इण्डियन जालप। लै०–ओपर्क्युलिना टर्पेथम्।

प्राप्ति स्थान : भारत में प्राय सर्वत्र। **दोषशमन** कफपित्तहर।

रोगोपयोग : कोष्ठबद्धता, उदावर्त, अम्लपित्त, उदररोग आदि।

मुख्ययोग : अविपत्तिकर चूर्ण, त्रिवृतादि घृत, त्रिवृतादि लेह आदि।

२. मध्य भाग—इस भाग मे बहुत स्रोतस् पाये जाते हैं। इस भाग का वर्ण श्वेताभ होता है। चिकित्सा मे इसका व बाह्यभाग का ही उपयोग होता है। यह भाग इसकी आभ्यान्तर त्वचा कहलाता है।

३. अन्तः भाग—यह कठिन स्पर्श वाला काष्ठमय भाग है। चिकित्सा की दृष्टि से यह अनुपयोगी है। यह अधिक सौत्रिक व कठिन सूत्रों से बना होता है। यह गोलाकृति दिखाई देता है।

लम्बच्छेद मे भी ये ही भाग मिलते हैं। परन्तु कुछ आकार मे भेद होता है।

शुष्क हो जाने पर यह मूल रूक्ष और कठिन हो जाता है। इसके गात्र पर उपमूल के चिन्ह पाये जाते हैं।

भेद—मूलनी विरेचन द्रव्यो मे त्रिवृत् को प्रमुख कहा है। श्वेत त्रिवृत् एव श्याम त्रिवृत् दोनो का ही इनमे वर्णन मिलता है अत यह सुनिश्चित है कि त्रिवृत् के दो भेद होते हैं और विरेचन के लिए इसकी मूलत्वक् को उपयोग मे लाने का ही विधान है किन्तु बहुत से अपमिश्रणो ने इस द्रव्य को सदिग्ध द्रव्य बना दिया है, अत. विद्वानो के विचारो का अनुशीलन आवश्यक है, वे यहा पर प्रस्तुत है—

व्यवहार मे आजकल दो प्रकार की निशोथ मिलती है एक काली और दूसरी सफेद। सफेद निशोथ वस्तुत मूर्वा (Marsdenia Tenacissime) का त्वक् रहित मूल और काण्ड है। इसमे विरेचन कार्य भी नही है। काली निशोथ वास्तविक त्रिवृत् है। अत. त्रिवृत् एक ही है, उसके मूल अवस्थाभेद से दो वर्ण के बतलाये गये हैं, अत्यन्त प्रौढ़ कृष्णवर्ण तथा उससे कुछ न्यून अरुणाभ हैं। सहिताओ मे जो त्रिवृत् के साथ श्यामा वनस्पति आती है वह पृथक् औषधि है जो उसी कुल की श्याममूला कोई लता प्रतीत होती है।

—आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा
(द्रव्यगुण विज्ञान)

श्याम—काली निशोथ रेचन के लिए प्रसिद्ध है। यह लता होती है। बाजार में लता के टुकडे मिलते हैं जिनके मध्य में काष्ठ होता है। इस काष्ठ को पृथक् कर त्वचा का चूर्ण बनाकर प्रयोग किया जाता है। सम्भव है कि इसका मूल अधिक रेचक होता हो। बाजार मे जो काली व सफेद निशोथ मिलती है वह निश्चय ही मूल नही है। त्रिवृत्—सफेद निशोथ की लता है फारसी मे इसे तुरबुद कहते हैं। यह भी मूलिनी नही है।

—वैद्य श्री मदनगोपाल
(चरक रहस्य प्रकाशिका व्याख्या)

निशोथ का प्राप्ति साधन ओपेर्कूलिना टर्पेथम नामक लता है जिसके सफेद या कृष्ण ऐसे कोई प्रकार नही होते। आजकल सर्वत्र भारतीय बाजारों में सफेद निशोथ से जो औषधि मिलती है, वह सर्वथा भिन्न लता (Maradcenia Tenacissima W and A Family Arcleptadeeae) की जड एव काण्ड होती है, जो स्वाद मे अत्यन्त तिक्त होते हैं तथा इनमे रेचन गुण बिलकुल नहीं होता।

—प्रो० श्री रामसुशीलसिंह
(वनौषधि निर्देशिका)

सहिता ग्रन्थो मे वर्णित त्रिवृत् के सन्दर्भ मे सदिग्धता प्राचीन महर्षियो के तथा, आधुनिक वानस्पतिक शास्त्रियो के दृष्टिकोण के भेद के कारण उत्पन्न हुई है। आयुर्वेदज्ञो ने त्रिवृत् के भेदो का परिचायक वर्गीकरण मूलभेद तथा मूल वर्ण के आधार पर स्थापित किया। व्यावहारिक दृष्टि से यह स्थापना नितान्त वैज्ञानिक कही जाने योग्य है जबकि आधुनिक वनस्पति शास्त्रियो ने वर्गीकरण का आधार पुष्पवर्ग को रखा है। पुष्पवर्ग के आधार पर वर्गीकरण दुष्कर ही नही अपितु त्रिवृत् उत्पन्न न होने वाले प्रान्तो या क्षेत्रो मे असम्भव सा है। वनस्पति-शास्त्रियो ने जिनमे प्रमुख जे० डी० हुकर, टी० कुक, जे० एफ० दथी, चोपरा, दत्ता एण्ड मुखर्जी, जी० वाट आदि ने कुल मिलाकर त्रिवृत् कुल आईपोमिया जीनस की करीब ३०० उपजातिया वर्णित की हैं। इन सभी मे अत्यधिक रचना साम्य एव पुष्पवर्ण साम्य देखने को मिलता हैं अत सन्दिग्धता निवारण

के लिये यथार्थतः मूलवर्ण भेद ही उचित माध्यम प्रतीत होता है।—श्री वेणीमाधव अश्वनीकुमार शास्त्री (धन्व० सन्दिग्ध वनौ० अङ्क)

त्रिवृत् (निशोथ) और विधारा की लताओं में साम्यता होने से दोनों में कई बार भ्रम हो जाता है तथा बंगाल के कई स्थानों के अनजान वैद्यजन त्रिवृत् (निशोथ) को ही विधारा कहते हैं। कानपुर की ओर भी निशोथ लता के टुकड़े विधारा नाम से बिकते हैं। काशी-बनारस के बाजारों में प्रायः त्रिवृत् कुल के ही आइपोमिया पेटालायडी नामक लता विशेष के टुकड़े विधारा नाम से बेचे जाते हैं।

—आयु० सूरि श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी (धन्व० वनौ० विशे० ५)

कानपुर के बाजार में विधारा नाम से (Ipomoea Turpethum) लता की जड़ काण्ड के टुकड़े बिकते हैं। इसका संग्रह मूसानगर जि० कानपुर से किया जाता है। वास्तव में यह त्रिवृत् (निशोथ) है। —श्री रा० सु० सिंह, रा० कृ० गुप्ता (नागार्जुन १, १९६६, १-४)

निघण्टुवेत्ताओं ने इसके भेद तो दो ही किये हैं परन्तु उनके भेदों में भिन्नता है, यथा—

धन्वन्तरि	—	श्वेत, रक्त वर्ण
नरहरि	—	कृष्ण रक्त वर्ण
कैवल	—	कृष्ण, रक्त वर्ण
भावमिश्र	—	श्वेत, कृष्ण वर्ण
राजवल्लभ	—	रक्त, श्वेत वर्ण

कृष्ण त्रिवृत् का मूल श्यामवर्ण एवं श्वेत त्रिवृत् का मूल अरुणाभ श्वेत होता है, अतः श्वेत और कृष्ण ही त्रिवृत् के दो भेद किये गये हैं। वर्ण भेदों में असमानता का उल्लेख इसके पुष्प या मूल वर्ण के कारण हुआ है। वस्तुतः Operculona Turpethum ही श्वेत निशोथ है और इसका ही अधिक प्रयोग होता है। Ipomoea Turpethum इसका भी पर्याय है।

काली त्रिवृत् श्वेत् की अपेक्षा हीन गुण, तीव्र विरेचक, मूर्च्छा, दाह, मद व भ्रम आदि उपद्रवों को उत्पन्न करने वाली है, अतः चिकित्सक इसका प्रयोग नहीं करते हैं। क्वचित् कफप्रधान, उदररोग, ज्वर, शोथ, पाण्डु, व प्लीहावृद्धि में इसका सावधानीपूर्वक प्रयोग करते हैं।

रस—तिक्त, कटु, मधुर कषाया
+ + + +
गुण—रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
प्रभाव—विरेचन—
दोषकर्म—कफपित्तसंशोधन
गुणप्रकाशक संज्ञा—रेचनी, पित्तहरी
वीर्यकालावधि—२ वर्ष
प्रयोज्य अङ्ग—मूलत्वक्

मात्रा—१-३ ग्राम (क्वाथ के लिए ४-१० ग्राम) विरेचन मात्रा ३-६ ग्राम।

प्रयोग विधि—(१) कृष्ण त्रिवृत् तीव्र होने से से मूर्च्छा, दाह, भ्रम आदि उपद्रव करती है, सुतरां सावधानी से इसका प्रयोग करें।

(२) मरोड़ न हो, इसके लिए इसके साथ सोंठ, सौंफ आदि सुगन्धित द्रव्य तथा सैंधव या मिश्री मिलानी चाहिए।

(३) इसके उत्क्लेशकारक दोष के निवारण के लिए मूलत्वक् को बादाम के तैल में स्नेहाक्त कर सकते हैं। इसे हरीतकी के चूर्ण के साथ भी दे सकते हैं। अन्य प्रयोग आगे लिखे गये हैं।

(४) इसके चूर्ण को अधिक बारीक नहीं पीसना चाहिए और न कपड़े में छानना चाहिए। अधिक बारीक होने से यह आमाशय और आंतों में चिपक जाती है। हां यदि इसको माजून (अवलेह) में मिलाना हो तो इसको बारीक पीसकर उपयोग में लाना चाहिए। यह यूनानी चिकित्सकों का मत है।

(५) इसको भूनने से इसका रेचक गुण कम हो जाता है।

(६) प्रधानमूल को ही उपयोग में लेना चाहिए। छोटी शाखायें नहीं। उनके अन्दर के काष्ठ को बाहर करके त्वक् को सुखाकर इसे व्यवहार करे, यह हडवल की सम्मति है।

(७) इसे लेते समय मुख में अधिक देर तक नहीं रखना चाहिए। अधिक देर तक रखने से पर यह अरुचि, उत्क्लेशकर होती है।

(८) छोटी मात्रा में यह आमाशय एवं आन्त्र की पाचन-शक्ति को बढाती है।

(९) पित्ताधिक्य में इसे मुनक्का के क्वाथ के साथ देना हितावह है।

(१०) इसके पत्र शाक का उपयोग, अर्श रोग में होता है।

(११) इसमें कालादाने की अपेक्षा कम किन्तु रेवन्दचीनी से रेचन शक्ति अधिक है। इसके बीजों का तैल शीतल त्रिदोषहर है।

अपमिश्रण—बाजार में इसके मूल के साथ इसके काण्ड के टुकडे भी मिले हुये रहते हैं। इनमें विरेचन गुण न्यून होता है। इसके अतिरिक्त मूल केन्द्रीय काष्ठ भाग युक्त मिलता है इसमें भी विरेचन गुण न्यून होता है। अतः इन्हें मूलत्वचा से पृथक कर देना चाहिए। बाजारू निशोथ में दूधिया कलमी, गुलचांदनी (Ifsomoea Bonanox) की मूलों के टुकडे भी मिश्रित रहते हैं। निशोथ और दूधिया कलमी की लता व काण्डमूल मूल के टुकडे प्रायः समान होते हैं किन्तु निशोथ काण्ड के टुकडे त्रिधारयुक्त होते हैं। जबकि कलमी का काण्ड गोलाकार होता है।

परीक्षण—उत्तम निशोथ के दोनो छोर पर गोंद लगा रहता है। तोडने पर छाल तो खट से टूटती है, किन्तु अन्दर का काष्ठीय भाग रेशेदार टूटता है। अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर कटा तल हल्के भूरे रङ्ग का मालूम होता है। पेरेन्काइमा में इतस्ततः रेजिन-कण पाये जाते हैं। कभी-कभी इस पर कुछ गाढे रङ्ग के अनेक एक केन्द्रिक वृत्त से दिखाई पडते हैं। यह मूल की वार्षिक वृद्धि के द्योतक है। मूल में कोई विशेष गन्ध नहीं आती किन्तु मुख में कुछ समय तक रखने से उत्क्लेशकारी स्वाद का अनुभव होता है। त्रिवृत्त मूल की रेचन क्रिया उसमें पाये जाने वाले रेजिन (राल्वीयतत्त्व) के कारण होती है। अतः इसकी हीनता व उत्तमता इसी की प्रतिशत मात्रा की उपस्थिति पर निर्भर है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय उपद्रव्य अधिकतम २ प्रतिशत होना चाहिए। राल की प्रतिशत मात्रा ५ प्रतिशत होनी चाहिए, जिसका कुछ अंश ईथर में विलेय होता है।

त्रिवृत्त का चूर्ण भूरे रङ्ग का होता है। इसका जल से क्वाथ बनाने पर अरुणाभ वर्ण का क्वाथ बनता है। तैल में रक्तवर्ण का क्वाथ बनता है। घृत में इसका वर्ण श्वेतपीत होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—चरकसंहिता के अनुसार जिस दिन इसकी जड उखाडनी हो, उस दिन उपवास रख कर, संयमी व एकाग्रचित्त हो शुभ्रवस्त्र धारण कर शीतकाल के शुक्लपक्ष में उखाडें। ध्यान रहे जड वह लेनी चाहिए जो गहरी गई हुई हो, चिकनी व सरल हो। जड के टुकडे काट लें और एक पार्श्व से चीरा लेकर अन्दर का काष्ठीय भाग पृथक कर दें और छाया शुष्क कर मुख बन्द स्वच्छ पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थानों में सुरक्षित रखें।

हानिकारक—अधिक सेवन से आन्त्र के लिये तथा उष्ण प्रकृति वालों को यह हानिकारक है।

दर्पनाशक (हानिनिवारक)—बादाम तैल, कतीरा, बबूल की छाल।

प्रतिनिधि—कालादाना, सारीकून।

गुण-धर्म विवेचना—

कषाया मधुरा रूक्षा विपाके कटुका च सा।
कफपित्तप्रशमनी रौक्ष्याच्चानिलकोपनी॥

—च० क० ७/५

श्वेता त्रिवृद्रेचनी स्यात् स्वादुरुष्णा समीरहृत्।
रूक्षा पित्तज्वरश्लेष्मपित्तशोथोदरापहा॥

श्यामा त्रिवृत्ततो हीनगुणा तीव्रविरेचनी।
मूर्च्छादाहमदभ्रान्तिकण्ठोत्कर्षणकारिणी ॥
—भा० प्र० नि०

त्रिवृत्तिक्ता सरा रूक्षा स्वादुरुष्णा समीरनुत्।
कटु पाके ज्वरश्लेष्मपित्तशोफोदरापहा॥
—म० नि० नि०

त्रिवृता कटुरुष्णा च कृमिश्लेष्मोदरज्वरान्।
शोफपाण्ड्वामय प्लीहान् हन्ति श्रेष्ठा विरेचने॥
—ध० नि०

त्रिवृदुष्णा कटुस्तिक्ता रूक्षा स्वाद्वी विरेचनी।
कषाया कटुका पाके वातला कफपित्त हा॥
ज्वरशोफोद-प्लीहपाण्डुव्रण विनाशिनी॥
—कै० नि०

त्रिवृत्तिक्ता कटूष्णा च क्रमिश्लेष्मोदरार्तिजित्।
कुष्ठकडूव्रणान्हन्ति रेचनी राजनामके॥
—नि० शि०

उष्णा स्वादुरसा त्रिवृन्निगदिता तिक्ता समीरापहा।
पित्तश्लेष्मगदोदरश्वयथुजिद्रूक्षा मलक्षालिनी॥
—मि० मे० म० मा०

त्रिवृच्छ्वेता कषायोष्णा स्वाद्वी रूक्षा विरेचनी।
विपाके कटुका शोथकफपित्तोदरापहा॥
सा नैकैरौपधैर्युक्ता वातपित्तकफापहे।
गुणवैशिष्ट्यमासाद्य सर्वरोगहराभवेत्।
त्रिवृच्छ्यामा ततो हीन गुणा तीव्रविरेचनी।
मूर्च्छादाहमदभ्रान्तिकण्ठोत्कर्षणकारिणी ॥
—महौ० नि०

त्रिवृत् का मुख्य कार्य अन्नवहस्रोतस् व पुरीषवहस्रोतस् पर होना है। जीर्ण आनाह, विबन्ध, अर्श, और कामला में इसका प्रयोग करते हैं। विशेषत उदररोग, वात-रक्त, आमवात, कासश्वास और शोथरोग में रेचन के लिए इसे उपयोग मे लाया जाता है। इससे मल (पुरीष) के द्वारा दोष बाहर निकल जाते हैं। चरकसंहिता के कल्पस्थान अध्याय सात मे विरेचन कल्पो में मुख्य त्रिवृत्कल्प का वर्णन मिलता इसमें विविध त्रिवृत् के कल्पों का वर्णन किया गया है। सुश्रुतसंहिता के सूत्रस्थान अध्याय ४४ मे इसके कल्पो का विवरण प्रस्तुत किया गया है। आचार्य वाग्भट ने अ० हृ० के कल्पस्थान अध्याय २ मे विरेचनकल्प में त्रिवृत् का सर्वप्रथम वर्णन किया है। इस प्रकरण में ऋतु अनुसार विरेचन का वर्णन भी किया गया है। इसके अतिरिक्त स्निग्ध मनुष्यो के लिये तथा रूक्ष मनुष्यो के लिए पृथक्-पृथक् विरेचनकल्पो का भी वर्णन किया गया है। ऋतु अनुसार विरेचन का वर्णन अष्टाङ्ग हृदयानुसार शार्ङ्गधरसंहिता एव योगरत्नाकर मे भी हुआ है। सामान्यतया विरेचन के चार भेद किये गये हैं—अनुलोमन, स्रंसन, भेदन एव रेचन। इनमे अनुलोमन व स्रंसन मृदुविरेचन के अन्तर्गत आते है और भेदन व रेचन तीक्ष्ण विरेचन के अन्तर्गत आते हैं। त्रिवृत् को भगवान् चरक ने भेदन के अन्तर्गत कहा है तथा आचार्य शार्ङ्गधर ने रेचन के अन्तर्गत कहा है—

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत्।
रेचयत्यपि तद् ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा॥
—शा० सं० पू० खं० ४/१६

उदररोगो मे त्रिवृतादि चूर्ण, त्रिवृतादिषट्पल घृत आदि योग उपयोग में लाये जाते हैं। योगरत्नाकरकार ने त्रिवृतादि घृत का वर्णन किया है—

पयस्यष्टगुणे सर्पि. प्रस्थ स्नुक्पयस पलम्।
त्रिवृतापलकल्केन सिद्ध जठरगुल्मनुत्॥

श्रीकृष्णराम भट्ट ने उदररोगों मे उदरशुद्धि के लिए त्रिवृतादिमोदक को उपयोगी कहा है—

पथ्याधात्रीकणाङ्घ्रित्र्यूषणोपाब्दक्रिमिजिद्दलात्।
त्रिर्दन्ती सर्वत, सिन्धुगुणा श्यामा सिताष्ट पट्॥
मधुना साधु सन्नीय मोदक पलसम्मित।
शिशिरेणार्णसा जीर्णो मोदक शुद्धिमिच्छता॥
—सि० भे० म० मा०

इसके उपयोग से शरीर का द्रवांश बाहर निकल जाता है, जिससे शोथ भी कम हो जाता है। कहा गया है—

हरीतकीत्रिवृन्मूलकुलत्थैः साधु साधितः ।
क्वाथस्तु रुवुतैलाढ्यः शोफदाहोदरापहः ॥

—वैद्य मनोरमा

उदावर्त मे श्यामादिगण को हितावह कहा गया है। इसमें त्रिवृतादि गुटिका भी प्रशस्त है—

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतु पञ्चभागिका ।
गुडिका गुडतुल्यास्ता विड्विबन्धगदापह. ॥

—च० द०

आध्मानादि मे भी कोष्ठशुद्धि के लिए इसको उपयोग मे लाया जाता है—

त्रिवृद्धरीतकीश्यामा स्नुही क्षीरेण भावयेत् ।
वटिका मूत्रपीतास्ता श्रेष्ठाश्चानाहभेदिका. ॥

—च० द०

त्रिवृद्दन्ती कणामूल कणा वन्हि पल पलम् ।
सर्वतुल्यामृता शुण्ठी गुडेन सह मोदकम् ॥
कर्षार्द्धं भक्षयेन्नित्य दीप्ताग्नि कुरुते क्षणात् ।

—भै० र०

पञ्चसम चूर्ण (शा० सं०) शूल, आध्मान, अर्श, उदररोग एवं आमवात को नष्ट करने में श्रेष्ठ है। त्रिवृत् इस चूर्ण का घटक है। श्री वसवराज ने परिणामशूल मे त्रिवृतादि योग का उल्लेख किया है—

त्रिवृत्कणामया चूर्णं सगुड कोष्णवारिणा ।
जयेद्दिनमुखे सेव्य शूल च परिणामजम् ॥

अर्शोरोगाधिकार में वर्णित अग्निमुखलोह में भी त्रिवृत् की योजना की जाती है। अम्लपित्तरोगाधिकार मे वर्णित पानीयभक्तवटी में भी त्रिवृत् डाली जाती है।

पित्तजपाण्डु मे तथा कामला मे विरेचन हेतु त्रिवृत को उपयोग मे लाया जाता है—

द्विशर्कर त्रिवृच्चूर्णं पलार्द्धं पैत्तिके पिबेत् ।

—च० द०

सशर्करा कामलिना त्रिभण्डी हिता ।

—भै० र०

कामली त्रिवृता वापि त्रिफलाया रसै पिबेत् ।

ज्वर मे दोष को निकालकर शमन करने वाला योग कहा गया है—

त्रिवृद्विशालात्रिफलाकटुकारग्वधैः कृतः ।
सक्षारो भेदन क्वाथः पेयः सर्वज्वरापहः ॥

—च० द०

यो भजेत्समुश्यामां श्यामामिव मनोहराम् ।
विषमेषु व्यथास्तस्य न भवन्ति कदाचन ॥

—वैद्यकचमत्कार चिन्ता०

यह लेखन होने से मेदोवृद्धि में लाभप्रद है। यह ही तो कफजहृदयरोग में भी हितावह कही गई है—

त्रिवृत्सटीबलारास्ना शुण्ठीपथ्याः सपौष्करा ।
चूर्णिता वा श्रुता मूत्रे पातव्या कफहृद्गदे ॥

—यो० र०

उर्ध्वग रक्तपित्त में तर्पण के पश्चात् विरेचन करने का विधान है। इस निमित्त चिकित्सा मे त्रिवृतादि मोदक की व्यवस्था उपयुक्त होती है। इस मोदक के घटक निम्नांकित हैं—

त्रिवृता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु ।
मोदक सन्निपातोद्र्ध्व-रक्तपित्तज्वरापहः ॥

—च० द०

तथा च—

त्रिवृच्छ्यामाकषायेण कल्केण च शर्करम् ।
साधयेद्विधिवल्लेह लिह्यात् पाणितलं तत. ॥

—अ० हृ० चि० २/४

अन्य रोगों की भांति शिर कम्प में भी यदि कोष्ठबद्धता हो तो त्रिवृतादि क्वाथ किंवा दन्तीघृतः आदि रेचन प्रयोग हितावह है—

त्रिवृता स्वर्णपत्री च मधुयष्टि घन बलाम् ।
द्वे निशे कटुकां चैव त्रिफलां विश्वभेषजम् ॥
कषायमेभिर्मिलितैः विधिवत् परिकल्प्य च ।
पाययेदातुर विज्ञ. शिर.कम्पविनाशनम् ॥

—भै० र०

कुष्ठरोगों मे विरेचन की प्रमुखता होनी चाहिए—"विरेचन चाग्रे"। चरकचतुरानन चक्रपाणिदत्त इस विषय में लिखते हैं कि—"कोष्ठे शुद्धे रक्ते प्रवाहते च स्नेहस्य पान ज्ञेयम्। अशुद्धकोष्ठस्य स्नेहपान व्याधिवर्द्धन भवति। उक्तं हि—"शेषदोषे व्याधिरतिवर्धते"

इति । शोधनेनतु निःशेषीकृते दोषे सशेषदोषता नास्ति ।" विरेचन के लिए त्रिवृता को प्राथमिकता देते हुए भगवान् चरक कहते हैं कि—

कृष्णेषु त्रिवृता दन्ती त्रिफला च विरेचने शस्ता ।
—च० चि० ७।४४

वृद्धिरोग में विरेचन आवश्यक होता है—
विरेचन बस्तिकर्म स्वेदकर्म तथा भिषक् ।
वृद्धान्त्रगदे धीरो विविच्य परिकल्पयेत् ॥

सुतरां त्रिवृतादिघृत की योजना हितावह कही गई है। यह त्रिवृतादिघृत आन्त्र रोगों के अतिरिक्त प्रमेह, श्वास, कुष्ठ, अर्श, कामला, पाण्डु, हलीमक, भगन्दर, अर्बुद, विद्रधि, व्रणशोथ आदि रोगों में भी कोष्ठशुद्धि के लिए हितावह है।

सुश्रुत संहिता के सर्पदष्ट विष चिकित्सित नामक अध्याय में महाप्रभाव महागद का वर्णन किया गया है। इस अगद की त्रिवृता प्रथम औषधि है। यह पान, अञ्जन, नस्य रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है—

एषोऽगदो हन्ति विषं प्रयुक्तः
पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्ययोगैः ।
अवार्यवीर्यो विषवेगहन्ता
महागदो नाम महाप्रभावः ॥
—सु० क० ५।६२

शल्यतन्त्र में व्रण के षष्टि उपक्रमों का विशद वर्णन किया गया है। इसमें प्रारम्भ के द्वादश पूर्वकर्म और अष्ट प्रधानकर्म तथा शेष पश्चात् कर्म कहे गये हैं। पूर्वकर्मों में अन्तिम विरेचन है, जिसके लिए त्रिवृत् किंवा त्रिवृत् कल्पों को उपयोग में लाया जा सकता है। पश्चात् कर्म के अन्तर्गत व्रण के शोधन-रोपण हेतु जो वर्ति, कल्क, उत्सादन आदि किये जाते हैं, उनमें भी त्रिवृत् को उपयोगी पाया गया है। उदाहरणस्वरूप सुश्रुतसंहिता के सूत्रस्थान अध्याय ३७ में जो अजगन्धादि वर्ति द्रव्य कहे हैं उनमे त्रिवृता का भी उल्लेख है। इन द्रव्यों से सूत्र वर्ति को लिप्त कर व्रण में रखा जाता है, जिससे व्रण का पूर्णतया शोधन होकर शीघ्र रोपण होने लगता है। इसी प्रकार भगन्दर चिकित्सा प्रकरण मे उत्सादन कल्कादि उपक्रमो में त्रिवृत् की योजना की गई है—

त्रिवृत्तिला नागदन्ती मञ्जिष्ठा पयसा सह ।
उत्सादनं भवेदेतत् सैन्धवक्षौद्र संयुतम् ॥
रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठानिम्बपल्लवाः ।
त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को नाडी व्रणापहः ॥
कुष्ठं त्रिवृत्तिला दन्ती मागध्यः सैंधवं मधु ।
रजनी त्रिफला तुत्थं हितं स्याद्व्रणशोधनम् ॥
—सु० स० चि० ८

इसी प्रकरण मे त्रिवृतादि तैल का भी वर्णन मिलता है—

त्रिवृद्दन्तीहरिद्रार्कमूलं लोहाश्वमारकौ ।
विडङ्गसारं त्रिफला स्नुह्यर्कपयसी मधु ॥
मधूच्छिष्टसमायुतैस्तैलमेतधिपाचयेत् ।
भगन्दरविनाशार्थमेतद् योज्यं विशेषतः ॥
—सु० स० चि० ८

यह भेदन, रेचन, लेखन, शोथहर होने से विद्रधि, ग्रन्थि, अर्बुद आदि रोगों मे भी उपयोगी है। आचार्य वाग्भट ने भी इन रोगों मे इसका बाह्याभ्यन्तर उपयोग का निर्देश दिया है।

ऐसे बहुत से रोगों में प्रातः स्मरणीय गुरूणां गुरु आयुर्वेदमार्तण्ड स्वामी श्री लक्ष्मीराम जी महाराज जिस क्वाथ को पौनःपुन्येन उपयोग मे लाते थे, उसको लिखना समीचीन समझता हूं—

त्रायन्ती त्रिफला निम्बं कटुका मधुकं समम् ।
त्रिवृत्पटोलमूलाभ्यां चत्वारोंशाः पृथक् पृथक् ॥
मसूरान्निस्तुषान्प्राऽष्टौ तत्क्वाथः सघृतो जयेत् ।
विद्रधिगुल्म वीसर्पदाहमोहमदज्वरान् ।
तृण्मूर्च्छाछर्दिहृद्रोगपित्तासृक्कुष्ठकामला ॥

इस क्वाथ का त्रिवृत् भी घटक है। इस क्वाथ मे ४ रत्ती (५०० मि०ग्रा०), यवक्षार डालकर उक्त रोगो मे सेवन कराकर वे कई रोगियों को लाभान्वित करते थे। यह प्रयोग कैन्सर रोग मे लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

विरेचन औषधि देने से पहले यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि विरेचन निम्नाङ्कित स्थितियों मे देना चाहिए—

१ मलावरोध कम करने के लिए तथा आंतो से मल निकालने के लिए।

२. शोथ कम करने के लिए तथा शरीर से जलीयांश कम करने के लिये।

३ रक्तचाप कम करने के लिए।

४, ज्वर आदि कई रोग दूर करने के लिए।

५ शरीर से विष निकालने के लिए तथा खातो के विषाक्त प्रभाव को घटाने के लिए।

—औषध विज्ञान शास्त्र

संस्थान की दृष्टि से निम्नाङ्कित रोगो में विरेचन कर्म उपयुक्त होता है—

शिर तथा इन्द्रिया—शिरःशूल, नेत्रदाह, नेत्राभिष्यन्द, नेत्रस्राव, नेत्रपाक, काच, तिमिर, नासादाह, नासास्राव, कर्णदाह, मुखदाह, अपस्मार, उन्माद।

श्वसनसंस्थान—श्वास, कास, पार्श्वशूल, उर्ध्वग रक्तपित्त।

महास्रोत—अरोचक, अविपाक, अलसक, उदर रोग, प्लीहोदर, कृमिरोग, गुल्म, गुददाह, वमन, हृल्लास, पक्वाशय, रुजा, भगन्दर, विबन्ध, विसूची, अर्श, उदावर्त।

मूत्रप्रजननसंस्थान—शोथ, योनिरोग, रेतोदोष, मेढ्रदाह, मूत्राघात, प्रमेह।

रक्तसंस्थान, त्वचा—कुष्ठ, नीलिका, व्यङ्ग, शोथ, श्लीपद, पाण्डु, कामला, हलीमक, वातरक्त, विद्रधि, विसर्प, विस्फोट, दुष्टव्रण, हृद्रोग।

आन्त्ररोग—अपची, अर्बुद, गरदोष, गलगन्ड, ग्रन्थि, ज्वर, अघ्न, शस्त्रक्षत, अग्निदग्ध, स्तन्यदोष आदि।

सुश्रुत ने आनाह को भी विरेच्य माना है जबकि आध्मानं अविरेच्य है। आध्मान मे विरेचन आनाह करके प्राणनाश की स्थिति उत्पन्न करता है। यह चरक द्वारा लिखा जा चुका है।

—वृद्धो के रोग तथा वृद्धावस्था का प्रतीकार

वमन, विरेचन, निरुह, अनुवासन और नस्य पंचकर्म कहे गये हैं। इनसे पूर्व स्नेहन, स्वेदन और पश्चात् संसर्जन कर्म किया जाता है। शरीर शोधनार्थ इनका विशेष महत्व है। इसमें विरेचन हेतु निशोथ के उपयोग का वर्णन मिलता है। किन्तु इसका पूर्वज्ञान प्राप्त करने के लिए एतद् विषयक प्रकरणों का ज्ञान अत्यावश्यक है।

स्नेहन, स्वेदन और वमन कम जिसने किये हों, उसी को विरेचन देना चाहिए अन्यथा ग्रहणी रोग उत्पन्न होने का भय रहता है। वमन की औषधि देने के पश्चात् पुन. स्नेहन और स्वेदन सपादित करने के पश्चात् ही विरेचन देना चाहिए। जिस दिन विरेचन देना हो उसकी पहली रात्रि मे लघु आहार दें और अम्लफल खिला, ऊपर से गरम जल पिला दें, जिससे प्रात. कफ नष्ट हो जाय अर्थात् उदर मे आ जाय। फिर रोगी को विरेचन औषधि देनी चाहिए। स्नेहन, स्वेदन, वमन आदि क्रियायें करने से दोष पक्वाशय मे आ जाता है और तब तक विरेचन लेने से सब दोष सुखपूर्वक निकल जाते हैं। विरेचन आमाशय के पित्त का शोधन कर सभी पित्तो का शमन करता है। जैसे अग्नि से तपे हुये घर को शान्त करने के लिये अग्नि को शान्त करना होता है और अग्नि शान्त होने पर घर की गरमी स्वयं शान्त होती है, वैसे ही आमाशयस्थ पित्त शमन से सभी पित्तों का शमन होता है।

भगवान चरक ने पक्वाशयगत दोषों को बाहर निकालने के लिए जो द्रव्य कहे हैं उनमे त्रिवृत् को प्रथमिकता दी है—

त्रिवृत त्रिफला दन्ती नीलिनी सप्तला व चामू।
कम्पिल्लक यवाक्षीं च क्षीरनीमुदकीर्यकाम्॥
पीलून्तारग्वध द्राक्षां द्रवन्ती निचुलानि।
पक्वाशयगते दोषे विरेकार्थं प्रयोजयेत्॥

—च० सं० सू० २।७८

सामान्यतया अधिक पित्त वाले रोगी को मृदु विरेचन, कफ वाले को मध्यम और वात प्रकृति वाले को तीव्र विरेचन देना पड़ता है। त्रिवृत् का उपयोग पित्त व कफ प्रकृति वाले के लिये किंवा मृदु विरेचन व मध्य विरेचन हेतु किया जाना चाहिए। मृदु मध्यम विरेचन हेतु रस की मात्रा मे न्यूनाधिक्य किया जाता है। दोषों के अनुसार भी इसकी मात्रा एव संमिश्रण पर विचार करना आवश्यक है। अन्य द्रव्यो से इसे सभी दोषो की वृद्धि मे दिया जा सकता है—

पित्त या पित्तप्रधान दोषों मे—त्रिवृत् चूर्ण और द्राक्षा क्वाथ का प्रयोग करें। ईख के पदार्थों के साथ, मधुर रसो के साथ या दूध के साथ भी त्रिवृत् का चूर्ण उपयोग मे लाया जा सकता है। सामान्यतया पित्तदोष मे मधुर शीत द्रव्यों के साथ त्रिवृत् का उपयोग किया जाना चहिए।

कफ या कफप्रधान दोषों मे—त्रिवित् चूर्ण को त्रिफला क्वाथ में त्रिकटु व गोमूत्र मिलाकर सेवन करना हितकर है।

वात या वातप्रधान दोषों में—अन्य विरेचन द्रव्य के रस या क्वाथ की भावना दिये त्रिवृत् चूर्ण को सैन्धव व शुण्ठी चूर्ण के साथ सेवन करें। इन तीनो द्रव्यों के मिश्रित चूर्ण का अनुपान अम्लरस (काजी) होना चाहिए।

भगवान् चरक ने श्यामा और त्रिवृत् के ११० योग (च० सं० क० ७) कहे है। ये योग इस प्रकार हैं—

१. अम्लादि मिश्र विरेचन योग	— ६
२. सैन्धवादि के साथ विरेचन योग	—१२
३. गोमूत्र के विरेचन योग	—१८
४. यष्टिमधु के साथ विरेचन योग	— २
५. जीवकादि के साथ विरेचन योग	—१४
६. क्षीर आदि के साथ विरेचन योग	— ७
७. लेह योग	— ८
८. सिता के साथ विरेचन योग	— ४
९. पानकादि के योग	— ५
१०. ऋत्वनुकूल विरेचन योग	— ६
११. मोदक के योग	— ५
१२ घृत योग	— ४
१३. तर्पणयोग	— २
१४ मद्ययोग	— २
१५. काञ्जिकयोग	— २
१६. षाड्वादियोग	—१०
योग	११०

इनमे से कुछ योग आगे लिखे जायेंगे। यहां पर ऋतु अनुसार विरेचन योग को लिख देना उपयुक्त समझता हू—

१. वर्षाऋतु मे विरेचन कराना उपयुक्त हो तो त्रिवृत्, इन्द्रयव, पिप्पली, शुठी चूर्ण मधु के साथ द्राक्षा रस मे मिलाकर या भावित कर दें।

२ शरद्ऋतु मे त्रिवृत्, दुरालभा, मोथा, खाड़, नेत्रवाला, लालचन्दन, मुलहठी, सातला इन्हें एकत्र कर द्राक्षासव के साथ पिलावें।

३. हेमन्तऋतु मे त्रिवृत्, चित्रक, पाठा, सफेद जीरा, सरल, वचा, स्वर्णक्षीरीमूल के चूर्ण को उष्ण-जल के साथ देवें।

४ ग्रीष्मऋतु मे त्रिवृत् और शर्करा समभाग मिलाकर दे।

५. शिशिर और वसन्तऋतु मे तथा सभी ऋतुओ में नीचे के दो योग प्रशस्त हैं—

(क) त्रिवृत्, जयन्ती, हपुषा, सातला, कुटकी, स्वर्णक्षीरी इनके चूर्ण को गोमूत्र की भावना देकर सुखा लें। यह चूर्ण सभी ऋतु मे बरतें।

(ख) त्रिवृत्, श्यामा त्रिवृत्, दुरालभा, इन्द्रयव, गजपिप्पली, नीलिनी, त्रिफला, मोथा, कुटकी चूर्ण घृत, मासरस या गरम जल मे मिलाकर दें।

चक्रपाणि के अनुसार हेमन्तऋतु मे यद्यपि शीत के अत्यधिक होने से विरेचन उपयुक्त नही हैं, तथापि आवश्यकता होने पर उक्त हेमन्त प्रयोग दिया जा सकता है। वही योग शिशिर मे भी प्रयुक्त हो सकता है अथवा शिशिर मे सर्व ऋतुओ का योग देवें। वसन्त

में वमन कर्म करना श्रेष्ठ होता है अत. इस समय विरेचन नहीं कराया जाता है। फिर भी यदि आवश्यकता ही समझी जाय तो उक्त सर्वर्तुक योग दिया जा सकता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे मे गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। कफ की बीमारी को नष्ट करती है। यह शरीर में जमे हुए कफ को पतला कर दस्त की राह से निकाल देती है। आमाशय की खराबी से जो खांसी होती है वह इसके सेवन से मिट जाती है। फालिज, लकवा और सन्धिवात म यह मुफीद है। मिर्गी और पागलपन मे इसे काबुली हर्र के साथ देनी चाहिये। गाढ़े और जमे हुए कफ को निकालने के लिये इसे सोंठ के साथ देनी चाहिए।

हकीम अब्बुकासम का मत है कि निशोथ को थोड़े थूहर के दूध मे तर कर सुखाकर जलोदर वाले रोगी को देने स लाभ होता है। कई ताकतवर आदमियों को यह प्रयोग दिया गया और उनका जलोदर जाता रहा, लेकिन यह प्रयोग कमजोर आदमियो को नहीं देना चाहिये। क्योंकि इससे बहुत जोर के दस्त लगते है।

नव्य मत—आर. एन. खोरी के कथनानुसार निशोथमूल विरेचक है। यह अकेले या अन्य औषधियों के साथ रेचनार्थ व्यवहृत होती है। हरीतकी के साथ यह आमवात, पक्षाघात, विमर्शात्मक मनोविकार, वातशोथ एवं कुष्ठरोगो मे हितकर है। जलापा की अपेक्षा इसमें रेचनी शक्ति तीव्रतर है।

डा० वामन गणेश देसाई ने रेचन के लिए Purgative और भेदन के लिए Drastic Purgative शब्दो का प्रयोग किया है। यह निशोथ उनके अनुसार भेदन (Drastic Purgative) कही गई है। शरीर से पिण्डित मलो को बद्ध या अबद्ध रूप में (मुलायम करके या पतला करके) जो निकाले उसे भेदन कहते हैं। निशोथ से पेट मे मरोड़ होकर पीले दस्त आते हैं। कई व्यक्ति इसे रेचन (Purgative) मानते हैं। वस्तुत. अधिक मात्रा में यह तीव्र विरेचक है।

सामान्य बाह्य प्रयोग—

१. भगन्दर—निशोथ, तिल, दन्तीमूल, सैन्धव, चूर्ण को मधु व घृत के साथ मिलाकर व्रण का पूरण कर बन्धन करने से व्रण का शोधनरोपण होता है।

२. नाड़ीव्रण—(क) निशोथ, तिल, कूठ, दन्तीमूल, पिप्पली, सैन्धव, हरिद्रा, त्रिफला, घृत व मधु का कल्क कर बांधने से व्रण का शोधन होता है।

(ख) निशोथ, तेजबल, दन्तीमूल, रसांजन, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, मजीठ, और नीमपत्र का कल्क नाड़ीव्रण का रोपण करने मे श्रेष्ठ कहा गया है।

३. व्रण—निशोथ, दन्तीमूल, कलिहारी की जड़ और सेंधानमक समभाग का महीन चूर्ण कर शहद में मिला उसमे स्वच्छ महीन कपड़े की बत्ती भिगोकर व्रण के भीतर रखने से सन्धि और मर्म स्थानों के छोटे मुख वाले व्रण शुद्ध हो जाते हैं।

आभ्यन्तरीय प्रयोग

त्रिवृत् के सामान्य विरेचन प्रयोग—

१. त्रिवृत्, सैन्धव, पिप्पली चूर्ण देवें। अनुपान—उष्ण जल।

२. त्रिवृत् और द्राक्षा चूर्ण देवें।

३. त्रिवृत्, द्राक्षा, हरीतकी क्वाथ गोमूत्र के साथ पिलावें।

४. त्रिवृत् व त्रिकटु चूर्ण घृत के साथ देवें।

५. त्रिवृत् व सनाय का चूर्ण भी दिया जा सकता है।

६. त्रिवृत् चूर्ण मे आधा भाग सोंठ चूर्ण मिलाकर देना लाभप्रद है।

७. त्रिवृत्, हरीतकी, विडङ्ग, सैन्धव, सोंठ, मरिच चूर्ण गोमूत्र के साथ देना भी हितकारी है।

८. त्रिवृत्, दालचीनी, तेजपात, और कालीमिर्च समभाग लेकर खांड व शहद मिलाकर सेवन करने से, सुखपूर्वक विरेचन होता है। यह योग सुकुमार व्यक्तियों के लिये उत्तम है।

९ त्रिवृत् २ ५ ग्राम को पानी में पीसकर उसमें थोड़ी सोंठ और सेंधानमक मिलाकर या शक्कर व

कालीमिर्च मिलाकर सुखोष्ण पानी में मिलाकर छानकर देने से सरलता से २-४ दस्त हो जाते हैं।

१०. मिश्री या शर्करा ५० ग्राम में जल मिलाकर चाशनी बनावें, फिर उसमें निशोथ चूर्ण ५० ग्राम मिलाकर ठंडा हो जाने पर उसमें १६० ग्राम शहद मिलाकर उचित मात्रानुसार सेवन करावें। यह पित्त नाशक विरेचन योग है।

११. ईख के टुकड़े को खड़ा चीरकर उसके बीच में त्रिवृत् के कल्क का लेप कर डोरे से बांधकर पुटपाक विधि से उसे ठीक पकाकर ठंडा हो जाने पर रस निचोड़कर पिलाते रहने से भी पित्त प्रकोपज रोगों की विरेचन होकर शान्ति होती है।

१२ त्रिवृत् चूर्ण, गिलोय, नीम और त्रिफला क्वाथ में त्रिकटु व गोमूत्र मिलाकर देने से भी विरेचन होता है। यह कफ वृद्धि में उपयोगी है।

१३. त्रिवृत्, विधारा, यवक्षार, सोंठ और पिप्पली चूर्ण मधु से चाटना भी कफ विकारों के लिए श्रेष्ठ विरेचन है।

१४ सामान्य मलावरोध को दूर करने के लिए त्रिवृत् चूर्ण में समभाग शक्कर मिलाकर ४-६ ग्राम की मात्रा में दूध या सुखोष्ण जल के साथ प्रात. सेवन कराना हितकारी है।

१५ मुलहठी के चूर्ण के साथ भी इसका चूर्ण सेवन करना हितकारी है।

१६ त्रिवृत् चूर्ण को अजमोद, वंशलोचन, विदारीकन्द, शर्करा के साथ मिलाकर घृत व मधु मिलाकर चटाना भी हितकरी है।

१७. दालचीनी, छोटी इलायची के साथ त्रिवृत् मिलाकर, दाडिमस्वरस और सत्तू के साथ तर्पणमय बनाकर विरेचनार्थ पिलावें।

१८. त्रिवृत्, नीली, खांड के साथ दाडिम और सत्तू मिलाकर तर्पण बनाकर विरेचन करावें। यह अग्निबलयुक्त तथा सुकुमार आतुरों में अच्छा विरेचन है।

उक्त योगों में चिकित्सक जिसे उपयोगी समझें, उसे उपयोग में लावें। उपयोग से पहले दोष, देश, काल, सात्म्य, अग्नि, सत्व, वय व बल आदि की सम्यक् परीक्षा कर लेनी आवश्यक है।

अन्य प्रयोग—

१. अम्लपित्त—निशोथ चूर्ण को सेंहुड की भावना दें। गोली-गोली ३ ग्राम की मात्रा में उष्ण जल के साथ दें। इससे विरेचन होकर दोष निकल जाने से रोग में लाभ होता है। किन्तु निर्बल रोगी को यह नहीं देना चाहिए।

२. उदावर्त—निशोथ ८० ग्राम, पिप्पली २० ग्राम दोनों का चूर्ण कर उसमें ८० ग्राम शर्करा मिलाकर रखें। ३-६ ग्राम तक चूर्ण शहद के साथ भोजन के पूर्व सेवन करने से विबन्ध, उदावर्त व पित्तकफज रोगों में लाभ होता है।

३. उदररोग—(क) निशोथ, चित्रक चूर्ण गोमूत्र से देना हितकारी है।

(ख) निशोथ, पिप्पली, शर्करा चूर्ण को मधु के साथ दें।

(ग) निशोथ, विडङ्ग, पुनर्नवा, चित्रक चूर्ण को दुग्ध के साथ दें।

(घ) निशोथ कल्क को दूध में मिलाकर देने से भी विकृत पित्त निकल जाने से उदररोग मिटता है। यह पित्तोदर में उपयोगी है।

(ङ) निशोथ, गिलोय और त्रिकटु का क्वाथ जलोदर रोगी के लिये लाभप्रद है। इसमे दुग्धाहार पर ही रोगी को रखना चाहिये।

४. शोथ—(क) निशोथ व त्रिफला का क्वाथ सेवन कराना हितकर है।

(ख) निशोथ, मरिच, पिप्पली, सोंठ, चित्रक को दूध में पकाकर सेवन करने से भी शोथ का शमन होता है।

५. पाण्डु—(क) निशोथ चूर्ण में दुगनी शर्करा मिलाकर सेवन करें।

(ख) निशोथ से आधा भाग गोखरू लेकर चूर्ण बना लें। एक-एक ग्राम चूर्ण दिन में २-३ बार सेवन करने से भी पाण्डु का क्षय होता है। इसका अनुपान गरम जल देना चाहिये।

६. वातरक्त—(क) निशोथ चूर्ण को धारोष्ण दूध के साथ पिलावें।

(ख) निशोथ, विदारीकन्द और तालमखाने का क्वाथ भी वातरक्त मे हितावह है।

७. विषम ज्वर—(क) निशोथ चूर्ण मे थोडा सोंठ चूर्ण मिलाकर सेवन करने से जीर्ण विषमज्वर शान्त होता है।

(ख) निशोथ चूर्ण को मधु से चाटना भी लाभप्रद है।

(ग) निशोथ, सोंठ, लोग, धनिया चर्ण सुखोष्ण जल से सेवन करने से विषमज्वर, अजीर्ण, अग्निमाद्य, श्वास आदि रोग नष्ट होते हैं।

८. दुर्जलजनित ज्वर—निशोथ, सुगन्धवाला, चिरायता, पिप्पली, विडङ्ग, सोंठ, कुटकी चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने मे दुर्जलजनित ज्वर शान्त होता है।

९. उर्ध्ववात—निशोथमूल को दूध में पीसकर उसमे वासास्वरस मिलाकर पिलाना हितकारी है।

१०. हृदयरोग—त्रिवृत्, कचूर, रास्ना, वड और कूठ का समभाग चूर्ण ६ ग्राम गोमूत्र के साथ सेवन करने से कफजन्य हृदयरोग मिटता है।

११. कास—आमाशय की विकृति से कास होने पर निशोथ चूर्ण मधु के साथ देना चाहिये।

१२. कृमिरोग—निशोथ, त्रिफला और विडङ्ग चूर्ण गरम पानी से दें।

१३. आध्मान—निशोथ चूर्ण मधु के साथ, सोंठ चूर्ण के साथ दें।

१४. आमवात—निशोथ चूर्ण ३ ग्राम, सेंधानमक ५०० मि० ग्राम और सोंठ चूर्ण ५०० मि० ग्रा० का चूर्ण कांजी के साथ पीने से विरेचन होकर आमवात मिटता है।

१५. दाह—निशोथ, हरीतकी और तुलसी के क्वाथ मे एरण्ड तैल मिलाकर सेवन करने से विरेचन होकर दाह, शोथ व उदररोगो मे लाभ होता है।

१६. परिणामशूल—निशोथ, पिप्पली और हरड चूर्ण में गुड मिलाकर वटिका बनाकर उष्ण जल से सेवन करने पर परिणामशूल का शमन होता है।

१७. मेदोरोग—निशोथ चूर्ण को गोमूत्र के साथ या मधूदक (शहद मे पानी मिलाकर) के साथ सेवन करने से शनैः शनैः मेद कम होकर स्थूलता में कमी होती है।

१८. वृद्धिरोग—वृद्धिरोग मे विरेचन के लिये निशोथ चूर्ण को उष्ण जल से देना हितकारी है।

१९. कुष्ठरोग—कुष्ठरोग मे विरेचन का अधिक महत्व है अत निशोथ, मजीठ और खदिर, सारिवा का क्वाथ विशेषतया उपयोगी होता है।

२०. रक्तपित्त—निशोथ चूर्ण मे शर्करा मिलाकर मधु मे चाटने से उर्ध्वगामी रक्तपित्त विरेचन होने से शान्त होता है।

२१. नाड़ीव्रण—रोगी को कुछ दिनो तक प्रात निशोथ का चूर्ण त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन कराने से पुराने दुष्टव्रण, नाडीव्रण, अर्बुद, अन्तर्विद्रधि, पित्तजगुल्म आदि रोग दूर होते हैं।

२२. विषरोग—विषरोगो मे भी विरेचन के लिये उपयुक्त अनुपान से दोषो को बाहर निकालने के लिये निशोथ का उपयोग किया जाता है।

उपर्युक्त रोगो मे एव अन्यरोगो मे उपयोगी कल्पो का आगे भी वर्णन किया जायेगा-उक्त वर्णित सामान्य प्रयोग प्रकरण मे रोगानुसार निशोथ के उपयोग का प्रयोजन मुख्यत विरेचन ही समझना चाहिए। जहा पर विरेचन की आवश्यकता नही समझी जाय, वहा इसको उपयोग मे नही लाना चाहिए।

त्रिवृत् एक विरेचन की औषधि है और विरेचन पित्त का उपक्रम है, अत उक्तरोगों में पित्ताधिक्य होने की स्थिति मे ही इसका उपयोग करें। यह कफ का भी शोधन करती है और कफाधिक्य मे भी लाभप्रद है।

विविध कल्पना—

१. क्वाथ—(क) निशोथ, इन्द्रायण की जड, कुटकी, त्रिफला, और अमलतास के क्वाथ में यवक्षार

मिलाकर सेवन करने से विरेचन होकर समस्त ज्वर नष्ट होते हैं। —व० से०

(ख) निशोथ, सनाय, मुलहठी, नागरमोथा, वला, दारुहल्दी, हल्दी, कुटकी, त्रिफला और सोठ का क्वाथ बनाकर सेवन करने से शिर कम्प नामक रोग मिटता है। —भै० र०

२. कल्क—निशोथ, ढाक के बीज, खुरासानी अजवाइन, कबीला, वायविडङ्ग और गुड इन समस्त द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर कल्क बनावें (जल के सयोग से बनावें) इस कल्क को तक्र के साथ सेवन करने से उदरकृमि नष्ट होते हैं। कल्क मात्रा १०-१२ ग्राम है। —शा० स०

३. चूर्ण—(क) त्रिकटु, त्रिफला, इलायची, नागरमोथा, वायविडङ्ग और तेजपात १-१ भाग तथा लौंग सबके बराबर एवं त्रिवृत् सबसे दुगनी लेकर चूर्ण बनालें। ६ ग्राम तक यह चूर्ण उष्ण जल के साथ पीने से विरेचन होकर पेट साफ हो जाता है। —यो० त०

(ख) निशोथ ६० ग्राम तथा पटोलमूल, हल्दी, विडङ्ग, हरड, बहेड़ा, आंवला १२-१२ ग्राम, कबीला २४ ग्राम और नील का पञ्चाङ्ग ३६ ग्राम सबका चूर्ण बना लेवें। १-३ ग्राम चूर्ण गोमूत्र के साथ पीने से जलोदर आदि उदररोग तथा कामला, पाण्डु और शोथ का नाश होता है। इससे विरेचन हो जाने पर मधु व पेया पीकर ६ दिनों तक त्रिकटुयुक्त पकाया हुआ दूध पीवें। तदन्तर पुन चूर्ण का प्रयोग करें। रोग को पूर्णतया नष्ट करने के लिये इसे बार-बार सेवन करना चाहिए। —च० स० चि० १३

(ग) निशोथ ३ भाग, त्रिफला ३ भाग, यवक्षार, पिप्पली और वायविडङ्ग १-१ भाग इनका चूर्ण शहद और घृत के साथ चाटने से कफज गुल्म, प्लीहोदर, हलीमक व अन्य रोगो का भी नाश होता है। इस चूर्ण में गुड मिलाकर गटिका भी बनाई जा सकती है। —सु० स० सू० ४४

(घ) निशोथ चूर्ण ४४० ग्राम, त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, विड्नमक, विडङ्ग, छोटी इलायची के दाने, तेजपात का चूर्ण १०-१० ग्राम, लौंग चूर्ण ११० ग्राम, खाड ६५० ग्राम—इन्हे एकत्र कर खरल करले। १-६ ग्राम तक भोजन के पूर्व ताजे जल के साथ लेने से अम्लपित्त, विबन्ध, मूत्रावरोध, शूल, अर्श, प्रमेह, अश्मरी, व मन्दाग्निजन्य रोग नष्ट होते हैं। इसके सेवन काल मे दूध और चावल का भोजन करना चाहिए। इसे ३-४ माह निरन्तर सेवन करने से गुल्म रोग नष्ट होता है। प्रतिलोम वायु अनुलोम होता है। यह प्रसिद्ध शास्त्रोक्त अविपत्तिकर चूर्ण है। —भै० र०

(ङ) निशोथ, कचूर, वरियारा (खरैटी) की जड, रास्ना, सोठ, छोटी हरड और पुष्करमूल सब समभाग लेकर कपडछान चूर्ण कर लें। ३-६ ग्राम तक उष्णोदक या गोमूत्र के साथ सेवन करने से कफज, हृदयरोग मे लाभ होता है। —यो० र०

(च) निशोथ, इन्द्रायण, मुलहठी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, मजीठ, पाचो नमक, सोठ, मिर्च और पीपल सबका बारीक चूर्ण बनाकर वस्त्र से छानकर काच की शीशी मे रख लें। विष का वेग दूर करने के लिए इसे पान, अञ्जन व नस्य के रूप मे उपयोग मे लाया जाता है। यह महागद चूर्ण अत्यन्त प्रभावशाली औषध है। —सुश्रुत स० क०

४. वटी—(क) निशोथ, २ भाग, पिप्पली ४ भाग तथा हरीतकी ५ भाग सबको चूर्ण कर सबके समान मात्रा मे गुड के साथ मिश्रण कर गोली बनालें। इसके सेवन से कोष्ठबद्धता दूर होकर उदावर्त रोग मिटता है। इन गोलियो को लगभग ३ ग्राम की मात्रा मे सेवन करना चाहिए। —च० द०

(ख) निशोथ, बडी हरड, काली निशोथ सबका चूर्ण कर थूहर के दूध की भावना देकर २१० मि ग्रा० की वटी बनालें। यह गोमूत्र के साथ सेवन करने से आनाह (आफरा) को दूर करने मे श्रेष्ठ है। मात्रा—१ गोली। यह क्रूरकोष्ठों के लिए उत्तम है। —च० द०

कृष्ण निशोथ के अभाव मे श्वेत निशोथ ही दुगुनी लेवें। आत्यधिक स्थिति में इसकी मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

(ग) निशोथ ३ ग्राम, त्रिफला ३ ग्राम, यवक्षार, पीपल और वायविडङ्ग १-१ ग्राम लेकर चूर्ण करलें। इस चूर्ण मे गुड मिलाकर गोलिया बनालें। इनके उपयोग से विरेचन होकर कफवातजन्य गुल्म, प्लीहोदर, भगन्दर आदि रोग दूर होते है।

—चि० त० प्रदीप ख०१

(घ) निशोथ व पिप्पली के चूर्ण को घृत मे भूनकर समभाग गुड की चाशनी मे मिलाकर वटी बनावें। इसके सेवन से विरेचन होकर सन्निपातज्वर का शमन होता है। इसका अनुपान मण्ड कहा गया है।

—ग० नि०

(ङ) निशोथ ७० ग्राम, केसर, श्वेत चन्दन ७-७ ग्राम, गोद बबूल, मगर्द, खाड और गुलाब पुष्प ५७५ ग्राम (प्रत्यक) ले कूट छान जल से गोलिया बनालें। ४.५ ग्राम तक ये वटी जल से सेवन करें। इससे विकृत पित्त का विरेचन होकर तृष्णा व दिल की घबराहट मिटती है। —यूनानी चिकि० सा०

५. मोदक—हरड, आवला, पीपलामूल, दालचीनी, सोठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, विडङ्ग, तेजपत्र प्रत्येक द्रव्य १०-१० ग्राम, दन्तीमूल ३० ग्राम, निशोथ ५२० ग्राम तथा मिश्री ६०० ग्राम इन सबका कपडछन चूर्ण बनाकर शहद मिलाकर छोटे-छोटे मोदक बनालें। मात्रा—६ ग्राम ठडे जल के अनुपान से देने पर कोष्ठवद्धता दूर होकर उदररोग मे आराम होता है। —सि० भे० म० मा०

(ख) निशोथ, त्रिफला, काली निशोथ और पिप्पली समभाग लेकर सबसे दुगनी मिश्री की चाशनी कर उक्त द्रव्यो का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर ठण्डा होने पर थोडा शहद मिलाकर मोदक बनालें। ३ ग्राम की मात्रा मे ये मोदक खाने से रक्तपित्त एव ज्वर का शमन होता है। —भै० र०

(ग) त्रिवृत्, हेमवती (वचा या स्वर्णक्षीरी) श्यामा त्रिवृत्, नीलिनी, गतपिप्पली, पिप्पलीमूल, नागरमोथा, अजमोद, दुरालभा प्रत्येक का चूर्ण १ कर्ष (१२ ग्राम) ले, सोठ १ पल (४८) ग्राम, गुड २० पल (९६० ग्राम) मिलाकर विधिवत् उदुम्बर फल के आकार के मोदक बनावें। इस मोदक को हीग, सोवर्चल (कालानमक), त्रिकटु, अजवाइन, विटङ्ग, जीरा, वचा, अजगन्धा (हुलहुल), त्रिफला, चव्य, चित्रक, धनिया, नेपाली धनिया, और दाड़िम के चूर्ण से लपेट कर विरेचन मे प्रयोग करें। यह अर्श, प्लीहा, गुल्म, शूल, तथा त्रिक्, वक्षण, हृदय, वस्ति के विकारों मे लाभप्रद है। —चरक० स० क०

(घ) सोठ, काली मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोथा, वायविडङ्ग और आवला ये (९) औषधिया ६०-६० ग्राम निशोथ ४८० ग्राम और दन्तीमूल १२० ग्राम लेवें। सबको मिला बारीक चूर्ण कर ६ गुनी शक्कर की चाशनी मे मिलायें। फिर ६० ग्राम सेंधा नमक और १२० ग्राम शहद मिलाकर १-१ ग्राम की गोलिया बनावें।

मात्रा—२ से ३ गोली सुबह शीतल जल के साथ देवें। यदि पित्तश्लेष्म दोष हो तो दूध के साथ देवें।

उपयोग—यह औषधि उत्तम सौम्य विरेचन और विघ्न है। मलमूत्रावरोध वस्ति मे शूल जलन पित्त वृद्धि के कारण से प्यास, वमन, दाह, शोथज्वर और पाण्डु आदि रोगो को दूर करने मे सहायक है। यह त्रिवृदष्टक मोदक है। —सु० स० सु० ४४

(ङ) निशोथ १४४ ग्राम वायविडङ्ग की गिरी, आवला और हरड ४८-४८ सबका महीन चूर्ण कर २८८ ग्राम गुड मे मिला ३० मोदक बना लें। प्रतिदिन १-१ मोदक (या चौथाई से आधा मोदक) सेवन करने से कास, क्षय, कुष्ठ, भगन्दर, प्लीहा, जलोदर तथा अर्श का नाश होता है। यह वृद्धो के लिए भी हितकर है। इस पर किसी विशेष पथ्य पालन की आवश्यकता नही है। यह मणिभद्र मोदक है।

—च० द०

६. अवलेह—(क) शक्कर १९२ ग्राम और शहद १९२ ग्राम को कलईदार वर्तन मे थोडा जल देकर पकावें। जल अवलेह बनने योग्य चाशनी हो जाय तब उसको नये मिट्टी के वर्तन मे छोड़ उसमे निशोथ १४४ ग्राम, दालचीनी १२ ग्राम, तेजपात १२ ग्राम और कालीमिर्च १२ ग्राम इनका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिलाकर लेह बनालें।

मात्रा, अनुपान और उपयोग—६ ग्राम से १२ ग्राम गरम जल के साथ प्रातःकाल मे लेने से २-३ दस्त विना कष्ट के हो जाते हैं। —च० सं०

(ख) सफेद निशोथ, अग्रेजी सकमूनिया–प्रत्येक २४ ग्राम, पीपल, कालीमिर्च, सोठ प्रत्येक ८ ग्राम, जावित्री ६ ग्राम, देशी शकरतरी (बारीक खाड) ८४ ग्राम। सबको कूटकर कपड़छान चूर्ण बनावें। पीछे तिगुने झाग उतरे हुए शुद्ध मधु मे मिलाकर माजून बना लेवें।

मात्रा और सेवनविधि—१ ग्राम से ३ ग्राम तक माजून गरम दूध के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—यह कब्ज निवारण के लिए अनुपम है। ज्वर की दशा मे इसका उपयोग लाभदायक सिद्ध होता है। कब्ज के लिए प्रतिदिन एक मात्रा खिलाने से कब्ज की शिकायत जाती रहती है। —यू० सि० यो० स०

७. घृत—(क) निशोथ, मुलैठी, सुगन्धवाला नागरमोथा, अजवायन, काली निशोथ, विदारीकन्द, सौंफ, पिप्पली और कुड़ाछाल २४-२४ ग्राम, इनका कल्क तथा घृत, दूध शतावर का रस १-१ किलो तथा दही ४ किलो सबको एकत्र मिलाकर घृत सिद्ध करलें। (मात्रा ६ ग्राम से १२ ग्राम तक) सेवन से समस्त आन्त्र रोग (आन्त्र वृद्धि आदि) वीस प्रकार के प्रमेह, श्वास, कुष्ठ, अर्श, कामला, हलीमक, पाण्डुरोग, गलगण्ड, अर्बुद, विद्रधि, व्रणशोथ आदि रोग नष्ट होते हैं। —भै० र०

(ख) निशोथ त्रिफला, दन्ती और दशमूल प्रत्येक ४८-४८ गाम जौकुटकर सबको चार गुने पानी मे पकावें अतुर्थांश शेष रहने पर छान उतना ही दूध तथा चौथाई घृत तथा उतना ही रेंड़ी का तैल मिला कर पकावें। स्नेह मात्र शेष रहने पर छान लें। यह त्रिवृतादि स्नेह (मात्रा ६ ग्राम) मे शहद मिला सेवन करने से कफज गुल्म, कफवात जन्य विवन्ध, कुष्ठ, प्लीहा तथा उदर रोगो मे एव विशेषत. योनिशूलो मे प्रयोग करना चाहिए। —च० स०

(ग) निशोथ का कल्क २८८ ग्राम, घृत ७६८ ग्राम, दूध ६ किलो ३८४ ग्राम और थूहर का दुध ४८ ग्राम सवको एकत्र मिला घृत सिद्ध करे (मात्रा ६ ग्राम से १२ ग्राम तक) सेवन से उदर रोग एवम् गुल्म नष्ट होता है।

घृत सिद्ध करने के लिए घृत निर्माण प्रक्रिया का ज्ञान आवश्यक है। —व० से०

८. शर्बत—निशोथ ३५ ग्राम, अफसनतीनरूमी १७॥ ग्राम तथा गुलाब पुष्प १७ ग्राम। सबके जौकुट चूर्ण को २ किलो जल मे उबालकर छानकर १ किलो खाँड़ मिलाकर शर्वत की चाशनी तैयार कर लें।

मात्रा—२४ से ४८ मि० लि०। यह आमाशय तथा यकृत् के दोषो को दूर करता है। इस योग का नाम शरवत अफसनतीन दिया गया है। —यू० चि० सा०

९. आसव—निशोथ और जुलाफा १-१ भाग दोनो के चूर्ण को एक बोतल मे भर उसमे १२॥ भाग मद्य (७० से ९० प्रतिशत वाली) मिला अच्छी तरह हिला कार्क लगाकर रखे। ७ या १५ दिन के बाद अच्छी तरह निचोड़कर छानकर रखें।

मात्रा—२ ग्राम से ८ ग्राम तक। प्रत्येक प्रकार के विष्टम्भ (कोष्ठवद्धता) के लिए यह उत्तम विरेचनीय है जलोदर मे भी लाभकारी है। इससे ऐंठन मरोड आदि कष्ट जयपाल के सदृश नही होते। —वृ० आ० अ० स०

१०. अरिष्ट—निशोथ ७६८ ग्राम कूटकर १५ किलो जल मे पकावें। पौने चार किलो जल शेष रहने पर छानकर सधान पात्र मे भर उसमे गुड २॥ किलो और मुलैठी १५० ग्राम चूर्ण कर मिला दें। तथा विधि सधान कर २ मास तक सुरक्षित रखें। फिर छानकर काम मे लावें।

मात्रा—१२ मि० लि० से ४८ मि० लि० तक प्रातःकाल खाली पेट थोड़े जल के साथ रोगी की प्रकृति का विचार कर सेवन कराने से उत्तम विरेचन होकर उदर रोग, संग्रहणी, गुल्म, शोथ, पाण्डु आदि दूर होते है। कोठा साफ हो जाता है।—वृ आ.अ स

११. वर्ति—निशोथ (काली), पिप्पली, दन्तीमूल और नील की जड १-१ भाग, सेंधानमक २ भाग तथा उडद का आटा १० भाग सबके चूर्ण को एकत्र कर वर्ति बनाने योग्य गुड मिला गोमूत्र में पीसकर अगूठे के बराबर की वर्ति बनालें। इनमें से एक वत्ती को घी लगाकर रोगी के मल मार्ग में रखने से उदावर्त रोग नष्ट होता है। —चरक संहिता

पेटेण्ट प्रयोगों मे त्रिवृत्—

निम्नांकित पेटेण्ट प्रयोगो मे त्रिवृत् का उपयोग होता है।

१. **विरेचन कैपसूल** (गर्ग वनौषधि भण्डार, विजयगढ़)—१-१ कैपसूल प्रातः-साय गरम दूध या गरम जल से।

२. **विबन्धहारी कैपसूल** (ज्वाला आयुर्वेद भवन, अलीगढ़)—१-१ कैपसूल प्रातः-साय गरम दूध या गरम जल से।

३. **कोन्स्टीलेक्स गोली** (गैम्वर्स लेबोट्रीज, बम्बई)—२-३ गोली गरम जल से।

४. **हर्बोलेक्स टिकिया मृदु एवं तीव्र** (हिमालया ड्रग कम्पनी, बम्बई)—मृदु—२४ गोली तीव्र—१-२ गोली सोते समय।

५. **रेग्युलेक्स गोलियां मृदु एवं तीव्र** (चरक फार्मेस्युटिक्ल्स, बम्बई)—मृदु १-२ गोली तीव्र १ गोली।

६. **पेडिलेक्स सीरप** (चरक फार्मेस्युटिकल्स, बम्बई)—बच्चो के लिये है। मात्रा—१ चम्मच।

७. **डायजेमीन सीरप** (मेडिकल इथिक्स आफ इण्डिया)—उदर विकारो मे उपयोगी। मात्रा—१-२ चम्मच।

८. **रेचन कैपसूल** (निर्मल आयुर्वेद सस्थान, अलीगढ़)—१ कैपसूल दूध या गरम जल से।

९. **एन्टासीट टिकिया** (नवशक्ति आयुर्वेद भवन)—१-२ टिकिया दिन में २-३ बार अम्लपित्त मे उपयोगी है।

१०. **पार्मिट्रिन पाउडर** (श्री रुद्रदेव आयुर्वेद भवन)—अम्लपित्त मे विशेष उपयोगी। ४-६ ग्राम दिन मे तीन बार खाली पेट जल से।

११. **सर्वक्रमिरिपु कपसूल** (शर्मा मेडिको)—क्रमि रोगोपयोगी। १-१ कैपसूल दिन मे ३ बार।

१२. **क्रमिघातिनी कैपसूल** (ज्वाला आयुर्वेद भवन) —१-२ कैपसूल दिन मे ३ बार।

१३. **आनन्ददा ग्रेनुअल्स** (जनहित फार्मेस्युटिकल्स, हापुड) —५-७ ग्राम जल से वीर्यविकार व मूत्रविकारो मे उपयोगी।

१४. **वोर्मोल कैपसूल** (जनहित फार्मेस्यु०)—१-२ कपसूल दिन मे ३ बार क्रमिरोग मे उपयोगी।

१५. **लिवोवल सीरप** (शिल्पाक्रम इन्दौर)—यकृत् के विकारो मे २-३ चम्मच दूध के साथ। बच्चो को कम।

१६. **लिवोट्रिट सीरप** (झण्डु फार्मेसी)—यकृत् के विकारो मे २-३ चम्मच दूध के साथ। बच्चो को कम।

१७. **प्यूरोसीन सीरप** (एम्बीजैक लेबो० सरदार शहर, राज०)—रक्तशोधक पेय २ चम्मच २-३ बार।

१८. **रक्तगदान्तक सीरप** (कौशिक आयु० भवन, सालासर (राज०)—रक्तशोधक पेय २ चम्मच २-३ बार।

१९. **लिवकेयर सीरप** (दीनदयाल औषधालय, ग्वालियर)—यकृद् विकारो मे १-२ चम्मच २-३ बार।

२०. **स्वप्नप्रमेहारि चूर्ण** (दीनदयाल औषधालय, ग्वालियर)—३ ग्राम जल से।

२१. **पुष्पावरोधघ्न चूर्ण** (दीनदयाल औषधालय, ग्वालियर)—६-१२ ग्राम दिन मे ३ बार रजःकृच्छता मे।

अनुभूत प्रयोग—

१. **अम्लपित्तहर प्रयोग**—त्रिवृत्, सनाय, सोठ, सौंफ, अमलतास, त्रिफला, कालादाना, मुनक्का, इमली,

समुद्रफल, गम्भारी, फालसा, कुटकी, गिलोय, एलुवा, अञ्जीर समान भाग लेकर कूट-पीस आठ गुने पानी मे मिला, पकाकर चतुर्थांश शेष रहते उतार छानकर प्रात सुहाता-सुहाता गरम पिलावे। इससे खुलकर विरेचन होकर पेट साफ हो जायेगा। अम्लपित्त के रोगी के अधःकायस्थ दोषो को निकालने के लिये यह विरेचन योग श्रेष्ठ है। —वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य

(सुधानिधि नि० चि० वि० भा० १)

२. कफोदरहर प्रयोग—निशोथ का चूर्ण ८ ग्राम को ऊटनी के दूध मे डालकर फिर अरण्ड का तैल २०-२५ ग्राम डालकर उसमे पीपल, पीपलामूल और चित्रक ६-६ ग्राम का चूर्ण मिलाकर गर्म करके एक महीने तक सेवन करने से कफोदर रोग मिटता है। रोग की उग्र स्थिति मे इस मात्रा को उपयोग मे लावे अन्यथा मात्रा कम की जा सकती है।

—क्षुल्लक श्री सिद्धसागर जी

(स्वास्थ्य बोधामृत)

३. मध्यम जुलाब—सफेद निशोथ १० ग्राम का चूर्ण, बादाम का तैल ६ ग्राम और मिश्री १० ग्राम ले। सबको मिलाकर १० ग्राम सनाय के क्वाथ के साथ दें। जुलाब लग जाने पर हर दस्त के बाद सौंफ और मकोय का अर्क ४०-५० मि० लि० मिलाकर पिलाते रहे। इससे १०-१२ जुलाब लगते है। यदि किसी का कोठा कठोर हो तो २० ग्राम गुलकन्द और ५ ग्राम काली दाना मिला दें यदि कोठा अति क्रूर हो तो साथ मे एक ग्राम उसारे रेवन्द भी मिला दें। —स्वामी श्रीकृष्णानन्द जी महाराज

(चिकित्सातत्वप्रदीप)

४. बालहितैषी प्रयोग—निशोथ, हरड, छाया शुष्क पोदीने के पत्र १२-१२ ग्राम और अतीस ६ ग्राम इनका चूर्ण बनाले। मात्रा—१२५ मि० ग्रा० से १ ग्राम तक बलाबल के अनुसार दिन-रात मे चार बार तुलसीपत्र स्वरस और माता के दूध के साथ घुटी बनाकर पिलाने से बालको के समस्त ज्वर, कास, वमन, श्वास, अतिसार, संग्रहणी तथा दन्तोभववजन्य सारे रोग दूर होते हैं। —श्री नत्थाराम वैद्य

(वन्व० वनौ० विशे०)

५. अर्धाङ्गवातहर प्रयोग—निशोथ २ भाग, अमरबेल १/२ भाग, सुरजान कडुआ १ भाग, हरड़ ४ भाग, गुलबनफसा ४ भाग, सोठ ३ भाग और सकमुनिया ३ भाग एकत्र चूर्ण करें।

मात्रा—५०० मि० ग्रा० से १ ग्राम तक यह चूर्ण सेवन करने से अर्धाङ्गवात मे लाभ होता है।

—श्री नाडकर्णी के० एम०

(इण्डियन मेटीरिया मेडिका)

६. मृदुरेचन प्रयोग—निशोथ, इन्द्रजौ, छोटी पिप्पली तथा सोठ यह चारो चीजें १०-१० ग्राम तथा मुनक्का ४० ग्राम ले।

निर्माण विधि—चारो काष्ठ औषधियो को कूट तथा कपड़छन कर रखे और ३२० ग्राम जल मे मुनक्को को पकावें ८० ग्राम जल शेष रहे तब छानकर उसे पुनः पाक करें। गाढ़ा हो जाय तब उसमे चूर्ण डालकर चूल्हे से पात्र को उतार कर मोदक बना लेवें सभी १६ मोदक बना लेने चाहिये और काच के पात्र मे रखने चाहिए।

मात्रा—६ ग्राम से १० ग्राम तक ६ ग्राम मधु के साथ सूर्योदय से पूर्व प्रातःकाल १ मात्रा औषधि का सेवन बारह बजे दिन तक रेचन के निमित्त प्रतीक्षा करनी चाहिये रेचन हो जाने पर मूग की दाल तथा पुराने चावल की खिचड़ी का पथ्य लेना चाहिये।

उपयोग—यह बिना कष्ट के मृदु विरेचन कराने मे सक्षम मोदक है, विशेषतः वर्षा ऋतु मे जब रेचन औषधियो का उपयोग नही किया जाता हो उस समय के लिये यह विशेष योग है इसके सेवन से मिचली आदि की शका नही रहती। एक मात्रा लेने से साधारणतः २-३ हल्की टट्टी हो जाती है।

—श्री श्यामसुन्दराचार्य

(रसायनसार भाग २)



त्वक्

(Cinnamomum Zeylanicum)

वैदिक विचारधारा के अनुसार चित्तवृत्तियों का निरोध करने के कारण भारतीय संगीत भी योग है, जो आरोग्यवर्धक भी है। महर्षि वामदेव ने संगीत रत्नाकर नामक अपने ग्रन्थ के चौथे अध्याय में शब्द के औषधि गुणों का वर्णन किया है। नादानुसन्धान कर संगीतौषध से सर्वाङ्गीण स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। खमाज, भीमपलासी आदि रागों से वात का, मेघ मल्हार, देश आदि रागों से पित्त का एवं आसावरी, भैरवी आदि रागों से कफ शमन किया जा सकता है। विषय बोध किंवा लोकजागरण के लिए भी संगीत की अपनी महत्ता है। सामान्यतया जन बड़े-बड़े व्याख्यानों किंवा आलेखों की अपेक्षा गीत-संगीत के माध्यम से विषय को सरलता से हृदयङ्गम कर सकने में समर्थ होते हैं। प्रायः सभी शास्त्र गेय छन्दों में वर्णित हैं। सूर, तुलसी, कबीर, दादू आदि ने भी संगीत उपचार को अनिवार्य माना। मुझ अकिंचन द्वारा भी वनौषधियों के सम्बन्ध में कुछ ऐसा ही प्रयास किया जा रहा है। उदाहरणस्वरूप त्वक् (दालचीनी) पर रची एक गीतिका प्रस्तुत है—

पाचन दारचीनी रे।
दीपन दारचीनी रे।

वातवृद्धि अरु कफरोगन में सदा वैद्यजन दीनी।
आमदोष कृमि अरुचि नसावे,
ग्रहणी दोष मिटावे।
श्वास कास हर वृष्य कहावे
यक्ष्मा जर्जर कीनी ॥१॥
दुर्बलता हिरदे की मेटे
रक्त विकार भगावे।
ओजोवर्धक मूत्रजनन यह
धातु शोधन कीनी ॥२॥
मुख शोधन कर कर सुगन्धित
दन्त करे मजबूती।
रज 'शोधन' हितार्थ हेतु
सदा सुखद यह लीनी ॥३॥

पंडितराज कविराज जगन्नाथराय ने जिस तमालद्रुम से श्रम हरने की विनय की है —

कलिन्दनगनन्दिनीतट वनान्तरं भासयन्
सदा पथि गतागत श्रमभरं हरन् प्राणिनाम्।
लतावलिशतावृतो मधुरया रुचा संभृतो
ममाशु हरतु श्रमानतितरां तमालद्रुमः ॥

इस वृक्ष की छाल को भारतीय दालचीनी एवं उसके पत्तों को पत्रक (तेजपात) कहते हैं, जिनका आगे विशद वर्णन किया जायेगा। महर्षि सुश्रुत ने त्वक् को एलादिगण में पढ़ा है। त्रिजात की यह प्रथम औषधि है —

त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम्।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह कर्पूर कुल (लारेसी) का द्रव्य है। भावप्रकाशनिघण्टु के कर्पूरादि वर्ग में इसका वर्णन मिलता है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने इसे छेदन (श्लेष्महर) वर्ग में वर्णित किया है। छेदन (Expectorant) उस द्रव्य को कहते हैं जो कफादि दोषों को पतलाकर बाहर निकलता है। सामान्यतया इसे कफनिःसारक कहा जाता है।

नाम—

संस्कृत—त्वक्, उत्कट, वराङ्ग आदि।

त्वच त्वग्वल्कल भृङ्ग वराङ्ग मुखशोधनम्।

सकल सैहल वन्य सुरस रामवल्लभम् ॥
उत्कट बहुगंध च विज्जुल च वनप्रियम् ।

हिन्दी—दालचीनी ।
गुजराती—तज, दालचीनी ।
मराठी—तज, दारचीनी ।
बंगला—दारुचिनि ।
पंजाबी—किरका, दालचीनी ।
तामिल—कारुया ।
तेलगु—सानलिफु ।
अरबी—दारसीनी, किर्फा ।
फारसी—दारचीनी ।
अंग्रेजी—सिनेमन (Cinnamon) ।
लैटिन—सिनेमोमम् जिलेनिकम (Cinnamomum Zeylanicum) ।

उत्पत्ति स्थान—इसके वृक्ष दक्षिण भारत, श्री लका, जावा, बर्मा, चीन, सुमात्रा मे होते हैं। दक्षिण भारत के मद्रास, मैसूर आदि स्थानो पर यह पाया जाता है । मूलत यह लका का वृक्ष है। फ्रेंचगायना, ब्रेजिल एव पश्चिमी द्वीपसमूह मे भी इसकी खेती होने लगी है । भारतीय दालचीनी हिमालय पर होती है ।

रासायनिक सघटन—त्वक् मे शर्करा, स्टार्च, पिच्छिल द्रव्य, उडनशील तैल ० ५-२ प्रतिशत होता है ।

वानस्पतिक परिचय—इसका सदाहरित वृक्ष प्राय २०-२५ फीट ऊचा होता है (लका मे वृक्ष इससे भी ऊचे होते होते हैं) । इसकी शाखायें चपटी एव चिकनी होती हैं । इसकी छाल नये वृक्षो से लेने पर चिकनी पाण्डुवर्ण की तथा पुराने वृक्षो से लेने पर रूखी व कपिश वर्ण होती है यह प्राय ५ मि० मी० मोटी व भगुर होती है । इसका वाह्य भाग बीच-बीच मे छिद्रदार और अन्य चिन्हो से युक्त होता है । भीतरी स्तर गहरे लालरग का होता है । इसमे एक सुगन्ध भी आती है ।

पत्र—अभिमुख, चर्मवत्, ४-७ इञ्च लम्बे होते हैं । इनका ऊपर का भाग चमकीला होता है, इसमे सिराये ३-५ होती हैं । इन्हे मसलने पर तीक्ष्ण गध आती है ।

पुष्प—लम्बे पुष्पदण्डो पर, गुच्छो मे, धूसरवर्ण एव दुर्गन्धयुक्त होते हैं ।

फल—१/२–१ इञ्च लम्बे, अण्डाकार, गहरे बैंगनी रङ्ग के घटिकाकार परिपुष्प से आवृत होते हैं जिनके अन्दर एक बीज होता है । फलो को तोडने पर उनमे तारपीन की सी गन्ध आती है ।

इस पर पुष्प जनवरी मे लगते हैं एव फल मई-अगस्त मे पकते है ।

इतिहास—भारतीय चिकित्सकों को त्वक् (दालचीनी) का अच्छा ज्ञान था । चरकसहिता, सुश्रुतसहिता आदि में इसका वर्णन मिलता है । यह भारतीय द्रव्य है । ईसवी सन् से कई हजार वर्ष पूर्व इसका ज्ञान था । कहा जाता है कि चीन वाले तज का तो ज्ञान रखते थे किन्तु उन्हे दालचीनी का ज्ञान नही था । सिहली दालचीनी का ज्ञान बहुत पीछे हुआ है । लका पर पहले १५२६ ईसवी मे पुर्तगीज और डच १६५६ मे और ब्रिटिश १७९६ मे अपना शासन किया । तवसे ही इसका ज्ञान ससार को हुआ । १७७० मे डचो ने अपनी ओर से इसकी खेती प्रारम्भ की । भारतीय दालचीनी का व्यापार पहले से ही डचों के हाथ मे था, किन्तु बाद मे इसका विकास हुआ ।

इस प्रकार सिहली दालचीनी का प्रचार यूरोप आदि मे अठारवी शताब्दी मे हुआ है । यूरोप में दालचीनी तथा चीनी तज का प्रचार अरबो के द्वारा हुआ । अरबी मे दालचीनी को 'किरफातुद्दारसीनी (Kirfateddarsini) कहते हैं, जिसका सक्षिप्त नाम 'किर्फा' है । दक्षिण भारत के मलाबार प्रान्त मे तज की भारतीय जातिया स्वयजात पाई जाती हैं । इनकी छाल बम्बई बाजार मे 'कल्फा' के नाम से प्रसिद्ध है, जो उपर्युक्त अरबी नाम 'किर्फा' का ही अपभ्रंश मालूम होता है । हिन्दी नाम तज सस्कृत 'त्वक्' नाम का अपभ्रश है । फारसी मे इस त्वक् (दालचीनी) को

'दारचीनी' कहते हैं, जिसका अर्थ होता है—'चीनी-वृक्ष' (China tree)। यह नाम इसकी उत्पत्ति स्थान का द्योतक है। अरबी नाम 'दारसीनी' इसके उपर्युक्त फारसी नाम का अरबी रूपान्तर मात्र है। सम्भवतः कसिला सिन्नेमन का प्रचार थलमार्ग द्वारा चीन से फारस में हुआ, और इसके बाद अरबों ने इसका ज्ञान प्राप्त कर आगे यूरोप में प्रचारित किया। बाद निघण्टुकारों ने उत्कृष्टता के तर-तम भेद से सिंहली, चीनी एवं भारतीय सिन्नेमन का विवेचन किया है। अब सबसे उत्तम दालचीनी लंका द्वीप में होने वाली प्रजाति सिंहली दालचीनी (सिन्नेमोमम् जिलेनिकम) से प्राप्त होने वाली ही मानी जाती है। अब दालचीनी शब्द का व्यवहार इसी की छाल के लिए किया जाता है।

[1] त्वक् मुख्यतः लंका में उत्पन्न होने वाला द्रव्य है परन्तु अन्य स्थानों पर उत्पन्न व्यक्तियों द्वारा अपने-अपने ग्रन्थों में इसके वर्णन से यह संकेत मिलता है कि स्थलीय व्यापार के साथ ही श्री लंका के रास्ते विदेशी व्यापार भी होता था। संहिता ग्रन्थों के अतिरिक्त संग्रह ग्रन्थों में भी इसका वर्णन मिलता है। वङ्गसेन, चक्रदत्त, वृन्दमाधव आदि ग्रन्थों के लेखक बंगाली, गदनिग्रह, रसप्रकाशसुधाकर के लेखक गुजराती और कल्याण कारक ग्रन्थ के लेखक दक्षिणी भारतीय थे। इनमें त्वक् एवं तेजपात का वर्णन मिलता है। उत्तरी भारत के तो बहुत से ग्रन्थ लेखक हैं जिन्होंने इनका अपने ग्रन्थों में वर्णन किया है।

भेद—दालचीनी एक प्रकार के वृक्ष की छाल है और स्वाद में मधुर होने से दारुसिता के नाम से जानी जाती है। लगाये हुए एक वर्ष से दो वर्ष पुराने पौधों को जड़ के पास से काट दिया जाता है, जहां से अनेक सरल नवीन शाखाएँ निकलती हैं। उन्हीं शाखाओं की सुखाई हुई अन्तर्छाल औषधि के रूप में प्रयुक्त होती है। दालचीनी चूंकि छाल होती है अतः इसका रूढ़ि नाम त्वक् ही है।

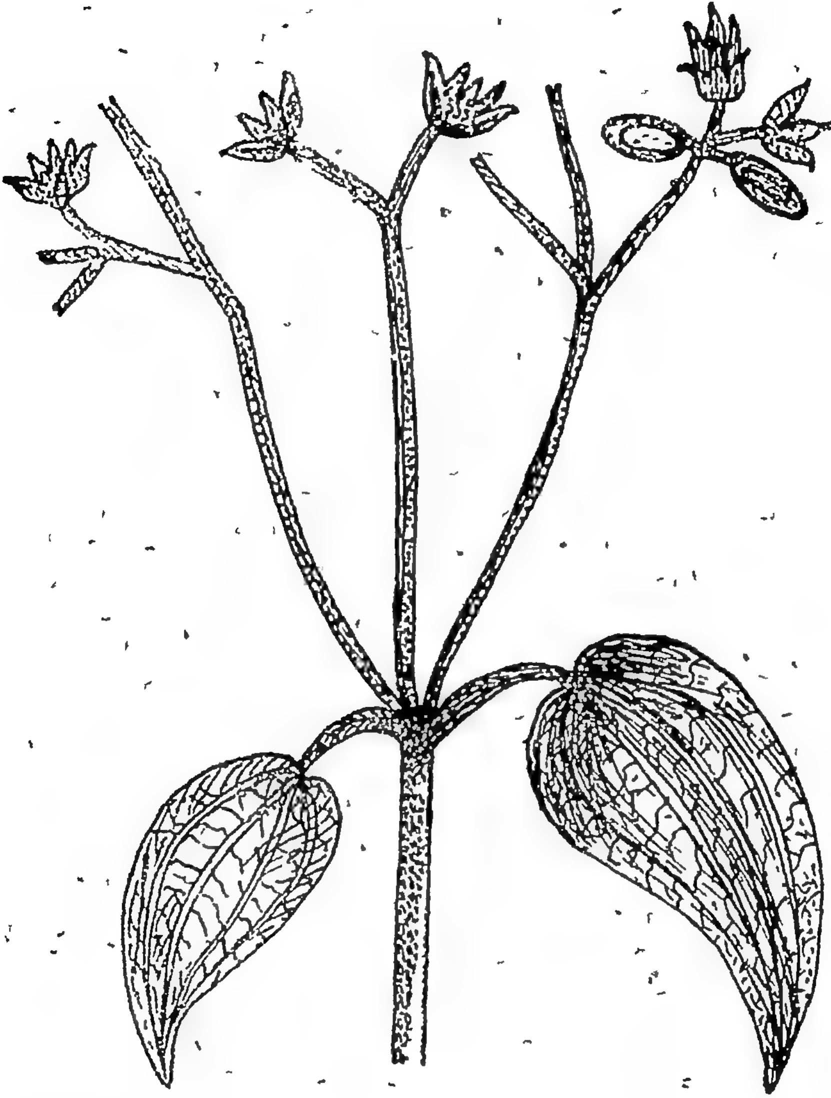
दालचीनी की कुल १३० जातियों का हुकर ने उल्लेख किया है। भारत में व्यवहार में यह तीन प्रकार की मिलती है।

१ सिंहली (सीलोनी) दालचीनी—लंका से आने वाली यह दालचीनी सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है। इसकी छाल पतली, दूसरों की अपेक्षा अधिक मधुर तथा कम तीक्ष्ण होती है। इस आधार पर सिनामोमम जिलेनिकम के नाम से इसी का वर्णन किया गया है। पतली होने से "तनुत्वक्" एवं अधिक मधुर होने से यह "स्वादुत्वक्" के नाम से भी जानी जाती है। भावमिश्र ने दारुसिता के नाम से इसका ही वर्णन किया है। औषधि के रूप में इसका ही उपयोग श्रेष्ठ माना है।

२. चीनी दालचीनी—चीन, कोचीन, सुमात्रा आदि देशों से आने वाली चीनी दालचीनी है। इसके वृक्ष को लैटिन भाषा में सिनेमोमम कैसिया कहते हैं। इसकी छाल को भी हिन्दी में तज भी कहते हैं। अंग्रेजी में इस छाल को कैसिया सिनेमोन (Cassia Cinnamon) या चाइनीज कैसिया (Chinese Cassia) कहते हैं। इसकी छाल सिंहली दालचीनी की अपेक्षा मोटी होती है।

इसका वृक्ष हराभरा, चिकना, पत्र—आयातकार या शालाकार पत्ते ६-८ मि० मि० लम्बे, लम्बाग्रयुक्त, चर्मवत् अस्पष्ट सिराजाल से युक्त, पुष्प—छोटे, कुछ अधिक लम्बे पतले, पुष्प वृन्त से युक्त, पत्र के अक्ष में या छोटी शाखाओं के अन्त में लगते हैं। फल—चिकने, अण्डाकार मटर के बराबर, कुछ रसदार होते हैं। इसकी ही सूखी छाल चीनी दालचीनी कहलाती है। यह २-४० मि० मी० लम्बी एवं मुड़ी हुई, बाहर से हल्के भूरे रंग की, प्रायः चिकनी तथा कुछ आड़ी झुर्रियों से युक्त, अन्दर से रक्ताभ, भूरे रंग की रेशेदार होती है।

इसका स्वतन्त्र प्रयोग कम किया जाता है। इसमें सार्वदैहिक की अपेक्षा स्थानिक उत्तेजना



त्वक् [Cinnamomum Zeylanicum]

विभिन्न नाम : सं०—त्वक्, उत्कट, वराङ्ग । हि०—दालचीनी । गुज०—दालचीनी । म०—दारचीनी । अं०—सिनेमन । लै०—सिनेमोमम् जिलेनिकम ।

प्राप्ति स्थान : श्रीलंका, दक्षिणी भारत, चीन आदि ।

उपयोगी अङ्ग : त्वक्, पत्र, तैल । **दोषशमन** : कफवातशामक ।

रोगोपयोग : कास, श्वास, राजयक्ष्मा, मन्दाग्नि आदि ।

मुख्ययोग : सितोपलादि चूर्ण, त्रिजात, चतुर्जात चूर्ण, आदि ।

शक्ति अधिक है। यह उष्ण वातानुलोमक, आमाशयोत्तेजक एव ग्राही गुणयुक्त है।

३. भारतीय दालचीनी—यह हिमालय प्रदेश मे ३-८ हजार फीट की ऊँचाई पर विशेषत आसाम और सिक्किम मे मिलती है। इसका लैटिन नाम सिनेमोमम् तमाल (Cinnmomum Tamalc) है। यह उक्त चीनी दालचीनी की ही एक जाति हैं। केवल स्थान भेद से इन दोनो मे कुछ अन्तर पाया जाता है अन्यथा इन दोनो मे कोई विशेष भेद प्रतीत नही होता है। इसके पत्र ही तेजपत्र कहे जाते हैं। भाषा मे इसकी छाल को ही कही-कही दालचीनी एव कही इसे ही तज कहते हैं। यह मोटी, कम तीक्ष्ण तथा जल मे पीसने से लुआवदार हो जाती है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने कहा है कि "व्यवहार मे सिंहली जाति को दाल-चीनी तथा चीनी व भारतीय जाति को तज कहते है। बगाली कविराज, सम्भवत चीनी आदि को नालुका के नाम से शोथहर लेप के रूप मे व्यवहार करते है—

त्वगेय परमस्थूला नालुकेत्यभिधीयते।
वगीयै व्रणशोथादौ लेपनार्थं च युज्यते ॥

भारतीय दालचीनी के अपक्व फलो को अंग्रेजी मे कैशिया बड्स (Cassia Buds) कहते हैं। इन फलो मे भी छाल (तज) जैसा ही किन्तु अधिक कटु स्वाद होता है। यूनानी मे इन्हे काला नागकेशर कहते हैं।

इसके वृक्ष छोटे या मध्यम ऊँचाई के होते हैं। छाल पतली, शिकनदार, खुरदरी, गहरे भूरे रग की या कृष्णाभ होती है। पत्र विपरीत या एकान्तर, ५-६ इञ्च लम्बे व २-३ इच चौडे, लट्वाकार, नोकदार और आधार से अग्र तक तीन शिराओ से युक्त होते हैं। नवीन पत्र कुछ कुछ गुलाबी रग के होते हैं। ये पत्र तेजपात और शाखाओं की छाल दालचीनी के नाम से बाजार मे बिकती है। पुष्प—चौथाई इञ्च लम्बे, हल्के पीत वर्ण के एव फल आधा इञ्च लम्बे, अण्डाकार मासल तथा काले रग के होते है।

इसके पत्ते गरम मसाले के काम आते हैं। सुवर्ग इसे पाकरजन भी कहते हैं। इसके गुणो मे कहा गया है—

पत्रकं मधुरं किञ्चित् तीक्ष्णोष्ण पिच्छिलं लघु।
जयेद् विषार्शोहृद्रोगत्रिदोषारुचिपीनसान् ॥

—महो० नि०

रस—कटु, मधुर।

वीर्य—उष्ण।

गुण—लघु, तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

कर्म—लेखन, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, मस्तिष्क बलदायक, मूत्रार्तवजनन, आमाशयबलप्रद, सौमनस्य जनन, सौगन्धिक।

अहितकरण—वस्ति एव फुफ्फुस के लिए।

निवारण—मस्तगी और बिही का शर्बत।

सामान्य प्रयोग—

१ ज्वर की पूर्वावस्था मे इसका फाण्ट पिलाने से आमविष दूर होकर ज्वर की सम्प्राप्ति रुक जाती है।

२ श्वास में पत्र और छोटी पीपल के चूर्ण को अदरक के मुरब्बे की चासनी से मिलाकर चटाते हैं। सिता,-अदरकरस से भी देते हैं।

३ मूत्र तथा आर्तव प्रवर्त्तनार्थ पत्तो को सिरका मे पीसकर उदर तथा पेडू पर लेप करते हैं और आन्तरिक उपयोग भी करते हैं।

४ फूली, धुन्ध दृष्टिमान्द्य और नाखूना आदि नेत्र रोगो मे अकेले या अन्य औषधियो के साथ सुर्मा जैसा महीन पीसकर नेत्रो मे लगाते हैं।

५ शरीर की दुर्गन्ध को दूर करने के लिए इसके चूर्ण को सिरका में मिला लेप करते हैं।

६ वस्त्रो की कीटो से रक्षा करने व उन्हे सुवासित करने के लिए भी उनमे इन पत्तो को रखते हैं।

७ मुख की दुर्गन्ध मिटाने के लिए इसे मुख मे रखकर चबाते हैं।

८. पत्र, काली मिर्च, मेनसिल व कसीस सम-भाग लेकर तैल में घोटकर ताम्रपात्र मे भरकर रख दें। सात दिन बाद इसका लेप कर धूप मे बैठने से सिध्म कुष्ठ मिटाता है। एक माह तक प्रयोग करने से श्वेत कुष्ठ मिटने लगता है।

त्वक् के रस गुण वीर्य आदि—

रस—मधुर, कटु, तिक्त।

\+ + + +

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

प्रभाव—छेदन, वेदनास्थापन।

दोषकर्म—यह उष्ण होने से कफ-वात शामक एव पित्तवर्धक है। जिसमें माधुर्य अधिक होता है, वह पित्त शामक होता है।

वीर्यकालावधि—त्वक् एक वर्ष पर्यन्त। तैल—दीर्घकाल तक।

गुणप्रकाशक सज्ञा—बहुगन्ध, मुख शोधन।

प्रयोज्य अङ्ग—त्वक्, पत्र, तैल।

मात्रा—त्वक् चूर्ण—५०० मि० ग्राम से २ ग्राम।
पत्र चूर्ण—१ २ ग्राम।
तैल—२-५ बूद।

हानिकारक—अधिक मात्रा मे बस्ति के लिये अहितकर।

दर्पनाशक—कतीरा, चन्दन, असारून।

प्रतिनिधि—तज, कुलञ्जन।

अपमिश्रण—

१ बाजार में सिहली दालचीनी मे प्राय. भारतीय दालचीनी का मिश्रण कर बेचा जाता है। या फिर भारतीय दालचीनी ही सिहली दालचीनी के नाम से बेची जाती है। इसमे चीनी दालचीनी भी मिला देते हैं।

२ असली दालचीनी मे जगली दालचीनी की भी पर्याप्त मिलावट होती है।

३. व्यावसायिक सैगन दालचीनी भी मिलावट के रूप मे उपलब्ध होती है।

४ क्वचित् जावा दालचीनी का भी मिश्रण कर दिया जाता है।

५. दालचीनी वर्ग के अनेक क्षुप ऐसे होते हैं, जिनकी छाल भी असली दालचीनी की छाल मे मिला दी जाती है। किंवा स्वतन्त्र रूपेण इन छालो को रजित कर एव दालचीनी तैल से सुगन्धित कर धूर्त व्यापारी बेचकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

परीक्षण—असली दालचीनी से नकली दालचीनी से पृथक् कर पहचानने के लिये परीक्षण विधि की जानकारी आवश्यक होती है।

१ असली दालचीनी आधा से एक मि० मी० स्थूल होती है। इसका बाह्य भाग मटमैल पीताभ वर्ण का होता है। यह लम्बाई मे सूक्ष्म लहरदार रेखाओ तथा स्थान-स्थान पर छोटे दागो व छिद्रो से युक्त होती है। छाल अन्दर से गहरे लाल रङ्ग की तथा लम्बाई मे सूक्ष्म हलकी जालवत् रेखाकित होती है। असली दालचीनी का चूर्ण जल, घृत, तैल मे गरम करने पर पीतवर्ण का विलयन बनता है।

२ भारतीय दालचीनी सिहली की अपेक्षा अधिक स्थूल कम तीक्ष्ण तथा जल मे पीसने से लुआबदार हो जाती है।

३ जगली दालचीनी गाढ़े रङ्ग की अल्प सुगधित तथा स्पर्श मे रूक्ष होती है।

४ सैगन दालचीनी सिन्नामोमुम लूरिरियाइ नामक जाति से प्राप्त की जाती है, इसकी छाल सिहली दालचीनी की अपेक्षा मोटी, रङ्ग मे खाकस्तरी या खाकस्तरी भूरे रङ्ग की, बाह्य पृष्ठ पर गाठदार व स्वाद में मधुर होती है। इसमे तीक्ष्णता एव सुगन्ध बहुत कम होती है।

५. रजित सुवासित की गई अन्य वनस्पतियो की छाल को असली दालचीनी की रचना, गन्ध एव स्वाद अनुसार परीक्षा कर लेनी चाहिये। तज की छाल अधिक मोटी होती है जो स्वाद मे हलकी मीठी होती है।

गुण-धर्म विवेचन—

त्वच तु कटुक शीत कफकासविनाशनम् ।
मुखलामशमन चैव कण्ठशुद्धिकर 'नृपे' ।।
लघूष्ण कफवातघ्न विषशीर्षरुजा हरम् ।
बस्ति शोधनमित्येतत् प्रोक्त 'धन्वनिघन्टके' ।।
तिक्त स्वादूष्ण मधुर रुक्ष पित्तलमेव च ।
हृद्रोगवस्तिशमन दुर्नामहरग तथा ।
आमवातहर चैव शुक्रहृत् 'कैयदेवके' ।।
—नि० शिरोमणि

त्वच लघूष्ण कटुक स्वादु तिक्त च रुक्षकम् ।
पित्तल कफवातघ्न कण्ड्वामारुचिनाशनम् ।।
हृद्वस्तिरोगवातार्श क्रिमिपीनसशुक्रहृत् ।
उक्ता दारुसिता स्वाद्वी तिक्ता चानिलपित्तहृत् ।
सुरभि शुक्रला वर्ण्य मुखशोषतृपापहा ।।
पत्रक मधुर किञ्चतीक्ष्णोष्ण पिच्छिल लघु ।
निहन्ति कफवातार्शो हृल्लासारुचिपीनसान् ।।
—भा० प्र० नि०

त्वच लघूष्ण कटुक विशद स्वादु पित्तलम् ।
हृद्वस्तिरोगवातार्श. पीनसक्रिमिशुक्रनुत् ।।
पत्रमुष्ण लघु श्लेष्महृल्लासार्शोऽनिलापहम् ।।
—म० वि० नि०

त्वक् स्यादुष्णा तिक्ता स्वाद्वी
कट्वी लघ्वी रुक्षा रुच्या ।
जन्तावामे वातव्याधौ
श्लेष्मोद्रेके पाण्डौ पूज्या ।।
उष्ण तीक्ष्ण पिच्छिल स्वादु
पत्रमर्शोवातश्लेष्महृल्लाससादि ।।
—सि० भे० म० मा०

त्वक् पत्रन्तु लघूष्ण कासार्शोवन्हिमान्द्यहरम् ।
—षोडशाङ्गहृदयम् ।

त्वक् स्वाद्वी कटुतिक्तोष्णा पितला कफवातहृत् ।
दीपनी पाचनी रुच्या कामार्शोवन्हिमान्द्यनुत् ।।
दारुसिता नृपहिता मता त्वक्सदृशी गुणै ।
पत्रक तेजपत्राख्यमपि तद्गुणसम्मितम् ।।
—प्रि० नि० ।

वन्हिमान्द्यानिलहरमाध्मानाशेष नाशनम् ।
वान्त्युत्क्लेश प्रशमन मग्राहि दशनार्तिहृत् ।।
त्वाच तैल रजःस्राः [illegible] तोयेऽप्स्त निमज्जति ।।
—आ० वि०

गुण-धर्म विवेचना

प्राणवहस्रोतस् पर त्वक् का विशेष प्रभाव होता है। यह श्लेष्महर होने से काम-श्वास में उपयोगी है। व्योपान्तिका वटी, व्याघ्री हरीतकी आदि कासाधिकारोक्त, भार्गीगुड आदि श्वासाधिकारोक्त प्रयोगो मे इसका सम्मिश्रण इसी हेतु से किया जाता है। आचार्य वाग्भट ने कहा है—

त्वगेलाव्योषमृद्वीकापिप्पलीमूल पौष्करै. ।
लाजमुस्ता शठीरास्नाधात्रीफलविभीतकै. ।।
शर्कराक्षौद्रसर्पिर्भिर्लेहोहृद्रोगकासहा ।।
—अ० हृ० चि० ३

श्लेष्महर होने के साथ यह यक्ष्मानाशक भी है। सिनेमिक एसिड नामक यक्ष्मानाशक तत्व इसमें होने से प्राचीन काल से ही यक्ष्माहर प्रयोगों में इसकी योजना की जाती रही है। प्रसिद्धतम सितोपलादि चूर्ण, तालीसादि एव च्यवनप्राश आदि शास्त्रीय प्रयोगो मे त्वक् का सम्मिश्रण कर यक्ष्मा का सहार करने का प्रयास किया जाता है। मञ्जूषाकार ने त्वक् सयुक्त जिन प्रयोगो का वर्णन किया है वे यक्ष्मा रोग मे अतीव लाभप्रद है। ये प्रयोगद्वय निम्नांकित है—

प्रथम—

चातुर्जात मुष्ट्यन्मन कृष्णामुष्टी द्वे चादये ।
यष्टि श्वेता खर्जूराख्योमृद्वीका चेत्यञ्जल्यशः ।।
क्षुण्णैरेतैर्बद्धा वट्य कर्षोन्माना स्वयं वृष्या ।
वासापुष्पोद्भवैरेकैर्नून सेव्या वक्षोरुक् ।।

द्वितीय—

द्राक्षासितोपलाचाशीचपलाद्राविडीत्वच. ।
अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणिता ग्रहीतव्याश्चिकित्सकै. ।।
द्राक्षा सितोपले पक्त्वा तत्रान्यांश्चूर्णितान्क्षिपेत् ।
अय लेहोऽमृतास्वादः शोषयेच्छोषमप्यरम् ।।
—सि० भे० मञ्जूषा

राजयक्ष्मा के कीटाणुओं पर इसके तैल का प्रभाव सत्वर होने से इसके तैल को खिलाते हैं किंवा इसका सूचीवेध देते हैं।

यह हृदयोत्तेजक एवं रक्तशोधक होने से हृदय-दौर्बल्य एवं रक्तविकारों में भी उपयोगी है। कहा गया है—

त्वगो दारुसिताकन्यासारोत्थरजसान्वित ।
पीलितो हन्ति रक्तोत्थजाता हृद्वेपनव्यथाम् ।

र० त० २१

ओजोवर्धक होने के कारण भी इसका अधिक महत्व है क्योंकि प्राणो का सबल ओज ही है। उपर्युक्त त्वगादिलेह (अ० हृ०) को हृदयरोगों में भी हितावह कहा है। रक्तपित्त में भी इसे उपयुक्त कहा है किन्तु इन योगो मे त्वक् माधुर्य से परिपूर्ण होनी चाहिए। एलादि वटी, सितोपलादि चूर्ण, खण्डकूष्माण्डक एवं वासाखण्डकूष्माण्डकरसायन आदि रक्तपित्तहर प्रयोगों में इसकी योजना की जाती है।

यह दीपन, पाचन, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक एवं ग्राही होने से अरुचि, अग्निमांद्य, आमदोष, उदरशूल, ग्रहणी, अर्श आदि रोगो को दूर करता है। इसके सेवन से आमाशय की श्लेष्मिक कला को उत्तेजना मिलती है जिससे आमाशयिक रस मे वृद्धि होती है। सुतरां अन्न का पाचन सम्यक् होता है। जब अतिसार मे मल के साथ रक्त आने लगे, बस्ति-गुदमेढ्र मे वातवेदना हो एवं मल विसर्जन के पूर्व या पश्चात् अधिक शूल होने लगे तो घृत चिकित्सा उपयोगी होती है। महर्षि सुश्रुत ने निम्नांकित जिस घृत का वर्णन किया है वह उक्त लक्षणों के साथ त्रिदोषज अतिसार मे भी हितावह है—

दार्वीत्वक्पिप्पली शुण्ठीलाक्षाशक्रयवैर्घृतम् ।
संयुक्तं भद्ररोहिण्या पक्वं पेयादिमिश्रितम् ॥
त्रिदोषमप्यतीसारं पीतं हन्ति सुदारुणम् ॥

—सुश्रुत० उ० ४०/१०५

दार्वीत्वक् दारुहरिद्रात्वक्। अन्ये दार्वी दारुहरिद्रा, त्वक् त्वचमाहुः। —डल्हण

विसूचिका में विसूचीक्षपणक्वाथ का त्वक् प्रमुख द्रव्य है—

त्वक् सुमैल सुवर्णार्धं मरिचं पित्तकारिणी ।
पृथगक्षं गतं क्वाथो विसूचीक्षपणक्षमः ॥

—सि० भे० म० मा० ४/२७२

वहि परिमार्जन प्रयोगो मे भी इसकी योजना प्रशस्त है। खल्ली (उद्वेष्टन) विसूचिका का मुख्य उपद्रव है। खल्ली की परिभाषा मे कहा है—

खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटनी ।

च० चि० २८

इसमें त्वगादि उद्वर्तन किंवा तैल का प्रयोग आचार्य गोविन्ददास ने लिखा है—

त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठैरम्लप्रपिष्टैः
सवचाशताह्वैः ।
उद्वर्तनं खल्लि विसूचिकाघ्नं
तैलं विपक्वञ्च तदर्थकारि ॥

—भै० र०

योग को सुगन्धित बनाने या हृल्लास, वमन आदि निवारण हेतु कतिपय विरेचन योगो मे भी इसकी योजना का उल्लेख मिलता है—

त्रिवृत्कल्ककषायेण साधितः ससितो हिमः ।
मधुत्रिजातसंयुक्तो लेहो हृद्यं विरेचनम् ॥
त्वगेलाभ्यां समा नीली तैस्त्रिवृत्तैश्चशर्करा ।
चूर्णं फलरसक्षौद्रसक्तुभिस्तर्पणं पिबेत् ॥
वातपित्तकफोत्थेषु रोगेष्वल्पानलेषु च ।
नरेषु सुकुमारेषु निरपायं विरेचनम् ॥
त्वक्केसराम्रातकदाडिमैला-
सितोपलामाक्षिकमातुलुङ्गैः ।
मद्यैश्च तैस्तैश्च मनोऽनुकूलै-
र्युक्तानि देयानि विरेचनानि ।

—अ० हृ० क० २

अधिक मदिरापान से उत्पन्न मदात्यय, पानात्ययादि रोगो में भी इसका सेवन उपयोगी कहा गया है—

सेवेत वा मरिचजीरकनागपुष्प-
त्वक्पत्रविश्वचविकैर्युतान् रसांश्च ।

सूक्ष्माम्बरस्तु तद्धिमाश्च सुगन्धिगन्धान्
पानोद्भवान्नुदति सप्तगदानशेषान् ।।
—सुश्रुत० उ० ४७/४२

उत्तेजक होने से नाडीदौर्बल्य, पक्षाघात आदि वात विकारो मे इसका बाह्याभ्यन्तर प्रयोग देखने को मिलता है। योगराज गुग्गुल एव एकादशशतिक प्रसारणी तैल इसके उदाहरण हैं। इनमे त्वक् का समावेश किया मिलता है।

यह वृक्को को उत्तेजित करने के कारण मूत्र जनन है। मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह आदि रोगो मे इस प्रयोजन के लिये इसे प्रयुक्त किया जाता है। प्रमेह पर प्रहार करने के लिए प्रमेहप्रहार चूर्ण मे इस द्रव्य की उपादेयता व्यक्त की गई है। निम्नांकित चूर्ण शुक्रमेह की प्रशस्त औषधि है—

कृष्णगुन्द्राश्मभेदाब्धिशोषदारुसितारज ।
शुक्रदोष निहन्त्येव दुग्धैरर्धसितोपलम् ।।
—सि० भै० म० मा० ४/५६७

इसके पत्र (तेजपत्र) मधुमेह की उत्तम ओषधि सिद्ध हुई है। यह वाजीकरण होने से ध्वजभङ्ग मे भी उपयोगी है।

प्रात पर्युषितमुखो दारुसितां किमपि सञ्चर्व्य।
वल्लालया प्रलेपाज्जायेत ध्वजसमुच्छ्राय ।।
—सि० भै० म० मा० ५/१२४

शिश्न पर इसे पीसकर लेप किया जा सकता है, किंवा इसके तैल का भी मर्दन किया जा सकता है। चक्रदत्त मे वर्णित गोधूमाद्यघृत उत्तम वृष्ययोग है। इसमे त्वक् मिलाया जाता है अत यह बाह्याभ्यन्तर वृष्ययोगो मे उपयोगी सिद्ध होता है।

गर्भाशय को उत्तेजित करने मे यह श्रेष्ठ है। इससे गर्भाशय का सकोच होता है। रज कृच्छ्रता मे एव क्षयार्तव किंवा प्रसवोपरान्त उत्पन्न गर्भाशयशैथिल्य को समाप्त करने के लिए इसे उपयोग मे लाना प्रशस्त है।

आन्त्रिकज्वर मे जन्तुघ्न के रूप मे इसका उपयोग किया जाता है। यह रक्तोत्क्लेशक, उत्तेजक, वेदना स्थापन एव लेखन होने से बहुत से रोगो मे बाह्यप्रयोगार्थ भी उपयोग मे लाया जाता है। मुखशोधन, मुखदुर्गन्धनाशन एव दांतो को दृढ बनाने के लिये इसे मुख मे रखकर चबाया जाता है किंवा इसके प्रयोग से बने मजन से दन्तमजन किया जाता है। इसे चबाने मे वमन, उत्क्लेश आदि का भी शमन होता है। न्यच्छ, व्यग आदि चर्मविकारों मे इसका पतला लेप प्रशस्त कहा गया है। नाडीशूल और शिर शूल मे भी इसका लेप हितावह है। शिरःशूल मे इसके नस्य का विधान है—

त्वक्पत्र शर्करारास्नानाावन तण्डुलाम्बुना।
क्षीरसर्पिर्हित नस्य (शिररोगे च पैत्तिके) ।।
—च० द०

शोथ वेदनायुक्त स्थानो पर भी इसका लेप हितकारी है। दन्तशूल, वृश्चिकदश, व्रण आदि मे इसके तैल का उपयोग किया जाता है। तैल के उपयोग का प्रकरण पृथक् से लिखा जा रहा है, वहा इसका विस्तृत वर्णन किया जायेगा। क्षयज व्रणो के शोधन एवं रोपण के लिये इसका तैल विशेष लाभदायक कहा गया है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे के आखिर मे गरम और खुश्क होती है। इसका तैल तीसरे दर्जे मे गरम और खुश्क है। हकीम बुकराम का कहना है कि यह मनुष्य की शक्ति को बनाये रखने मे उत्तम है। यह शरीर मे पहुचते ही बारीक परमाणुओ के रूप मे निखर कर रक्त मे शीघ्र मिल जाती है। शरीर के सब दोषो को यह खुश्क करके बिखेर देती है और बदबू पैदा नही होने देती है। कामशक्ति को बढाने में और कामेन्द्रिय मे उत्तेजना पैदा करने मे यह एक अच्छी वस्तु है। यह अग्नि को तेज करती है, काबिज है, खून को साफ करती है। हर एक दोष को समानता मे ला देती है। यह दिमाग के अन्दर रतूबत को सुखा देती है, पट्ठो को फायदा पहुँचाती है और पेशाब व मासिकधर्म को जारी रखती है।

इसके अलावा यह बवासीर, खासी, दमा, जलोदर, ज्वर, पागलपन और मालीखोलिया मे भी मुफीद है। कफ की वजह से अगर आवाज बैठ गई हो तो यह उसे खोल देती है। मुह की बदबू को मिटाती है। सीने मे जमे हुए चिकने कफ को छांट देती है। वमन को रोक देती है। इसके तेल को सिर ललाट और कनपटी पर लगाने से सर्दी के सिर दर्द मे आराम हो जाता है। इसको आख पर लगाने से आख का फड़कना बन्द होकर आखो की ज्योति बढ़ती है। अण्डकोष मे पानी उतर आने की बीमारी में भी यह फायदा पहुचाती है। यह स्मरणशक्ति को बढाती है। पक्षाघात और मृगी मे लाभदायक है। कम्पवात मे भी यह लाभ पहुंचाती है। कान के दर्द मे मुफीद है। इसको मुह में चबाकर इसका रस कामेन्द्रिय के अगले हिस्से पर लगाकर स्त्री प्रसंग करने से दोनो को प्रसन्नता होती है। यह हिचकी और बिच्छू के विष पर भी फायदा करती है।

नव्यमत—यह उत्तम श्वासकेन्द्रोत्तेजक (Respera-tory centre stemullant) है।

आर एन खोरी के अनुसार यह हृद्य, वायुनाशक, आक्षेपहर, सुगन्धित, उष्ण, सकोचक व रोगोत्पादक जीवाणु नाशक है। यह अन्य औषधियों के साथ दी जाती है, इसका तैल सकोचक नही है। यह नाड़ी व नाडीप्रतान मे उत्तेजना पैदा करती है। भेषजोपयोगी मात्रा में सेवन करने पर यह आध्मान, जिह्वास्तम्भ, ग्रहणी, आन्त्रशूल, अरुचि व वमन निवारण के लिए उत्तम औषधि है। जन्तुघ्न होने से उष्णवात मे दालचीनी का सूचीवेध देते हैं। रोगनाशक की भांति यह आन्त्रिक ज्वर मे व्यवहृत होती है। यह गर्भाशय पर विशेष क्रिया करती है। गर्भाशय से रक्तस्राव होने पर दालचीनी हितकर है। यह आमातिसार व रेचक औषधिजन्य उदर पीड़ा मे विशेष उपकारी है। यक्ष्मा मे इसका सूचीवेध दिया जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार दालचीनी का उपयोग औषधियो में बहुत परिमित रूप मे किया जाता है। यह अग्निवर्धक, आध्मानहर और सकोचक गुण वाली है। आतो के रोगो मे दी जाने वाली औषधियो के साथ इसको भी मिलाया जाता है। दातो के दर्द एव स्नायुशूलों मे इसके तैल का बाह्य प्रयोग किया जाता है।

वुडवर्ड के मत से दालचीनी एक उत्तम अग्निदीपक, पेट के आध्मान को मिटाने वाली और शान्तिदायक वस्तु है। यह हृदय को उत्तेजना देने वाली, आक्षेपनिवारक, कोष्ठबद्धता, पेचिश और ज्वर मे उपयोगी है।

पाश्चात्य द्रव्यगुणविज्ञान के लेखक डा० श्री रामसुशीलसिंह ने लिखा है कि दालचीनी वातानुलोमन ग्राही होता है। अतएव अतिसार मे उपयोगी है। सिन्नेमन पाउडर 'एरोमेटिक पाउडर आफ चाक' एव 'एरोमेटिक पाउडर आफ चाक विद् ओपियम' नामक योगो मे यह पडता है।

सामान्य प्रयोग

बाह्य प्रयोग—

१ शिर शूल—(क) दालचीनी को जल में घिसकर गरम कर ललाट पर लेप करने से शिर.शूल मिटता है।

(ख) दालचीनी और सोठ को चन्दन जैसा महीन घिसकर लेप करने से भी लाभ होता है।

(ग) एक कटोरी पर पतला वस्त्र बाधकर उस पर दालचीनी चूर्ण को रख, चूर्ण पर अभ्रक का पत्र रखें और उस पर आग का अगारा रख देने से कटोरी मे जो इसका अर्क किंवा तैल सग्रहीत हो, उसे शीशी में रख लें। इसे सिर पर लगाने से भी सिर का दर्द मिट जाता है।

२. व्यङ्ग (झाई-मुखछाया)—दालचीनी, मजीठ, हल्दी के सूक्ष्म चूर्ण को दूध मे पीसकर पतला लेप करने से व्यङ्ग, न्यच्छ आदि नष्ट होकर मुख की कान्ति बढ़ाने लगती है।

३. वृश्चिकदश—दालचीनी और अजीर को पीसकर दश स्थान पर लेप कर दें।

४. भगन्दर—दालचीनी, लौंग, जावित्री, जायफल, कपूर को गोमूत्र मे पीसकर लेप करने से भगदर मे लाभ होता है। यदि भगन्दर पुराना हो तो इस लेप से वत्ती को तर कर घाव मे रखना चाहिये।

५. ध्वजभङ्ग—प्रात. उठते ही वासे मुख से एक-दो ग्राम दालचीनी को भली-भाति चबाकर शिश्न पर लेप करें। सूखने के बाद बिना जल से धोये इस लेप को हटाकर सहवास करने से ध्वज उच्छ्राय होता है।

६. शीघ्रपतन—(क) दालचीनी, लौंग, सोठ, अकरकरा, सकमूनिया बराबर ले अदरक के रस में गोलिया बनाकर रख लें। सहवास से पूर्व गोली को शहद मे घिसकर गरम कर लेप करने से शीघ्रपतन मिटता है।

(ख) दालचीनी, अकरकरा, कबाबचीनी एक-एक ग्राम पीस कर शहद मे मिलाकर शिश्न पर लेप करने से बहुत स्तम्भन होता है।

७. मुखदुर्गन्ध—दालचीनी को मुख मे रखकर चबाने से मुख की दुर्गन्ध दूर होती है तथा इसके निरन्तर प्रयोग से दात भी मजबूत होते हैं। मजन मे इसके साथ मेन्थल व शुभ्रा चूर्ण मिलाना चाहिये।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

१. अतिसार—(क) दालचीनी और कत्था चूर्ण मधु के साथ सेवन करें।

(ख) इस चूर्ण मे जायफल चूर्ण मिलाकर देने से अधिक लाभ होता है।

(ग) दालचीनी १ ५ ग्राम, गाल १ ५ ग्राम और बेलगिरी ३ ग्राम चूर्ण को गुडयुक्त दही के साथ देने से आमातिसार मे लाभ होता है।

२. आध्मान—(क) दालचीनी, सोंठ, इलायची बीज ३-३ ग्राम चूर्ण भोजन के पूर्व सेवन करने से आध्मान, अजीर्ण आदि दूर होते हैं।

(ख) दालचीनी चूर्ण ३ ग्राम और छोटी हरड चूर्ण १० ग्राम का क्वाथ बनाकर पीने से शौच शुद्धि होकर आध्मान दूर होता है, अग्नि प्रदीप्त होती है।

३. छर्दि—(क) दालचीनी का चूर्ण शहद के साथ सेवन करें।

(ख) दालचीनी चूर्ण को लौंग के क्वाथ के साथ सेवन करना भी हितकारी है।

४ अजीर्ण—(क) दालचीनी, इलायची, लौंग, चित्रक, शुद्ध सुहागा, कालीमिर्च का चूर्ण ३ ग्राम गरम जल से सेवन करे।

(ख) दालचीनी, सोठ, इलायची समभाग लेकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को भोजन के पूर्व एव पश्चात् सेवन करने से भी अजीर्ण मे लाभ होता है।

५. विबन्ध—दालचीनी और हरड का क्वाथ विबन्ध को दूर करता है।

६. प्रतिश्याय—दालचीनी और छोटी हरड का फाण्ट बनाकर पीने से प्रतिश्याय, कास मे लाभ होता है।

७. गुल्म—दालचीनी व नागकेशर चूर्ण को मधु के साथ सेवन करें।

८. शीघ्रपतन—दालचीनी और काले तिल बराबर लेकर शहद मिला ७ ग्राम की गोलिया बना लें। एक गोली सोते समय खाने से से शीघ्रपतन नही होता।

९. गण्डमाला—दालचीनी, तेजपात, इलायची बीज १०-१० ग्राम, निम्बघनसत्व, काञ्चनारघनसत्व, वरुणघनसत्व २०-२० ग्राम का चूर्ण बनाकर २-३ ग्राम चूर्ण काञ्चनारक्वाथ के साथ साथ सेवन करना गण्डमाला मे लाभदायक है।

१०. हिक्का—दालचीनी और रूमीमस्तङ्गी का क्वाथ बनाकर पीने से हिक्का का निवारण होता है।

११. शुक्रमेह—दालचीनी, समुद्रशोष, पाषाणभेद, पलास (ढाक) का गोंद प्रत्येक २५-२५ ग्राम, मिश्री ५० ग्राम सबका सूक्ष्म चूर्ण कर २-२ ग्राम चूर्ण फीके दूध से प्रात -साय सेवन करना शुक्रमेह मे हितकारी है।

१२. हृदयरोग—रक्त की कमी से होने वाली हृदय की घबराहट में दालचीनी चूर्ण १ ग्राम, एलुआ

चूर्ण १२५ मि० ग्राम और कासीसभस्म १२५ मि० ग्रा० चूर्ण को जल के साथ सेवन करना चाहिए।

१३. कष्टार्तव—दालचीनी, सोंठ, एलुआ और सम्भालुबीज का चूर्ण उष्ण जल के साथ सेवन करने से आर्तव का कष्ट रहित प्रवर्तन होता है।

१४. असृग्दर—दालचीनी चूर्ण अशोकछाल के क्वाथ या फाण्ट के साथ देना उपयुक्त है।

१५. सूतिकारोग—(क) प्रसवकाल मे पीड़ा बढ़ने पर तथा गर्भाशय शैथिल्यजन्य अति रज स्राव में गर्भाशय की मासपेशियो के शैथिल्य को दूर करने के लिये दालचीनी, पीपलामूल और भांग का चूर्ण देना हितकारी है।

(ख) सूतिका को प्रारम्भ में, वातप्रकोप से एव दूषित कीटाणुओं से बचाने के लिये कुछ दिनों तक इसके चूर्ण मे पीपलामूल चूर्ण मिलाकर सेवन कराना चाहिये।

१६. रक्तपित्त—दालचीनी चूर्ण व इलायची चूर्ण को वासास्वरस से सेवन कराना लाभप्रद है।

१७ कास—दालचीनी चूर्ण को वासाक्षार के साथ दें।

१८. श्वेतप्रदर—दालचीनी १ ग्राम, सालम-मिश्री २ ग्राम और शुक्तिभस्म ३ ग्राम को जल के अनुपान से देवें। यह प्रमेह मे भी लाभप्रद है।

१९. अरुचि—(क) दालचीनी, नागरमोथा, इलायची और धनिये का चूर्ण अरुचि नाशक है।

(ख) दालचीनी, अजवाइन और दारुहल्दी के चूर्ण को जिह्वा पर मलने से अरुचि मिटती है।

त्वक् (दालचीनी) तैल—दालचीनी का तैल सिंहली दालचीनी की छाल से आसवन द्वारा प्राप्त किया जाता है। इस तैल को दालचीनी का तैल, रोगन दालचीनी, अंग्रेजी में सिन्नेमम आयल एव लैटिन मे ओलियम सिन्नेमोमाई कहते हैं। इसमे ५५ से ६८ प्रतिशत सिन्नेमिक एल्डिहाइड, लगभग १० प्रतिशत यूजोनाल तथा अल्प मात्रा मे मेथिल-एन-अमिल कीटोन, पी० साइमीन आदि रासायनिक द्रव्य पाये जाते हैं। यह तैल ताजी अवस्था मे हल्के पीले रंग का द्रव होता है, जो रखने पर (पुराना होने पर) कालान्तर से लालिमा लिये भूरे रग का (Reddish Brown) हो जाता है। गन्ध एवं स्वाद में यह तैल छाल (दालचीनी) की ही भाति होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व १०-३० तक होता है. यह पानी में डालने से डूब जाता है। ८० पौण्ड दालचीनी से २॥ प्रतिशत उडनशील तैल तथा ५॥ % स्थिर तैल प्राप्त किया जा सकता है। तैल की शुद्धता एव शक्ति प्रमापीकरण के लिए तैलगत "सिन्नेमिक ऐल्डिहाइड्स" का प्रमापक किया जाता है। इसके सरक्षण के लिये इसको अच्छी तरह मुख बन्द शीशियों में शीतल स्थान मे रखना चाहिए और प्रकाश से बचाना चाहिए।

छाल (दालचीनी) के अतिरिक्त इस वृक्ष की पत्तियों व मूल से भी तैल प्राप्त किया जाता है। पत्तियों का तैल कुछ गहरे रग का उडनशील होता है। यह छाल के उड़नशील तैल से बिलकुल भिन्न है। इसमे कुछ लवग जैसी तीव्र गन्ध आती है, तथा इसमें ७०-९५ प्रतिशत यूजेनाल रहने के कारण दालचीनी तैल मे इसकी मिलावट की जाती है, जिसकी पहचान उसमे बढी हुई सिन्निमिक एल्डिहाइड की मात्रा से की जा सकती है। इस परीक्षण को असफल करने के लिए इसमें रासायनिक विधि द्वारा निर्मित सिन्नेएल्डि को मिला देते हैं, तथापि इसकी पहचान उसके हरितवर्ण (क्लोरिन की उपस्थिति) एव बढे हुए विशिष्ट गुरुत्व आदि मे हो जाती है। यह पत्तो का तैल लौंग के तैल जैसा उपयोग मे लाया जा सकता है तथा आमवातादि में मालिश के लिए विशेष उपयोगी है।

इस वृक्ष की मूल से प्राप्त तैल पीले रङ्ग का तथा पानी से हलका होता है। यह पानी पर फैल जाता है। इसके फलो का तैल काले रङ्ग का होता है। इसके पुष्पो से अर्क तथा इत्र निकालते हैं। तैल से भी पानीय तैयार किया जाता है। यह ऐलोपैथिक चिकित्सा मे भी काम में लिया जाता है। इसके तैयार करने की विधि है—दालचीनी का तैल

१६ बूद, मेगनेशिया कार्बोनेट ५६ ग्रेन और पाण्प जल ६० औंस लेवें। पहले तैल को मेगनेशिया के साथ खरल मे मिला लेवें। फिर शनै:-शनै: मिला चलाकर त्वक् पानीय (Aqua Cinnamomi) बना लेवें। उसे छानकर उपयोग में लावें।

तैल प्रयोग—(१) दालचीनी का तैल कीटाणु नाशक (Antiseptic) है। आन्त्रिक ज्वर में दालचीनी का तैल व्यवहार किया जाता है। आंत के अन्दर आन्त्रिक ज्वर (Typhoid) कीटाणुओ को यह नष्ट करता है। आन्त्रप्रतिदूषक के रूप मे अन्य औषधियो के साथ इसे दिया जा सकता है।

(२) तैल मे स्थित सिनेमिक एसिड क्षय दण्डाणु रोधक-नाशक होने से क्षयजन्य अवस्थाओ मे उपयोगी है। इसे कैपसूल मे भरकर खिलाया जाता है या इसका सूचीवेध देते हैं। क्षयी के उत्पन्न व्रणो पर भी तैल का बन्धन करने से उनका शोधन रोपण होता है।

(३) दालचीनी का तैल शिरःशूल मे अधिक व्यवहार मे लाया जाता है। इसकी मालिश करने से दर्द मिट जाता है। इस तैल की मालिश ललाट एव शख प्रदेश (कनपटिया) पर करना चाहिए। यह कफ जन्य शिर शूल मे हितावह है।

(४) अतिसार मे तैल उपयोगी है। २-३ बूद चीनी या बतासे के साथ दिन मे तीन बार सेवन करना चाहिए।

(५) प्रतिश्याय तथा वातश्लेष्मिक ज्वर मे इसे सितोपलादि चूर्ण के साथ या कैपसूल मे भर कर देवें। इस तैल को सूघते रहने से प्रतिश्याय मे लाभ होता है।

(६) अजीर्ण, आध्मान, आमाशयिकशूल एव वमन आदि पाचन-सस्थान के विकारो मे इस तैल को मिश्री के साथ खिलाना लाभदायक है। दसगुनी मृतसजीवनी सुरा मिलाकर इसे अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

(७) कास एव कृमिरोग को मिटाने के लिए इस तैल को मधु में मिलाकर सेवन करना हितकारी है।

(८) दालचीनी का तैल पेट पर मलने से आंतों का खिचाव मिट जाता है।

(९) कर्णबाधिर्य में इस तैल को कान मे पुन:-पुन: टपकाया जाता है।

(१०) असृग्दर (अधिक रज स्राव) को मिटाने के लिए इस तैल को मिश्री के साथ सेवन करना हितावह है।

(११) दन्तशूल को मिटाने के लिए इस तैल से फोया तर कर लगाना चाहिए। यदि कृमि के कारण हो तो कृमिदूषित कोटर (गढ्ढे) मे यह फोया (तैलपूर्ण) रखना चाहिए। इससे उस दूषित स्थान की शुद्धि होकर दर्द दूर हो जाता है।

(१२) इसकी मालिश करने से वातजन्य विविध शूलों का शमन होता है। शोथ और वेदना स्वल्प हो जाने से रोगी को आराम मिलता है।

(१३) ध्वजभङ्ग (नपुंसकता) में इस तैल का शिश्न पर मर्दन करना चाहिए। वाजीकरण के लिए भी इसे इस प्रकार उपयोग मे लाया जा सकता है। एक भाग दालचीनी तैल में तीन भाग जैतून तैल मिलाकर प्रयोग में लाने से अधिक लाभ होता है किन्तु इस काल मे शिश्न को शीत जल से बचाना चाहिए।

(१४) विच्छू आदि के काटने पर भी दश स्थान पर इसका तैल लगाना चाहिए। इसमे शोथ और वेदना शान्त हो जाती है।

(१५) पूयमेह मे यह तैल व चन्दन तैल को बतासे मे मिलाकर खावें।

विविध कल्पनायें—

क्वाथ–(क) त्वक् ४ ग्राम, लौंग ६०० मि० ग्रा० और सोंठ १ ग्राम ८०० मि० ग्रा० इन तीनों को जौकुट कर एक लीटर पानी मे पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर ६०-६० मि० लि० की मात्रा मे ३-३ घण्टे से पिलाने से वात श्लेष्मिक ज्वर (इन्फ्लु-

एंजा) के रोगी का ज्वर कम होता है। बेचैनी, शिर-शूल आदि दूर होकर रोगी को आराम मिलता है। —वनौ० चन्द्रो०

(ख) त्वक्, लवङ्ग तथा इलायची प्रत्येक ६-६ ग्राम और लाल मिर्च १२ ग्राम लेकर उपर्युक्त विधि से क्वाथ बनाकर देने से विषूचिका का शमन होता है। —सि० भे० म० मा०

चूर्ण—(क) त्वक्, इलायची, तेजपत्र, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पिप्पली, मिर्च, सोंठ, चव्य, सोफ, हल्दी, दारुहल्दी, वायविडङ्ग, पाठा, समुद्र नमक, सेंधानमक, विड्नमक, कालानमक, शीशानमक, बेल-गिरि, अजमोद, पिप्पलीमूल, रास्ना, यवक्षार, सज्जीक्षार, वच इन सबका कपडछन चूर्ण बनाकर रख लें। इसमें से ३-६ ग्राम चूर्ण खाकर ऊपर से १० ग्राम एरण्ड तैल गरम पानी में मिलाकर पीयें। इस औषधि से सब प्रकार के अर्श, पार्श्वशूल, श्वास, प्रमेह, कृमि, ज्वर, कामला, हृदयरोग, उदावर्त, आमवात, बस्तिशूल, संग्रहणी, वातव्याधि, भगन्दर, उदररोग व अग्निमांद्य आदि रोग दूर होते हैं। यह विजय चूर्ण कहलाता है। —बंगसेनसंहिता

(ख) दालचीनी, सोंठ, लौंग, मिर्च शीतलचीनी, तज, पीपल, नागकेशर, छोटी इलायची के बीज नेत्र-बाला, श्वेत और कृष्ण जीरक, अगर, तगर, तेज, पात, कमलगट्टे की गिरी, वशलोचन प्रत्येक १० ग्राम, कपूर २ ग्राम। समस्त द्रव्यों को कूट छानकर इस चूर्ण के बराबर बारीक चीनी मिला लें। ५ ग्राम चूर्ण भोजन से पूर्व जल से सेवन करें। यह दीपन-पाचन है। यह अतिसार को मिटाता है। यह यूनानी पद्धति में सफूफशीरी के नाम से जाना जाता है। —यूनानी सि० यो० संग्रह

(ग) दालचीनी, तेजपात, और छोटी इलायची के दाने (त्रिजात) इन तीनों का मिश्रित चूर्ण ३ ग्राम की मात्रा में भोजन से पूर्व शहद के साथ लेने से अग्निमांद्य, अरुचि, आमदोष, छर्दि, हृल्लास और अपचन आदि विकार मिटते हैं। इसके चूर्ण से मंजन और क्वाथ से कुल्ले करने से दांतों की पीड़ा का शमन होता है, जिह्वा की शून्यता निवृत्ति होती है। मुख का बेस्वादुपन दूर होता है तथा जिह्वा और कण्ठ में लगा हुआ मैल साफ हो जाता है। नित्य दंत मंजन में इस चूर्ण को मिला देने से दूषित कीटा-णुओं से दांतों की रक्षा होती है। यह त्रिजात चूर्ण कहलाता है। —शा० संहिता

(घ) उक्त त्रिजात किंवा त्रिगन्ध चूर्ण में नाग-केशर मिला देने से चतुर्जात कहलाता है। यह चूर्ण रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण कुछ पित्तकारक, वर्ण्य, रुचिकारक और कफपित्तनाशक है। —शा० संहिता

(ङ) दालचीनी, तेजपात, इलायची के दाने, सोंठ, त्रिफला, विडङ्ग, दाख, साठी, के पुराने चावल इन सबको बराबर लेवें और चूर्ण कर सबके बराबर मिश्री पीसकर मिलावें। इस चूर्ण को प्रातःकाल सेवन करना चाहिए। इससे दाद, रक्तविकार, पित्त-विकार, कुष्ठ, अम्लपित्त, पामा आदि रोग नष्ट होते हैं। —यो० चिन्ता

(च) दालचीनी से इलायची, इलायची से पिप्पली दुगुनी, पिप्पली से वंशलोचन दुगुना और वंशलोचन से दुगुनी मिश्री लेकर सबका महीन चूर्ण करें। घी तथा मधु के साथ इसे चाटने से यह चूर्ण श्वास, कास, क्षय, जिह्वा की जड़ता, अरुचि, मन्दाग्नि, पार्श्व-शूल, हाथ-पैर-कन्धों की जलन, ज्वर तथा उर्ध्वगामी रक्तपित्त, इनको शान्त करता है। इसकी मात्रा १ ग्राम है। यह सर्वविदित सितोपलादि चूर्ण है। —च० सं०

(छ) दालचीनी, छोटी इलायची के दाने और सोंठ सब समभाग लेकर महीन चूर्ण करलें। ५०० मि० ग्रा० से ३·५ ग्राम तक इस चूर्ण को सेवन करने से अग्निमांद्य, आमप्रकोप, प्रतिश्यान, (नूतन) आदि रोग शान्त होते हैं। यह कीटाणुनाशक है। आन्त्रिक-ज्वर में यह लाभप्रद है।

वटी—(क) दालचीनी १२ ग्राम, इलायची दाने ६ ग्राम, मुलहठी का सत्व ६ ग्राम, पिपरमेन्ट २ ग्राम, कपूर २ ग्राम लेकर इन्हें कूट-पीसकर पानी के संयोग से सरसों दाने के बराबर गोलियां बना लें।

यदि किसी कारण से गला बैठ गया हो तो ४-५ गोली चूसें। यह स्वरभेद की उत्तम दवा है जो कठ सुधारक गोली के नाम से जानी जाती है।

(ख) दालचीनी, इलायची बीज, शुद्ध गन्धक इनका चूर्ण तथा शुद्ध गूगल समभाग लेकर एरण्ड तैल मे घोटकर एक-एक ग्राम की गोलिया बनालें। १-२ गोली गरम जल से दिन में २-३ बार सेवन करने से वातरोग नष्ट होते हैं। —भा० भै० र०

(ग) दालचीनी चूर्ण ४ ग्राम, सोंठ चूर्ण २ ग्राम, मुलैठी चूर्ण ४ ग्राम, बीज रहित मुनक्का ४ ग्राम, मीठे बादाम की गिरी १२ ग्राम कडुवे बादाम की गिरी ४ ग्राम और शक्कर ४ ग्राम इन सबको एकत्र थोडे जल के साथ खूब घोट-पीसकर ३७५ मि० ग्रा० की गोलिया बनालें। दिन-रात मे कई बार एक-एक गोली मुख मे रख कर चूसते रहें। इससे शुष्क कास पर शीघ्र लाभ होता है। प्रतिश्याय की प्रारम्भिक अवस्था मे भी यह बहुत लाभप्रद है।

आसव —(क) दालचीनी चूर्ण १ भाग मे मद्य (७० से ८० प्रतिशत) ५ भाग मिला, बोतल मे भर मजबूत कार्क बन्द कर रखें। सात दिन बाद अच्छी तरह फिल्टर कर शीशियों मे भर लें। ५०० मि० ग्रा० से ४ ग्राम तक की मात्रा मे जल मिश्रण कर सेवन करने से अतिसार, आमातिसार, अग्निमांद्य, अजीर्ण तथा अन्य उदररोग नष्ट होते हैं।

(ख) दालचीनी का मोटा चूर्ण ७० ग्राम और रैक्टिफाइड स्प्रिट ५०० ग्राम मिलाकर उक्त विधि से मद्यासव का निर्माण कर लें। यह भी उक्त प्रकार मे लाभदायक है।

मात्रा—२० बूद तक। यह उत्तेजक, पाचक, स्तम्भक और वातहर है। —प्र० वनौ० शिरो० भा० ३

अर्क—दालचीनी को १० गुना जल में मिलाकर नलिका यन्त्र द्वारा अर्क खींच लेवें।

मात्रा—१-२ औंस। यह मूढ़गर्भ मे उपयोगी है।

अवलेह—(क) दालचीनी १० ग्राम, छोटी इलायची के बीज २० ग्राम, पिप्पली ४० ग्राम, वंशलोचन ८० ग्राम, मिश्री १६० ग्राम, मुनक्का (बीज रहित) ३२० ग्राम लेवें। मुनक्का और मिश्री को एक पात्र में साथ ही डाल कर कुछ जल डालकर मन्द अग्नि पर पकावें। इसके बाद शेष द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर अवलेह सिद्ध कर लेवें। यह अमृतास्वाद नामक अवलेह राजयक्ष्मा के रोगी के लिये परमोपयोगी है।

—सि० भै० मञ्जूषा

(ख) दालचीनी, इलायची, सोंठ, मिर्च, पीपल, मुनक्का, पीपलामूल, पुष्करमूल, धान की खील, नागरमोथा, कचूर, रास्ना, आवला, बहेड़ा का समभाग चूर्ण कर इसमें उपयुक्त शर्करा घृत और शहद मिलाकर लेह बनालें। इस लेह के सेवन से खासी और हृदयरोग मिटते हैं।

(ग) दालचीनी ६ ग्राम, जावित्री ६ ग्राम, जायफल ६ ग्राम लौंग ६ ग्राम, इलायची ६ ग्राम, कस्तूरी २ ग्राम, मुलैठी ६ ग्राम, केसर १ ग्राम, सालममिश्री ६ ग्राम, शतावरी ३६ ग्राम, कोच बीज ६ ग्राम, गोखरू ३६ ग्राम, वंशलोचन ६ ग्राम, भीमसेनी कपूर १ ग्राम, बादाम २४ ग्राम, भाग ६० ग्राम, गाय का घी १०८ ग्राम, दूध ३ किलो, मिश्री ३ किलो और मधु १६८ ग्राम लेवें। दूध मिश्री व मधु की चाशनी कर अन्य दवाओं का कपड़छन चूर्ण मिलाकर माजूम बना लेवें। यह अग्निबलानुसार सेवन करने पर नपुंसकता को नष्ट करता है, बल-वीर्य को बढ़ाता है, शरीर को पुष्ट करता है, कब्ज मिटाता है और भूख को जगाता है। —र० रा० महोदधि भा० २

(घ) दालचीनी ८ ग्राम, अगर ४ ग्राम, तगर ८ ग्राम, इन्द्रयव ८ ग्राम, लौंग ४ ग्राम, कुलजन ४० ग्राम बहिमन सफेद ४८ ग्राम, बहिमन लाल ४८ ग्राम, सौंफ ४ ग्राम, सेमर की छाल ८ ग्राम, सकाकुलमिश्री ८० ग्राम, वंशलोचन ८० ग्राम, कतीरा गोंद ८ ग्राम, जायफल ८ ग्राम, बनफ्शा ८ ग्राम, बादाम ८ ग्राम, सोंठ १२ ग्राम और मधु ५ किलो २५० ग्राम। इन सब दवाओं को कूट कपड़छन कर मधु मे मिलाकर खाने से नपुंसकता दूर होती है, शरीर पुष्ट होता है। इससे मन्दाग्नि और कटिशूल मिटकर शरीर मे स्फूर्ति और बल का संचार होता है। —र० र० महो० भा० २

नस्य—दालचीनी, तेजपात, रास्ना, और बाड़ को चावलों के धोवन के साथ पीसकर नाक मे टपकाने से पित्तजन्य शिर:शूल का शमन होता है।

—च० द०

उद्वर्तन—दालचीनी, तेजपात, रास्ना, अगर, सहजना की छाल, कूठ, वच, और सोये का समभाग चूर्ण कर कांजी मे पीस मलने से हैजे मे होने वाली हाथ-पैरो की ऐंठन मिटती है। इन औषधियों से सिद्ध किया गया तैल भी गुणकारी है। —भै०र०

तैल—दालचीनी ३० ग्राम, कुचिला ३० ग्राम, अच्छी खाने की सुरती ३० ग्राम, लहसुन ४० ग्राम, भिलावा १० ग्राम, मीठा तैल २०० ग्राम। एकत्र मिलाकर मन्द-मन्द अग्नि से पकावें जब दवा जल जावे तब तैल छानकर शीशी मे रखलें। इस तैल की मालिश करने से गठिया व अन्य दर्द मिट जाते हैं।

—र० रा० महो० भा० २

पेटेण्ट प्रयोगों मे त्वक् (दालचीनी)—मोहता रसायनशाला हाथरस के "श्वासपानक" में अर्जुन, सोम, वासा आदि औषधियो के साथ दालचीनी भी डाली जाती है। यह कास-श्वास प्रतिश्याय आदि रोगो मे उपयोगी पेय है। इसी प्रकार चरक फार्मा० के "कोकोल पिल" और सीरप में दालचीनी है। यह स्वरभेद, कास आदि रोगो की उत्तम औषधि है। है। मेडिकल इथिक्स आफ इण्डिया द्वारा निर्मित "कोफीन टिकिया" मे तुलसी मधुयष्टि आदि कास नाशक द्रव्यों के साथ दालचीनी तैल डाला जाता है। यह कास, प्रतिश्याय, कण्ठशोथ आदि मे सेवनीय है। इसी औषधि निर्माणशाला द्वारा "इथीपलू मिक्चर" भी बनाया जाता है जो वातश्लेष्मिक ज्वर की उत्तम औषधि है। इसमे भी दालचीनी का मिश्रण होता है। मेडिकल इथिक्स के ही 'कारमीन मिश्रण" में दालचीनीसार का मिश्रण किया जाता है—यह अम्लपित्त के लिये उपयोगी है। चरक के "वीमीटेव सीरप" मे भी दालचीनी होती है। तब ही तो यह वमन, हृदयदाह, अम्लपित्त मे लाभ पहुंचाता है। चरक के ही "मेनोलजेली" मे भी दालचीनी है। यह मसूरिका, रोमान्तिका, कुकरकास, कण्ठशोथ, रक्तार्श आदि मे बलाधान के लिए प्रयुक्त होती है। चरक फार्मा के स्त्री रोगोपयोगी प्रयोगों मे भी प्रायः दालचीनी को लिया गया है। प्रसिद्ध "एम २ टोन सीरप" का यह प्रमुख घटक द्रव्य है। रज.कृच्छ्रता मे लाभप्रद "लूनारेक्स" टेबलेट का भी यह घटक द्रव्य है।

अरुचि, अग्निमांद्य जनित उदर विकारो को दूर करने मे कौशिक आयुर्वेद भवन, सालासर (राज०) का उत्तम पेय है "के० पेप २ सीरप"। इस मे भृङ्गराज, बिडंग, तेजपत्र, चित्रक, त्रिकटु आदि द्रव्यो के साथ दालचीनी भी डाली जाती है। प्रतिश्याय, कास, पेट की सूजन, अतिसार, पेट दर्द, शरीर मे कफ का संचय होने से उत्पन्न उदर सम्बन्धी तनाव और जोड़ो व स्नायुओं के दर्द को दूर करने मे उपयुक्त है बाम का "तुलसी कम्पाउन्ड" जिसमे दालचीनी तैल भी मिश्रित किया है। एम्बीजेक लेबोटरीज सरदारशहर (राजस्थान) एक "जेकोफोर्ट" नामक पौष्टिक पाचक पेय तैयार करता है पाचनसस्थान की विकृतियो को दूर करने मे यह श्रेष्ठ है। इसमे चित्रक चव्य, सोंठ, कुमारीस्वरस, उदक स्वरस के साथ तेजपत्र, दालचीनी आदि भीहै। इसी प्रकार का हृदय, मस्तिष्क तथा आदि को शक्ति, स्फूर्ति व पोषणदायक टॉनिक है। इसमे दालचीनी, त्रिकटु, इलायची, तेजपत्र आदि डाले जाते है। भारतीय महौषधि सस्थान अनूपशहर का जो "एक्वस सिन कार्ड" नामक तृषा छर्दि नाशक तर्पक पेय है। इसमे केवल दालचीनी और इलायची का समभाग जलीय सत्व होता है। शर्करा के सयोग से उत्तम शर्बत का निर्माण किया जाता है। यह पित्ताधिक्य व हृदय की घबराहट की उत्तम औषधि है। मानसिक रोगोपयोगी ब्राह्मी रसायन (दीनदयाल औषधालय ग्वालियर) का भी दालचीनी प्रमुख घटक द्रव्य है। डेक्कन आयुर्वेदाश्रम फार्मेसी लिमिटे हैदराबाद के 'मादिफलरसायन' मे भी दालचीनी, नागकेशर, धनिया आदि हैं। जिससे यह

अरुचि, अग्निमाद्य, वमन, अङ्गदाह, आदि रोगो मे लाभप्रद है। गेम्बर्स लेवोट्रीज वम्बई द्वारा निर्मित वृष्ययोग "वी एच पिल्स फोर्ट" का भी दालचीनी घटक द्रव्य है। इसके अतिरिक्त इसमे शिलाजीत, कुचला, गूगल आदि द्रव्य भी डाले जाते हैं। काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स अमृतसर द्वारा विनिर्मित 'कफसिल' नामक कास नाशक टिकिया दालचीनी, कपूर, गोद ववूल, मुलेठी, कत्था, वहेडा आदि महत्वपूर्ण कासहर द्रव्यों को धारण कर कास कष्ट का निवारण करती है।

देशरक्षक औषधालय कनखल (हरिद्वार) द्वारा वहुत सी उपयोगी औषधियो का निर्माण किया जाता है। इनमे वहुत औषधियो में दालचीनी का सम्मिश्रण किया जाता है। "अर्जुनवाण चूर्ण" एक उत्तम दीपन पाचन चूर्ण हैं, इसमे दालचीनी, जीरा, सोंफ, पुदीना, सैन्धव, कालीमिर्च आदि हैं। वृष्ययोग है—"भगवन्त मकरध्वज वटी" इसमे भी दालचीनी है। प्रतिश्याय, शिर शूल हर "हिमालय हर्वल चाय" मे वहुत से उपयोगी द्रव्यो के साथ दालचीनी भी है। स्वरभेद कास, कण्ठशालूक आदि रोगो मे यह औषधालय "कण्ठसुधारवटी" प्रदान करता है। इस वटी मे कुलञ्जन, लवङ्ग, दालचीनी आदि डाले जाते हैं। १-१ गोली वार-वार मुख मे रखकर चूसने से उक्त रोगों में लाभ होता है। इसी प्रकार इसका एक और प्रयोग है जो श्वास कष्ट, शुष्क कास, स्वरभङ्ग, गले की खराश मे लाभप्रद है। योग का नाम है—"काफ़ोल लाजेन्जेज।" इन गोलियो को भी वार-वार चूसा जाता है। इनमे दालचीनी के तैल का मिश्रण होता है। इसके अतिरिक्त दालचीनी, मुलहठी, टङ्कण, काकडाशृङ्गी आदि भी होते हैं।

देशरक्षक औषधालय की भांति ही शिल्पाकेम इन्दौर के भी वहुत से प्रयोगो में दालचीनी डाली जाती है। जमे हुए कफ को पतला कर वाहर निकाल श्वसनसंस्थान को स्वस्थ वनाने वाला एक प्रयोग है "कफविन एक्सपेक्टोरेन्ट।" इसमे वहुत से श्लेष्मघ्न द्रव्यो के साथ दालचीनी भी मिलाई जाती है। गैस व पाचन के लिये उपयोगी टेवलेट है—"गैसहर टेवलेट।" इसमे—सैन्धव, कालीमिर्च, दालचीनी, सोंठ, चित्रक आदि होते हैं। स्वादिष्ट जनरल टानिक (अजीर्ण, रक्ताल्पता, दौर्वल्यहर) "इम्प्रोटोन सायरप" मे मुनक्का, तेजपत्र, चव्य, पिप्पली आदि के साथ दालचीनी, का भी समिश्रण किया जाता है। इसी प्रकार का एक दूसरा टानिक है—"प्लेक्सोना सायरप।" इसमें भी दालचीनी है। यह औषधि निर्माणशाला जो दर्द निवारक वाम "वेदनाहरण पेन वाम" का निर्माण करती है, इसमे इलायची, कपूर, नीलगिरी के तैलो के साथ दालचीनी का तैल भी मिलाया जाता है। शिर शूल, पार्श्वशूल, कटिशूल आदि पर यह वाम लाभप्रद है।

शिश्न की शिथिलता को दूर करने वाह्यप्रयोगार्थ वहुत से तिलों को उपयोग मे लाया जाता है। इनमें एक तिला है—"सजीवनी तिला।" काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स अमृतसर ने इसका निर्माण किया है। इसी उपयोग के लिये हिमालया ड्रग कम्पनी की हिमकोलिन क्रीम है। जिसमे जायफल, जाविश्री, मालकागनी, जमालगोटा आदि के तैलो के साथ दालचीनी का भी तैल होता है।

दन्तरोगों में भी दालचीनी उपयोगी होने से लक्ष्मी कैमीकल इण्ड० मथुरा के "नियोडेन्टा" सुपर आदर्श दन्त मजन मे दालचीनी का मिश्रण किया जाता है इसके अतिरिक्त चव्य, वज्रदन्ती, लौंग, मौलश्री आदि भी इसमे मिलाये जाते हैं। दोनों पर अंगुली या ब्रुश से लगाने से तथा थोडी देर वाद गरम पानी से कुल्ला करने से दात चमकने लगते हैं तथा मजवूत होते हैं। दन्तशूल, दन्तपूय इससे मिटते हैं।

दीनदयाल औषधालय ग्वालियर द्वारा विनिर्मित "लालतैल" मे दालचीनी के अतिरिक्त मजिष्ठा, कुचला, चन्दन, मालकागनी, जायफल आदि हैं। यह चोट लगने का दर्द, शोथ, आमवात, दुर्वलता आदि को नष्ट करने मे श्रेष्ठ है। गैम्बर्स लेबोट्रीज के "आइन्टमेन्ट विगोरिनी" मे दालचीनी तैल, जायफल

तैल, जमालगोटा तैल, मालकागनी तैल आदि होते हैं। यह भी आमवात, गृध्रसी आदि मे लाभप्रद है।

अनुभूत प्रयोग—

१. आन्त्रिकज्वरहर प्रयोग—दालचीनी १० ग्राम, जायफल ८ ग्राम, लौंग ४ ग्राम, इलायची ३ ग्राम, शंखभस्म २५ ग्राम और चीनी ५० ग्राम लेकर इन सवको कूट-छानकर कपडछान कर लें। इसको २ ग्राम की एक खुराक दिन मे ३ वार दें। इसे आन्त्रिक ज्वर के दूसरे-तीसरे सप्ताह मे देना चाहिए। यह रोगी की शक्ति वनाये रखता है। आन्त्रिक शोथ को हटाता है, ज्वर को अनुलोम रखता है एवं मोतीझरा के एक-एक दाने को सुखपूर्वक वाहर निकाल देता है। उपद्रव रहित आन्त्रिक ज्वर इस सामान्य प्रयोग से ही ठीक हो जाता है।

—कवि० श्री अशोककुमार
(धन्व० सिद्ध चिकि०)

२. शीतपित्तारि प्रयोग—दालचीनी, पीपर छोटी, इलायची के बीज १०-१०-ग्राम, मिश्री ३० ग्राम।

विधि—उपरोक्त तीनों औषधियो को कूट-कपड-छन कर चूर्ण वनालें। वाद में मिश्री मिलाकर शीशी में भरकर रख लें।

मात्रा एव प्रयोग विधि—रोगी को १०-१० ग्राम यह चूर्ण मक्खन मिलाकर दिन मे ३ वार सेवन करावें।

उपयोग—कुछ दिन तक इस चूर्ण का प्रयोग कराने से शीतपित्त में स्थायी लाभ देखने को मिलता है। रोगी को यदि कोष्ठवद्धता हो तो स्निग्ध विरेचन देकर उदर शुद्धि करा देनी चाहिए।

—श्री विष्णुप्रकाश आत्रेय
(धन्व० गु० सि० प्र० भाग २)

३. प्रदरारि अवलेह प्रयोग—दालचीनी ३० ग्राम, माजूफल, धाय के फूल, वडी इलायची के दाने १०-१० ग्राम, पठानीलोध्र २० ग्राम। सवका कपड-छन चूर्ण वना लें और केले की पकी फली का गूदा आधा किलो लेकर उक्त सव वस्तुयें मिलाकर १५० ग्राम गाय के घी मे भूनें। अशोक की छाल के २ किलो क्वाथ मे आधा किलो मिश्री डालकर चाशनी करें और उसमे उक्त घी में भुना हुआ द्रव्य और १० ग्राम चादी के वरक डालकर अवलेह वना लें। इसमे से १०-१० ग्राम प्रात-सायं दूध के साथ सेवन करें। श्वेतप्रदर की उत्तम औषधि है।

—सुधानिधि के आदि सम्पादक
स्व० श्री देवीशरण जी गर्ग
(सुधानिधि महिलारोग चिकित्साक)

४. सन्तानप्रदाता प्रयोग—दालचीनी १२ ग्राम और काले तिल ६० ग्राम लेकर दोनो को कूट लें। महीन पीसकर मधु मिलाकर १० ग्रेन की गोली वना लें। २५० मि० लि० दूध के साथ सहवास के एक घण्टा पहले सेवन करें, फिर सहवास करें। यह औपधि केवल पुरुष को ही सेवन करनी है। यदि पति यह सेवन कर ले तो स्त्री अवश्य गर्भवती होगी। यह सहवास के समय ही सेवन करें प्रतिदिन सेवन करने की आवश्यकता नहीं है। —श्री चन्द्रशेखर पालीवाल
(धन्वन्तरि अगस्त ६२)

५. गले में काग वृद्धि पर प्रयोग—दालचीनी ७५० मि० ग्राम को पत्थर पर पानी के सयोग से खूब वारीक पीसकर लेप वना लें।

सवेरे निद्रा त्यागोपरान्त कुल्ला दातुन करके दाहिने हाथ के अगुष्ठ पर पूर्व निर्मित दालचीनी के लेप को लगायें और मुह फाडकर कौआ पर लगा दें और मुह को शिथिल कर लार टपकने दें। दो दिन के प्रयोग से पूर्णतया आराम हो जायगा। यह नुस्खा कई वार का परीक्षित है। इससे कम व्यय मे सर्वजन लाभ उठा सकते हैं। —श्री हीरालाल वर्मा नवरत्न
(धन्व० दिस० ६१)

दन्तीद्वय (दन्ती-द्रवन्ती)

(Baliospermum Montanum, Jatropha Glandulifera)

"अभिनव-संस्कृत-सुभाषित-सप्तशती" नामक ग्रन्थ में आचार्य डा० श्री नारायण शास्त्री काङ्कर महोदय ने कहा है कि —

एवं सुलक्षणा श्रेष्ठा चिकित्सा-पद्धतिर्यदि ।
काचन विद्यते तर्हि माऽऽयुर्वेदीय पद्धति ॥

इस पद्धति का प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि दोष कोष्ठ से शाखा में जाकर रोग उत्पन्न करते हैं। इनको शाखा (रसादि) से पुन: कोष्ठ में लाना और समीप के मार्ग से निकाल देना ही मुख्य चिकित्सा है—

"ज्ञात्वा कोष्ठ प्रपन्नाश्च यथासन्न विनिर्हरेत्"
—अ० हृ० सू० १३

कोष्ठ मे लाने के पाच उपाय कहे हैं—

१. दोषो मे वृद्धि कराकर ।
२ विष्यन्दन (सघातभेद) कराकर ।
३. दोषपाक कराकर ।
४. स्रोतो के मुखों को खोलकर ।
५ वायु का नियत्रण कर ।

ये सब उपाय पचकर्म द्वारा ही सम्भव है। स्नेहन स्वेदन से दोष पुन कोष्ठ मे आ जाने पर, उन्हें वमन किंवा विरेचन द्वारा शरीर से बाहर कर दिया जाता है। इस सशोधन से दोष समूल नष्ट हो जाते हैं, जिससे उनका पुन. उद्भव नही हो पाता। इस कारण से ही तो यह श्रेष्ठ चिकित्सा पद्धति मानी जाती है। आचार्य दृढबल द्वारा लिखित विरेचन द्रव्यों की प्रक्रिया मूलत दोषो को बाहर निकालने हेतु ही है। मूल रिच् धातु में वि उपसर्ग और णिच् तथा ल्युट् प्रत्यय से विरेचन शब्द बनता है, जिसका अर्थ है मलादि को निकाल देना। इस व्याख्या से यद्यपि सभी मार्गों से मल निकाले जाने के अर्थ में विरेचन शब्द प्रयुक्त होगा, किन्तु आयुर्वेद में अधोभाग हर शोधन के लिये ही विरेचन शब्द नियत है। विरेचन के लिये जिन द्रव्यों की गणना चरक संहिता में की गई है उनमे दन्ती एव द्रवन्ती मुख्य है—चरक० सू० १/७७–८५। कल्पस्थान अध्याय द्वादश में दन्ती द्रवन्तीकल्प का स्वतन्त्र वर्णन किया गया है। सूत्र स्थान अध्याय द्वितीय में पक्वाशयगत दोष को निकालने के लिये जिन विरेचन द्रव्यो का उल्लेख किया है, उनमें भी दन्ती-द्रवन्ती की गणना की गई है। दोष शब्द से यहां पित्त किंवा कफपित्त का ग्रहण करना चाहिए—"दोषशब्देन चेह विरेचननिर्हरण-योग्यत्वात् पित्त कफपित्त वा गृह्यते"—चक्र। विमानस्थान अध्याय ८/१३६ मे भी विरेचन द्रव्यों मे इनका उल्लेख किया गया है। सुश्रुतसंहिता मे वर्णित अधोभागहर द्रव्यो (सू० ३९/४) के अन्तर्गत तथा श्यामादिगण (सू० ३८/२९) में भी इन दोनो द्रव्यों को लिया गया है। अष्टांगसग्रह मे मूलविरेचन द्रव्यो में इनका उल्लेख किया गया है। अष्टाङ्ग-हृदय में दन्ती (निकुभ) को तो प्राथमिकता दी है किन्तु द्रवन्ती का उल्लेख नही किया गया है।

ये एरण्डकुल (यूफर्विएसी) वनोषधियां हैं। भाव-प्रकाशनिघण्टु के गुडूच्यादि वर्ग मे इनका वर्णन किया है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने तीक्ष्ण विरेचन द्रव्यो के अन्तर्गत इसका सर्वप्रथम विशद वर्णन किया है। अब इनमे मुख्यतया दन्ती का वर्णन किया जा रहा है।

नाम—

संस्कृत—दन्ती, निकुम्भा, प्रत्यक् श्रेणी, उदुम्बर-पर्णी, एरण्डफला ।

हिन्दी—दन्ती।

गुजराती—दांती।

मराठी—दांती, दावरा।

बंगला—दन्तीगाछ, हाकुन।

तेलगु—आमादामु।

लैटिन—बैलि ओस्पर्मस मोण्टेनम (Baliospermum Montanum)।

उत्पत्ति स्थान—विशेषतः भूटान, आसाम, बंगाल, बिहार, एवं दक्षिण भारत में ट्रावनकोर तक दन्ती के जंगली क्षुप पाये जाते हैं।

रासायनिक संघटन—इसके मूल में राल (रजिन) एवं स्टार्च होता है। बीजों में एक स्थिर तैल होता है।

वानस्पतिक परिचय—

हस्तिदन्त सम मूल है फल एरण्ड समान।
पत्र उदुम्बर के सदृश यह निकुम्भ पहचान॥

दन्ती का गुल्मवत् क्षुप ३ से ६ फुट तक ऊंचा होता है। बहुवर्षायु मूलस्तम्भ से अनेक कोमल काण्ड निकले रहते हैं। ये काण्ड शाखाएँ रोमश रक्ताभ होती हैं। पत्रों के आकार और कद में प्रायः बड़ी भिन्नता होती है। ऊपर की ओर के पत्र प्रायः छोटे, भालाकार या पक्षाकार सिराजाल से युक्त रहते हैं। और नीचे के बहुत बड़े (६-१२ इञ्च) करतलाकार ३-५ भागो में खण्डित होते हैं।

पुष्प—एकलिंगी, हरिताभ, अक्षीय और गुच्छों में होते हैं।

फल—त्रिकोष्ठीय (तीन खण्ड का) किंचित् रोमश होते हैं। फल सूखने पर अपने आप तड़क जाते हैं और उनके तीन विभाग होकर उनमें से छोटे एरण्ड के समान तीन बीज निकलते हैं। दन्ती में प्राय वर्ष भर फूल—फल लगते हैं।

भेद—चरकसंहिता में प्रायः दन्ती—द्रवन्ती का एक साथ वर्णन हुआ है। आगे के निघण्टुकारों ने इन दोनो को दन्तीद्वय के नाम से भी लिखा है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने द्रवन्ती के फल को ही जयपाल कहा है। बहुत से आचार्य द्रवन्ती को बड़ी दन्ती भी कहते हैं। आचार्य श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी ने कहा है कि "हमारे विशेष अनुसन्धान से हमें ज्ञात हुआ है कि बड़ी दन्ती (द्रवन्ती) यह जमालगोटे (जयपाल) की ही एक जाति विशेष है"।

पण्डित श्री विश्वनाथ द्विवेदी ने द्रवन्ती के विषय में लिखा है कि इसके पेड दन्ती से बृहत्तर होते हैं। पत्र इत्यादि के आकार पुष्प वगैरह सब एक ही तरह के होते हैं, बीज वगैरह भी तदपेक्षा बृहतर ही होते हैं। ग्रन्थान्तरो से 'शतमूलिका' 'सहस्रमूलिका' इत्यादि पर्याय इसलिए आये हैं कि इसके पेड के बड़े होने में मूल संख्या भी अधिक हो जाती है। दृढबल ने इस बात को यों लिखा है कि इसके "मूलानि स्थिराणि बहुलानि हस्तिदन्तप्रकाराणि एव श्यामताम्राणि"। इससे स्पष्ट है कि इसके मूल की दृढता एवं स्थूलता वृक्षानुकूल ही वर्णित है। और प्राय हर प्रकार की साम्यता दन्ती की तरह ही है।

वेदी-वनस्पति-कोष मे श्री रामेश बेदी ने इसे एरण्डकुल (युफर्बिएसी) कुल की औषधि कहा है और इसका लैटिन नाम जाट्रोफा कुर्कास (Jatrapha Curcas) बतलाया है। इसका हिन्दी नाम मुगली एरण्ड है। अन्य विवरण इस प्रकार दिया है—मृदु-काण्ठवाली झाड़ी या छोटा वृक्ष। पत्ते कोणित, ३-५ खण्डों वाले, १०-१५ सेण्टीमीटर लम्बे, फूल पीताभ हरित। फल गोल, २·५ सेण्टीमीटर लम्बे, दीर्घकाल तक-पतझड़ में भी वृक्ष पर लगे रहते हैं। अमेरिका के गरम भागों का यह मूल निवासी है। गांवो में बाड़ों के लिये सब जगह बोया जाता है। इसकी कलमें काट कर लगा देते हैं, जो झटपट उग आती हैं और तेजी से बढ़ जाती हैं। इसे ढोर नहीं चरते। कोमल कोंपलो की सब्जी बनती है। बीज तीव्र विरेचक और वामक है। बीजों के तैल से मोमबत्तियां और साबुन बनाया जाता है। प्रकाश के लिये यह जलाया जाता है। कलपुर्जों को चिकना रखने के लिये इसे देते हैं। जंगार (Oxide of iron) के साथ तेल को पका कर चीन में वार्निश बनाया जाता है। बीजो में तैल की

प्रतिशतकता लगभग तीस प्रतिशत होती है। काण्ड के क्षत मे से दूध निकलता है। यह दूध बहुत लचीला होता है। गाव के बच्चे एक बर्तन में दूध इकट्ठा कर लेते हैं। खोखले तिनके के एक सिरे को उसमे डाल कर दूसरे सिरे से फूक मारते हैं, इससे खूब बुलबुले उठते हैं। सूख जाने पर यह लाख जैसा भंगुर पदार्थ बन जाता है। इस दूध को जख्म पर लगाने मे कोलोडिअन के समान एक पतली परत बन जाती है जिससे फटी हुई रक्तवाहिनियो के सिरे सिकुड जाते हैं, खून बहना बन्द हो जाता है बाहर के संक्रमणों मे परत रक्षा करती है, जख्म जल्दी भर जाता है।

श्रीकृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी ने इसे बडी दन्ती भेद न० १ के नाम से वर्णन किया है। और इसे चन्द्र-जोत किंवा रतनजोत कहा है। इसके आगे लाल रतनजोत को दन्ती बडी न० २ नाम से वर्णन किया है।

यह सिद्ध है कि द्रवन्ती दन्ती का ही एक भेद है और दोनो मे प्राय समानता है। चक्रपाणि (दन्त्येव-चीरितपत्रा), गगाधर, डल्हण (द्रवन्ती, दन्तीभेद, सयरीति लोके) आदि सस्कृत व्याख्याकारो एव जय-देव, काशीनाथ (विद्योतनी) एव मदनोपाल वैद्य आदि हिन्दी व्याख्याकारो ने इस दन्ती का भेद स्वीकार किया है। अत- इस आलेख मे दृढवल की भाति दोनों का गुणधर्म विवेचन एक साथ ही किया जा रहा है और दन्तिबीज (जयपाल) का आगे पृथक् वर्णन किया जा रहा है।

रस —कटु।

गुण —तीक्ष्ण, रूक्ष, गुरु।

वीर्य —उष्ण।

विपाक —कटु।

प्रभाव —विरेचन।

रसादि साम्ये यत्कर्म विशिष्ट तत्प्रभावजम्।
दन्ती रसाद्यैस्तुल्याऽपि चित्रकस्य विरेचनी॥
—अ० हृ० सू० ९

दोषकर्म —कफपित्तहर।

गुण प्रकाशक संज्ञा —शीघ्रा (तीक्ष्ण और आशु-कारी)।

प्रयोज्य अङ्ग —मूल, बीज, पत्र।

मात्रा —१-३ ग्राम।
बीज —१२५-२५० मि० ग्रा०।
पत्रक्वाथ —४०-८० मि० लि०।

वीर्यकालावधि —मूल-१ वर्ष।
बीज—दीर्घकाल तक।

अपमिश्रण —दन्ती का मूल ऊपर मोटा नीचे क्रमशः पतला होता जाता है। अत त्वचा मृदु और नीचे का काष्ठ कडा होता है। इससे मिलता-जुलता मूल व्याघ्र एरण्ड (बघरेणा या वज्रदन्ती) का होता है। इसके मूल का मिश्रण दन्तीमूल के साथ कर दिया जाता है। एरण्डमूल का मिश्रण भी इसके साथ होता है। बाजार मे नागदन्ती का मूल भी दन्ती-मूल के साथ कर दिया जाता है।

परीक्षण —पूर्व से जो दन्ती का वानस्पतिक परिचय दिया गया है। उसके अनुसार असली दन्ती-मूल की जानकारी कर उपयोग मे लाना चाहिए।

संग्रह एवं संरक्षण विधि —दन्ती और द्रवन्ती के हाथी दांत के सदृश कठिन, स्थूल और श्याम ताम्रवर्ण के मूल लेकर उस पर पिप्पली चूर्ण व मधु का लेप करें और तदनन्तर कुश के बीच मे रख मिट्टी से लेप कर पुटपाक करें। फिर धूप में सुखावे। इस प्रकार अग्नि और धूप से इसकी विकारिता दूर हो जाती है —ऐसा चरकसहिता मे वर्णित है।

दन्तीमूल एव बीजो को मुख बन्द पात्रो मे अनार्द्र शीतल स्थान मे पृथक् विषद्रव्यो के साथ रखें और उस पर इसका एक लेबिल भी लगा देना चाहिए।

अहित प्रभाव —अधिक मात्रा मे सेवन करने से हृल्लास, क्षोभ, उद्वेष्टन, अतिसार आदि क्षोभक व मादक लक्षण प्रकट होते हैं।

दर्पनाशक (निवारण) —अहित प्रभाव को दूर करने के लिये मधुर-स्निग्ध द्रव्य–पानक, दूध आदि का प्रयोग करना चाहिए।

प्रयोगविधि—इससे पेट मे मरोड़ होती है और हृल्लास आदि लक्षण भी होते हैं सुतरां इसके साथ सौंफ आदि सुगन्धित द्रव्यो का प्रयोग अपेक्षित है।

गुण-धर्म विवेचना—

तीक्ष्णोष्णान्याशुकारीणि विकाशीनि गुरूणि च।
विलाययन्ति दोषौ द्वौ मारुत कोपयन्ति च॥
—चरक० स० क० १०२

दन्तीद्वयं सरं पाके रसे च कटुदीपनम्।
गुदाकुराश्मशूलार्श कण्डूकुष्ठविदाहनुत्॥
तीक्ष्णोष्णं हन्तिपित्तास्रकफशोथोदरक्रमीन्॥
—भा०प्र०नि०

दन्ती कटूष्णा विख्याता ह्यामशूलविनाशनी।
त्वग्दोषहृत् भिषक् श्रेष्ठैः प्रोक्ता 'राजनिघण्टके'॥
रसे तिक्तोष्णका चैव कफोदरविनाशिनी।
वातोदरार्शहन्त्री च व्रणघ्नी दीपनी 'धने'॥
कफवातार्शगुल्मघ्नी क्षयहृत् 'द्रव्यनामके'।
—नि० शिरोमणि

दन्तिमूलं भवेदुष्णं तीक्ष्णं मलविरेचनम्।
निहन्ति कफपित्तास्रशोथोदरगदक्रिमीन्॥
—प्रि० नि०

दन्तीद्रवन्तीस्नेहास्तिक्तकटुककषाया अधोभागदोषहरा क्रिमिकुष्ठकफानिलहराः दुष्टव्रणशोधनाश्च।
—सुश्रुत०सू० ४५

रेचक औषधियो का विशेष महत्व है। श्री गोपालकृष्ण ने रेचक प्रयोगो के प्रथम वर्णन का हेतु बतलाया है।

प्रायशो वपुष शुद्धकृत्वा देयं तदौषधम्।
अत. पूर्वं चिकित्सयां रेचकौषधमुच्यते॥
—रा० सा० सग्रह २/२

रेचक औषधियो में दन्ती-द्रवन्ती मुख्य है। इनके उष्ण तीक्ष्णादि कार्मुक तत्वों के द्वारा हृदय केन्द्र में उत्तेजना होती है। इस उत्तेजना के बाद ये अपने प्रभाव से विरेचन कराती है। चरकसंहिता मे दन्ती द्रवन्ती के ४८ योग कहे गये हैं—

१ दधि आदि के योग तीन कहे हैं–दन्ती द्रवन्ती कल्क १२ ग्राम प्रमाण मे दधि के साथ सेवन करें। इसी प्रकार तक्र और सुरामण्ड के साथ सेवन करें।

२. प्रियालादि योग पाच कहे हैं–प्रियाल, वदर, कोल, पीलू और सीधू के साथ दन्ती द्रवन्ती को विरेचनार्थ दें।

३ मासरस योग तीन कहे हैं। इनका प्रयोग पाण्डु, कृमि और भगन्दर रोग मे विरेचनार्थ करना चाहिए।

४ स्नेहयोग तीन कहे हैं–दन्ती द्रवन्ती का कल्क, दशमूलक्वाथ इनको मिलाकर घृत तैयार करें। इसी भाति इनका विधिवत् तैल बनाकर प्रयोग करें। चतु.स्नेह (घृत तैल वसा मज्जा) के साथ उपर्युक्त का चतु.स्नेह सिद्ध कर प्रयोग करें।

५ लेहयोग छ हैं। दन्ती तथा अजश्रृंगी के स्वरस मे गुड डालकर, मधु और घी मिलाकर लेह सिद्ध करे। यह दाह, सताप व प्रमेह मे उपयोगी है। अजगन्धा के साथ दन्ती का विधिवत् लेह तैयार करे। यह वातरोग, पित्तरोग, ज्वर, तृष्णा मे विरेचनार्थ लाभप्रद है। दन्ती द्रवन्ती के मूल को आमलक स्वरस के साथ इनके क्वाथ और फाणित मे मिलाकर विधि के अनुसार लेह सिद्ध करे। इसी भाति दशमूल विभीतक और हरीतकी के साथ भी लेह तैयार कर विरेचनार्थ देवें।

६ चूर्णयोग–बेल के प्रमाण मे दन्ती द्रवन्ती को लेकर इनके रस से ही उसे भावना दें। इस चूर्ण को अम्लकाजी आदि के साथ विरेचन हेतु प्रयुक्त करें। यह एक योग है।

७ इक्षुरसयोग एक कहा है। इक्षुकाण्ड को चीरकर उस पर दन्ती द्रवन्ती कल्क का लेप करें फिर कुश से लपेट कर और मिट्टी मे लपेट कर उसको आँच पर रखकर पुटपाक विधि से रस निकालकर विरेचन के लिये प्रयुक्त करें।

८ मुद्ग और मासरसयोग–ये तीन हैं।

९. यवागुयोग–ये तीन हैं। दन्ती द्रवन्ती के कषाय से, मासरस से एव माषयूष से सिद्ध यवागु विरेचन के लिए उपयोग में लावें।

१०. उत्कारिका का एक योग है। दन्ती द्रवन्ती का क्वाथ ३ भाग, मिश्री २ भाग, गोधूम चूर्ण १ भाग से उत्कारिका बनाकर प्रयुक्त करें।

११. मधुयोग एक है। दन्ती द्रवन्ती का कषाय तैयार कर, मद्य तैयार कर विरेचन के लिये प्रयुक्त करें।

१२. मोदकयोग एक है। उत्कारिका के द्रव्यों से मोदक बनाकर प्रयोग करें।

१३. तैलयोग–एक है। दन्ती द्रवन्ती के कषाय तथा कल्क से यथाविधि तैल तैयार कर प्रयुक्त करें।

१४. चूर्णयोग एक है। पूर्णयोग चूर्ण के प्रकरण मे देखें।

१५. मोदकयोग भी एक है। इसका वर्णन आगे किया जायेगा।

१६ आसव के योग—ये योग पाच हैं। दन्ती, द्राक्षा के क्वाथ का सन्धान करें। पित्तज कास और पाण्डु में विरेचन के लिये प्रयुक्त करें। दन्ती गुड़ का आसव कामला मे दें। दन्ती, श्यामा, त्रिवृत्, गुड़, पिप्पली, मदनफल और चित्रक का आसव वातकफ-रोग, प्लीहा, पाण्डु व उदररोगो मे दें। दन्ती द्रवन्ती, अजगन्धा क्वाथ का आसव बना प्रयुक्त करें। इसी कषाय में अजश्रृङ्गी और गुड मिलाकर सन्धान कर आसव विधि से तैयार करें। यह सुख विरेचक गौडा-रिष्ट है।

१७. अन्ययोग चार हैं। दन्ती द्रवन्ती के चूर्ण कषाय, तथा उडद की दाल एव किण्व के योग से मद्य तैयार कर दें। अजगन्धा कषाय से दन्ती द्रवन्ती का सौवीरक बनाकर प्रयोग करें। तुषोदक तैयार कर प्रयुक्त करें। दोनों द्रव्यो की सुरा बनाकर दें।

१८ घृतयोग–ये पांच है। दन्ती द्रवन्ती के मूलों के कल्क और क्वाथ से घृत सिद्ध करें। गुड़, लवण, दन्ती द्रवन्ती का कल्क मिला घृत से सिद्ध करें। गुड़ और दन्ती घी के साथ विरेचन के लिये दें।

यह विरेचन के अतिरिक्त दीपन, कृमिघ्न यकृदुत्तेजक, पित्तसारक है। उदररोगो मे दन्त्यादि चूर्ण अत्युपयोगी है—

दन्ती वचा गवाक्षी च शङ्खिनी तिल्वक त्रिवृत्।
गोमूत्रेण पिबेदेतत्कल्क ह्युदरनाशनम्॥
—भै० र०

गुल्मरोग को दूर करने के लिए चरकोक्त दन्ती हरीतकी लाभप्रद योग है, जिसकी निर्माण विधि आगे कल्पना प्रकरण में लिखी गयी है। रक्त गुल्म में दन्त्यादिगुटिका प्रशस्त है—

दन्तीहिङ्गुयवक्षारालाबुबीजकणागुडाः।
स्नुहीक्षीरेण गुटिका सर्वेषा कर्षमात्रिका॥
भक्षिता रक्तगुल्मघ्नी रुधिरस्रावकारिणी।
—यो० र०

चरकसहिता के अर्शश्चिकित्सित अध्याय में वर्णित दन्त्यरिष्ट पाचन संस्थान के विकारो की प्रशस्ति में कहा गया है—

ग्रहणीपाण्डुरोगघ्न वातवर्चोऽनुलोमनम्।
दीपन चारुचिघ्न च दन्त्यरिष्टमिम विदु.॥

अर्शाकुरों पर दन्तीमूल निशोथ, गुड़ आदि का प्रलेप भी किया जाता है।

पाण्डु की सामान्य चिकित्सा में विरेचनार्थ दन्ती को उपयोग में लाया जाता है—

दन्त्याश्चतुष्पलरसे पिष्टैर्दन्तीशलाटुभिः।
तदर्धप्रस्थो घृतात्सिद्ध प्लीहपाण्ड्वर्तिशोफजित्॥
—चरक० चि० १६/५१

यह शोथहर होने से सर्वांगशोथ में भी हितावह है। सामान्य चिकित्सा में शोधन के लिये दन्तीमूल एव त्रिवृत् से सिद्ध और उपयोगी कहा गया है—

दन्तीत्रिवृत् त्र्यूषणचित्रकैर्वा
पयः श्रृतं दोषहरं पिबेन्ना।
—चरक० चि० १२/३५

रक्तशोधक होने से समस्त रक्तविकारों मे भी यह प्रयुक्त होती है। पित्त प्रधान कुष्ठ की सामान्य चिकित्सा में विरेचन का विशेष महत्व है। और विरेचन में दन्ती की उपादेयता प्रकट की गई है—

कुष्ठेषु त्रिवृता दन्ती त्रिफला च विरेचने नास्ता।

—चरक० चि० ७/४४

बहि:परिमार्जन के लिये भी आचार्य भेड ने दन्ती को उपयोगी कहा है—

अवल्गुजफल दन्तीं स्योनाक गजपिप्पलीम्।
चित्रक सर्षपौ द्वौ तु हरिद्रे द्वे निपेषयेत्॥
मातुलुगरसेनैवत्समालोड्य निखानयेत्।
सप्तरात्रात्परं चैव कुष्ठाना लेपनं परम्॥

—भे० सं० चि० ६

ग्रन्थि वीसर्पादि के लिए भी लेप मे दन्ती प्रयुक्त होती है—

दन्तीचित्रकमूलत्वक् स्नुह्यर्कपयसी गुड़।
भल्लातकास्थि कासीश लेपो भिन्द्याच्छिलामपि॥

—चरक० चि० २१/१२६

इस प्रलेप को आचार्य वाग्भट ने भी अत्युपयोगी कहा है। कर्णक सन्निपात में कर्णमूल ग्रन्थि भेदनार्थ भी इसका उपयोग किया जाना चाहिये। योगरत्नाकरकार ने इस प्रसङ्ग मे इस उपयोगी लेप का वर्णन किया। ज्वरविषयक चिकित्साग्रन्थ त्रिशती मे भल्लातक एव स्नुही के स्थान पर कुष्ठ, व पुष्करमूल को उपयोगी कहा है—

गुडदहनगदनिकुम्भापुष्करकाशीसदिनकर क्षीरैः।
रविकिरणैरिव तुहिनं विलीयते कर्णकग्रन्थनम्॥

योगरत्नाकरकार ने उक्त चरकोक्त द्रव्यो को गण्डमाला में भी लेप के लिये हितावह कहा है—

भल्लातकासीसहुताशदन्ती-
मूल गुडस्नुग्रविदुग्धदिग्धैः।
लेपान्निवर्तं गच्छति गणमाला-
समीरवेगादिव मेघमाला॥

अपची चिकित्सा मे भी दन्ती-द्रवन्ती का उपयोग इस प्रकार करने का विधान है—

जीमूतकैः कोशवतीफलैश्च-
दन्तीद्रवन्तीत्रिवृतासु चैव।
सर्पिः कृत हन्त्यपची प्रवृद्धा-
द्विधा प्रवृत्तं तदुदारवीर्यम्॥

—सुश्रुत० चि० १८

पूर्व वर्णित दन्त्यादि लेप में सैन्धव का मिश्रण कर परिपक्व व्रण शोथ पर दारणार्थ लेप किया जा सकता है। आचार्य शार्ङ्गधर ने दन्त्यादि लेप के नाम से इस लेप का वर्णन किया है—

दन्ती चित्रकमूलत्वक् स्नुह्यर्कपयसी गुड.।
भल्लातकश्च कासीस सैन्धव दारणे स्मृतिः॥

—शा० स० उ० ख०

इसी प्रसङ्ग मे उल्लेखित चिरविल्वादिलेप भी दारण हेतु प्रशस्त है, इसमे भी दन्तीमूल को समाविष्ट किया गया है। अन्य निम्बपत्रादि शोधन रोपण लेप में भी दन्ती को उपयोगी मानकर प्रयोग मे लाया गया है। दन्तीमूल, हल्दी एव आवला के लेप को भगन्दर में श्री भोजराज ने प्रशस्त कहा है—

दन्तीनिशामलकलेपितमाशु नाश।
पुसा भगन्दरमुपैत्यपि दुर्निवारम्॥

—रा० मार्तण्ड

दुष्ट व्रणो के लिये सुश्रुतसहिता (चि० स्था० अ० २) मे वर्णित द्रवन्त्यादि घृत किवा तैल को भी उपयोग मे लाना प्रशस्त है, इसका वर्णन कल्पना प्रसङ्ग में किया जायेगा। शल्यतन्त्र में क्षारो का विशेष महत्व है। बाह्य परिमार्जन हेतु जो प्रतिसारणीय क्षार उपयोग मे लाये जाते हैं उनमे दन्ती, द्रवन्ती तीक्ष्णक्षार निर्माण मे प्रमुखतया प्रयुक्त होती हैं। इन क्षारो का उपयोग पक्वव्रणशोथ दारणार्थ किया जाता है किन्तु इनके क्षार तीक्ष्ण होने से सुकुमार व्यक्तियो के लिए प्रशस्त नही है—"क्षारो वेतयः सुकुमारविषय दारणम्" इति चक्र भानुमत्याम्। इसी प्रकार व्रणशोथनवर्ग द्रव्यो मे भी दन्ती की गणना की गई है (सु० स० सु० ३६)।

इस प्रकार शोथ वेदना को नष्ट करने के लिये किंवा व्रणशोथ दारणार्थ इनको उपयोग में लाया

जाता है। विवन्ध युक्त रोगो मे इसका अन्त' प्रयोग हितावह है। सर्पविष मे इसके बीजों का अंजन किया जाता है। और बीज तैल का वातव्याधि मे अभ्यङ्ग किया जाता है। तैल कृमि, कुष्ठहर एव दुष्ट व्रण-शोधन भी कहा गया है।

यूनानी मत—यह वनौषधि अत्यन्त गर्म कही गई है। कफ और वायु के रोगो को दूर करने मे यह श्रेष्ठ है। सेवन से आमाशय मे उष्णता महसूस होती है। यह सूजन, जलोदर, कुष्ठ, गठिया और खून के विकारों को दूर करती है। दन्ती के इन अन्त प्रयोगो के अतिरिक्त यूनानी मतानुसार मूल का धूम्रपान भी लाभप्रद है, इससे कफ का नि.सरण होकर खासी मिटती है। इसके पत्तों का लेप जखम भर देता है।

आधुनिक मतानुसार—कर्नल चोपडा के मतानुसार दन्तीमूल विरेचक है। सर्पविष मे यह उपयोगी है। इसके पत्तो का दमे मे उपयोग किया जाता है।

आर एन खोरि के मतानुसार इसका मूल रेचक है। अन्यान्य सुगन्धित द्रव्यो के साथ यह आध्मानयुक्त कोष्ठवद्धता में तथा उत्तानशोथ मे लाभप्रद है। यह कामला मे भी सेव्य है।

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—

१. सद्योव्रण—सद्योव्रण के रक्तस्राव को बन्द करने के लिये दन्ती के कोमल पत्तो का रस लगाकर इसके पत्तो को बाधना चाहिए।

२. विद्रधि—(क) दन्तीमूल का कल्क कर उपनाह बाधने से पक्व विद्रधि फूट जाती है।

(ख) दन्तीमूल, चित्रकमूल, गुड, अनबुझा चूना इन्हे आक के दूध मे पीसकर लेप करने से भी विद्रधि का दारण हो जाता है।

(ग) दन्तीमूल, चित्रकमूल, भिलावा, हीराकसीस, सैन्धव, गुड और थूहर व आक के दूध का मिश्रित लेप करने से भी विद्रधि फूटकर साफ हो जाती है। यह लेप गण्डमाला, ग्रन्थि अपची आदि मे भी प्रलेप हेतु प्रशस्त है। कोई इन रोगों मे संशमन का प्रयोग नही करते हैं।

३. व्रण—(क) दारुण मे [illegible] व्रण शोधन-रोपण हेतु भी दन्तीमूल का उपयोग होता है। दन्ती एव निम्बपत्र का कल्क बाधना इस हेतु लाभप्रद है।

(ख) पत्रों का प्रलेप भी व्रण रोपणार्थ किया जाता है।

(ग) दन्ती, निशोथ, मंजिष्ठा, निम्बपत्र के रस मे तैल व मधु मिलाकर लेप करने से भी व्रण का सम्यक् शोधन-रोपण होता है।

४. अर्श—(क) दन्तीमूल को तक्र मे पीसकर अर्शांकुरो पर लेप करना उपयुक्त है।

(ख) दन्ती, निशोथ, अमृता, कपोत की बीट और गुड का लेप भी अर्श पर प्रशस्त है।

५. मषक—देह पर कहीं भी हुए मस्सों को नष्ट करने के लिये भी दन्तीमूल को जल मे घिसकर लगाया जा सकता है।

६. भगन्दर—दन्तीमूल, हल्दी और आवलें को पानी के साथ पीसकर लेप करने से भगन्दर में लाभ होता है।

७. कुष्ठ—दन्तीमूल, बाकुची, चित्रक और हरिद्रा को बिजौरे नीबू के रस मे मिलाकर कुष्ठों पर लगाना चाहिये।

८. कर्णमूलशोथ—दन्तीमूल, गुड़, चित्रक, कूठ, पुष्करमूल, हीराकसीस को आक के दूध मे पीसकर लेप करने से कर्णकसन्निपात मे उत्पन्न कर्णमूलशोथ का शमन होता है।

अन्तःप्रयोग—

१. विषमज्वर—दन्तीमूल, कुटकी, मुस्तक, पटोलपत्र और कृष्ण सारिवा का क्वाथ सन्तत विषम ज्वर को नष्ट करता है।

२. उदररोग—(क) दन्तीमूल, वच, इन्द्रायण की जड़, अपराजिता (शखिनी), लोध्र और निशोथ समानभाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर कल्क बना-

कर गोमूत्र के साथ ही पिलाने से उदररोगो मे लाभ होता है।

(ख) दन्तीमूल, वच, इन्द्रायण मूल, नीली चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन करना भी उदररोगो मे हितकारी है।

(ग) दन्तीमूल, वच, यवक्षार, पिप्पली और चित्रक चूर्ण को दही के साथ सेवन करने से प्लीहोदर में लाभ होता है।

(घ) दन्तमूल, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, निशोथ, चित्रक और पीपलामूल के समभाग चूर्ण में गुड मिलाकर रख लें। ३-६ ग्राम गरम जल से सेवन करने से प्लीहोदर नष्ट होता है। इससे शोथ, उदावर्त, शूल, पाण्डु, मेदोरोग आदि का भी नाश होता है और बल, वर्ण, अग्नि की वृद्धि होती है।

(ङ) दन्तीमूल को तक्र मे पीसकर छानकर पिलाने से यकृदाल्युदर में लाभ होता है।

(च) दन्तीमूल और सौंफ का क्वाथ भी उदररोगो मे विरेचनार्थ लाभप्रद है। इस विरेचन से समस्त उदररोग, रक्तविकार एव कामला आदि में भी लाभ होता है।

३. शोथरोग—(क) दन्तीमूल और निशोथ के चूर्ण से सिद्ध दूध को पीने से शोथ मिटता है।

(ख) दन्तीमूल, सोंठ, निशोथ, चित्रक, पिप्पली और मरिच क्वाथ के साथ पकाये दूध का सेवन भी शोथ मे हितकारक है।

४. गुल्म—(क) दन्तीमूल और हरड के चूर्ण को गुड के साथ खाने से कफजगुल्म मिटता है।

(ख) दन्तीमूलकल्क को ठंडे पानी से सेवन करने से गुल्म मे लाभ होता है। इससे पाडु, कामला एव अन्य उदरोग भी नष्ट होते हैं।

५. विसूचिका—दन्तीमूल, चित्रकमूल और पिप्पली को समभाग लेकर पानी के साथ पीसकर कल्क बनाकर मन्दोष्ण पानी के साथ पिलाना विसूचिका मे लाभप्रद है।

६. अभिन्यास ज्वर—दन्ती, द्रवन्ती, बडी कंटेरी, एरण्ड की जड, बिजौरे नीबू की जड, काली निशोथ और छोटी कटेरी का क्वाथ बनाकर अभिन्यास ज्वर मे विरेचन के लिये पिलाना चाहिये। विरेचन की उपादेयता ज्वरान्त में अधिक होती है। यदि अधिक कोष्ठवद्धता हो तो चिकित्सक के परामर्शानुसार मध्य मे भी विरेचन योग लिये जा सकते हैं। नवज्वर मे भी कई प्रयोग ज्वरहर होते हैं।

७. उरुस्तम्भ—दन्ती, द्रवन्ती, तुलसी, सरसो, अरणी, सहजना, वच, कुटज, और नीम के पत्र, मूल और फलो का स्वरस या कषाय बनाकर कवोष्ण पीने से उरुस्तम्भ में लाभ होता है।

८. कामला—दन्तीमूल १० ग्राम, गुड २० ग्राम को १०० मि० लि० जल में मिलाकर पिलावे से यकृत् पित्त का स्राव बढ़ जाता है। जिससे पित्तनलिका मे उत्पन्न प्रतिवन्ध दूर होकर अन्त्र मे पित्तस्राव होने लगता है। फिर कामला मिट जाता है।

९. कास (पित्तज)—मूल से चतुर्गुण मुनक्का लेकर क्वाथ बनाकर सेवन करने से शोधन होकर पित्तजकास और पाण्डु आदि रोग मिटते हैं।

१०. श्वास—श्वासरोगी को इसके पत्तो का क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये।

विविध कल्पना—

१. दन्त्यादि चूर्ण—(क) दन्ती, वचा, इन्द्रायण मूल, सातला (सिकाकाई), तिल्वक, निशोथ चूर्ण, गोमूत्र से उदररोगो मे दें। —भै० र०

(ख) दन्ती, द्रवन्ती, मरिच, अजवाइन, उपकुञ्जिका, सोंठ, स्वर्णक्षीरी तथा चित्रक इनके चूर्ण को गोमूत्र की सात भावना दें। इस चूर्ण का हस्ततल मे समावे इतनी मात्रा में घी के साथ प्रयोग करें। यह विरेचन योग है। चूर्ण की मात्रा ३ से ६ ग्राम है। यह अजीर्ण, पार्श्वशूल, गुल्म, गण्डमाला, वायुरोग और पाण्डुरोग मे लाभप्रद है। इसे सर्वरोग नाशक चूर्ण कहते हैं। —च० स०

(ग) दन्ती, सत्यानासी की जड, कसीस, वाय-विडंग और इन्द्र जौ समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। इस चूर्ण को या आक और स्नुही (सेंड-सेहुण्ड) के दूध को कृमि युक्त दांत में भरने से दांत के कृमि नष्ट हो जाते हैं। —व० से०

(घ) दन्ती निसोत, काली निसोत, सेवती के फूल, कुटकी, नील का पचाग और सोंठ। इनके चूर्ण को अरण्ड के तैल में मिलाकर देने से विरेचन होकर परिणामशूल तुरन्त नष्ट हो जाता है। (मात्रा बलवान पुरुष के लिए तैल ४८ ग्राम, चूर्ण ६ ग्राम।) —व० से०

२. दन्त्यादि गुटिका—दन्ती की जड, शुद्ध हींग, यवक्षार, लौकी का बीज, पीपरि और गुड सब सम-भाग लेकर पीपरि पर्यन्त द्रव्य का कपड़छन चूर्ण गुड के साथ मिलावें। सेहुण्ड के दूध (यथावश्यक) उसमें मिलाकर खूब घोटकर ३-३ की गोलियां बना लेवें। लौकी बीज के स्थान पर कड़ुई तुम्बी के बीज का प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है पर वमन की शङ्का रहती है। ऐसी स्थिति मे प्रातः खाली पेट में ही खिलाना चाहिए।

मात्रा—१ गोली, अनुपान-तिखक्वाथ। आर्तव गुल्म में रुधिरस्राव कारक है। —यो० र०

३. दन्त्यादि मोदक—दन्ती, द्रवन्ती चित्रक एक पल (४८ ग्राम) हरीतकी २० पल, त्रिवृत् और पिप्पली २ कर्ष (२४ ग्राम), गुड ८ पल इनके योग से कुल १० मोदक बनालें। इसे अगस्त्य मोदक कहते हैं। इनमें से एक मोदक गरम जल से सेवन करें। शेष ९ मोदक १०-१० दिन के अन्तर से सेवन करें। इस मोदक के सेवन के समय कोई विशेष पथ्य नहीं है। यह कोष्ठबद्धता के अतिरिक्त सग्रहणी, पाण्डु, अर्श, शीतपित्त और सब प्रकार के बालरोगों को नष्ट करता है।

४. दन्त्यादि गुग्गुल—दन्ती, द्रवन्ती निशोथ, सैन्धव, वच और शुद्ध गूगल समभाग लेकर चूर्ण कर कुछ घी डालकर १-१ ग्राम के वटक बना लें। दोष बलानुसार १-२ वटक, गोमूत्र, दूध, द्राक्षारस में से किसी के साथ सेवन करने से गुल्म रोग मिटता है। —वं० से०

५. दन्ती हरीतक्यावलेह—१ द्रोण (१२ किलो ७६८ ग्राम) जल में दन्तीमूल १ किलो २६० ग्राम तथा उतना ही चित्रक, दोनों का जोकुट चूर्ण पकावें। साथ ही उसमें बडी हरड २५ नग एक पोटली में बांध कर डाल दें। अष्टमांश क्वाथ शेष रहने पर हरड़ की पोटली निकाल कर अलग रख दें और क्वाथ में १ किलो २४० ग्राम गुड घोलकर छान लेवें। उक्त हरड़ों को पोटली से निकाल कर १९२ ग्राम तिल-तैल में भून-कर गुड़ युक्त क्वाथ में डालकर पाक करें। जब यथावत् लेहवत् पाक हो जाय तब निसोत चूर्ण १९२ ग्राम, पिप्पली, सोठ का चूर्ण २४-२४ ग्राम, इनका प्रक्षेप देकर उतार लें। शीतल होने पर उसमें (चातु-र्जात (दालचीनी तेजपत्र, इलायची, नागकेशर) का चूर्ण ४८ ग्राम और शहद १७२ ग्राम मिला दें। इस अवलेह मे से हरड़ों को अलग निकाल कर कांच की बरणी में रख लें।

मात्रा—१२ से २४ ग्राम तक लेह को चाटकर ऊपर से आधी या १ हरड खा लेने से सुखपूर्वक विरेचन होता है तथा कुछ दिन के सेवन से प्लीहा शोथ गुल्म, अर्श, हृद्रोग, पाण्डु, ग्रहणी उत्क्लेश (जी मचलाना) विषमज्वर, कुष्ठ, अरुचि, (कामला, अफरा) आदि रोग नष्ट होते हैं। —भै० र०

६ दन्तीघृतम्—(क) दन्तीमूल ४८ ग्राम, निसोत ६० ग्राम तथा हरं, बहेडा, आमला, अतीस, चीता और वायविडङ्ग ३०-३० ग्राम लेकर सबको पानी के साथ पीस लें फिर १९२ ग्राम घी मे यह कल्क और १ किलो ९२० ग्राम सेहुण्ड का दूध मिलाकर पकावें। जब दूध जल जाय तो घृत को छान लें। इस घी में से केवल एक बूद रोगी को पिलाने से विरेचन होकर दुस्साध्य श्लीपद रोग भी नष्ट हो जाता है।

घी पकाते समय उसमें २ किलो पानी भी डालना चाहिए। —व० से०



दन्ती [Baliospermum Montanum]

विभिन्न नाम : स०—दन्ती, निकुम्भा । हि०—दन्ती । गुज०—दाती । म०—दाती । लै०—बेलिमोस्पर्मम मोण्टेनम ।

प्राप्ति स्थान : भूटान, आसाम, बंगाल, दक्षिण भारत ।

दोषशमन : कफपित्तहर ।

उपयोगी अङ्ग : मूल, बीज, पत्र ।

रोगोपयोग : उदररोग, कुष्ठ, शोथ, शूल, अर्श आदि ।

मुख्ययोग : दन्तीहरीतक्यावलेह, दन्तीघृत, दन्त्यरिष्ट आदि ।

(ख) ४ किलो दन्तीमूल को ३२ किलो पानी मे पकाइये जब ८ किलो पानी शेष रह जाय तो उसे छानकर उसमे २ किलो घी १२० ग्राम तुरई का कल्क मिलाकर पकाइये। जब सब पानी जल जाय तो घृत को छान लीजिए। यह घृत पीने से वमन विरेचन होकर कुष्ट नष्ट होगा। —अ० हृ०

मात्रा—१५-३० ग्राम।

(ग) १९२ ग्राम दन्तीमूल को ३ किलो ८४० ग्राम पानी शेष रहने पर छान लीजिए। तत्पश्चात् इसमे ७६८ ग्राम घी और दन्तीमूल तथा बेलगिरी का समान भाग मिश्रित १६० ग्राम कल्क मिलाकर पकाइये। जब समस्त पानी जल जाय तो घृत को छान लीजिए। यह घृत गुल्म तिल्ली और पाण्डु रोग को नष्ट करता है।

पाक की उत्तमता के लिए ३ किलो ७२ ग्राम पानी भी डालना चाहिए। —च० स०

७. दन्त्यरिष्ट—(क) दन्तीमूल, चित्रकमूल, दशमूल, सरिवन, पिठवन, छोटी और बडी कटेरी, गोखरू, बेल, सोनापाठा, कुम्मेर, पाटल और अरनी इन सबकी जड़ें तथा हरड, बहेडा, आमला प्रत्येक ४८-४८ ग्राम लेकर सबको जौकुट कर १३ किलो पानी मे पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर ठंडा हो जाने पर उसमे ५ किलो गुड मिला चिकने मटके मे (प्रथम धाय के फूल और लोध को पीसकर लेप करदें। लेप के सूख जाने पर इस मटके मे) भर अच्छी तरह मुखसधान कर १५ दिन सुरक्षित रखे। फिर छानकर बोतलो मे भर रखें। १२ से ३० मि ली तक समभाग जल मिला सेवन से अर्श, ग्रहणी, पाण्डु कब्जी, अरुचि आदि नष्ट होते है। मल और वायु का यथोचित निस्सरण होकर जठराग्नि दीप्त होती है। —च० स०

(ख) दन्तीमूल का क्वाथ बनाकर इसमे अमलतास का गूदा और पुराना गुड डालकर एक हाण्डी मे सधान विधि से संधान करें। १५ या ३० दिन बाद छानकर उपयोग मे लावें। यह अरिष्ट रेचनार्थ उपयोगी है।

(ग) त्रिफला, दशमूल और दन्तीमूल ४८-४८ ग्राम लेकर सबको १२ किलो २८८ ग्राम पानी में पकावें। जब ८ किलो पानी शेष रह जाय तो उसमे ४ किलो ८०० ग्राम गुड मिलाकर घृत मे चिकनी की हुयी हाडी मे भरकर इसका मुख अच्छी तरह बन्द करके रख दें और एक माह बाद निकालकर छान लें।

यह दन्त्यरिष्ट बवासीर कृमि, उदावर्त, ग्रहणी, रोग और पाण्डु रोग नष्ट करता है।

मात्रा—२४ मि० ली०। —वृ० मा०

८. दन्त्यादि तैल—दन्तीमूल, कनेर की जड, कसीस, बायविडग, इलायची, चीता और सेंधानमक समान भाग मिलाकर २४० ग्राम लें और पत्थर पर पानी के साथ पीसकर कल्क बना लें। फिर यह कल्क और २ किलो आक का दूध और ८ किलो पानी को २ किलो सरसो के तैल में मिलाकर पकावें। जब सब पानी जल जाय तो तैल को छान लें। इस तैल की मालिश से गुदा के मस्से नष्ट हो जाते हैं।

९. दन्त्यादि लेप—दन्तीमूल, चीता, गौ का दन्त, करज बीज और कनेर की जड की छाल समान भाग लेकर पानी के साथ पीस लें। पक्व और शोथ-युक्त अन्तर्विद्रधि मे इसका लेप करना हितकारक है। —ब० से०

१०. दन्तीधूम—दतीमूल या निर्गुण्डी (सम्भालू) का धूमपान करने से कफज खासी अवश्य तुरन्त नष्ट हो जाती है। —वृ० नि० र०

११. दन्त्यादि नस्य—दन्तीमूल, मुलैठी, सैंधा नमक, तुलसी, पीपल, बायविडग और करजफल, इनका समान भाग चूर्ण लेकर एकत्र मिलावें। इसका नस्य लेने मे कृमि कुष्ठ और कफ-विकार नष्ट होते हैं। —च० स०

१२. दन्त्यादि वर्ति—(क) दन्तीमूल, तगर, गठोड (नेत्रबालक) पीपल, विड्नमक, कूठ और घर का धुंवा समान भाग लेकर चूर्ण करके सबको गोमूत्र और नीबू के रस, या काजी आदि किसी अम्ल द्रव में पकाकर गाढ़ा करें और उसकी हाथ के अगूठे के बराबर वर्तियां बनावें।

इनमे से एक वत्ती को घी लगाकर गुदा मे रखने से उदरशूल और अफरा नष्ट होता है ।—वृ०नि०र०

(ख) दन्तीमूल, निशोथ, सैंधानमक, मैन्शिल, हरताल, पिप्पली और चित्रक का कल्क कर वर्ति बनालें। यह नासार्श में उपयोगी है। नासार्श को पहले क्षार से दग्ध करके पश्चात् दन्तवर्ति नाक मे रखे इससे जो अवशिष्ट नासार्श का भाग होता है—जो शस्त्रकर्म या आहरण के द्वारा नही निकला, वह भी साफ हो जाता है। —निमितन्त्र

१. द्रवन्त्यादि तैल या घृत—द्रवन्ती, पूतिकरज, दन्ती, चित्रक, डीकामाली, नीम के पत्ते, कासीस, तूतिया, निशोथ ज्योतिष्मती, नीलनी, हल्दी, दारुहल्दी, सेंधानमक, तिल, मुण्डी, गोधापदी, शुकनासा, लागली, मन.शिला, कोशातकी, मेहदी, इन्द्रवारुणी, सेहुड, मूर्वा, आक, बिडग, हरताल, करज जो भी मिलें लेकर उनमे तैल सिद्ध करें या घृत तैयार करें।

सैंधानमक, त्रिवृत, एरण्ड पत्रो का कल्क वातिक दुष्टव्रण मे, तिल, तेजोवती दन्ती स्वर्जिका, चित्रक का कल्क, कफज दुष्ट व्रणो मे प्रयोग में लाते हैं ताकि पूतिमास को हटाया जा सके।

इन्हीं तैलो और घृतो और कल्को को मेह तथा कुष्ठ के व्रणो मे भी प्रयोग कर सकते हैं।

—सुश्रुत सहिता

२. द्रवन्त्यादि चूर्ण—द्रवन्तीमूल, काली मिरच, दन्तीमूल, अजवाइन, कालाजीरा, सोठ, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) और चित्रक इनको समभाग लेकर चूर्ण करलें। इस चूर्ण मे सात दिन तक गोमूत्र की भावना दें। पश्चात् इसमे से ३ ग्राम से १० ग्राम पर्यन्त चूर्ण को घी के साथ सेवन करना चाहिए। यह सर्व रोग नाशक है और सब ऋतुओ मे हितावह है। यह किसी प्रकार से हानिप्रद नही होने से आबालवृद्ध के लिये हितकारक है। इससे विरेचन होकर अजीर्ण (अपक्व अन्न सेवन से उत्पन्न), पार्श्वशूल, गुल्म, प्लीहोदर, गण्डमाला, वायुरोग और पाण्डुरोग आदि रोगो मे लाभ होता है। विरेचन होने पर भी तर्पण क्रिया (स्निग्धादि पदार्थों का सेवन) करनी चाहिए।

—वन० गुणादर्श

३. द्रवन्त्यादि वटी—(क) द्रवन्ती पत्र पीसकर वस्त्र से निचोडकर स्वरस निकाल लें। फिर इस रस को छाया मे सुखने के लिये रख दें। जब कुछ गाढ़ा हो जाय, तब बडी-बडी गोलिया बनालें। इन गोलियों को पानी मे पीस लेप लगाते रहने से गण्डमाला मे लाभ होता है। गण्डमाला के रोगी के लिये यह एक वहि परिमार्जन प्रयोग है। इसका प्रयोग निरन्तर एवं कुछ लम्बे समय तक करना चाहिए।—वनौ० विशे०

(ख) द्रवन्ती का क्षार, तिल का क्षार, एरण्ड का क्षार, शुद्ध भिलावा और पीपल का चूर्ण १-१ भाग तथा इन सबके बराबर गुड़ लेकर एकत्र मिलाकर गोलिया बनालें। इन्हे अग्निबलोचित मात्रानुसार सेवन करने से अग्नि की वृद्धि होती है और तिल्ली, यकृत्वृद्धि व गुल्म का नाश होता है। इसकी मात्रा ३ ग्राम है और अनुपान शीतल जल है। जिन्हे भिलावा अनुकूल न हो, उन्हे इन गोलियो का सेवन नही करना चाहिए। —यो० र०

पेटेण्ट प्रयोगों मे दन्ती—अनियमित पाचन-क्रिया के कारण उत्पन्न विविध विकारो को दूर करने के लिये झण्डू फार्मा० का है—"झण्डूजाईम"। यह उत्कृष्ट पाचनशक्ति उत्तेजक है। खाड के आवरणयुक्त प्रत्येक गोली मे दन्तीमूल, पिप्पलीमूल, अजवाइन, कुचलासत्व, गिलोय, हीग, चिचा भस्म, कज्जली, चित्रक, त्रिकटु, यवक्षार, सज्जीक्षार, सूर्यक्षार आदि हैं। भोजन के बाद २ गोली देने से मन्दाग्नि, अजीर्ण, आध्मान आदि नष्ट होते हैं।

एम्वीजेक लेब्रोट्रीज सरदारशहर (राज०) द्वारा विनिर्मित 'जेकोफोर्ट एलेक्जर" पाचनक्रिया को ठीक करने मे श्रेष्ठ है। यह दन्तीमूल, चित्रकमूल, विभीतक, पीपल, सोठ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, आदि के साथ घृतकुमारीरस, आवलारस, सन्तरारस, नीबूरस, अदरकरस व सेवरस से तैयार किया

जाता है। इसमे उपर्युक्त गुणकारी द्रव्यो के सार के अतिरिक्त प्राकृतिक एन्जायम्स, जीवनीय तत्व व मद्यसार आसव के रूप मे विद्यमान है। इसका कारण जेकोफोर्ट पाचन-क्रिया को सामान्य करके शरीर में नए खून व ताकत की वृद्धि करता है। अग्निमाद्य, आध्मान, कोष्ठबद्धता आदि विकारो को दूर करता हैं। बीमारी से बाद की दुर्बलता को भी यह दूर करता है।

शिल्पाकेम नामक इन्दौर की आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला जो "लिवोवेल ड्रोप्स" एव लिवोवेल सायरप बनाती है। इन दोनो मे बहुत सी २४ जडी-बूटिया डाली जाती हैं, जो यकृत् की समस्त विकृतियों का निवारण कर यकृत् की क्रिया को नियमित करने मे श्रेष्ठ है। इन दोनों में ही दन्तीमूल-सत्व का मिश्रण किया जाता है। इसके अतिरिक्त पुनर्नवा, भृङ्गराज, हरीतकी, चित्रक, रोहितक, कालमेघ, गुलाब, मिलोय, सोठ आदि के भी तत्वो का सम्मिश्रण किया जाता है, जिससे यह अधिक उपयोगी बन जाता है। फलस्वरूप किंवा दूध के साथ इसका प्रयोग किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त आभ्यन्तरीय प्रयोगो के अतिरिक्त कतिपय बाह्य प्रयोगो मे भी दन्ती का उपयोग किया जाता है। गर्ग वनौषधि भण्डार विजयगढ़ (अलीगढ़) द्वारा विनिर्मिति "चर्मनौल" ट्यूब में दन्ती, निशोथ, कालीमिर्च, आक का दूध, गोबर का रस, दारुहरिद्रा, इन्द्रायणमूल, जटामासी, हरताल आदि होते हैं। यह खाल-खुजली आदि सभी प्रकार के चर्मरोगों के लिए अत्युत्तम मलहम है।

अनुभूत प्रयोग

१. विषमज्वरहर प्रयोग—दन्तीमूल, आमला, कचूर, कुटकी, सैन्धव नमक, चिरायता, पीपलामूल, पुष्करमूल, बडी छोटी कटेरी, गिलोय, परवल की जड, परवल के पत्ते, मोथा, वच सब समान भाग ले चूर्ण करलें। उष्ण जल के साथ ३ ग्राम चूर्ण सेवन करने से विषमज्वर में लाभ होता है।

—वैद्य श्री बसरीलाल साहनी
(सरल सिद्ध योग संग्रह)

२. निरपाय विरेचन कल्प—सोठ, मिरच, पीपल प्रत्येक १२ ग्राम, शक्कर तथा इलायची १२ ग्राम, शखिनी २४ ग्राम, निलीमूल ४८ ग्राम, दन्ती और द्रवन्ती यह दोनों ९६ ग्राम और दालचीनी ३ ग्राम इन सभी को अलग-अलग कूटकर चूर्ण करके रख लें। यह चूर्ण रेचनार्थ १२ ग्राम लेकर शहद में मिलाकर चाटना चाहिए और ऊपर से शीतल जल पीना चाहिए। इससे कुछ हानि नही होती और अच्छी तरह से जुलाब होते हैं।

—वैद्य हिरामण मोतीराम जंगले
(स० वन० गुणादर्श)



दन्तिबीज (जयपाल)

(Croton Tiglium)

बहुत से वैद्यजन जयपाल के दन्तिबीज नाम से दन्ती के बीजो को ही जयपाल मानते हैं। वस्तुतः दन्तीबीजों का गुण मात्र जयपाल समान है। आचार्य भावमिश्र ने "जयपालो दन्तबीजम्" कहकर यह भ्रम उत्पन्न कर दिया है। इसी प्रकार कई व्यक्ति द्रवन्ती के बीजों को जयपाल मानते हैं। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने द्रवन्ती बीज को जयपाल कहा है और दन्तिबीज नाम की व्याख्या "दन्ती के समान बीज वाला" कह कर की है। पूर्व मे वर्णित दन्ती द्रवन्ती वस्तुतः पृथक् है। द्रवन्ती बड़ी दन्ती है और यह जयपाल, बड़ी दन्ती का ही एक भेद है। वस्तुत. इस समय वैद्यगण जिस जयपाल का व्यवहार कर रहे हैं वह जयपाल नामक वृक्ष "क्राटन टिगलियम" का बीज है। सुतरां हमने दन्ती द्रवन्ती के वर्णन के पश्चात् दन्तिबीज नाम से इस जयपाल का पृथक् वर्णन किया है। भावप्रकाश निघण्टु में दन्ती द्रवन्ती के पश्चात् ही इस जयपाल का वर्णन किया है। यह भी एरण्ड-कुल (युफर्बीएसी) की वनोषधि है।

नाम—

संस्कृत—जयपाल, जेपाल, नेपाल, दन्तिबीज।
हिन्दी—जमालगोटा।
गुजराती—नेपाली।
मराठी—जमालगोटा।
बंगला—जयपाल।
पंजाबी—जपोलोटा।
राजस्थानी—जमालगोटो।
असमिया—कोनीबीह।

आसाम के जंगली लोग इसे कोनीबीह कहते हैं क्योंकि बीज के भीतर का गर्भ या अंकुर (कोनी) विषैला (बीह) होता है। —वनौषधि दर्शिका

तामिल—नारचालाम्।
तेलगु—नेपाल।
कन्नड़—नेपाल।
अरबी—तुख्म हब्बुस्सलातीन, दन्दुस्सीनी।
फारसी—तुख्म बेद अजीर खताई, दन्दचीनी।

सम्भवत. चीनियों से ईरानियो को इसका ज्ञान हुआ, तब ही तो इसको वहां "दन्दचीनी" नाम दिया गया है।

अंग्रेजी—परगेटिव क्राटन (Purgative Croton)।

लैटिन—क्राटन टिगलियम (Croton Tiglium)।

जयपाल के पौधे का जातीय नाम "Croton" व्युत्पन्न है यूनानी (Greek) से जिसके अर्थ होते हैं "Tick or bug" (यह एक क्षुद्र कीट होते हैं)। वृक्ष का विशिष्ट नाम "Tiglium" भी यूनानी से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ होता है "Tohavea thin stool" अतएव वृक्ष के नाम से उसके बीजो के स्वरूप एवं उनकी प्रधान क्रिया का परिचय मिलता है। जमालगोटे के बीज स्वरूपतः "Tick" या "Bug" की तरह होते हैं। —पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान

प्राप्ति स्थान—इसका मूलस्थान चीन है। चीन, लंका तथा भारतीय द्वीपसमूह मे यह पाया जाता है। भारत मे यह आसाम, बंगाल व दक्षिण भारत मे होता है। वहां ये स्वयंजात होते हैं एवं उद्यानो मे भी लगाये जाते हैं। यह पंजाब मे भी पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—बीजो मे एक स्थिर तैल ३०-४५ प्रतिशत है जिसमे क्रोटन रेजिन होता है, जो स्थानिक प्रभाव से विस्फोट जनक है। यह इसका मुख्य सक्रिय उपादान मालूम होता है। इसके अतिरिक्त टिग्लिनिक एसिड, क्वार्टेनिलिक एसिड होते

हैं। कुछ उडनशील तैल, जिनके कारण इसकी उग्र-गन्ध होती है तथा अनेक वसाम्ल होते हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसके छोटे १५ फुट से २० फुट (४ ५७ से ६ ८ मीटर ऊचे सदाहरित वृक्ष होते हैं।

पत्र—२-४ इन्च लम्बे पतले चिकने, लट्वाकार, लम्बाग्र, दन्तुर और ३-५ सिराओ से युक्त होते है। ये सूखने पर पीताभ हो जाते हैं।

पुष्प—एक लिंगी तथा छोटे होते है, जो शाखाग्रय मजरियो मे निकलते हैं। नरपुष्प श्वेताभ वर्ण के तथा १५ से २० केशरसूत्रो वाले होते हैं।

फल—लगभग एक इच लम्बे श्वेत, आयताकार, त्रिखण्डीय होते हैं।

बीज—आकृति मे एरण्ड बीज के समान अण्डाकार, अस्पष्ट त्रिकोणीय १/२ इच लम्बे, २/५ इच चौडे बादामी कृष्णाभ भूरे वर्ण के होते हैं। बाह्य बीजावरण सहज ही भगुर होता है। इसे तोडने पर श्वेतपीताभ द्विदली स्निग्ध गूदा निकलता है, जो एक तनु श्वेताभ झिल्ली से ढका रहता है। दलों के बीच मे एक वृन्त से सयुक्त दो तनु पत्राकृति जीभी निकलती है। एक फल मे तीन बीज निकलते हैं। ग्रीष्म ऋतु में पुष्प आते हैं तथा शीतकाल में फल पकते हैं।

रसतरङ्गिणीकार प्राणाचार्य श्री सदानन्द शर्मा ने एवं उसके व्याख्याकार श्री हरिदत्त शास्त्री ने इसका परिचय इस प्रकार दिया है—

नात्युच्छ्रितो नातिह्रस्वो दन्तीजातीयकस्तरु।
अधुना तु विशेषेण देशे पञ्चनदाह्वये॥
तथैव सिंहलद्वीपे द्वीपेष्वन्येषु जायते।
बीज तस्य भिषग्वर्यैर्जयपाल इति स्मृत.॥
दन्तीबीजात् क्षुद्रतर बीजमस्य तु यद्यपि।
पर तीव्रतरा शक्तिर्दृश्यते मल भेदने॥

—र० त०

जयपाल परिचय "जयपालो दन्तिबीजम्" इति भावप्रकाशीयनिघण्टु व्यवहारभ्रान्तिनिरासाय। तदेतदाह "दन्तीजातीयकस्तरु." इति। अपि च "दन्तीबीजात् क्षुद्रतर बीजमस्य" इत्यपि भेदक लक्षणमस्य दन्तीबीजात्. केचित्तु बृहद्दन्तीबीज जयपालमाहु.। वस्तुतस्तु जयपालो दन्तीबीजात् भिन्न एवेति जयपालनाम्नैव प्रसिद्ध्यति वर्तमाने जगति।

—प्रसादनी व्याख्या

रस—कटु।
गुण—रूक्ष, तीक्ष्ण, गुरु।
वीर्य—उष्ण।
विपाक—कटु।
प्रभाव—तीव्ररेचन, स्फोटजनन।
दोषकर्म—कफपित्तहर।
गुणप्रकाशक संज्ञा—जयपाल, रेचक, मलद्रावी।
जयते रेचनाना च तत: पालयति प्रजा:।

—प्रि० नि०

प्रयोज्य अङ्ग—बीज, बीज तैल।
मात्रा—३० मि० ग्रा० से १२० मि० ग्रा० तक (बीज चूर्ण)।

१/२ बूद से १ बूद तक—मक्खन या मधु के साथ (तैल)।

वीर्यकालावधि—२-५ वर्ष तक।

अपमिश्रण—एरण्डबीज एव इसी की एक जाति (Jatropha Curcas) के बीजो का मिश्रण कर दिया जाता है। जाट्रोफा कुर्कास (व्याघ्र रण्ड) दक्षिण भारत एव कनाडा मे पाया जाता है। देहरादून के जगलो मे भी इसके बीजो का जयपाल के नाम से सग्रह किया जाता है। श्री रामेशवेदी ने इसे ही द्रवन्ती माना है। पूर्व आलेख देखें।

परीक्षण—एरण्ड बीज स्वरूप मे जयपाल के समान होने पर भी इन्हे आसानी से पृथक् किया जा सकता है। एरण्ड बीज का बाह्य बीजावरण स्निग्ध, चमकदार तथा अनेक श्वेत धारियों से युक्त होता है। जबकि जयपाल का बीज कृष्णाभ भूरे या बादामी वर्ण का अस्निग्ध तथा श्वेत धारियो से रहित होता है।

जाट्रोफा कुर्कास के बीज कुछ बडे (१८ मि० मी० लम्बे, १२-१३ मि० मी० से कुछ कम चौड़े) होते हैं। बीजो का पृष्ठ तल कुछ उन्नतोदरीय होता है। अधः

पृष्ठ के मध्य मे एक रेखा होती है। बीज का एक सिरा श्वेत चिन्हांकित होता है। जयपाल मे इन रचनाओं का अभाव होता है। जिससे आसानी से उक्त जाति की मिलावट होने पर इसे पृथक् किया जा सकता है। —द्रव्य परीक्षा

निषेध—

बाले वृद्धे कृशे क्षीणे गर्भिण्याञ्च गुदामये।
प्रवाहिकाया शोथे च त्वामपक्वाशयाश्रिते॥
गुदभ्रंशे चान्त्रशोथयुते बद्धगुदोदरे।
तथान्त्रच्छदशोथे च जयपाल न योजयेत्॥
—र० त०

जयपाल अथवा जयपाल के योगो को बच्चे, बूढे, कृश तथा क्षीण मनुष्यो को, गर्भिणी स्त्री, अर्श, प्रवाहिका पीड़ितो को तथा आमाशय व पक्वाशय शोथ पीड़ितो को और गुदभ्रंश, आंतों मे शोथयुक्त बद्धगुदोदर, अन्त्रावरणकलाशोथ रोग मे सेवन नही कराना चाहिये। दाह, अम्लपित्त, आमाशयव्रण और कर्कस्फोट मे भी इसे नही देना चाहिये। मदात्य, क्षत पीड़ित एवं रूक्ष व्यक्ति को भी यह हानिकारक है।

नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी।
शल्यादितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता॥
—र० चिन्ता०

विदाहक लक्षण—मात्रातियोग से आमाशयान्त्र प्रदाह होकर पेट मे मरोड, शूल एवं रक्तमिश्रित पतले दस्त होने लगते हैं। आमाशय आदि से तीव्र व्रणशोथ हो जाता है। रोगी बहुत दुर्बल हो जाता है।

घातक मात्रा ४-५ घण्टो मे किंवा अधिक से अधिक तीन दिनों मे हृदयावसाद कर मार डालती है।

दर्पनाशक (चिकित्सा)—अत्यधिक मात्रा सेवन किये व्यक्ति के आमाशय का उष्णोदक से प्रक्षालन करना चाहिए और उत्तेजक औषधिया देकर हृदयावसाद से बचाना चाहिए। साथ मे अन्य दर्पनाशक द्रव्यों का पुन: पुन: प्रयोग करना चाहिए। लाभ होने पर बाद में इन द्रव्यो का सेवन कम कर देना चाहिए।

सन् १९७३ मे प्रकाशित आयुर्वेद विकास के "अनुपान–अङ्क" मे कविराज श्री मनसाराम शास्त्री ने एक सत्यश्रुत प्राचीन कहानी का उल्लेख किया है—

जोधपुर के स्वर्गीय महाराजा श्री जसवन्तसिंह के दरबार में एक अग्रेज सर्जन आया, उसी समय राजवैद्य स्व० मूर जी भी पहुच गये। महराजा बोले—ये हमारे सर्जन हैं। साहब बोले—"हम तुमको एक दवाई देता है, तुम हमको एक दवाई दो।" साहब ने मल्ल (सोमल) दिया। वैद्यराज जी ने जयपाल दिया। वैद्यराज जी ने जल के स्थान पर भी घृतपान किया। वे सोमल को समझ गये थे। साहब को दस्त होने लगे उन्होने अपनी खूब ही औषधिया ली किन्तु कोई प्रभाव नही हुआ। वैद्यराज जी को बुला भेजा। उन्होंने जाकर कहा "धनिया-मिश्री घोलकर पिला दो। साहब की दस्त बन्द हो गई। वैद्यराज जी घृतपान से लाल हो गये।

इसी प्रकार की एक घटना हमारे विद्यार्थीकाल की है। प्रयोगिक कर्माभ्यास मे जयपालकल्प इच्छाभेदी रस बनाया गया। उसी समय श्री रामभरोसी जी मिश्र ने मात्रा से अधिक उसका सेवन कर लिया। उनकी दशा बडी खराब हुई। गुरुवर्य श्री ईश्वरदास जी के पास हम दो छात्र गये और सारी कथा कह सुनाई। उन्होंने मुक्तावलेह दिया। जिससे उनकी स्थिति मे सुधार हुआ।

वातपित्तशामक स्निग्ध मधुर शीत द्रव्यों का प्रयोग हितावह है। गोदुग्ध, घृत, धान्यक-सिता का घोल, नीबू का शर्बत, दही की लस्सी, फलस्वरस पिलावे। दही में इलायची बीज चूर्ण मिलाकर देना भी हितकारी है। ३० मि० ग्रा० अफीम, १ ग्राम भीमसेनी कपूर, ५ ग्राम मिश्री को २५० ग्राम दही में मिलाकर देना अत्यन्त लाभप्रद है। घृत-सिता मिश्रित दुग्ध के अनुपान मे भी अफीम दी जा सकती है। रोगी को अन्य आहार न देकर तक्र एव फलस्वरस (विशेषतया दाडिम स्वरस) ही पिलाना चाहिए। वमन यदि अत्यधिक होता हो तो रसादि चूर्ण (यो०

र०) देना चाहिए और शीताङ्ग होने पर उदर पर निर्विषी का लेप करना चाहिए। तथा बबूल के गोंद के लुआव मे बादामरोगन मिलाकर देना भी हितावह है। बेर की गुठली की मींगी का सेवन भी हितकारी है। रसादि चूर्ण का यह मुख्य घटक है।

शोधन—जयपाल की उपविषो मे गणना की गई है—

विषतिन्दुकबीज च त्वहिफेनञ्च रेचकम्।
धत्तूरबीज विजता गुञ्जा भल्लातकाह्वय ॥
अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीर लाङ्गली करवीरकम्।
समाख्यातो गणोऽय तु बुधैरुपविषाभिध ॥
"रेचक जयपाल." —र० त०

सामान्यतया विषाद उत्पन्न करने वाले द्रव्य विष कहलाते हैं। इनमे जयपाल भी एक वानस्पतिक क्षोभक विष (Vegetable Irritant Poison) है। इसके सेवन से मुह, गला और आमाशय मे दाहयुक्त पीडा होती है। अत्यधिक कुथन होकर रक्तमिश्रित विरेचन होने लगते हैं। पुन -पुन लालास्राव होता है और वमन भी होता है। शरीर में ऐंठन होने लगती है और त्वचा शीतल होकर अन्त में हृदयावसाद से मृत्यु हो जाती है। इन विषो का सम्यक् प्रयोग अमृततुल्य कहा गया है अत प्रयोग से पूर्व इनका शोधन अनिवार्य होता है। शोधन के लिये इसकी अनेक विधियों का वर्णन मिलता है। छात्रो के लिए सुखस्मरणार्थ एक विधि का यहा उल्लेख कर आगे सभी विधियो का विशद-वर्णन किया जावेगा—

नवजयपालकबीजान्यादाय विभेदयेद्बुधो द्विधा।
रसना हरिता त्यक्त्वा पोट्टल्याञ्चापि सङ्गृह्य ॥
दोलायन्त्रे विपचेत् सुरभीपयसा ततस्तु यामैकम्।
एव त्रिवारकरणाज्जयपाल शुद्धिमायाति ॥
—पो० ह०

शास्त्रों के अनुसार निम्नांकित विधिया चिकित्सकों के द्वारा उपयोग मे लाई जाती रही है—

१ जयपाल के ताजा बीजों को लेकर उनके बाहरी छिलके अलग कर बीज से निकलने वाली मींगी को चाकू से बीच में फाड लें। फाडने पर मींगी के बीच मे से एक छोटी सी हरे रङ्ग की जीभ सी होगी, उसे अलग फेंक दें। अब इस जीभ रहित जयपाल बीज मज्जा को एक कपडे मे बाध पोटली बनाकर दोलायन्त्र द्वारा गाय के दूध मे एक प्रहर तक पकावें। इस प्रकार तीन बार गोदुग्ध मे दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करने से जयपाल शुद्ध हो जाता है।

तीन बार स्वेदन के पश्चात् गरम जल से धोकर नीबू स्वरस की भावना देकर धूप में सुखाकर रखलें। तत्पश्चात् औषधि रूप में प्रयुक्त करें।

२ जिह्वारहित जयपालमज्जा में उससे आठवां भाग सुहागा मिलाकर उसको कपडे मे बाधकर पोटली बनालें। अब इस पोटली को दोलायन्त्र मे गोदुग्ध डालकर छः घण्टो तक स्वेदन करने से भी जयपाल शुद्ध हो जाता है। रसेन्द्रसारसग्रह मे इस विधि को कहा है।

३ जयपालबीजमज्जा को कपडे मे बाध दोलायन्त्र मे गोदुग्ध के साथ तीन घण्टो तक पकावें। तीन घण्टो के बाद पोटली को खोलकर मज्जा को पीसकर कल्क बनालें। अब इस कल्क को एक नये कोरे घडे के बाहरी पेंदे पर पतला लेप कर दें। जब इसका तैल सूख जाय तो इसे खुरचकर इकट्ठा करलें। फिर इसे नीबू रस मे घोटकर सुखालें।

आचार्य शार्ङ्गधर ने स्वेदन के स्थान पर पोटली को तीन दिनों तक गोबर मे दाब देने के लिये कहा है। पडित धर्मानन्द शास्त्री ने कोरे घडे के स्थान पर ब्लाटिंग पेपर के बीच मे जयपाल पिष्टी को रख तैल को सुखाने के लिये लिखा है। कोरे घडे के अभाव मे यह आधुनिक विधि अधिक सुकर एवं उपयोगी है।

बहुत से चिकित्सको का मत है कि जयपाल बीजों का अधिक शोधन उपयुक्त नही, इससे उसके विरेचनकर्मा स्नेह का बडा भाग निकल जाता है, परिणामतया जयपालकल्पों की अधिक मात्रा भी अभीष्टकर्म सम्पादित नही कर पाती सुतरां इसका सामान्य शोधन ही उपयुक्त है। वैद्य भूषण पंडित गोवर्धन शर्मा छांगाणी के प्रयोग सुखविरेचनी वटी (सि० यो० स०) के निर्माण मे इसके सामान्य शोधन का ही वर्णन किया गया है।



जयपाल (Croton Tiglium)

विभिन्न नाम : सं०—जयपाल, दन्तिबीज। हि०—जमालगोटा। गु०—नेपालो। म०—जमालगोटा। लै०—क्राटन टिगलियम।

प्राप्ति स्थान : चीन, लंका, भारत (आसाम, बंगाल, पंजाब)।

उपयोगी अङ्ग : बीज, बीजतैल। **दोषशमन** : कफपित्तहर।

रोगोपयोग : विबन्ध, जलोदर, शोथ, ज्वर, वृश्चिकदंश आदि।

मुख्ययोग : इच्छाभेदी रस, जलोदरारि रस, आदि।

गुण धर्म विवेचना—

जयपालो दन्तिबीज विख्यात तिन्तिडीफलम् ।
जयपालो गुरुस्तीक्ष्णो रेची पित्तकफापहा ॥
—भा० प्र० नि०

जेपाल कटुरुष्णश्च क्रमिहारी विरेचन ।
दीपन कफवातघ्नो जलोदरविनाशन ॥
—रा० नि०

सुस्निग्ध गुरु रेचि पित्तकफनुन्नेपालबीज रसे ।
पाके स्वादु जयेत् क्षतक्षयगरुद्दाहास्रकासापद ॥
-सि० भै० म० मा०

जयपालो मतस्तिक्तो विरेचनकर परम् ।
जलोदरप्रशमनो नवज्वरनिवर्हण ॥
क्रमिहारी कुष्टहरो वातश्लेष्मनिषूदन ।
वान्तिकृत् पित्तजननो वृश्चिकादिविषप्रणुत् ॥
—रसतरङ्गिणी

जयपालो मतस्तीक्ष्णरेचन कण्ठकर्षण ।
जलोदरे च शोथे च क्रूरकोष्ठे प्रशस्यते ॥
—प्रि० नि०

जयपालो द्रवरेची तीक्ष्ण स्वल्प प्रयुज्यते त्वगदे ।
कोष्ठे क्रूरे शोथे जलोदरे द्रवनिरासाय ॥
—षोडशाङ्गहृदयम्

यह विरेचन कराकर प्रकुपित्त पित्त को बाहर निकाल देता है। वैसे गुणधर्म की दृष्टि से यह कफघ्न है। सुतरा कफ और आम प्रधान रोगो में, उनको निकालने और उदर के शोधनार्थ जयपाल प्रधान योगो का उपयोग करना चाहिए। इसका प्रभाव लसीका वाहनियो—रक्तवाहिनियों और फुफ्फुस कोषाणुओ मे विशेष होता है, जिससे सब स्थानो में सग्रहीत दोषो को बाहर निकाल कर देह को शुद्ध बनाता है। आमाशय मे सग्रहीत कफ-आम, यकृत् में सचित दूषित पित्त और अन्त्रादि में सग्रहीत दोष इसके प्रयोग से निवृत्त होते हैं। जिससे पाचनक्रिया सबल बन जाती है।

उदररोगो में अग्निमाद्य नाशक उपचार के साथ सचित दोषों को निकालना होता है। स्रोतोरोध मिटाकर प्राण अपान को शुद्ध करने से उदर रोगों से त्राण मिलता है। ये सारे कार्य जयपालयुक्त विरेचन योगो से सिद्ध होते हैं। भगवान् चरक ने उदररोगो मे विरेचन को विशेष महत्व दिया है—

दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्ग निरोधनात् ।
सभवन्ति उदर तस्मान्नित्यमेव विरेचयेत् ॥
—च० चि० १३।६१

जलोदर मे उदकदोषहर, रूक्ष, तीक्ष्ण, कफघ्न, दीपनीय द्रव्यो की उपादेयता का बखान किया गया है। पक्वाशय मे मलमूत्र विभाजन का कार्य होता है, विरेचन द्रव्यो से पक्वाशय पर विशेष प्रभाव पडता है। जयपाल सचित जल का यथोचित निष्कासन कर शोथ आदि उदररोगोक्त लक्षणो को कम करता है। कफ प्रधान जलोदर मे यह विशेष लाभप्रद है। अर्जुन अकीक आदि हृद्य द्रव्यो का सयोग कर जयपालयोग हृदयरोग जन्य जलोदर को नष्ट करने मे भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। जलोदर मे जो जलोदरारि रस वैद्यवर्यों द्वारा प्रयुक्त किया जाता है, उसका जयपाल प्रमुख घटक है—

पिप्पली मरिच ताम्र काञ्चनी चूर्ण सयुतम् ।
स्नुहीक्षीरैर्दिन मर्द्य तुल्य जेपाल बीजकम् ॥
निष्क भुक्त विरेकेण सत्य हन्ति जलोदरम् ।
—यो० र०

हृदयरोग जन्य जलोदर मे "शोपीजल" श्रेष्ठ है। उदरारि रस, इच्छाभेदी रस, महावह्निरस, अगस्ति रस आदि उदररोगोपयोगी जयपालयुक्त रसयोग रसग्रन्थो मे वर्णित है। इन योगों को गुल्म उदावर्त, अजीर्ण, आध्मान, कोष्ठबद्धता आदि रोगों मे भी योजना की जा सकती है। ग्रहणी रोग में मलदोष सचय जन्य आमविष, सेन्द्रिय विष को नष्ट करने के लिए भी जयपाल उपयोगी होता है।

जयपाल को "नवज्वर निबर्हण" कहा गया है, अत त्रिपुरभैरव रस, शीतारि रस, शीतभञ्जी रस, महाज्वराकुश रस, चिन्तामणि रस, ज्वरारि रस, अजन भैरवरस, तरुणज्वरारि रस आदि जयपालयुक्त रसयोग

प्रयुक्त किये जाते हैं। श्री बसवराज ने सर्वज्वरोपयोगी एक नारसिंहरस नामक रसयोग का वर्णन किया है—

जेपालगन्धामृतपारदाना
सञ्चूर्णकाना समभागयुक्तम्।
ज्वरान्तकः शर्करया समेतः
रसो नृसिंहेत्यमृतप्रसिद्धः ॥

बच्चों को जो उत्फुल्लिका (डब्बारोग) हो जाता है, उसे नष्ट करने में भी जयपाल उपयोगी है। मणिमालाकार ने बहुत से उत्फुल्लिकाहर प्रयोगों का वर्णन किया है, उनमें कुछ जयपालयुक्त भी हैं—

दन्तीबीजदलाढ्य माष
नारायणस्य चूर्णस्य।
तुलितं सलिलैरुष्णैरुत्फुल्ली
हन्ति वान्तिविरेकाभ्याम् ॥ १ ॥
आर्द्रकजैः करणीया नीरैर्ने-
पालमरिचयोर्गुटिका ।
कफतन्तुजालगर्भ दर्भमदभ्रं
भिनत्ति बालानाम् ॥ २ ॥
—सि० भे० म० मा०

"दर्भ—उत्फुल्लिकाया, सञ्ज्ञान्तरमिदम्, नेपाल दन्तीबीजम्"—इति स्वामिश्रीलक्ष्मीरामाः

कफप्रधान श्वास-कास किंवा तमक श्वास में कफ सचय होता है जिससे प्राणवायु के कार्य मे बाधा उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति मे विरेचन का महत्व है—"तमकेतु विरेचनम्"। श्वास कास नाशक योगों के साथ में जयपाल प्रधान विरेचन योगो की योजना लाभप्रद होती है। श्वास की भांति हिक्कारोग मे भी पित्त कफ के शोधन के लिए इन योगो की उपादेयता है।

कुष्ठ मे विशेषण-पित्तोल्वण कुष्ठ में विरेचन का विशेष महत्व है। जयपाल का इच्छाभेदी रस विरेचन के लिए प्रशस्त है। ऊर्ध्वग रक्तपित्त, पाण्डु-कामला, कफानुबन्धी वातरोगो मे भी विरेचनार्थ जयपाल को उपयोग मे लाया जाना उपयुक्त है।

यह लेखन, विदाही और स्फोटजनन है। शोथ वेदनायुक्त रोगो में इसका बाह्य प्रयोग भी हितावह है। चर्मरोगो मे, खालित्य एव छत्रभग मे इसका बाह्य प्रयोग किया जाता है। पिडिकाहर लेप है—

निकुम्भवातारिफलैर्जलेन
सुपेषितैर्य कुरुते प्रलेपम्।
तस्योपशान्त पिडिका प्रयान्ति
समस्तदोषप्रभवा. क्षणेन ॥
—र० मा०

विषघ्न होने से जागमविषो मे इसका बाह्याभ्यन्तर उपयोग हितावह है—

जयपालभवा मज्जा भावयेन्निम्बुकद्रवैः।
एकविंशतिवारन्तु ततो वर्ति प्रकल्पयेत् ॥
मनुष्यलालया घृष्ट्वा ततो नेत्रे तयाञ्जयेत्।
सर्पदष्टविष जित्वा सजीवयति मानवम् ॥
—शा० स०

जलपिष्टस्तु जैपालो यत्नेन परिलेपित ।
विष वृश्चिकदशोत्थ विनिहन्ति विशेषत. ॥
—र० त०

यूनानी मत—जमालगोटे का मगज चौथे दर्जे में गरम और खुश्क है। सौदा (पित्त) और बलगमी रोगो में यह विरेचन के रूप मे प्रयुक्त होता है। शरीर के अन्दर व्याप्त गर्मी के जहर को यह निकालने मे श्रेष्ठ है। उपदश, कुष्ठ, पथरी, जलोदर, कटिशूल, कामला आदि रोगो मे यह लाभप्रद है। स्फोटजनक होने से इसका तिलाओं मे भी प्रयोग किया जाता है। जब बच्चे को डिब्बारोग हो जाय तो इसे मा के दूध मे या अदरक के रस मे घिसकर उपयुक्त मात्रा मे पिलाने से ४-५ दस्त लगकर बच्चे को लाभ होने लगता है।

नव्य-मत—डाक्टर वामनगणेश देशाई के कथनानुसार यह तीव्र विरेचन है। बडी मात्रा मे यह विष है। एक बूद इसके तैल के प्रयोग से ५-२५ दस्त या अधिक लग जाते हैं। इसके उपयोग से अन्त्र की श्लेष्मिककला मे शोथ उत्पन्न होता है। इसके प्रयोग

से उदरकृमि गिर जाते हैं, किन्तु इसका उपयोग कृमिघ्न रूप में नही किया जाता है। हृदयोदर, अर्धाङ्गवात आदि मे जब रक्तगत जल को कम करना अभीष्ट हो तब इसे उपयोग में लाना चाहिए। यदि रोगी बेहोश हो तो जयपाल तैल की एक बूंद नवनीत मे मिलाकर रोगी की जिह्वा पर लगानी चाहिये। किन्तु ऐसे रोगियों मे यह ध्यान रखने की बात है कि कदाचित् विरेचन अधिक होते हैं और बन्द नही होते हैं, ऐसी स्थिति मे दर्पनाशक द्रव्यो (खदिरसार, नीबू स्वरस) को उपयोग मे लाया जा सकता है।

कर्नल चोपडा के मतानुसार उन्माद, अपस्मार, आक्षेपक आदि रोगो मे जिनमें रक्तभार बढ़ जाता है, इसे विरेचन के रूप मे उपयोग मे लाना चाहिए। इन रोगो मे इसे शहद के साथ देना चाहिए। इसका तैल सन्धिवात, पक्षाघात और अन्य सन्धिगत शूल मे उपयोग मे लाया जाता है।

डा० आर० एन० खोरी के मतानुसार भी यह तीव्र विरेचक है तथा इसका प्रलेप त्वचा पर लौहित्य उत्पादन करता है। इसका तैल अत्यन्त उत्तेजक है। इसकी स्वल्प मात्रा ही जलवत् प्रचुर मलस्राव कराती है। क्षारयुक्त होने से शीघ्र रेचकता बढ़ती है। यह अपस्मार, मनोविकार, ज्ञानहीनता (सन्यास), उदावर्त, पक्षाघात, शोथ, एव कोष्ठबद्धता आदि रोगो मे दिया जाता है। बहुत से रोगों मे बीज या तैल का प्रयोग किया जाता है किन्तु, ज्वर, कोष्ठबद्धता, कृमि, अगम्भीर शोथ, उदररोग, आध्मान, शूल, अश्मरी, शर्करा एव वातरोगो मे यह विशेषतया प्रयुक्त होता है। इसके बीज या तैल का अभ्यङ्ग तरुण शिरोरोग (Cerebral Disease) में शिरोदेश, पृष्ठवंशीय पीडा मे मेरुदण्ड तथा पुराने कास मे वक्षप्रदेश तथा वागिन्द्रिय प्रदाह (Laryngitis) में कण्ठ पर करना चाहिये।

इसके तरल द्रव को "लिनिमेंट क्रोटन" कहते हैं। इसमें आयल क्रोटन १२, आयल गजपुटी ४४ और अल्कोहल (६० प्रतिमान) ४४ होता है। यह बाह्य प्रयोगार्थ उपयोग मे लाया जाता है। निमोनियां में इसकी छाती पर मालिश की जाती है। इसे हल्का करके गज पर मलने से बाल उग आते हैं। इसकी सन्धिवात, गृध्रसी आदि वात रोगो में भी मालिश हितकारी है।

शोथ और जलोदर में अन्य विरेचन की अपेक्षा इसके तैल का अधिक उपयोग होता है। इसके तैल की मात्रा १ बूंद है, जिसे मक्खन मे मिलाकर दिया जाता है। पाश्चात्य द्रव्यगुण के लेखक ने लिखा है कि—जिन अवस्थाओ मे शरीर से द्रवापकर्षण करना अभीष्ट हो तो विरेचन के लिये इसे उपयोग मे लाना चाहिये। इसका तैल बाह्य प्रयोग से तीव्र क्षोभक तथा आभ्यन्तर प्रयोग से तीव्र विरेचन है। बाहरी त्वचा पर लगाने से शोषित होकर भी यह विरेचन प्रभाव करता है। मस्तिष्कगत स्राव एव सन्यास आदि व्याधियो मे जयपाल तैल को मक्खन या मधु मे मिलाकर जिह्वा के नीचे रख देते हैं। इसके शोषणोपरान्त रेचन होता है।

दद्रु, खालित्य, किलास व आमवात मे अन्य द्रव्यो के साथ इसका लेप करने से छाला (स्फोट) उत्पन्न होकर दूषित मल निकल जाता है किन्तु अत्यधिक दाह एव व्रण की आशका से इसे इन रोगो में प्रयुक्त नही करते हैं।

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—

१. सर्प विष—जयपाल पिष्टी में नीबू रस की सात भावना एव लाक्षारस की एक भावना देकर गोली बनाकर अजन करना लाभप्रद है। इससे आखो मे जलन अधिक होती है अत: बाद मे बकरी के दूध का फाया रखकर बाधना चाहिये।

२. वृश्चिक विष—जयपालफल मज्जा को पानी मे घिसकर दश स्थान पर लगाना चाहिये।

३. हिक्का—मज्जा को हुक्के में रख धूम्रपान से वातिक हिक्का का शमन होता है।

४. श्वास—दीपक की लौ मे जयपाल को जलाकर इसका धूम्र नाक से पीना श्वास मे उपयोगी है।

५. **शिरःशूल**—जयपाल को पानी मे पीसकर कनपटियो पर लेप करें। लेप सलाई से करें एव पतला करें। थोडी देर वाद कपडे से पोछकर उस स्थान पर घृत लगावें।

६. **पिडिका**—जयपाल और एरण्ड वीज वरावर लेकर जल में पीसकर लेप करने से सब दोषो से उत्पन्न हुई पिडिकायें नष्ट होती हैं।

७. **चर्मरोग**—चर्मरोगो मे नारियल तैल मे इसे पीसकर लेप करें।

८. **खालित्य (गंज)**—वीजो को पीसकर शिर में लेप करना चाहिए।

९. **सन्धिवात**—जयपालफल मज्जा और विभीतकफल मज्जा को पानी में पीस गरम कर लेप करें। इससे शोथ एव पीडा का शमन होता है।

१०. **भगकण्डू**—जयपाल, हरड़, आवला व गिलोय के क्वाथ से योनि धोना हितकारी है।

अन्तः प्रयोग—

१. **सर्पविष**—(क) जयपाल चूर्ण की अल्पमात्रा को कालीमिर्च के साथ पानी मे घोटकर पिलाने से वमन होकर सर्पविष निकलता है।

(ख) जयपाल को घृत के साथ मिलाकर पिलाने से दस्तों के द्वारा विष निकलता है।

२. **उत्फुल्लिका (बालरोग)**—(क) बालक की अवस्थानुसार ५-७ मि० ग्राम शु० जयपाल को घिसकर पिलाने से वमन-विरेचन होकर वालक का उत्फुल्लिकारोग (डब्बारोग) मिटता है। मणिमालाकार ने इसमे किंचित् नारायण चूर्ण मिलाने को भी कहा है। (चूर्ण—निशोथ-२० ग्राम, पीपल ४० ग्राम, हरड ५० ग्राम तीनो को कपडछन कर लेवें और समान मात्रा मे गुड मिला दें)।

(ख) इसे अदरक के रस या माता के दूध मे भी घिसकर दिया जा सकता है।

३. **श्वास**—जयपाल को जलाकर मात्रानुसार पान मे रखकर खाना चाहिए।

४. **कोष्ठबद्धता**—शुद्ध वीज चूर्ण ६० मि० ग्राम से १२५ मि० ग्रा० तक, त्रिकटु चूर्ण १ ग्राम, शुद्ध सौभाग्य १२५ मि० ग्रा०, धान का लावा १२ ग्राम को पानी के साथ देवें। यह योग कामला एव शोथ मे भी विरेचन के लिये दिया जा सकता है।

५. **श्वानविष**—शु० जयपाल, पुनर्नवा और पटोलपत्र समानभाग लेकर इसमे दुगना गुड मिलाकर वेर के वरावर गोली बनाकर प्रातःकाल गरम जल से देवें। इससे दस्त होकर कुत्ते का विष निकल जाता है। यह औषधि तीन दिन तक सेवन करावें।

जयपाल तैल—कूपिकायन्त्र द्वारा या पाताल यन्त्र से इसके नवीन बीजो का तैल निकाल लें। अथवा उनकी गिरी (मज्जा) निकालकर पानी मे पकावें। पानी पर जो तैल नितर आवे उसे किसी पक्षी के पंख आदि से सावधानीपूर्वक निकालकर रखें, और उपयोग मे लावें।

१. नारायण तैल किंवा तिल तैल मे यह तैल कुछ मिलाकर मर्दन करने से पक्षाघात तथा सन्धिवात मे लाभ होता है।

२ इस तैल के एक भाग मे ८ भाग नारियल तैल मिला मर्दन करने से सन्धिवात, पक्षाघात, वातव्याधि एव तीव्र कठनलिका सम्बन्धी विकारो मे लाभ होता है।

३ इन्द्रलुप्त एव अरुंषिका पर इसके तैल की ५ बूद को ३० मि० लि० जैतून के तैल मे मिलाकर लगाने से छाला पैदा होकर दूषित मल निकलकर लाभ होता है।

४ क्षयरोग मे किंवा जीर्ण श्वसनकज्वर मे ५-६ बूद जयपाल तैल, पुराना घृत १२ ग्राम और थोड़ा कपूर मिलाकर लेप करने से शूल शान्त होता है।

५ कष्टार्तव मे कर्पूरलोशन १० भाग मे जयपाल तैल १ भाग मिलाकर फाया बनाकर योनि मे रखना चाहिए। इससे त्वचा मे उग्रता उत्पन्न होती है तथा रोग की यन्त्रणा शान्त होती हे। मर्दन करने से स्फोट (छाला) या व्रण होने का भय रहता है अतः मर्दन

नहीं करना चाहिये। कष्ट व वेदना के साथ रक्तस्राव मे ही यह प्रयोग करना चाहिये। इसे अंग्रेजी मे कनजैस्टिव डिसमेनोरिया कहते हैं।

६ मस्तिष्कज्वर में रोगी का सिर मुडाकर यह तैल १ भाग तथा जैतून तैल ३ भाग मिलाकर सिर पर मर्दन करेने से सन्तोषजनक लाभ होने का कुछ डाक्टरो का अनुभव है।

७ भयकर शिरशूल पर एक बूद तैल मे एक ड्राम क्लोरोफार्म तथा एक औंस ग्लैसरीन मिलाकर लेप करते हैं।

८ जयपाल तैल २५ मि० लि०, इलायची तैल ८० मि० लि० और मद्यसार (अलकोहल) १०० मि० लि० का मिश्रण कर लें। इसके मर्दन से भी वातरोगो मे लाभ होता है।

९ मस्तिष्कगत रक्तस्राव एव सन्यास (Coma) आदि व्याधियो मे जयपाल तैल की १ बूद नवनीत या मधु मिलाकर जीभ के नीचे रख देना लाभप्रद है। इसे हृदयोदर मे सग्रहीत जल (हृदयावरण मे सग्रहीत जल) का दवाव कम करने के लिए भी इसी प्रकार दिया जा सकता है।

१०. जलोदर और सर्वाङ्गशोथ मे जयपाल तैल का विरेचन अधिक उपयोगी होता है। इसके प्रयोग से अधिक पतले दस्त लगते हैं जिससे रोग मे शीघ्र लाभ होता है। किन्तु सौम्य प्रकृतिक व्यक्ति को इसका विरेचन नही दिया जा सकता है।

उक्त प्रयोगो मे तैल असली लेना चाहिए। यह चिपचिपा लाली लिये गाढे भूरे रङ्ग का होता है। इसमे अरुचिकारक गन्ध आती है और स्वाद मे यह तीक्ष्ण व जलनशील होता है। पाश्चात्य चिकित्सा मे इसका उपयोग होता है।

विविध कल्पना

रसयोग —

१. विश्वतापहरण रस—शुद्ध पारद, ताम्रभस्म, निशोथ, शुद्ध गन्धक, कुटकी, शुद्ध जमालगोटा, छोटी पीपल, शुद्ध कुचला और वडी हर्रे का दल। ये सब समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली कर, उसमे ताम्रभस्म तथा अन्य औषधो का सूक्ष्म कपडछान किया हुआ चूर्ण मिला धत्तूरे के पत्तों के स्वरस मे एक दिन तथा भगरे के स्वरस मे सात दिन मर्दन कर, २५०-२५० मि० ग्रा० की गोलियां बना छाया मे सुखाकर रख लें।

१ से २ गोली अदरक के रस और मधु के साथ अथवा मिश्री मिलाये हुये जल के साथ दें। नव ज्वर मे या उदरादि अन्य रोगो मे जहा विरेचन कराने की आवश्यकता हो, वहा दें। —यो० र०

२. इच्छाभेदी रस—शुद्ध सुहागा, काली मिर्च, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोठ चूर्ण प्रत्येक १२-१२ ग्राम लेवें और शुद्ध जयपाल वीजमज्जा ३६ ग्राम लेवें। पहिले पारद गन्धक को कज्जली बनाकर उसमे शेष द्रव्यो को डालकर जल के साथ घोटकर इसकी १५०-२५० मि० ग्रा० की गोलिया बनालें। इसको इच्छाभेदीरस नाम से कहा जाता है मृदुकोष्ठ वाले नागरिक मनुष्य को इस रस की १८० मि० ग्रा० की मात्रा खाड और शीतल जल के साथ देवें। क्रूरकोष्ठी (सख्त मेदा वाला) और बलवान् मनुष्य को इसकी २५० मि० ग्राम की मात्रा खाड मिलाकर देनी चाहिए। इस रस की गोली खाकर ठण्डा पानी जितनी बार पिलाया जायेगा उतनी ही बार मनुष्य को दस्त आते हैं। यदि दस्त रोकने हो तो रोगी को पर्याप्त गरम जल पिला देना चाहिए। इसके द्वारा विरेचन पर पथ्य मे तक्र के साथ भात खिलाना चाहिए। विरेचन आने और वन्द होने के वाद तीन घण्टे तक शीतल जल पीने मे पूर्ण परहेज करना चाहिए, अन्यथा फिर दस्त होने का भय रहता है। —र० तर०

जयपाल की क्रियाशीलता जल से बढ़ती है जब कि प्राय अन्य विरेचन योगो की क्रियाशीलता उष्णजल से बढती है।

३. जलोदरारि रस—पञ्चामृतीकरण क्रिया युक्त ताम्रभस्म, पिप्पलीचूर्ण, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक,

कालीमिर्च चूर्ण, हरिद्रा चूर्ण प्रत्येक १२-१२ ग्राम लेवें। नूतन और शुद्ध जयपाल मज्जा २४ ग्राम लेकर पहिले पारद गन्धक की कज्जली बनालें। फिर इसमे अन्य द्रव्य मिलाकर त्रिवृत्क्वाथ की तीन भावना देवें। अन्त मे गोली बनने के योग्य होने पर १२५-१२५ मि० ग्रा० की गोलियां बनालें। इसको वैद्य लोग जलोदरादि-रस कहते हैं। इस रस के सेवन करने से विरेचन होकर जलोदर रोग नष्ट होता है। यदि इसके सेवन से अधिक दस्त आ रहे हों और उनको रोकना हो तो रोगी को दही और मात पथ्य में देना चाहिए। —र० तर०

४. ज्वरारि रस—शुद्ध हिंगुल, पिप्पली चूर्ण, शुण्ठी चूर्ण, मिर्च चूर्ण, सोठ चूर्ण, सुहागा, शुद्ध वत्स-नाभ, आवला चूर्ण प्रत्येक १२-१२ ग्राम लें। शुद्ध जयपाल बीज चूर्ण ४८ ग्राम की मात्रा मे लें। इन सबको एकत्र खरल मे अदरख के साथ पीसकर १२५-१२५ मि० ग्राम की गोलिया बनालें। इसको ज्वरारि रस कहा जाता है यह रस नवज्वर को नष्ट करता है। —र० तर०

५. अञ्जन भैरव रस—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, पिप्पली चूर्ण, सुहागा प्रत्येक एक-एक भाग ले। शुद्ध जयपाल बीज चूर्ण सबका आधा लें। पहिले पारे और गन्धक की अच्छी तरह कज्जली बनाये, फिर इसमे अन्य द्रव्यों को मिलाकर निम्बूस्वरस के साथ खूब अच्छी तरह से मर्दन करके छाया में सुखाकर इस चूर्ण को काच की शीशी मे भरकर रख लें। इसका नाम अञ्जनभैरव रस कहा जाता है। इस रस को सन्निपात रोगी के नेत्रो मे अञ्जन करने से सन्निपात में आराम आता है। —र० तर०

६. अश्वकञ्चुकी रस—शुद्ध पारद, आग पर फुलाया हुआ सुहागा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, हरडे दल, बहेडादल, आवला दल, शुद्ध हरताल या माणिक्य रस ये सब समभाग और शुद्ध जमालगोटा सबके समान लेवें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली कर उसमे हर-ताल मिला उसके सूक्ष्म कण भी न दीखें तब तक मर्दन कर अन्य द्रव्यो का सूक्ष्म कपडछान किया हुआ चूर्ण मिला भागरे के रस में २१ दिन मर्दन कर २५०-२५० मि० ग्रा० की गोलिया बनाकर छाया मे सुखा लें। १-२ गोली अदरख के रस या मिश्री मिलाये हुए जल के साथ दें। ज्वर में या अन्य उदरारि रोगो में जहा विरेचन की आवश्यकता हो, वहा एक दो मात्रा यथावश्यक प्रयोग करें। —सि० यो० स०

७. सुखरेचन रस—३० ग्राम जमालगोटे को जलावें, वह कोयला रूप मे परिणत हो जाय तब निम्बू स्वरस मे उन्हे बुझा लें अब उक्त जयपाल कोकिल चूर्ण २० ग्राम, पारद-गन्धक की कज्जली १० ग्राम, पीपल, टकण, काली मिर्च, यवक्षार प्रत्येक ५-५ ग्राम, इन सबको मिलाकर खरल करें तथा निम्बु स्वरस की भावना देवे, इसमे सुगन्धमात्र आजाय इतनी मात्रा मे लवङ्ग, इलायची तथा कस्तूरी भी मिला दें और २-२ ग्रेन की गोलिया बानावें। मात्रा २-२ गोली। विरेचन के अनन्तर उचित पथ्य देवें। —सि० भे० म० माला

८. अर्द्धनारीनटेश्वर रस—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक प्रत्येक १२-१२ ग्राम, शुद्ध विष २४ ग्राम, शुद्ध जमालगोटा २४ ग्राम और काली मिर्च का चूर्ण ४८ ग्राम लें, पहले पारा गन्धक की कज्जली बनावे फिर शेष औषधियो को भी मिलाकर त्रिफला के काढे से मर्दन करें तथा ५ भावनायें उसी (त्रिफले के काढे) की देकर छाया मे शुष्क करके रख लें।

वक्तव्य—यह योग रसेन्द्र सार सग्रह और रस चण्डाशु मे है। मूल पाठा दोनो मे समान है। रसे० सा० सं० के टीकाकार आचार्य घनानन्द जी पन्त के अनुसार मरिच का परिमाण पारा और गन्धक दोनो से चौगुना लेना चाहिए तथा रस चण्डाशु के टीकाकार वैद्य दत्ता बलमाल बोरकर के मतानुसार सिर्फ पारद से चौगुना लेना चाहिए रसयोग सागर-कार ने पारद से चौगुना लिखा है, अत यही हमने भी ठीक माना है।

मात्रा और अनुपान—१२५ से २५० मि० ग्राम तक जम्बीरी नींबू के रस में घिसकर जिस भाग में ज्वर हो अथवा जिस भाग का ज्वर उतारना हो उस भाग में नस्य दे।

गुण और उपयोग—यह सन्निपात, तन्द्रा, निद्रा न आना, सिर दर्द, कास, श्वास, मूर्च्छा, कफ की प्रबलता आदि में नस्य देने से शीघ्र लाभ होता है।

"रत्नाकर औषध योग" में लिखा है कि बकरी के एक थन से दूध निकाल कर उस दूध से इसका नस्य दिया जाय तो जिस भाग के स्तन का दूध होगा शरीर के उसी आधे अङ्ग का ज्वर उतर जायेगा। यदि समस्त शरीर का ज्वर उतारना हो तो इसे अदरक रस के साथ नस्य दें। —र० सा० स०

९. गोपी जल रस—शुद्ध जयपाल ८ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग तथा सोंठ, मिर्च, चित्रक, शुद्ध पारा व सुहागे की खील १-१ भाग लेकर, प्रथम पारे गन्धक की कज्जली कर तथा शेष द्रव्यों का चूर्ण मिला सबको जल के साथ घोटकर १२५-१२५ मि० ग्राम की गोलिया बना लें।

यथोचित अनुपान से लेने से शूल, गुल्म, कोष्ठ-रोग, पैत्तिक विकार, भगन्दर और हृद्रोग में लाभ होता है। —र० रा० सु०

१०. नाराच रस—शुद्ध पारा, सुहागे की खील, कालीमिर्च का चूर्ण प्रत्येक १२-१२ ग्राम, शुद्ध गन्धक, पीपल और सोंठ प्रत्येक २४-२४ ग्राम तथा शुद्ध जमालगोटा १०८ ग्राम लें। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों के चूर्ण मिला जल से खरलकर २५०-२५० मि० ग्राम की गोलिया बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—१२५ से २५० मि० ग्राम चावल के पानी के साथ प्रातः ७ बजे देना चाहिए।

नोट—इस रस को खाने के बाद थोड़ा-थोड़ा ठण्डा जल पीने से सुखपूर्वक विरेचन होता है। यदि इस रसायन के सेवन से पेट में दाह और जलन हो तो भी ठण्ठा पानी पीना चाहिए। विरेचन हो जाने के बाद दिनान्त में मूग की खिचड़ी खा लेनी चाहिए।

गुण और उपयोग—यह रसायन गुल्म कफज, प्लीहा आदि उदर-विकारों में विरेचन के लिए अच्छा है। जमालगोटा का मिश्रण होने के कारण यह तेज जुलाब है। यह पेट में जमे हुए मल को निकाल कर पेट साफ करता है। —आ० मा० सं०

११. हब्ब मिस्कीनेवाज—शुद्ध पारा, शुद्ध आमलासार, गन्धक, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, चीता, गोल मिर्च, बहमन सफेद, बहमन लाल (आयुर्वेद में मेदा और महा मेदा), सुहागा (खील किया हुआ), रेवन्द चीनी, शुद्ध बच्छनाग, हरताल वरकी शुद्ध, और जमालगोटा शुद्ध—प्रत्येक १२ ग्राम प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली करें। फिर समस्त द्रव्यों के कपडछन चूर्ण को भागरे या पान (मसालेदार) २४० नग के रस में ४८ घण्टा तक खरल करके मूग के दाने के बराबर गोलिया बनावें। कब्ज के लिए यह उत्तम यूनानी रसयोग है। —यू० सि० यो० सं०

गुटिका—

१. ज्वरघ्नी गुटिका—शुद्ध जयपाल १० ग्राम, कुटकी २० ग्राम, सोनागेरू ३० ग्राम, सोंठ ६ ग्राम लें सबको मिला शहद के साथ खरल कर १२५-१२५ मि० ग्रा० की गोलियां बना सोनागेरू में डालते जायें।

मात्रा—१-२ गोली दिन में एक बार जल के साथ देवें। उदर शुद्धि सम्यक् न हुई हो तो दूसरी मात्रा दें अन्यथा न दें।

उपयोग—ज्वरघ्नी गुटिका नूतन ज्वरों को दूर करती है। अनेक रोगियों को एक बार ही देने से आम, मल तथा विष आदि दूर होकर ज्वर का शमन हो जाता है। वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज तथा विषमज्वर आदि की यह निर्भय औषधि है। —र० त० सा० (भाग २)

२. दर्भगजांकुश वटी—शुद्ध जयपाल ५ ग्राम, कालीमिर्च ५ ग्राम दोनों को खरल कर सात दिनो तक आर्द्रक स्वरस की भावना देकर मूग प्रमाण की

गोलिया बनालें। शहद अथवा माता के दूध मे मिलाकर देने से छोटे बच्चो के हृत्प्रदेश को आवेष्टित करने वाला कफ़ का जाल छिन्न-भिन्न होकर वमन-विरेचन द्वारा बाहर निकल जायेगा। इससे बालकों का उत्फुल्लिका (डब्बा) रोग मिटता है।

—सि० भै० म० मा०

३. जीर्णज्वरहर गुटिका—शुद्ध जयपाल ४ ग्राम, कुटकी ८ ग्राम तथा सोनागेरू ४ ग्राम, सबके महीन चूर्ण को ग्वारपाठा (घृतकुमारी) के रस मे खरल कर मूग से लेकर मटर जैसी गोलिया बनालें। शीतल जल से १ गोली लेने से जीर्णज्वर नष्ट होता है।

—भा० भै० र०

४. विबन्धहर गुटिका—शुद्ध जमालगोटा ३ ग्राम, आवले का चूर्ण १० ग्राम, कागजी नीबू ३१ नग लेकर एक पत्थर के खरल मे जमालगोटे तथा आवले का चूर्ण रखकर ऊपर से एक नीबू का रस निचोड लें और खरल करें। जब रस सुख जाय तब दूसरे नीबू का रस डालकर घोटें। इसी प्रकार ३१ नीम्बू का रस डाल-डाल कर खरल करते और सुखाते जायें। खरल हो जाने पर चने के बराबर गोली बनाकर छाया मे सुखा लें। जिस दिन दस्त कराने की जरूरत हो, उस दिन पहले गरम जल से रात्रि को एक गोली दे। प्रात काल ४-६ दस्त खुलकर हो जाते हैं।

—प्रयोगरत्नावली

५. सुखविरेचनी वटी—जमालगोटे के बीज को फोड कर उसके मग्ज (मींगी) की दो दाल कर लें। ऐसी २६ दालों को एक रात को एक कलईदार पात्र मे उबलते हुये पानी मे डालकर रात भर ढाक कर रख दें। सवेरे दाल को हाथ से मसल जल से धो, खरल मे डालकर उनको खूब घोटें। दाल अच्छी तरह पिस जावे पर उसमे २४ ग्राम सोठ का चूर्ण मिला, जल से ३ घण्टा मर्दन कर २५०-२५० मि० ग्रा० की गोलिया बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा अनुपान और उपयोग—रात को सोते समय १ गोली ठण्डे जल से निगलने से सवेरे एक दस्त साफ हो जाता है। —सि० यो० स०

आचार्य श्री रणजीतराय देसाई ने जयपाल के अवगुण का परिहार करने वाली इस वटी को अत्युपयोगी कहा है। आयुर्वेदोक्त कई चूर्ण या—क्वाथ सुकुमारो के लिये असेव्य होते हैं। उन्हें इस गोली का सेवन कराया जा सकता है।

६. सुखविरेचनी गुटिका—शुद्ध जमालगोटा, इलायची के बीज और सफेद कत्था ६-६ ग्राम तथा कालीमिर्च ३ ग्राम मिला जल मे खरलकर ६०-६० मि० ग्रा० की गोलिना बनालें। १-२ गोली देने से ३-४ दस्त आ जाते हैं। ज्यादा दस्त लाने हो तो, ज्यादा गोलिया देवें। बार-बार सौंफ का अर्क पिलावे। —चि० त० प्र० (प्र० ख०)

७. यूनानी जुलाब की गोलियां—(क) गुलबनफ्शा १७ ग्राम, गुलाब के फूल १७ ग्राम, खुरफे के बीज साफ किये हुये १७ ग्राम, कद्दू के बीजो की मगज १० ग्राम, मगज बेदना १० ग्राम, गुलनीलोफ़र १० ग्राम, कशनीज साफ किया हुआ ७ ग्राम, बंशलोचन ७ ग्राम, कतीरा ७ ग्राम, मगज जमालगोटे का शुद्ध किया ३६ ग्राम इन सब चीजों को पीसकर ईसबगोल के लुआब मे मिलाकर चने के बराबर गोलिया बना लें।

ये गलियां १-२ ग्राम तक की मात्रा मे गुलाब के शरबत के साथ देने से अच्छा जुलाब लग जाता है। इन गोलियो से जमालगोटे से होने वाले सब फायदे तो मिल जाते हैं मगर उसकी उग्रता और उसके नुकसान से रोगी बच जाता है। क्योकि इसमें जमालगोटे के दम को नाश करने वाली बहुत सी औषधिया मिली हुई रहती हैं। —वनौ० चन्द्रो०

(ख) कालादाना, सफेद निशोथ, रेवन्दखताई—प्रत्येक १२ ग्राम, शुद्ध जमालगोटे के बीज की गिरी २० दाने। सबको कूट छानकर बिहीदाने का लुआब ६ ग्राम मे खरल करके मुद्ग प्रमाण की गोलियां बना लें।

मात्रा और सेवन-विधि—२ गोली से ६ गोली तक ताजे पानी से सेवन करें।

गुण और उपयोग—यह अत्यन्त सरलतापूर्वक कब्ज को दूर करती है स्वर्गवासी हकीम आजम खा के गुरु का कृत प्रयोग औषधि है।

—यू० सि० यो० स०

(ग) शुद्ध जमालगोटे के बीज की गिरी ३ ग्राम, एरण्ड के बीज की गिरी (रेंडी की गुद्दी) ६ ग्राम, मीठे बादाम की गिरी ६ ग्राम और मिश्री १२ ग्राम। सबको बारीक पीसकर कालीमिर्च के बराबर गोलिया बना लें।

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली तक उष्ण जल या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह कब्ज दूर करने के लिये उत्कृष्ट योग है। इससे सवेरे खुलकर दस्त आ जाता है। —यू० सि० यो० स०

चूर्ण—जमालगोटा के बीज, करोंजा के बीज ५-५ दाने, मुर्दासङ्ग, अजवायन देशी, कालीमिर्च—प्रत्येक ३-३ ग्राम सबको बारीक पीसकर इनकी तीन खुराक बना लें।

पहले दिन एक खुराक ताजे पानी के साथ खिला दें। फिर एक दिन छोडकर अर्थात् तीसरे दिन दूसरी मात्रा (खुराक) खिला दें, फिर एक दिन छोडकर तीसरी खुराक खिला दें केवल तीन मात्राओ मे ही उपदश जड से उखड जाता है।

यह दवा कोमल प्रकृति वालो को न दें, क्योंकि इससे कै और दस्त बहुत आते हैं। भोजन मे केवल खिचड़ी, दूध-चावल दें या दाल चावल। गुड, तैल, खटाई और लालमिर्च से परहेज करें।

—वम० औषधिया

वर्त्तिका—जयपाल के बीजो की मज्जा (मींगी) को लेकर नीबू के रस की २१ भावनाए दें और वर्त्तिका बना लें। इस वर्त्तिका को मनुष्य की लार में घिसकर नेत्राञ्जन करने से सर्पदंशजन्य विष नष्ट होता है और रोगी होश मे आ जाता है। इसे जयपाल वर्त्तिका कहते हैं। इसके लगाने से आखो मे अत्यधिक दाह होता है अत बाद में बकरी के दुग्ध का प्रयोग करना चाहिये। —मा० सं०

पेटेण्ट प्रयोगों मे जयपाल—देशरक्षक औषधालय कनखल (हरिद्वार) द्वारा विनिर्मित "सरलभेदी वटी" मृदुविरेचन के लिये श्रेष्ठ है। कोष्ठशुद्धि के लिए १-२ गोली रात्रि के समय दूध से लेनी चाहिये। श्री त्रिमूर्ति फार्मेसी बीकानेर (राज०) द्वारा विनिर्मित "त्रिलेक्स" टिकिया भी बद्धकोष्ठ वाले के लिये लाभप्रद है। इसकी भी १-२ गोली रात्रि मे सोते समय गरम जल या दूध के साथ सेवन करनी चाहिए। सरलभेदी वटी मे शुद्ध जमालगोटा, लघु हरीतकी तथा नीबू के रस का प्रयोग किया जाता है। और त्रिलेक्स टिकिया मे जमालगोटा, सनाय, त्रिफला, रेवन्दचीनी, एलुवा व पीपल है। गर्ग बनौषधि भण्डार द्वारा "विरेचन" नाम कैपसूलों का निर्माण किया जाता है। इसमे शुद्ध जयपाल, इन्द्रायण, निशोथ, कालादाना, सनाय, हरड व कालानमक आदि डाले जाते हैं। १-२ कैपसूल रात्रि में सोते समय गर्म जल या दूध के साथ सेवन करना लाभदायक है। चरक फार्मा० की बनाई हुई "रेगुलेक्स स्ट्राग" वटी में जमालगोटा, कज्जली, खदिर, सोठ, टकण आदि हैं। यह तीव्र विरेचक है। १ वटी रात्रि मे सोते समय जल से सेवन करनी चाहिए। श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ़ जो "विबन्धहारी कैपसूल" बनाता है, उसमे भी शु० जयपाल, निशोथ, कज्जली, त्रिफला आदि डाले जाते हैं। मलावरोध एवं मलावरोधजन्य समस्त विकृतियो मे यह लाभप्रद है। १ कैपसूल जल या दूध से सेवन करना चाहिये। श्री मोहता रसायनशाला हाथरस (उ० प्र०) भी "हैपीलैक्स" नामक कब्ज निवारक टिकिया का निर्माण करती है। इसमे जयपाल, काला दाना, हरीतकी, अजवायन सनाय, कालानमक, अमलतास है। कब्ज दूर करने के लिये प्रभावशाली टिकिया है। १-२ टिकिया उपयोग में लेने से रोग का निवारण होता है।

उपर्युक्त आभ्यन्तरीय प्रयोगो के अतिरिक्त कुछ प्रयोग वहि परिमार्जन हेतु भी बनाये जाते हैं। जमालगोटा किंवा जयपाल तैल का वर्णन पूर्व मे किया जा चुका है। कैम्बर्स लेबोरेटरीज बम्बई एक ट्यूब (वाइन्टर

मेद) का निर्माण करती है। इसमे जयपाल तैल, जायफल तैल, दालचीनी तैल, कपूर आदि हैं। यह सभी प्रकार के शूलो मे उपयोगी है। इसकी मालिश करनी चाहिये। आमवात, गृध्रसी आदि के अतिरिक्त यह गुरुपरोगो मे भी लाभप्रद है। प्रयोग विधि की पूर्ण जानकारी के लिये एव अन्य निर्देशो के लिये चिकित्सक से सम्पर्क करना आवश्यक है।

अनुभूत प्रयोग—

१. सुखद विरेचन योग—शुद्ध जमालगोटा की गूदी, रेंडी (अण्डी) की गूदी, बादाम की मीगी—ये ८-८ दाने, मुनक्का बीज रहित १६ दाने, पिस्ता १२ दाने, गोले की गिरी और मिश्री १२-१२ ग्राम। इन सबको एकत्र पीसकर बडी मटर के बराबर गोली बनालें। एक गोली गरम जल के साथ दें। ४-५ दस्त होकर पेट साफ हो जाता है। इसके प्रयोग से वमन नही होता व जी नही मिचलाता अत: यह सुखद विरेचन है।
—श्री गुरुप्रसाद शर्मा
(धन्व० नव० ५४)

२. हर्षुल रेचन वटी योग—शुद्ध जिह्वा रहित जयपाल बीजो को १० दिन तक तक्र मे डुबोकर रखें, फिर उन्हे निकालकर खरल मे महीन पीसकर कुम्हार के अवा से निकले हुए कर्वलु (खपरो) पर लेप करके सुखावें सूख जाने पर उन्हे निकाल कर औषधि निर्माणार्थ काम में लें। इस प्रकार की शुद्ध जयपाल पिष्टी १२ ग्राम, सफेद जीरा १२ ग्राम, इलायची चूर्ण १२ ग्राम, कुकुम चूर्ण १२ ग्राम, प्रवाल पिष्टी १२ ग्राम। समस्त द्रव्यों को खरल मे डाल खूब मर्दन करे, जब द्रव्य घुटकर महीन और एक रूप हो जाय तो गोघृत और शहद मे सानकर २५०-२५० मि० ग्राम की गोलिया बनालें। बच्चो को चौथाई गोली से आधी गोली, बड़ों को १ से २ गोली। रात को सोते समय ताज़े जल के साथ सेवन करें अथवा सवेरे सेवन करें। २-३ घण्टे के बाद ही खुलकर मल विसर्जन होगा। इस गोली पर दो तीन घूट से अधिक पानी नही पीना चाहिए। आवश्यकता से अधिक दस्त लगने लगें तो गरम जल, गरम दूध, गरम चाय पी लेनी चाहिए, तुरन्त ही मल विसर्जन रुक जायेगा।
—श्री हर्षुल मिश्र
(सुधानिधि प्रयोगसग्रह भाग ३)

३. बालोपयोगी रेचन योग—शुद्ध जयपाल ३ ग्राम, पुराना गला-सड़ा नारियल ३ ग्राम, गिरी बादाम ६ ग्राम तीनो को पीसकर बाजरे प्रमाण गोलिया बनाकर लोहे की डिब्बी मे बन्द कर रखे। १ गोली ताजे पानी मे घिसकर पिलावें। इससे बालक को वमन विरेचन होगे, उदर-शुद्धि होने पर १-२ बताशे थोड़े पानी मे घोलकर पिला दें। इससे चित्त की घबराहट तथा तृषा आदि उपद्रव शान्त हो जायेंगे। इसके प्रयोग से बालक का पसली रोग भयङ्कर डबल निमोनिया भी तुरन्त शान्त होता है। अनेक बार का अनुभूत योग है।
—वैद्य प्रो० श्री बसरीलाल साहनी
(सरल सिद्ध योग सग्रह)

४. मलभेदिनी वटी—शुद्ध जमालगोटा, सफेद कत्था, छोटी इलायची ३०-३० ग्राम, काली मरिच १५ ग्राम सबको महीन पीसकर चने के बराबर पानी के संयोग से गोलिया बना ले। ३-४ गोली ठण्डे जल के साथ सेवन कराने से मलावरोध दूर हो जाता है।
—श्री ईशरराम चौधरी
(धन्व० अनुभवांक)

५. शिर.शूलादि मिश्रण—शुद्ध जयपाल बीज ५ नग, बादाम ५ नग, अफीम २५० मि० ग्राम, सोना गेरू ६ ग्राम लेकर मिश्रण बना लें। सम्भव है कभी-कभी इनका चूर्ण नहीं बनने पाता क्योकि बादाम और जमालगोटे के तैल से स्निग्धता आ जाती है ऐसी दशा मे आवश्यक नही कि चूर्ण बनें, गोली बने तो गोली बनालें।

एक राई के बराबर लेकर बकरी अथवा स्त्री दुग्ध के साथ प्रातःकाल सेवन करना चाहिए। भोजन मे हलवा, दुध, मलाई आदि स्निग्ध पौष्टिक चीजें रोगी को खिलावें।

इस प्रयोग के सेवन से अर्धावभेद, अनन्त वात तथा अन्य शिर की बीमारियां ठीक हो जाती हैं। जिस शिरदर्द मे नेत्रज्योति कम हो जाती है उन्हे इस चिकित्सा से तुरन्त लाभ हो जाता है।

—श्री मूलराज शर्मा
(धन्व० अक्टू० ७६)

६. इच्छाभेदी कवच—जयपाल ५० ग्राम, एरण्ड बीज मज्जा ५० ग्राम, बादाम गिरी ५० ग्राम तीनों को कूट-पीस तैल निकालें। जितने विन्दु तैल कवच मे भरकर देंगे, उतने ही दस्त आयेंगे।

अनुपान—कवोष्ण जल।

—वैद्यराज श्री रामसिंह शर्मा
(सुधानिधि कैंपसूल अङ्क)

७. श्वान विषहर प्रयोग—जयपाल गिरी, इन्द्रायण बीज गिरी, सुहागा खील, कालीमिर्च, सिंगरफ सब समान भाग लेकर कूट-पीस सबसे दुगना पुराना गुड मिलाकर गरम जल के अनुपान से छोटे बेर के समान गोली बनाकर सेवन करने से श्वान विष का प्रभाव कम होता है। इससे वमन या विरेचन होकर शान्ति मिलती है। —श्री हरिदयालनन्द
(धन्व० ३०।११)

८. गर्मी के जुलाब की दवा—जमालगोटा १२ ग्राम लेकर मिट्टी के कुल्हड में गोबर भर उसमें जमालगोटा भर चूल्हे पर चढावें एक पहर की आंच देकर उसमे से निकाल के आटे की बाटी पचावें तदुपरान्त दूध मे पकावें फिर मिंगी निकालें और मिंगी में जीभी होती है उसे निकालकर सिल पर पीसकर कपडे मे डालके निचोड़े और ६ ग्राम अजमोद मे उसकी आधी बूंद डाल के पीस कर तीन पुडिया बनावें। एक पुड़िया रोज गरम पानी के साथ प्रातःकाल लेवें और गरम पानी पीवें। दस्त लगें और भूख लगे तो गेहूं और गुड की मीठी थूली खायें घी बिलकुल न डालें मीठी थूली फक्त गेहू की खायें इसी भांति तीन दिन लें, जुलाब बन्द होने पर उसके बाद जितना भी घी खाया जावे उतना खायें, खटाई, तैल, गुड, बैंगन, उडद की दाल न खायें तो गर्मी जाय।

—महंत श्री सुखरामदास
(बूटी प्रचार)

९. अर्धावभेदकहर प्रयोग—जमालगोटे के बीज को पत्थर पर घिसकर तुलसी के पत्ते पर अथवा मोमी कागज पर चवन्नी के बराबर टुकडा लेकर जिस ओर दर्द हो उधर की कनपटी पर लगाकर सुला दो। प्रातः गन्दे पानी का फलोला उभरा हुआ होगा सुई से इसका पानी निकाल दें। दर्द बिलकुल बन्द हो जायेगा घाव पर मक्खन लगा दें।

खाने के लिए उस्तखद्दूस ताजा ३ ग्राम पीसकर शहद मे मिलाकर चटावे। पहले ही दिन में आराम हो जाता है। सहस्रों बार का अनुभूत योग है। तैल, अचार, लस्सी, खटाई, चावल और केला न खायें। मैथुन से बचें। —स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती



दाडिम

(Punica Granatum)

नरहरि पंडित ने अपने राजनिघण्टु में द्रव्यो के पर्यायकथन मे सात आधारो का उल्लेख किया है—

१. रूढि ।
२. स्वभाव ।
३. देशोक्ति ।
४ लाछन ।
५ उपमा ।
६. वीर्य ।
७ अन्य नाम ।

"एकस्य नामानि तथा वहूनि" एक ही द्रव्य के कई पर्याय हैं। दाडिम का भी एक पर्याय "दन्त वीज" है। इसके वीज क्वचित् श्वेत भी पाये जाते हैं। ये वीज ऐसे लगते हैं मानो शुभ्र श्वेत दांत हो। तब ही तो कहा गया है—

दाडिम फल में वीज ये,
ज्यो मुख मे कल दन्त।
दन्त वीज कहते अत,
वैद्य विवुध गुणवन्त ॥

यहा पर दाडिम का "दन्तवीज" नाम उपमा के आधार पर किया गया है। किसी वस्तु की किसी दूसरी वस्तु से समानता के आधार पर तुलना करना ही उपमा कहलाती है। यहा पर वीज उपमेय है और दन्त उपमान है।

इसी प्रकार साहित्य मे कवि लोग दातो की दाडिम बीजो से समानता प्रकट करते नजर आते हैं। वहां पर दन्त उपमेय वन जाते हैं और दाडिम वीज उपमान बन जाते हैं। साहित्य मे इस प्रकार वर्णित है—

दाडिम-बीज समान ये,
दन्त चमकते श्वेत।
तिन पर यह मुस्कान जो,
मन सवका हर लेत ॥

इसका अन्य साहित्यिक वर्णन आगे के प्रसंग मे किया जायेगा।

भगवान् चरक ने हृद्य एवं छर्दि निग्रहण गणो मे इसकी गणना की है और महर्षि सुश्रुत ने परुषकादि गण मे इसको लिखा है। यह दाडिम कुल (प्युनिकेसी—Punicaceae) की औषधि है। इसके नाम से ही इस कुल का व्यपदेश हुआ है। आचार्य भावमिश्र ने फलादिवर्ग के अन्तर्गत इसका वर्णन किया है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने इसका रोचन द्रव्यो में वर्णन किया है। रोचन (Flavouring) द्रव्य वे होते हैं जो भोजन में रुचि उत्पन्न करें। अरुचि एक रोग है जिसमे वोधक कफ की मुख्य विकृति होती है, अग्नि भी परोक्ष रूप से विकृत होती है।

नाम—

संस्कृत—दाडिम, लोहितपुष्पक (रक्तपुष्प वाला), दन्तवीज (दांतों के समान वीजो वाला), करक आदि।

दाडिमं रक्तकुसुमं दन्तवीज शुकप्रियम् ।
—म० त्रि० नि०

शुकेष्टो दाडिमो रक्तवीजस्तु फलषाडव ।
मधुराम्लफलो रक्तकुसुमो बीजपूरक ॥
—अभि० रत्नमाला

हिन्दी—अनार, दाडिम।
गुजराती—दाडम ।
मराठी—डालिंव ।
बंगला—दालिम ।
राजस्थानी—दाड़म, दाड़ू ।

तामिल—मदुलाई ।
तेलगू—दानिम्मा ।
कन्नड़—डालिंब ।
मलयालम—मातलम् ।
अरबी—रुम्मान ।
फारसी—अनार ।
अंग्रेजी—पोमेग्रेनेट (Pomegranate) ।
लैटिन—प्युनिकाग्रेनेटम (Punica granatum) ।

मीठा अनार

संस्कृत—मधुर दाडिम ।
हिन्दी—मीठा अनार ।
अरबी—रुम्मान हुलुब्ब ।
फारसी—अनार शीरी ।

खट्टा-मीठा अनार

संस्कृत—मधुराम्ल दाडिम ।
हिन्दी—खटमिट्ठा अनार ।
अरबी—रुम्मान मुज्ज ।
फारसी—अनार मैखोश ।

खट्टा अनार

संस्कृत—अम्ल दाडिम ।
अरबी—रुम्मान हामिज ।
फारसी—अनार तुर्श ।

अनार का छिलका

सं०—दाडिमफलत्वक् ।
हि०—नासपाल ।
अ०—कश्रुरुम्मान ।
फा०—पोस्त अनार ।

जड़

सं०—दाडिममूलत्वक् ।
हि०—अनार की जड़ की छाल ।
फा०—पोस्तवेख अनार ।

अनारदाना

सं०—दाडिमबीज ।
हि०—अनारदाना ।
फा०—तुख्म अनार ।

अनार का फूल

सं०—दाडिमपुष्प ।
फा०—गुलअनार ।
अ०—वर्दुरुम्मान ।

अनार की कली

सं—दाडिमकलिका ।
फा०—गुलनार ।
अ०—जुलनार ।

प्राप्तिस्थान—यह अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और ईरान मे विशेष होता है । काबुल, कन्धार के दाडिम सर्वोत्तम होते है । सम्प्रति यह भारत मे सर्वत्र उगाया जाता है । ऊधमपुर (जम्मू) अनारदाना संग्रह करने का प्रमुख केन्द्र है ।

रासायनिक संघटन—अनारदाना मे आर्द्रता ७८, प्रोटीन १ ६, वसा ० १, सूत्र ५ १, अन्य कार्बोहाइड्रेट १४'५, खनिज पदार्थ ०'६%, कैलशियम १०, मैगनेशियम १२, आक्जेलिक अम्ल १४, फास्फोरस ७०, लौह ० ३, सोडियम ० ९, पोटाशियम १'३३, ताम्र ० २, गन्धक १२, क्लोरीन २, थियामिन ० ०६, राइबोफ्लेविन ० १०, निकोटिनिक एसिड ०'३०, और विटामिन सी १४ मि० ग्रा० । प्रति १०० ग्राम होते हैं । इसके रस मे अम्लता ० ४५–३ ४७ ग्रा० । १०० मि० लि० और रिड्युसिंग शुगर ७ ८–१३ ७ ग्राम । १०० मि० लि० होता है । रस मे कुछ टेनिन होता है । द्राक्षशर्करा तथा फल शर्करा मुख्य शर्करायें, तथा अम्ल मे ९०% निम्बुकाम्ल और कुछ सेवाम्ल होता है । फल के ताजे छिलके मे राल ४ ५, मेनिटोल १ ८, अस्फटिकिय शर्करा २ ७, गोंद ३ २, इन्युलिन १, म्युसिलेज ० ६, टेनिन १० ४, गैलिक एसिड ४, कैल्शियम ऑक्जलेट ४ और पेक्टिन २–४ प्रतिशत होते हैं । पौधे के सभी अवयवों में टैनिन होता हैं । विशेषकर, फलत्वक् (२६% तक) काण्डत्वक् (१०–२५%) मूलत्वक् (२८%) तथा पत्तियो मे (११%) होता है । काण्ड और मूल की त्वचा में अनेक क्षाराभ पाये जाते हैं ।

मूलत्वक् मे ०·३—०·६ प्रतिशत कुल क्षाराभ होते हैं। छाल में पेलिटियरिन (Pelletierine) आइसो-पेलिटियरिन (Iso-Pelletierine) आदि क्षाराभ होते हैं। इनकी विशेष क्रिया स्फीतकृमि (Tape worm) पर होती है। —द्रव्य गुणविज्ञान

वानस्पतिक परिचय—इसका मध्यम प्रमाण का २० फुट तक ऊंचा व बहुशाखी होता है। इसके काण्ड (तने) की गोलाई ३-४ फुट होती है। काण्डत्वक् पतली, चिकनी, पीली या गहरे भूरे रङ्ग की होती है। प्रशाखायें कभी-कभी कटकित होती हैं।

पत्र—लगभग २-३ इञ्च लम्बे और १/२—३/४ इञ्च चौड़े, दोनो सिरों पर पतले, आयताकार या अभिलट्वाकार होते हैं। आधार की ओर इनकी चौड़ाई क्रमश. कम होती जाती है और अन्ततः छोटे पर्णवृन्त में अन्त होता है। ये शाखाओं पर आमने-सामने लगे हुये रहते हैं।

पुष्प—नारङ्गी रक्तवर्ण, कभी-कभी पीले, प्रायः एकल या कभी-कभी २-४ के गुच्छों में, अक्षीय, १½—२ इञ्च लम्बे होते हैं।

फल—गोलाकार, लगभग २ इञ्च व्यास का, स्थायी बाह्यकोष से युक्त होता है। बाह्यकोष से चूडावत् रचना मालूम होती है। फलत्वक् चर्मवत् काष्ठीय होती है। फलाभ्यन्तर झिल्लीदार पर्दों द्वारा अनेक कोष्टों मे विभक्त होते हैं, जिनमें अनेक कोषीय बीज ठसाठस भरे होते हैं। इन बीजों का आवरण मासल, गुलाबी, रक्तवर्ण या श्वेत होता है जो दन्ताकार नजर आते हैं।

वैसे तो पुष्प हर मौसम मे लगे रहते हैं किन्तु विशेषत अप्रेल मई में लगते हैं तथा फल जुलाई—सितम्बर मे लगते हैं।

भेद—रस के अनुसार इसके तीन भेद किये गये हैं—मधुर, मधुराम्ल, और अम्ल। देशी दाडिम मधुराम्ल या अम्ल होते हैं। काबुली और मसकर दाडिम प्राय. मधुर होते हैं। उन्ही मे एक बेदाना होता है, जिसके बीज बहुत ही मुलायम होते हैं। इनमें रस अधिक निकलता है, जो अत्यधिक मधुर होता है। व्यवहार मे देश, वर्ण, आकृति भेद से इसकी अनेक जातियों का प्रचलन है। गुलनार और जंगली अनार ये भी इसके दो प्रसिद्ध भेद है। गुलनार को नर अनार भी कहते हैं। इसमे केवल पुष्प ही लगते हैं, जो औषधि कार्य मे आते हैं। जगली अनार (Wild Pomegranate) को फारसी अनारे-दन्तों कहते हैं। यूनानी ग्रन्थकार महशी तुहफा का कथन है कि इसके ३-४ पत्ते भूमि से उत्पन्न होने के बाद ही फूल आ जाते हैं जो गुलनार के समान होते हैं और पत्ते कासनी के समान होते हैं। यह गोरखपुर के आस-पास के जगलो मे बहुत पाया जाता है। इसके फल को हब्बुल कुल-कुल कहते हैं।

साहित्य में दाडिम—लेख के प्रारम्भ में कहा गया है कि दन्त पक्ति की दाडिम बीजों से तुलना की जाती है। हनुमन्नाटक मे श्रीराम सीता के लिए इसी प्रकार कहते नजर आते हैं—

स्वर्णं सुवर्णी दहने स्वदेह
चिक्षेप कान्तिं तव दन्तपक्तिम्।
विलोक्य पूर्णं मणिबीजचूर्णी
फलं विदीर्णं तनु दाडिमस्य ॥
—हनुमन्नाटक २।२५

हिन्दी के राष्ट्रकवि श्री मैथिलिशरण गुप्त के महाकाव्य "साकेत" में तोते को सहसा चुप हो जाने पर उर्मिला उससे पूछती है—रे सुभाषी, बोल चुप क्यों हो रहा ? लक्ष्मण इसका उत्तर देते हैं कि—

नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाडिम का समझकर भ्रान्ति से,
देखकर सहसा हुआ शुख मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है।

यहाँ पर नाक का मोती अधर की कान्ति से दाडिम का बीज-सा हो जाने मे तद्गुण अलङ्कार है क्योंकि नाक का मोती अधर की कान्ति का गुण (लालवर्ण) ग्रहण कर रहा है।

जगद्विनोद मे कविवर पद्माकर ने विरहाकुल गोपिकाओं के मनोभावो का चित्रण "अनार पर अगार" कह कर किया है—

ऊधो यह सूधो सो सँदेशो कहि दीजो भले,
हरिसों हमारे ह्या न फूले वन कुञ्ज हैं।
किंशुक गुलाव कचनार औ अनारन की,
डारन पै डोलत अगारन के पुञ्ज हैं ।।

अन्त में दाडिम फल से कुचों की समानता प्रकट करने वाला यह सवैया प्रस्तुत है, जिमका वर्णन सुजन प्रकाश मिलता है—

कन्दुक से करि कुभ से कुम्भ से
कुन्द कली सम ठीक ठये हैं,
श्रीफल दाडिम से दरसे परसे
सो निहाल निहाल भये हैं।
ऊच उजागर नागरि के कुच
प्यारे पिया के समीप ठये हैं ।।
हैं तो नये सुनु री सजनी पर
जो लौं नये नहीं तो लों नये हैं ।।

रस—मधुर, कषाय, अम्ल (मधुर, मधुराम्ल एव अम्ल दाडिम के अनुसार रस की अधिकता होती है।)

गुण—लघु, स्निग्ध।

वीर्य—अनुष्ण।

विपाक—मधुर (मधुर जाति)
अम्ल (अम्ल जाति)

दोष कर्म—मधुरफल त्रिदोषघ्न होते हैं। यह माधुर्य और कषाय रस के कारण पित्त का तथा उष्ण वीर्य के कारण कफवात का शमन करता है। मधुराम्ल फल अम्लता के कारण किंचित् पित्तकर होता है। अम्लफल कफवात शामक किन्तु पित्तकोपक होता है। सि० भे० म० मा० मे इसे वातश्लेष्मघ्ना-पित्तोदासीन कहा गया है।

प्रयोज्य अङ्ग—फल, फलत्वक् (नसपाल), पुष्पकलिका, पत्र, बीज एवं मूलत्वक्।

इसकी लकडी को छोड़कर इसके समग्र अवयव औषधि कार्य मे काम आते हैं।

मात्रा—फल स्वरस —२०-२५ मि० लि०।
त्वक् क्वाथ —४०-८० मि० लि०।
फलत्वक् चूर्ण—२-५ ग्राम।
मूलत्वक् चूर्ण—३-५ ग्राम।
दाडिम पुष्पकलिका—३-५ ग्राम।
दाडिम बीज चूर्ण (अनारदाना)—६-६ ग्राम।

हानिकारक—यह शीत प्रकृति वालो के लिए हानिकारक है।

दर्पनाशक एवं प्रतिनिधि द्रव्य

	दर्पनाशक	प्रतिनिधि
१ मधुर दाडिम	—अम्ल दाडिम, सोंठ का मुरब्बा	अम्ल दाडिम
२ अम्ल दाडिम	—मधुर दाडिम	मधुर दाडिम
३ मधुराम्लदाडिम	—सोंठ का मुरब्बा	कच्चा दाडिम
४ दाडिमत्वक्	—अदरक	गुलाव पुष्प-केशर
५ दाडिम बीज (अनारदाना)	—जीरा	सुमाक
६ गुलनार	—कतीरा	दाडिमकलिका या त्वक् तथा जुफ्त बलूत

वीर्यकालावधि—एक वर्ष।

गुण-धर्म विवेचना—

अम्लं कषायमधुरं वातघ्नं ग्राहि दीपनम्।
स्निग्धोष्णं दाडिमं हृद्यं कफपित्ताविरोधि ।।
रूक्षाम्लं दाडिमं यत्तु तद् पित्तानिलकोपनम्।
मधुरं पित्तनुत्तेषां तद्धि दाडिममुत्तमम् ।।
—चरक० सू० २७

कषायानुरसं तेषां दाडिमं नातिपित्तलम्।
दीपनीयं रुचिकरं हृद्यं वर्चोविवन्धनम् ।।
द्विविधं तत्तु विज्ञेयं मधुरं चाम्लमेव च।
त्रिदोषघ्नं तु मधुरमम्लं वातकफापहम् ।।
—सुश्रुत० सू० ४६

उद्रिक्तपित्ताञ्जयति त्रीन्दोषान्स्वादु दाडिमम् ।
पित्ताविरोधि नात्युष्णमम्लं वातकफापहम् ॥
सर्वं हृद्यं लघु स्निग्धं ग्राहि रोचनदीपनम् ।
—अ० हृ० सू० ६

दाडिमं ग्राहि दोषघ्नं हृद्यं रोचनदीपनम् ।
—यो० र०

दाडिमः करको दन्तबीजो लोहित पुष्पकः ।
तत्फलं त्रिविधं स्वादु स्वाद्वम्लं केवलाम्लकम् ॥
तत्तु स्वादु त्रिदोषघ्नं तृड्दाहज्वरनाशनम् ।
हृत्कण्ठमुखदोषघ्नं तर्पणं शुक्रलं लघु ॥
कषायानुरसं ग्राहि स्निग्धं मेधाबलप्रदम् ।
स्वाद्वम्लं दीपनं रुच्यं किञ्चित्पित्तकरं लघु ॥
अम्लं तु पित्तजनकमामवातकफापहम् ।
—भा० प्र० नि०

दाडिमं दीपनं हृद्यं रोचनं नाऽतिपित्तलम् ।
कषायानुरसं ग्राहि द्विधा स्वाद्वम्ल भेदतः ॥
तयो. स्वादु त्रिदोषघ्नमम्लं वातबलासजित् ।
शुष्काम्लं दाडिमीसारं कुट्टिमं पित्तवातकृत् ॥
—म० वि० नि०

वमिमदंदवभ्रान्तिश्रान्तिज्वरास्रमरुत्तृषा,
रुचिसृतिमहामूर्च्छापित्तामहं मधुरं लघु ।
प्रकटयति कफेऽप्यौदासीन्यं हिमं बलशुक्रलं,
परिणततरं बालहीनं ततो वरदाडिमम् ॥
—सि० भे० म० मा०

वरमिति विशेषणात् काव्वूल परिणतं सदुक्तगुणं बालं सतत. परिणताद्धीन गुणमिति । —टिप्पणी

दाडिमस्य फलं पक्वं मधुरं तुवरान्वितम् ।
सग्राहि तर्पणं बल्यं तृष्णादाहज्वरापहम् ॥
फलत्वक् पुष्पकलिके ग्राहिण्यौ तुवरे तथा ।
मूलत्वक् क्रिमिरोगेषु भिषग्भिस्तु प्रयुज्यते ॥
—प्रि० नि०

दाडिम फल रोचन, दीपन, छर्दि निग्रहण, तृष्णा निग्रहण एवं ग्राही होने से बहुत से रोगो में यह लाभप्रद पाया गया है । अरुचिविनाशक योगों में दाडिम फल की कार्मुकता व्यक्त की गई है—

विट् चूर्णमधुसयुक्तो रसो दाडिमसम्भवः ।
असाध्यामपि संहन्यादरुचिं वक्त्रधारित. ॥
—च० द०

आर्द्रदाडिमनिर्यासं श्वजाजीशर्करायुत' ।
सतैलमाक्षिकोऽप्य सुखदः कवलग्रह' ॥

सन्निपातज अरोचकहर इस कवलग्रह के अतिरिक्त कारव्यादि चूर्ण एव यवानीषाडव चूर्ण मे भी अनारदाना डाला जाता है जो अरुचि को नष्ट करने के लिए प्रशस्त प्रयोग है । सिद्धभेषजमणिमाला में पित्तजन्य अरुचि के लिये ''दाडिमषतकम्'' नामक चूर्ण लिखा गया है—

अम्लदाडिमबीजानाम् अञ्जलिर्हिंगुवल्लकम् ।
लवणोषणजीराणि प्रत्येकं पलमात्रया ॥
पृथ्वीका कर्षकलिता सर्वं स्थूलं विचूर्णयेत् ।
चूर्णं दाडिमषट्काख्यं रोचनं पाचनं परम् ॥
अनुक्तापि सिता देया चूर्णेऽस्मिन् पलमात्रया ।
वर्षाकालं विना देयं एकनिम्बूकजो रसः ॥

एक अन्य योग है—

मिषिर्जीरकं तिन्तिडीकं पृथक्ते,
निशेशाशिका दाडिमी तु द्विभागा ।
सिता पञ्चभागा कृतं चूर्णमेत,
"द्रुवेद्रोच कन्चातिसारप्रमाथि ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

अग्निमान्द्यहर भास्कर लवण (चरक) महाषाडव (शा०) आदि प्रयोगों में दाडिमफल बीजो का सम्मिश्रण किया जाता है । गुल्माधिकार मे वर्णित चरकसंहिता का हिंगु सौवर्चलादिघृत वातजगुल्म, शूल, आनाह मे उपयोगी कहा गया है, इसमे अनारदाना है । इसके अतिरिक्त पिप्पल्यादि घृत में भी यह डाला जाता है । मञ्जूषाकार ने विविध द्रव्यो के स्वरस से तैयार शार्कर को छर्दि, अरुचि, अग्निमांद्य आदि रोगो में उपयोगी कहा है—

रसैर्दाडिमीमातुलुङ्गार्द्रकोत्थै,
सनिम्बूकपोदीजलैः खण्डयुक्तैः ।
कृतं शार्करो जीरकैरोषणाढ्यो,
वमिं वारुचिं वाग्निमान्द्यं धुनोति ॥

तृष्णा निवारण मे इसकी उपादेयता इन योगो मे व्यक्त की गई है—

दाडिमदधित्थलोध्रं सविदारीबीजपूरकं शिरस ।
लेपो गौरामलकैर्घृतारनालायुतैश्च हित ॥
—चरक० चि० २२/३६

दाडिमस्य च बीजानि जीरक नागकेशरम् ।
चूर्णित शर्करा क्षौद्रलीढ तृष्णानिवारणम् ॥
—च० द० (वा० रो०)

जलपूर्णोदर जन्तु वामयेन्मधुकाम्बुना ।
पाययेद्दाडिमाम्रातमातुलुङ्गोत्थित रसम् ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

दाडिम पुटपाक, दाडिमाष्टक चूर्ण (शा०), दाडिमावलेह (यो० र०) आदि योग ग्राही होने से अतिसार–ग्रहणी मे वैद्यो के द्वारा प्रयुक्त होते रहते है। दाडिम बीजो के अतिरिक्त दाडिमकलिका भी अतिसार में लाभप्रद है।

दाडिमीकलिकाकल्क प्रलमाक्षिकसाक्षिक ।
स देव प्रयुक्तश्चेदतिसारस्य का कथा ॥
—सि० भे० म० मा०

यह शोणितस्थापन होने से रक्तातिसार में भी लाभप्रद है—

कषायो मधुना पीतस्त्वचो दाडिमवत्सकात् ।
सद्यो जयेदतीसार सरक्त दुर्निवारकम् ॥
—च० द०

पुनश्च मणिमालाकार ने कलिका को रक्तार्श मे भी लाभप्रद कहा है—

कलिका सविषविकाशा
दाडिमजाद्विगुणशर्करकलिता ।
द्वादशगुणेन वारा
लुलिता पीता जयन्ति रुधिरार्शं ॥

अम्लपित्त, दाह, स्वेदाधिक्य, विस्फोट, धूमोद्गार, दौर्गन्ध्य, अरति (पित्तावृत समानजन्य), भ्रम आदि पैत्तिक विकारो मे मधुर दाडिम हितावह है। पित्तावृत वातजन्य मतिभ्रम का निवारण करने से यह श्रेष्ठ है। "स्निग्ध मेध्यवलप्रदम्" के अनुसार यह मस्तिष्क के लिये बलप्रद और मेध्य होने से मस्तिष्क दौर्बल्य एव तजन्य विकारों से लाभप्रद कहा गया है। अधिक मदिरापान से उत्पन्न मदात्यय में त्रिदोष प्रकुपित होता है–"सर्व मदात्यय विद्यात् त्रिदोषम् इति चरके"। मन्थ (घृत मे सत्तू सेक कर पानी मिला बनाया जाता है) में दाडिम स्वरस को मिलाकर पीना मदात्ययहर है—

मन्थः खर्जूर मृद्वीकावृक्षाम्लाम्लीकदाडिमैः ।
परूषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत् ॥

—भगवान् चरक ने शर्करायुक्त शीत सक्तु को विशेषेण पित्तजमदात्यय मे लाभप्रद कहा है।

दाडिममूलत्वक् तीव्र कृमिघ्न है। आयुर्वेद विकास के अनुसन्धान अङ्क (नव० ८६) मे डा० सम्पूर्णानन्द आयुर्विज्ञान महाविद्यालय के आचार्य डा० नरेशकुमार का अनुसन्धानात्मक लेख प्रकाशित हुआ। इसमें लेखक ने दाडिम पर हुये अनुसन्धान का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

दाडिम की जड व तने की छाल कषैली है व आन्त्र कृमिघ्न है, विशेष करके पट्ट कृमि (Tapeworm) के लिये। इसके फल के छिलके को लौंग के तेल के साथ मिलाकर अतिसार व संग्रहणी का इलाज किया जाता है। —चौपडा व सहयोगी १९५८।

इस इकाई में इस पौधे के निस्सार का अध्ययन चूहो पर किया गया। यह पैन्टोवारबीटान द्वारा उत्पन्न निद्रा को व पेशी आसक्जन को कुछ कुछ बढ़ाता है व कमजोर पीडाहारी है। यह एरण्ड तेल द्वारा उत्पादित अतिसार को कम करता है व पृथक्कृत खरगोश की आंतडियो और चूहे के गर्भाशय को शिथिल करता है।

यह हृद्य होने से हृदयरोग में एव शोणित स्थापन होने से रक्तपित्त मे परम लाभदायक है। शतावर्यादि घृत (चरक० चि० ५) में दाडिम की भी योजना की गई है। यह रक्तपित्त शमन के लिये श्रेष्ठ औषधि है। अन्यत्र भी कहा है—

दाडिमकुसुमस्वरस. स्तन्य वा ह्याम्रकुसुमसलिलं वा ।
दुर्वाम्भो वा नस्यान्नासारक्तस्रुति जयति ॥
—वैद्य मनोरमा

दूर्वादाडिमकुसुमस्वरसो नासासु योजितः पुसाम् ।
शमयति शोणितसरण पुनुरूपकरण किमिच्छासिध्रात ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

पाण्डुरोग में प्रकुपित पित्त वर्णहानि, बलहानि, स्नेहहानि करता है, सुतरा इसमें पित्तशामक, बलवर्धक, स्नेहवर्धक, रक्तवर्धक द्रव्यों की आवश्यकता होती है । पित्तशामक व अग्निवर्धक द्रव्यों में घृत सर्वोत्तम है, तब ही तो भगवान् चरक ने सर्वप्रथम स्नेहनार्थ दाडिमाद्य, कटुकाद्य आदि घृतों का सेवन कराने का निर्देश दिया है । प्रकरणानुसार यहा दाडिमाद्य घृत की निर्माण प्रक्रिया एव गुणधर्म का वर्णन किया जा रहा है—

दाडिमात् कुडवो धान्यात् कुडवार्धं पल पलम् ।
चित्रकाच्छृङ्गवेराश्च पिप्पल्यष्टमिका तथा ॥
तैः कल्कैर्विंशतिपल घृतस्य सलिलाढके ।
सिद्ध हृत्पाण्डु गुल्मार्श प्लीहवातकफार्तिनुत् ॥
दीपन श्वासकासघ्न मूढवाते च शस्यते ।
दु.खप्रसविनीनां च वन्ध्याना चैव गर्भदम् ॥
—च० चि० १६

यह समस्त रक्तविकारों मे भी उपयोगी है । उपदश मे इसके बाह्याभ्यन्तर उपयोग का वर्णन मिलता है—

प्रात.पिबेद्दाडिमवल्कफाण्टक
सीजाकवान् कर्करशर्करासखम् ।
निधेहि नीरे कुडवे द्विकर्ष
वल्क प्रकुञ्च क्षिप शर्करायाः ॥
—सि० भै० म० मा०

बब्बूलदल चूर्णेन दाडिमत्वग्भवेन वा ।
गुण्ठनं त्वस्थिचूर्णेन उपदशहरं परम् ॥
—च० द०

व्रण में भी पथ्य कहा गया है—

सैन्धव दाडिम धात्री 'शीघ्र' व्रणमपोहति ॥
—अ० हृ० सू० २९

सदाडिमै सामलकैर्वृतभृष्टैः ससैन्धवैः ।
अन्यैरेवगुणैर्वापि मुद्गादीना रसने वा ।
सक्तून् विलेपी कुलमाष
जल वापि शृत पिबेत् ॥
—सु० सू० १९

इसकी पुष्पकलिका कषाय होने से कफघ्न है । फल स्नेहन और कफनि मारक है, सुतरा वातपैत्तिक कास मे एव श्वास मे यह कफ को आसानी से बाहर निकालकर श्वासपथ की रूक्षता को समाप्त करता है । श्वास वेग में उपयोगी एक प्रयोग मणिमालाकार ने कहा है —

पक्वाम्लदाडिमीफलगर्भगतं
लवणमर्जुनच्छायम् ।
पुटपाकरीतिपक्व करालकफ-
माशुक्रतति श्वासम् ॥

(अनेन रक्तलवणव्युदास. । रुचिकारकमप्येतद् भवति) ।

इसके स्वरस में सैन्धव डालकर पीने से हिक्का का भी निवारण होता है—

कषायश्चन्द्रशूरस्य यथा हिक्कानिबर्हणः ।
तथा रसो दाडिमस्य सैन्धवेन चमत्कृत ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

(तथेति —इच्छा चेदत्र मध्वपिदेयम्) ।

कृश एवं दुर्बल प्रमेही के लिए अश्विनिकुमारो ने दाडिमाद्य कृत (भै० र०), महादाडिमाद्य घृत (भै० र०) बनाकर विश्व को दिये हैं। ये मूत्रवहस्रोत के लिए प्रशस्त है । दाडिम मूत्रल होने से मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात आदि को भी नष्ट करता है ।

यह शुक्रवर्धन, बल्य एव उत्तम श्रमहर होने से शुक्रदौर्बल्य, रोगोत्तर दौर्बल्य एव थकावट को मिटाता है । सामान्य दौर्बल्य मे इसका फल स्वरस दिया जाता है । ज्वरो में यह पथ्य रूप में दिया जाता है । इससे ज्वर तथा उसके उपद्रव समाप्त होते हैं तथा रोगी के बल की वृद्धि होती है । इससे पित्त की प्रबलता समाप्त होती है और सन्ताप ज्वर का मुख्य

लक्षण कहा गया है—'ज्वर प्रत्यात्मिक लिङ्ग सन्तापो देह मानस.'। वैद्यवर श्री कालिदास ने कहा है—

पक्वेन दाडिमफलस्वरसेन वापि
सक्तून् पिबेत् प्रवलपित्तभगज्वार्तः।

ज्वरातिसार प्रकरण मे वर्णित उत्पलादि चूर्ण (च० द०) मे दाडिमफलत्वक् की योजना की गई है—

उत्पल दाडिमत्वक् च पद्मकेशरमेव च।
पिबेत् तण्डुलतोयेन ज्वरातिसारनाशनम्॥

ज्वर के उपद्रवो की चिकित्सा में महर्षि सुश्रुत ने तृषादाह एव मुखवैरस्य मे दाडिमफल को उपयोगी प्रदिष्ट किया है—

विदारी दाडिमं लोध्र दधित्थ बीजपूरकम्।
एभिः प्रदिह्यान्मूर्धानं तृड्दाहार्तस्य देहिन.॥
दाडिमस्य सितायाश्च द्राक्षामलकयोस्तथा।
वैरस्ये धारयेत् कल्क गण्डूष च यथा हितम्॥

—सु० उ० त० ३९

दधित्थ कपित्थम्। वैरस्ये मुखवैरस्ये।—डल्हण

इसके अतिरिक्त अन्य वहि परिमार्जन प्रयोगो में भी इसकी उपादेयता प्रकट की गई है। पंडित श्रीहरि शास्त्री दाधीच ने इसे प्रतिश्याय में उपयोगी कहा है—

शुकप्रियस्य बीजैश्चूर्णीभूता शिर.शूलम्।
आघ्राणादपि सद्यो रुद्ध हन्ति प्रतिश्यायम्॥

—सजीवनी साम्राज्यम्

दाडिम बीज—अम्ल किन्तु अपित्तकर होने से जीर्ण प्रतिश्याय जन्य कफरोध को अम्लत्वेन द्रवीकृत कर सजीवनी के साथ नस्य लेने से लाभकारी है।

टीकाकार—वैद्य मदनगोपाल शर्मा

शिश्नवर्धनार्थ दाडिमाद्य तैल वर्णित है—

ससाधित दाडिमवल्कलैर्यत्
क्षुद्राफलारुष्करचूर्णयुक्तं.।
अभ्यञ्जनात्सर्षपसभव तत्
तैल नृणा लिङ्गविवर्धन स्यात्॥

—रा० मा०

स्तन एवं कर्णवर्धनार्थ भी यह उपयोगी है।

इन दो प्रलोपों में कान्तिकर योगों में दाडिम को लिया है—

श्यामारग्वधरोध्र लोहरजनीमुस्तै शिरीषत्वचा।
युक्तैर्दाडिमवल्कलेन च कृत स्यादङ्गराग. शुभ'॥
यद्वा दाडिमचूर्णवल्कलरसैर्निम्बस्य पत्रैश्चयः।
स स्त्रीणा द्युतिकृत् . . ..॥

—रा०मा०

इसकी छाल कषाय होने से शोथहर है अत मुख, कण्ठरोगों में इसके क्वाथ का गण्डूष हितकारी है। रोपण एव जन्तुघ्न होने से व्रणो को भी इस क्वाथ से धोना चाहिए। इसके अतिरिक्त छाल (मूलत्वक्) में इषत् सकोचक गुण होने से प्रदर आदि रोगों में इसके क्वाथ की पिचकारी रूप से उपयोग किया जाता है।

फलाहार मे दाडिम की उपादेयता—महर्षि सुश्रुत ने फलवर्ग मे दाडिम को प्रथमस्थान दिया है—

दाडिमामलक द्राक्षा खर्जूर सपरूषकम्।
राजादन मातुलुङ्ग फलवर्गे प्रशस्यते॥

—सु० सू० ४६

सब मनुष्यो के लिए यह सामान्यतः पथ्य होने के कारण प्रशस्त कहा है—"दाडिमामललमित्येष-वर्गः सर्वप्राणिना सामान्यत. पथ्यतम."—सु सू. २०।५। आचार्य वाग्भट ने भी सर्वसात्म्य द्रव्यो मे दाडिम का उल्लेख किया है—

पथ्यामलकमृद्वीकापटोलीमुद्गशर्करा।
घृतदिव्योदक क्षीरक्षौद्रदाडिमसैंधवम्॥

—अ० हृ० सू० ८

दाडिम-को सतर्पण (बृहण) द्रव्यो मे कहा है। कृश व्यक्ति को ऐसे द्रव्यो की आहार मे अवश्य योजना करनी चाहिए, क्योंकि कहा है—

योजयेत् बृहण तत्र सर्वं पानान्न भेषजम्।

—अ० हृ० सू० १४

योगरत्नाकरकार ने एक उत्तम सतर्पण विधि प्रस्तुत की है—

द्राक्षादाडिमखर्जूररैर्मर्दिताम्बु सशर्करम्।
लाजचूर्णं सुमध्वाढ्य संतर्पणमुदाहृतम् ॥
तर्पणं शीतल पावे नेत्ररोगविनाशनम्।
बल्यं रसायन हृद्य वीर्यवृद्धिकर परम् ॥

इस हेतु स्वादु (मधुर) दाडिम ही लेना चाहिए। इन फलोंको भोजन के पूर्व सेवन करने का निर्देश है—

फलान्यादौ समश्नीयाद् दाडिमादीनि बुद्धिमान्।
—यो० र०

मध्यज्वर, वातपित्तज्वर, अतिसार (दाडिमद्वयम्) ग्रहणी/दाडिमयुग), रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, अरुचि, छर्दि, अजीर्ण, अग्निमाद्य, तृष्णा, मदात्यय, वातरोग, गुल्मरोग, हृद्रोग, व्रण, शीतपित्त, अम्लपित्त, मसूरी, शिरोरोग, सूतिकारोग, विषरोग आदि रोगो में यह सदैव पथ्य कहा गया है। सन्तुलित आहार सम्मत सभी तत्व प्राय: इसमे विद्यमान होने से यह पथ्यतम कहा गया है। रासायनिक संघटन मे इन तत्वो का विवरण दिया गया है।

अम्ल दाडिम की अम्ल वर्ग मे गणना की गई है। कहा गया है—

कोलाम्लं चुक्रिकाम्लं च मातुलुङ्गम्लवेतसम्।
चतुरम्लमिति प्रोक्त पञ्चाम्ल तु सदाडिमम् ॥

अत: जहां अम्लरस के सेवन की आवश्यकता हो वहां इसे उपयोग मे लाया जा सकता है। यह सब चिकित्सक के परामर्शानुसार निर्णय करना चाहिए।

यूनानी मत—मीठा दाडिम पहले दर्जे मे सर्द (शीत) एवं तर (स्निग्ध) होता है। यह हृदय और यकृत के लिए बलदायक है। इससे दाह मिटता है और छाती व गले मे मृदुता आती है। खट्टा दाडिम दूसरे दर्जे मे सर्द एव रूक्ष होता है। खटमीठा दाडिम सम प्रकृति के समीप सर्द तर होता है। यूनानी मतानुसार दाडिम का छिलका, जड़ की छाल, अनारदाना तथा गुलनार आदि सभी सर्द एव रूक्ष माने गये हैं। यूनानी हकीमों ने सिद्ध किया है कि फूल से कली अधिक प्रभावी है; तथा पत्तो की अपेक्षा गूदा अधिक प्रभावी है, गूदे की अपेक्षा छाल अधिक प्रभावी है और जड़ की छाल में सबसे अधिक प्रभाव है।

नव्य मत—आर. एन. खोरी लिखते हैं कि दाडिम का रस ग्रहणी व ज्वर मे विशेष लाभप्रद है। इसके छिलके व फूल जावित्री, दालचीनी, धनिया, मिर्च मिलाकर बच्चो के पुराने अतिसार मे देते हैं। अनार के फूल को दूब के रस के साथ पीसकर देने से नाक से गिरता खून बन्द होता है। जड की छाल का क्वाथ का व्यवहार कृमि (स्फीत कृमि) का नाशक है।

ब्रिगेडियर सर जयन्ती-जाइन्ट एम० डी० का कथन है कि दाडिम की जड़ की छाल के समान कृमियों को नष्ट करने वाली कोई दूसरी दवा नही है। डिमक ने भी ६० ग्राम मूलत्वक् का क्वाथ आधे-आधे घण्टे के अन्तर से पीना कृमि नाश के लिए प्रशस्त कहा है। डा० नाडकरणी ने दाडिम पुष्प-स्वरस को ऊर्ध्वग रक्तपित के लिए लाभप्रद कहा है।

कर्नल चोपडा ने भी कृमि उपचार के लिए इसकी उपयोगिता अमूल्य मानी है। इसकी जड की छाल के उपयोग के पश्चात् विरेचन से स्फीत कृमि मरकर बाहर निकलने का वर्णन किया है।

जड़ एव काण्ड द्वारा प्राप्त चार कषायाम्लो के मिश्रण से एक हलके पीले या धूसर वर्ण का चूर्ण तैयार किया जाता है, जिसे पैलीटिएरीन टैनेट Pelletierine Tannate) कहते हैं। यह भी स्फीत कृमियो को नष्ट करने मे उपयोगी है। मात्रा १२० मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा०। इसके उपयोग से पूर्व एरण्ड स्नेह आदि मृदु विरेचन देकर कोष्ठ शुद्धि कर लेनी चाहिए और औषधि के प्रयोग के पश्चात् भी एरण्ड स्नेह देना चाहिए। जिससे मृत कृमि बाहर निकल जाते हैं। परन्तु बाद मे एरण्ड तैल की मात्रा बढ़ानी चाहिए किंवा अन्य तीव्र विरेचन देना चाहिए।

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग—

१. उपदंश—(क) दाडिमफल की छाल का चूर्ण बुरकने से उपदंश के घाव मिटते हैं। चूर्ण सूक्ष्म होना चाहिए।

(ख) १२५ ग्राम दाडिम के ताजे पत्तो को कुचल कर एक लीटर पानी मे औटावें। आधा पानी शेष रहने पर छानकर नित्य २-३ बार उपदंश के घावो को धोवें।

२. अर्श—दाडिम के पत्ते पीसकर टिकिया बना थोडा सा गरम कर घी मे भूनकर बांधने से मस्सों की जलन, दर्द और सूजन मिटती है और मस्से सूखने लगते हैं। यह रक्तार्श में भी लाभप्रद है।

३. प्रदर—(क) दाडिम मूल की छाल ६० ग्राम को १ लीटर पानी में उबालें। आधा पानी शेष रहने पर ३ ग्राम फिटकरी डालकर उस पानी की पिचकारी देने से श्वेत व रक्त प्रदर तथा गर्भाशय के व्रण मिटते हैं।

(ख) दाडिमफल क्वाथ से योनि प्रक्षालन भी लाभप्रद है।

४. गुदभ्रंश—(क) दाडिमफल छाल और माजूफल पीस बुरकने से गुदभ्रंश मे लाभ होता है।

(ख) दाडिम के छिलके को पानी मे उबाल लें और छानकर ठंडा होने पर उससे गुदप्रक्षालन गुदभ्रंश मे हितकारी है।

५. दद्रु—दाडिम पत्र बारीक पीसकर दिन मे दो बार लेप करें।

६. दाह—(क) दाडिमफल छाल और इमली पीसकर लेप करने से दाह दूर होता है।

(ख) दाडिमफल स्वरस और आमलक स्वरस मे जौ का सत्तू मिलाकर लेप करना भी दाह मे हितकारी है।

७. रक्तपित्त—(क) दाडिमपुष्प कलिका स्वरस ३ ग्राम में १२० मि० ग्राम कपूर मिलाकर नस्य देवें।

(ख) नकसीर फूटने पर पुष्प स्वरस नाक में डालें और पैर के तलुओ पर मलें।

८. सर्वसर—(क) पत्र स्वरस से गण्डूष करना हितकारी है।

(ख) दाडिम का छिलका और माजूफल घिसकर मुख के व्रणो पर लगावें।

९. भगशैथिल्य—दाडिमफल छाल, माजूफल, लोध्र और फिटकरी का फूला जल मे पीसकर लेप करना लाभप्रद है।

१०. मुखदूषिका—(क) दाडिम का छिलका, हल्दी, लोध्र के चूर्ण का मुख पर लेप करने से मुखदूषिका मिटकर मुख पर कान्ति आती है।

(ख) अनारछाल चूर्ण को फल स्वरस एवं निम्ब स्वरस मे पीसकर लेप करना भी कान्तिप्रद है।

११. व्रण—(क) दाडिमफल छाल के क्वाथ से व्रणो को धोने से उनका रोपण होने लगता है।

(ख) कच्चे दाडिम का छिलका छाया मे सुखाकर और मेहदी के पत्तो को सुखाकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें। व्रण को नीम के क्वाथ से साफ कर उक्त चूर्ण बुरक कर पट्टी बांध दें। इससे सभी प्रकार के घावो का रोपण होने लगता है।

१२. अग्निदग्ध व्रण—पत्रो को पीसकर लेप करना अग्निदग्धव्रण में लाभप्रद है।

१३. कंठरोग—(क) फल छाल के क्वाथ से गण्डूष करने से शोथ कम होकर कंठरोगों मे लाभ होता है।

(ख) जड की छाल को पीसकर गले पर लेप करना भी हितकारी है।

१४. इन्द्रलुप्त—पत्तो को पीसकर दिन मे दो बार सिर पर लेप करें।

१५. वृश्चिकदंश—हरे पत्तो को पीसकर लेप करने से वृश्चिकदंशजन्य वेदना कम होती है। यह मधुमक्खी, बर्रं आदि के दंश पर भी हितकारी है।

१६. तृष्णा—दाड़िमफल छाल, कपित्थ, लोध्र और आमलक को पानी मे पीसकर सिर से लेप करने से बार-बार लगने वाली प्यास मिटती है।

१७. पामा—दाडिमपत्र स्वरस मे सरसो का तैल मिलाकर मालिश करने से पामा दूर होती है।

१८. शीताद (दन्तरोग)—दाडिम पुष्पो के चूर्ण का मजन करने से अथवा शुष्क पत्तो के चूर्ण का मजन करने से दातो से गिरता खून बन्द हो जाता है।

१९. नेत्ररोग—(क) दाडिमफल स्वरस आखो मे डालने से आखो की जलन मिटती है।

(ख) दाडिम पत्र पीसकर टिकिया बनाकर आखो पर बांधने से नेत्रपीड़ा एव नेत्र लालिमा दूर होती है।

२०. स्वरभेद—दाडिमफल छाल के क्वाथ मे जरा सी फिटकरी डालकर गण्डूष करने से स्वरभेद मिटता है।

२१. लूताविष—लूतादि के विष से शरीर पर फफोले उठे हो तो दाडिमफल स्वरस लगाना चाहिए।

२२. यूका—दाड़िम का छिलका पीसकर सिर के बालों मे मलने से जुए व लीखें नष्ट होती है।

२३. कुनख—दाडिम पुष्प, धमासा, हरड समभाग पीसकर नख मे भरने से नख के भीतर की पीडा एव सडान मिटती है।

अन्तः प्रयोग—

१. तृष्णा—(क) ६० ग्राम अनारदाने को एक लीटर पानी मे डालकर मिट्टी के घडे मे भिगो दें। २-३ घटे भीगने दें। अच्छी प्रकार से भीग जाने पर इसमें से थोडा-थोड़ा छानकर मिश्री मिलाकर रोगी को पिला दें। इससे प्यास, जलन व छर्दि मिटती है।

(ख) पत्तो को मुख मे रखकर चूसना चाहिये।

(ग) अनारदाने को काजी मे पीसकर पीना चाहिए।

( ) [illegible]नारदाना, जीरा और नागकेशर के चूर्ण में शर्करा व मधु मिलाकर सेवन करें।

(ङ) दाडिम स्वरस में नीबू स्वरस मिलाकर सेवन करें।

२. अरुचि—(क) दाडिमफल स्वरस मे विड नमक और मधु डालकर सेवन करने से अरुचि मिटती है।

(ख) ताजे दाडिमफल स्वरस मे जीरा तथा चीनी और तैल, मधु मिलाकर मुख मे धारण करने से सन्निपातज अरोचक नष्ट होता है।

(ग) खट्टा अनारदाना ८०-ग्राम, दालचीनी, एला, तेजपात ४०-४० ग्राम, मिश्री १२० ग्राम मिलाकर चूर्ण बनाकर ३-४ ग्राम सेवन करें।

(घ) अनारदाना, कालीमिर्च, कलौंजी, जीरा और सैंधव का चूर्ण बनाकर सेवन करने से भी अरुचि मिटती है।

(ङ) अनारदाना, कालीमिर्च, कलौंजी, जीरा और सैन्धव चूर्ण भी अरुचि को मिटाता है।

३. रक्तपित्त—(क) दाडिमफल स्वरस पान से रक्तपित्त, रक्तमेह, रक्तातिसार, सोमरोग, मूर्च्छा, अशुघात, उष्णवात आदि नष्ट होते हैं।

(ख) दाडिम पत्र, बबूल के कोमल पत्र, आवला १०-१० ग्राम, धनिया ५ ग्राम का शीतकषाय बना मिश्री मिलाकर पिलावें।

(ग) दाडिम के हरे पत्ते १२ ग्राम लें और उसमे १ ग्राम कालीमिर्च मिलाकर पानी के संयोग से पीस लें। प्रात:-साय इसे छानकर पिलाने से रक्तपित्त का शमन होता है।

(घ) दाडिमफल स्वरस मे मिश्री मिलाकर पीना भी लाभप्रद है।

४. अतिसार—(क) दाडिम के पत्तो को पानी में पीसकर पिलाने से अतिसार मिटता है।

(ख) दाडिमफल स्वरस में गन्ने का स्वरस मिलाकर पीने से रक्तातिसार मिटता है।

(ग) दाडिम वृक्ष की छाल और कुटजछाल के क्वाथ मे मधु मिलाकर पीने से रक्तातिसार मे लाभ होता है।

(घ) अनारदाना, सौंफ और धनिये का बारीक चूर्ण बनाकर मिश्री मिलाकर ३ ग्राम की मात्रा में

दिन में चार बार सेवन करने से रक्तातिसार बन्द होता है।

(ङ) अनारदाना २ ग्राम चूर्ण में १० ग्राम गुड मिलाकर उष्ण जल से देने से आम निकलकर आमातिसार मिटता है। यह अजीर्ण, अर्श और विबन्ध मे लाभप्रद है।

(च) अनारदाना, सोठ और दन्तीमूल का चूर्ण १ ५ ग्राम सेवन करने से भी आमातिसार, विबन्ध, अर्श, अजीर्ण में लाभ होता है।

(छ) दाडिम छाल चूर्ण १० ग्राम, जीरा ५ ग्राम और गुड १० ग्राम मिलाकर सेवन करने से भी अतिसार का सहार होता है।

(ज) दाडिम छाल चूर्ण और जायफल चूर्ण ५००-५०० मि० ग्राम, केशर २५० मि० ग्राम मधु के साथ सेवन करना भी अतिसार में हितावह है।

५. ग्रहणी—(क) दाडिम पत्र और कालाजीरा ५ व ३ ग्राम लेकर पानी में पीसकर पिलाने से सग्रहणी मिटती है।

(ख) दाडिमफल छाल के क्वाथ मे सोठ और चन्दन का बूरा मिलाकर पिलाने से रुधिरयुक्त सग्रहणी का शमन होता है।

६. ज्वरातिसार—दाडिमफल छाल, कमल की केशर, नीलकमल चूर्ण चावलो के धोवन के साथ पिलाने मे ज्वरातिसार में लाभ होता है।

७. रक्तार्श—(क) दाडिमफल छाल का चूर्ण ३ ग्राम को जल के साथ सेवन करना रक्तार्श मे लाभप्रद है।

(ख) दाडिम पुष्प कलिका २५ ग्राम को शिल पर घोटकर उसे २५० मि० लि० जल में छान लें और साथ मे ही ३० ग्राम मिश्री मिलाकर सेवन करने से भी रक्तार्श में लाभ होता है।

८. रक्तविकार—पत्तो का शुष्क चूर्ण बनाकर १० ग्राम चूर्ण सेवन करने से कुष्ठ, उपदश, श्लीपद प्रमेह नष्ट होते हैं।

९. गुदभ्रंश—छाया शुष्क पत्र चूर्ण सेवन करना लाभप्रद है।

१०. श्वेतप्रदर—दाडिम के ताजी पत्ते २५ ग्राम और कालीमिर्च १ ग्राम को १२५ मि० लि० जल में पीस छानकर पीना चाहिए।

११. पूयमेह—२० ग्राम ताजे पत्तों को ५०० मि० लि० पानी मे रगड छानकर सुबह-शाम पीने से पूयमेह मे लाभ होता है।

१२. मूर्च्छा—मूर्च्छा रोगी को दाडिमफल स्वरस पिलाना हितकारी है।

१३. प्रमेह—(क) अनार की कली, कत्था, मिश्री २-२ ग्राम लेकर ताजे जल से सेवन करना हितकारी है।

(ख) अनारदाना, सफेद कत्था, मुलहठी, काले तिल बराबर मिलाकर नित्य सेवन करने से भी प्रमेह मिटता है।

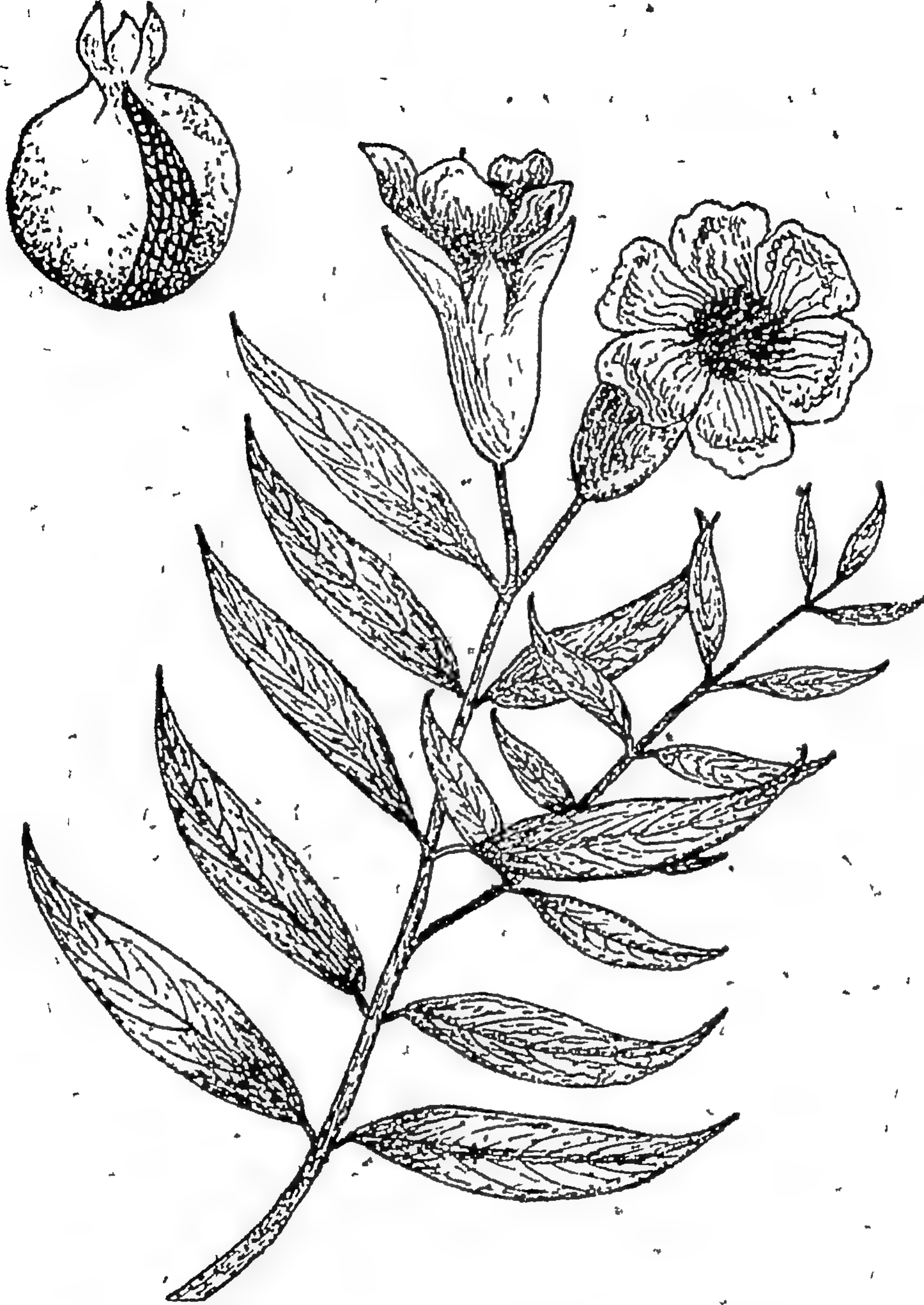
१४. हिक्का—(क) दाडिमफल स्वरस में सैन्धव मिलाकर सेवन करना चाहिए। सैन्धव के साथ में मधु भी मिलाया जा सकता है।

(ख) दाडिम शर्बत २५ ग्राम में छोटी इलायची के बीज, वशलोचन, सूखा पोदीना १-१ ग्राम, पीपल ५०० मि० ग्रा० चूर्ण मिलाकर थोडा-थोड़ा चाटने से हिक्का मे आराम होता है।

१५. हृदयरोग—दाडिम के नवीन पत्र १० ग्राम को जल में पीस छानकर पिलाने से हृदय की धडकन में लाभ होता है।

१६. कृमिरोग—(क) १०-२० ग्राम मूल की छाल का क्वाथ खाली पेट देवें और निराहार रखकर दूसरे दिन विरेचन देने से कृमि मरकर बाहर निकल जाते हैं।

(ख) मूल छाल के क्वाथ मे तिल तैल मिलाकर भी सेवन कराया जाता है। प्रात. क्वाथ देने से एव रात्रि मे त्रिफला चूर्ण उष्ण जल से देने से तीन दिन के प्रयोग से कृमि मर जाते हैं।



दाडिम (Punicagranatum)

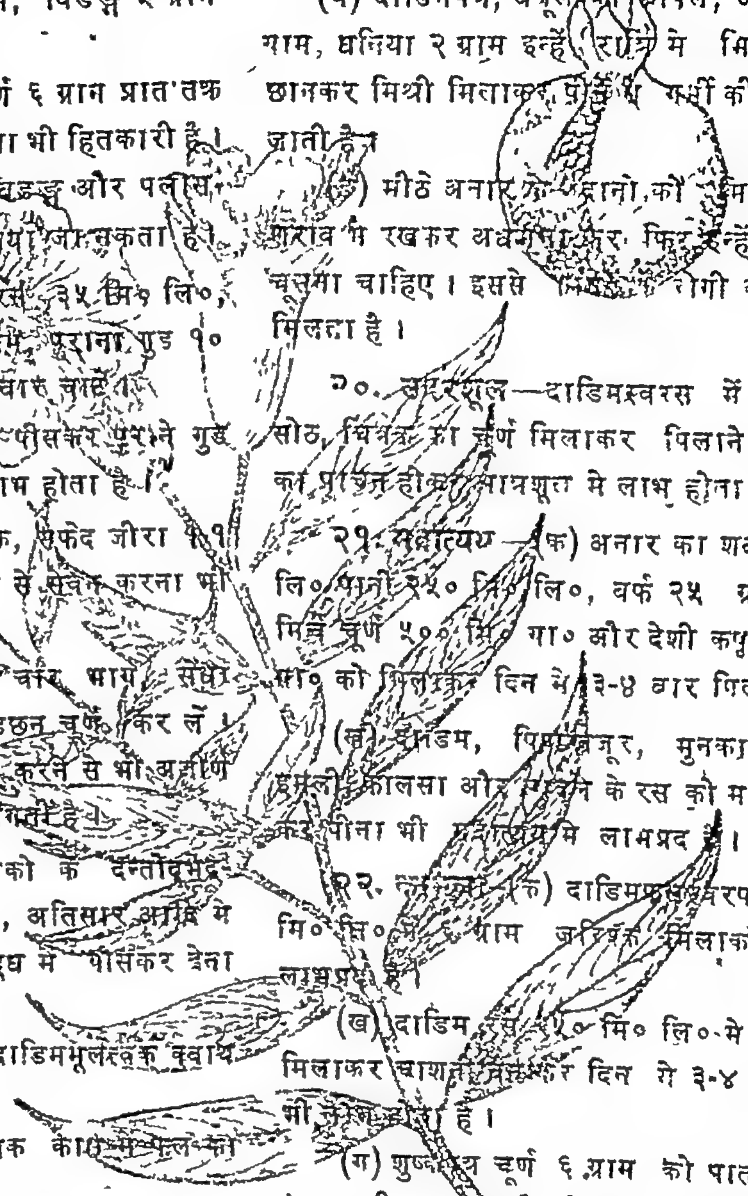
विभिन्न नाम : सं०—दाडिम, दन्तबीज। हि०—अनार, दाडिम। गुज०—दाडम। म०—दालिंब। अं०—पोमेग्रेनेट। लै०—प्युनिका ग्रेनेटम।

प्राप्ति स्थान : भारत में प्राय. सर्वत्र।

उपयोगी अङ्ग : फल, फल की छाल, पुष्पकलिका, पुष्प, मूलछाल।

रोगोपयोग : अतिसार, ग्रहणी, कास, अरुचि आदि। **दोषशमन** : त्रिदोषघ्न (मधुरफल)।

मुख्ययोग : दाडिमाष्टक चूर्ण, दाडिमावलेह आदि।



(ग) दाडिमूल छाल १० ग्राम, विडङ्ग ५ ग्राम दोनो का क्वाथ भी हितकारी है।

(घ) दाडिमपत्र का सूक्ष्म चूर्ण ६ ग्राम प्रातःतक्र से एव रात्रि मे जल से सेवन करना भी हितकारी है।

(ङ) मूल छाल, नीमछाल, विडङ्ग और पलास बीज चूर्ण को मधु से भी सेवन किया जा सकता है।

१७. अजीर्ण—(क) फलस्वरस २५ मि० लि०, भुना व पिसा जीरा शर्करा १० ग्राम, पुराना गुड १० ग्राम मिला, १०-१२ ग्राम ३-४ बार चाटें।

(ख) फल को छिलके सहित पीसकर पुराने गुड के साथ खाने से आमाजीर्ण मे लाभ होता है।

(ग) अनारदाना, कालानमक, सफेद जीरा १-१ ग्राम इन सबका चूर्ण गरम पानी से सेवन करना भी अजीर्ण मे लाभप्रद है।

(घ) छायाशुष्क दाडिमपत्र चार भाग, सेंधा नमक एक भाग को पीस, कपडछन चूर्ण कर लें। भोजन के पहले ३-४ ग्राम सेवन करने से भी अजीर्ण नष्ट होता है और भूख लगने लगती है।

१८. बालरोग—(क) बालको के दन्तोद्भेद जन्य विकार, ज्वर, छर्दि, कास, अतिसार आदि मे अनार की कली को बकरी के दूध मे पीसकर देना लाभप्रद है।

(ख) बच्चो के सूखारोग मे दाडिमभूलत्वक् क्वाथ उपयोगी है।

१९. कास—(क) वातपैत्तिक कास मे फल का छिलका चूसना चाहिए।

(ख) दाडिमपुष्प, खदिरसार (कत्था) दोनो १२-१२ ग्राम, कपूर १ ग्राम सबको पान के रस मे खरल कर चने बराबर गोली बना दिन मे एक-एक गोली मुख में रख कर चूसने से कास-श्वास एव मानसिक ज्वर के वातिक लक्षणो मे लाभ होता है।

(ग) फल का छिलका १ ग्राम, वहेडा का छिलका १ ग्राम, कालीमिर्च ३ नग, सेंधा नमक ५०० मि० ग्रा० को ६० मि० लि० गरम जल मे पीसकर पीने से भी कास, श्वास मे लाभ होता है।

(घ) दाडिमपत्र, बबूल की कोपल, आवला ४-४ ग्राम, धनिया २ ग्राम इन्हें रात्रि मे भिगोकर प्रात. छानकर मिश्री मिलाकर पीने से गर्मी की खासी मिट जाती है।

(ङ) मीठे अनार के दानो को मिट्टी के कोरे शराव मे रखकर थवमपाक कर फिर इन्हें मुख मे रख चूसना चाहिए। इससे खासी के रोगी को आराम मिलता है।

२०. उदरशूल—दाडिमस्वरस में विडनमक, सोठ, मिर्च का चूर्ण मिलाकर पिलाने से आमदोष का पाचन होकर आमशूल मे लाभ होता है।

२१. मदात्यय—(क) अनार का शर्बत २५ मि० लि० पानी २५० मि० लि०, बर्फ २५ ग्राम, कालीमिर्च चूर्ण ५०० मि० ग्रा० और देशी कपूर २४० मि० ग्रा० को मिलाकर दिन मे ३-४ बार पिलावे।

(ख) दाडिम, पिण्डखजूर, मुनक्का, बिजौरा, इमली, फालसा और आवले के रस को मन्थ मे मिलाकर पीना भी मदात्यय मे लाभप्रद है।

२२. तृष्णा—(क) दाडिमफलस्वरस १००-१२५ मि० लि० मे ६ ग्राम जीरक मिलाकर पिलाना लाभप्रद है।

(ख) दाडिम रस ५० मि० लि० मे देशी शक्कर मिलाकर चाशनी बनाकर दिन मे ३-४ बार पीने से भी तृष्णा होती है।

(ग) शुण्ठी चूर्ण ६ ग्राम को प्रात गोतक्र से साथ उसी तक्र के अनीर मे पीना लाभप्रद है।

२३. उन्माद—दाडिमपत्र १२ ग्राम, गुलाबपुष्प १२ ग्राम दोनो को ५०० मि० लि० जल मे औटाकर चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानकर १२ ग्राम गोघृत (उष्ण कर) मिलाकर पीने से उन्माद व अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) नष्ट होता है। इसमे पत्र मीठे अनार के ही होने चाहिए।

२४ पित्तज्वर—(क) दाडिमस्वरस मे सेंधानमक मिलाकर पीना हितकारी है।

पर पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर ४ मात्रा कर लें। दिन में ४ बार पिलाने से कृमि नष्ट होते है।

—धन्व० जुलाई ५०

४. दाडिम हिम (नकू अनार)—६० ग्राम शुष्क अनारदाना को ५०० मि० लि० जल मे तीन घण्टो तक भिगोने के बाद छानकर काम मे लावें।

मात्रा—२५-६० मि० लि०। यह ज्वर की तृष्णा, बेचैनी आदि मे लाभप्रद है।

५. दाडिमीवल्कफाण्ट—सायकाल २४० मि० लि० गरम जल में अनार के छिलकों का यवकुट चूर्ण २ ग्राम तथा कड़कड़ थक्कर ३० ग्राम को भिगो देवें, प्रात. मसलकर छानें तथा रोगी को पिला देवें। इस ही प्रकार सायकाल भी देवें। तीन दिन तक के इस प्रयोग से सुजाक का शमन होगा।

—सि० भे० म० मा०

६. दाडिम पुटपाक—(क) अच्छे प्रकार से पका हुआ मीठा अनार लेकर, उस पर एक अगुल मोटी कपडमिट्टी करके पुटपाक-विधि से पकावें, पश्चात् कपडमिट्टी हटाकर अनार को निकाल कर उसका रस निकाल कर शीतल होने पर शहद (दशमाश) मिलाकर दिन मे तीन-चार बार पिलावें।

गुण और उपयोग—इस दाडिम पुटपाक के रस को पीने से समस्त प्रकार के अतिसार रोग नष्ट होते हैं, इसके अतिरिक्त, प्यास, दाह, रक्तपित्त रोग एव पित्तजन्य रोगों में भी उत्कृष्ट लाभ करता है।

—शा० स०

(ख) एक खट्टा पका हुआ अनार ले उसके बीच मे छिद्र करके उसमें १० ग्राम सैंधव भर दें तथा अनार को कपडमिट्टी करके पुटपाक करलें, स्वांगशीत होने पर अनार का स्वरस निकाल ले, यह स्वरस १-१ चम्मच दिन भर में दे देवें, कठिन श्वास और रुके हुए कफ की स्थिति में पर लाभ होता है।

—सि० भे० म० मा०

(ग) जायफल, लौंग, जीरा, सोहागा चौकिया समभाग लेकर अनार के फल में छेदकर भर कर छेद को ढककर चारो ओर मिट्टी लिप्त कर सुखा कर पुटपाक करे। अन्त मे निकाल घोट कर पानी में पीस कर सुखा लेवें। बालक के आयु के अनुसार मात्रा १२५ मि. ग्राम से ५०० मि ग्राम तक मधु और चीनी मे मिलाकर दिन में ४ बार चटावें। बहुत ही लाभप्रद है।

—मे० र०

(घ) कच्चे अनार के बीज ९६ ग्राम, मुलैठी, सोंठ, सोफ, खजूर का गूदा और मोचरस १२-१२ ग्राम तथा अफीम ६ ग्राम इनका सूक्ष्म चूर्ण, उसी अनार के अन्दर (जिसके बीज निकाले गये है) भरकर ऊपर वटपत्र लपेट, उनके ऊपर दो अगुल मोटा चिकनी मिट्टी का लेप करदें और कण्डों की आग मे दबा दें। अच्छी तरह पक जाने पर अन्दर से अनार निकाल जल के साथ पीस बेर जैसी गोलियां बना लें। एक गोली प्रातः तक्र के साथ लेने से पक्वातिसार में लाभ होता है।

—वनौ० विशे०

(ङ) कच्चे अनार के बीज, सौंठ, जायफल, शुद्ध अफीम–ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर इनको कूट करके चूर्ण बनावें। पश्चात् इस चूर्ण को (बीज निकाले हुए) अनार में भर कर उसके ऊपर मिट्टीका लेप चढ़ाकर सुखा लें, पश्चात् पुटपाक विधि से पाक करें। बाद में स्वांग शीतल होने पर पुटपाक से औषधि निकाल कर अच्छी तरह मर्दन कर १२५-१२५ मि० ग्राम की गोलियां बनावे और सुखा कर सुरक्षित रखें। १-१ गोली सुबह-शाम गो के मट्ठा (छाछ) के साथ या जल के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें। इस वटी का सेवन करने से समस्त प्रकार के कठिन सग्रहणी और अतिसार रोग नष्ट होते हैं किन्तु पक्वातिसार में इस वटी के सेवन से विशेष उत्कृष्ट लाभ होता है। यह औषधि उत्तम आम पाचक और स्तम्भक है।

—अमृतसागर

७. दाडिमादि चूर्ण–(क) अनारदाना ८० ग्राम, शर्करा ४०० ग्राम, त्रिगन्ध (दालचीनी, इलायची, तेजपात) ४० ग्राम, त्रिकटु (सौंठ, मिर्च, पीपल) १२० ग्राम–इन द्रव्यो का चूर्ण दाडिमाष्टक चूर्ण कहलाता

है। यह चूर्ण रुचिकारक अग्निवर्धक कण्ठनिशोधक, मलावरोधक, कास व ज्वर को नष्ट करता है।

—शा० स०

(ख) अनारदाना १ किलो, भुनी हींग ३ ग्राम २५० मि० ग्राम, सैंधानमक २५० ग्राम, कालीमिर्च २५० ग्राम, जीरा सफेद भुना हुआ २५० ग्राम, बड़ी इलायची के बीज ६० ग्राम, मिश्री २५० ग्राम, निम्बु सत्व ३० ग्राम लेकर हींग को छोड़कर सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करें। पश्चात् हींग खरल मे पीसकर चूर्ण में मिला करके सुरक्षित रख लें यह भी पूर्वोक्त गुणों से युक्त है।

—आ० सा० स० (सि० भे० म० मा०)

(ग) अनारदाना ३८४ ग्राम, खाड ३८४ ग्राम, पीपल, पीपलामूल, अजवायन, कालीमिर्च, धनिया, जीरा, प्रत्येक ४८-४८ ग्राम, वशलोचन १२ ग्राम, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर प्रत्येक ६-६ ग्राम लें। इन सबको एकत्र कर चूर्ण कर लें। यह बृहद्दाडिमाष्टक चूर्ण है।

मात्रा और अनुपान—३ ग्राम सुबह-शाम तक्र या गरम जल से दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से आमातिसार, अग्निमाद्य, अरुचि, खासी, हृदय की पीडा पसली का दर्द ग्रहणी और गुल्म रोग नष्ट होता है। पित्त प्रधान रोगो मे इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। यह सौम्य शीतल रुचिवर्द्धक, पित्तशामक और कण्ठशोधक है।

—शा० स०

(घ) अनारदाना भुना हुआ, स्याह तथा सफेद जीरा, सोठ, त्रिशोथ, अम्लवेत तथा सैंधानमक सबको बराबर लेकर बारीक चूर्ण करले। १।। ग्राम की मात्रा मे प्रातः-साय ठण्डे जल के साथ सेवन कराने से मलावरोध दूर होता है।

(ङ) अनारदाना, मिश्री, जीरा सफेद तीनो १८०-१८० ग्राम, अकरकरा २४ ग्राम, काली मिर्च ३६ ग्राम, पीपल ३६ ग्राम, सेंधानमक ६० ग्राम, निम्बू सत्व २४ ग्राम इन सबको कूटकर बारीक चूर्ण कर लेवें। यह खाने में स्वादिष्ट और अजीर्ण को नष्ट करता है।

—धन्व० दिस० ५५

(च) अनारदाना १२ ग्राम, सोठ, पीपल, कालीमिर्च, २४-२४ ग्राम, इलायची दाना १२ ग्राम, दालचीनी १२ ग्राम, पत्रज २४ ग्राम, धनिया ४८ ग्राम, अकरकरा २४ ग्राम, सेंधानमक ९६ ग्राम, सचरनमक ७२ ग्राम, नीबू का सत २४ ग्राम, पीपलामूल २४ ग्राम, मिश्री ३७२ ग्राम कूट पीसकर चूर्ण तैयार करलें।

गुण—पाचन शक्ति को तेज करता है, खायापीया हजम करता है।

मात्रा—३-३ ग्राम आवश्यकतानुसार सेवन करें।

—धन्व० अप्रैल ४७

(छ) अनारदाना, सोठ, हीग, राल, सेंधानमक, पोहकरमूल, रास्ना—सब चीजें समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसमे से प्रतिदिन १४ ग्राम चूर्ण घी मे मिलाकर सेवन करें। खासी और श्वास नष्ट हो जाते हैं।

—धन्व० नव० ४६

(ज) अनारदाना, हर्र, आमला प्रत्येक १२-१२ ग्राम लेकर चूर्ण बनावें। और उसे एक दिन बिजौरे निम्बू के रस मे घोटे। इसके सेवन से पित्तज शूल नष्ट होता है।

मात्रा—३ ग्राम।

अनुपान—उष्ण जल।

—हा० स०

८. दाडिमकलिका कल्प—बुधवार के दिन प्रातः सूर्योदय से पूर्व दाडिम की कच्ची कली (जो खिली न हो) एक खावें तो एक वर्ष तक आखें नही दुखती हैं। इसी प्रकार दो कलिया खाने से दो वर्ष तक आखें नही दुखती हैं। इस प्रकार जितनी कलिया खावे उतने वर्षों तक आखें नहीं दुखती हैं। किन्तु सुजाक का विष यदि शरीर मे फैला हुआ हो तो इस प्रयोग से कुछ भी लाभ नही होता है।

९. रुब्बे अनार—ताजे अनारदानो का रस निकाल कर आग पर पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर ठण्डा कर रखें। ज्वर मे तृषा, उत्क्लेश एव छर्दि को

मिटाने के लिए यह श्रेष्ठ है। गर्भवती स्त्री के लिए यह उत्तम है। इससे मिट्टी खाने की चाहत और वमन भी नष्ट होते हैं। [illegible] लगाया भी जा सकता है। [illegible] अनारदानों [illegible] [illegible] मात्रा २५ से ३५ ग्राम। यह भी [illegible] [illegible]

११. दाडिमादि वटी—(क) अनारदाना [illegible] मिर्च [illegible] धनिया [illegible], सौंफ १२५ ग्राम, सेंधा नमक ६० ग्राम, [illegible] ग्राम [illegible] [illegible] रखें फिर [illegible] बराबर [illegible] मात्रा—[illegible] मुख में रखकर [illegible] यह बड़ी पाचक और स्वादिष्ट होती है। [illegible] अप्रैल ४७

(ख) अनार [illegible] सोंठ, [illegible] प्रत्येक [illegible] ग्राम [illegible] सबका चूर्ण बना, कपडछन करके एकत्र घोटकर [illegible] के प्रमाण की गोलियां बना लें।

मात्रा और अनुपान—[illegible] गोली [illegible] से या वैसे ही दिन भर मुख में रखकर चूसे।

गुण और उपयोग—ये गोलियां रोचक, दीपन, स्वर के सुधारने वाली और पीनस, खांसी तथा श्वास-नाशक हैं।

(ग) अनारदाना १ किलो के महीन चूर्ण में पत्रज, सौंफ, पांचों नमक, पीपल, [illegible] २४-२४ ग्राम, धनिया, जीरा, काली मिर्च [illegible] ग्राम, [illegible] १२ ग्राम तथा [illegible] मिश्री [illegible] सबको खूब पीसकर बेर परिमाण वटी तैयार करें। १-१ वटी मुख में चूसते रहने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है, अजीर्ण नष्ट होता है। अत्यन्त स्वादिष्ट है।

—ध० व० वि०

(घ) [illegible] शिवप्पी [illegible] ग्राम तथा गुड़ [illegible] ग्राम की चाशनी कर उसमें [illegible] चूर्ण मिला [illegible] [illegible] [illegible] सेवन करने से [illegible] [illegible] [illegible]

१२. दाडिमादि मोदक—उत्तम स्वादिष्ट दाडिम [illegible] पीपल, [illegible] जीरा, सोंठ दालचीनी का चूर्ण [illegible] उसमें [illegible] तथा गुड़ [illegible] मिला मन्दाग्नि पर [illegible] [illegible] नीचे उतार [illegible] [illegible] ग्राम की मोदक बना लें। प्रतिदिन [illegible] मोदक [illegible] [illegible] [illegible] है। इसके सेवन से [illegible]

१३. दाडिम पाक—[illegible] अनारों को ऊपर से चौकुल्ला चीर कर उसमें धनिया, सोंठ, [illegible] मोथा, [illegible] बेल, [illegible] चरस, धाय के फूल, [illegible] कुड़ाछाल, जायफल, [illegible] खैरसार, [illegible] [illegible] की जड़, सोंठ और छोटी पीपल [illegible] ग्राम एकत्र किया हुआ महीन चूर्ण भर दिया जाय फिर अनारों पर कपरौटा कर दो [illegible] अंगुल मोटी मिट्टी चढ़ाकर सुखा करके [illegible] आग में रखे। जब ऊपर लगी हुई मिट्टी [illegible] सुर्ख हो जाय, तब निकाल कर ठण्डी हो जाने पर धीरे से कपड़मिट्टी को दूर कर अनारों को पीस, २५० ग्राम खांड की चाशनी में पाक जमा देवें। यदि पाक न जमे तो १२-१२ ग्राम के लड्डू बना लेवें। कोई-कोई इसे बगैर चाशनी में डाले, वैसे ही लड्डू बनाकर रख लेते हैं।

मात्रा और गुण—१२ से २४ ग्राम तक प्रातः और सायंकाल ताजे जल के साथ सेवन करने से

अतिसार, मन्दाग्नि, संग्रहणी, अरुचि, शूल, अजीर्ण आदि शीघ्र नष्ट होते हैं। —वृ० पा० सं०

(ख) अनारदाना ५०० ग्राम लेकर जौकुट कर ६० ग्राम गोघृत में भून लेवें फिर १ किलो मिश्री या खाड़ की चाशनी में मिला, नीचे उतार कर उसमें सोंठ, काली मिर्च, पीपल ३६-३६ ग्राम, [illegible] जीरा भुना [illegible] [illegible] ग्राम, अकरकरा, [illegible] [illegible] [illegible] ग्राम [illegible] चूर्ण मिला पाक जमा लेवें।

मात्रा—[illegible] ग्राम से १० ग्राम तक। यह [illegible] [illegible] अग्निदीपक और [illegible] होता है। —वृ० पा० सं०

१४. दाडिमावलेह—अनारदाना ७६८ ग्राम को २ किलो ८७२ ग्राम जल में उबाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर ७६८ ग्राम मिश्री मिलाकर पाक कर फिर ७६८ ग्राम घृत मिलावें। पश्चात् सोंठ, पीपलामूल, पीपल, धनिया, अजवायन, जावित्री, जायफल, काली मिरच, जीरा, वंशलोचन, हरड़, निम्बपत्र, नेत्रबाला, कूठ, मोचरस, अरलू की छाल, अतीस, पाठा और [illegible] इन [illegible] औषधियों को [illegible] ग्राम लें, चूर्ण कर [illegible] [illegible] [illegible] अवलेह बना लें। [illegible] [illegible] ग्राम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अतिसार, [illegible] [illegible] शूल, मन्दाग्नि, शोथ, [illegible] और [illegible] [illegible] आदि विकार नष्ट हो जाते हैं।

१५. दाडिमपानक (शर्बत)—(क) मीठे अनार का रस ३ किलो को [illegible] पकावें [illegible] १ किलो [illegible] [illegible] फिर उसमें [illegible] किलो जल और एक किलो चीनी मिलाकर चाशनी करें।

मात्रा और अनुपान—२४ मि० लि० शर्बत ताजा जल से [illegible] [illegible]।

गुण तथा उपयोग—यह मन प्रसाद-कारक, तृष्णा-नाशक, दीपन-पाचन और उत्क्लेशनाशक है।

—यू० सि० यो० सं०

(ख) बेर का रस, मीठे अनार का रस, खट्टे अनार का रस, अमरूद का रस, बिही का रस, जरिश्क का रस, सुमाक का रस, कच्चा अंगूर (गोटा) का रस और मिश्री १ किलो। यथाविधि शर्करा (शर्बत) प्रस्तुत करें।

मात्रा और अनुपान—२४ मि० लीटर ताजा जल से या ६० मि० ली० गावजबानार्क से उपयोग करें।

गुण तथा उपयोग—यह पाचनकर्ता, दीपन-पाचन और हृदय बलदायक (हृद्य) है और उत्क्लेश को रोकता है। —यू० सि० यो० सं०

(ग) अनार, [illegible] अदरक और पोदीना के रस को [illegible] [illegible] सबको [illegible] चीनी [illegible] चाशनी बना लेवें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भुना जीरा, [illegible] [illegible] और काली मिर्च का चूर्ण भी यथावश्यक छोड़ देवें। २४-२४ ग्राम [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] के अतिरिक्त इसके प्रयोग से [illegible] [illegible] हो जाती है। [illegible]

[illegible] [illegible] पुष्प [illegible] [illegible] [illegible] पुष्प [illegible] पुरे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उसके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तक रख दें। उसके उपरान्त २५० ग्राम मधु मिलाकर सुरक्षित रखें। यह पुष्प कन्द एक [illegible] सेवन करने से आंतों के कई रोग, कृमि [illegible] शूल, अतिसार, प्रवाहिका, वमन, तृषा, आध्मान, [illegible] क्षय, पाण्डु, रक्तातिसार आदि मिटते हैं।

—मं० आयु० बा० रोगांक

(ख) अनारदाना आधा किलो जौकुट कर उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल ३०-३० ग्राम, अकरकरा, पत्रज, कालाजीरा २०-२० ग्राम, मिश्री आधा किलो इन सबको कूट पीसकर गुलकन्द की भावना दें।

मात्रा—३-४ ग्राम इसको सेवन करने से अजीर्ण, अरुचि तथा मलावरोध दूर होता है।

१७. दाडिमादि घृत—(क) अनार के ताजे पत्तों को कुचल कर निकाला हुआ रस २ किलो गाय का घी १ किलो और अनार के ताजे फलो का कल्क १२० ग्राम इन तीनो को मिलाकर मदाग्नि पर पकावें। घृत मात्र शेप रहने पर छान लें और ठण्डा होने पर मिट्टी के चिकने पात्र मे सुरक्षित रखें।

मात्रा—१२ से २४ ग्राम प्रात-साय २५० ग्राम ग्राम उष्ण गोदुग्ध में मिला सेवन करें। मेदाजनन, वीर्य और वृद्धि-वर्धक है। —धन्व०, न० वि०

(ख) अनार की छाल या अनारदाना २५० ग्राम, धनिया १२० ग्राम, दन्ती और सोठ ४८-४८ ग्राम तथा पीपल २४ ग्राम। इनका कल्क कर उसमे २॥ किलो घृत और ८ किलो जल मिला पिलावें। घृत मात्र शेप रहने पर छान लें।

मात्रा—१२ से २४ ग्राम सेवन करने से हृद्रोग, पाडु, गुल्म, अर्श प्लीहा, वातव्याधि, शूल, श्वास, कास और मूढवात नष्ट होते हैं। अग्निदीपक है। जिन स्त्रियो के सन्तान न होती हो या प्रसव मे अधिक कष्ट होता हो, उन्हे भी यह हितकारी। शास्त्रो मे इसके और भी प्रयोग दिये हैं। —ध० व० वि०

(ग) अनार के पत्तों का रस १ किलो विल्व पत्रो का रस १ किलो गाय का घी,१ किलो तीनो वस्तुओं को मिलाकर हलकी आच पर पकाना चाहिए। जव घी मात्र शेष रह जाय तव उतार कर ठण्डा कर लेना चाहिए। इसमें से १२ ग्राम घी २५० ग्राम दूध के साथ मिश्री मिलाकर पीने से कानों का वहिरापन दूर होता है। —व० च०

१८. दाडिमादि अर्क—मीठे अनार का रस, मीठे सेव का रस, वीही का रस, नाशपाती का रस आधा-आधा लीटर तथा मीठे निम्बू का रस १ लीटर २५० मि० लि०, तरवूज का पानी, और गन्ने का १-१ लीटर तथा गावजवा, गुलनीलोफर, वादरजवोया, भूसी रहित जो, सफेद चन्दन २५०-२५० ग्राम, वश-लोचन ७५ ग्राम और धनिये की गुली १२५ ग्राम लेकर सवको कूटछान कर एकत्र मिलाकर रख दें और २४ घण्टो वाद १० लीटर वकरी का दूध मिला कर अर्क खीच लें।

मात्रा—६० मि० लि०। २५ मि० लि० अनार के शर्वत में यह अर्क मिलाकर पीने से हृदय को वल मिलता है, गर्मी शान्त होती है, घवराहट मिटती है।

१९. दाडिमाद्य तैल—अनार का वल्कल, छोटी कटेरी के फल, मिलावे इनके चूर्ण से सिद्ध किया हुआ सरसो का तैल शिश्न पर मलने से उसमें वृद्धि होती है। यह स्तन एव कर्ण की वृद्धि के लिये भी उपयोगी है। —रा० मा०

(ख) दाडिम के पत्तो को कुचलकर निकाला हुआ रस १ किलोग्राम, तिल तैल २५० ग्राम को धीमी आच पर पकावें। तैलमात्र शेष रहने पर छान रखें। दिन में २-३ वार मालिश करने से कुछ कठोर होते हैं। —व० विशे

(ग) दाडिम का छिलका १ किलो को जल ४ लीटर मे पकावें। एक लीटर शेप रहने पर छान लें। फिर इस जल में २५० ग्राम सरसो का तैल मिला पकावें तैलमात्र शेप रहने पर छानकर शीशी मे रखें। दिन में २ ३ वार मालिश करने से कुछ दिनो मे दृढ़ता आ जाती है। —व० विशे०

(घ) दाडिम के पत्ते, फूल, छिलका, कच्चे फल और जड की छाल समभाग लेकर जोकुट कर दुगना सिरका चार गुने गुलाव के अर्क मे भिगोवें। चार दिनो वाद उसमें चतुर्गुण सरसों का तैल मिला धीमी आच पर पकावें। तैलमात्र शेष रहने पर छानकर वोतल मे भर रखें। इस तैल की रोज छातियो पर मालिश कर स्तनो को ऊपर उठाकर वांध दिया करें। कुछ दिनो वाद ढलकी हुई छातिया कठोर हो जावेंगी। इस तैल से त्वचा पर कुछ कालापन आ जाता है अतएव सावुन से धोते रहना चाहिए। —व० विशे०

(ङ) दाडिमपत्रस्वरस, स्वर्णक्षीरीस्वरस, गोमूत्र तीनों १-१ किलो, काले तिलो का तैल २ किलो, दाडिमपत्रकल्क आधा किलो सबको मिला आग पर चढ़ावें। जब सब द्रव्य जल कर तैल मात्र शेष रह जाय तब उतार ठण्डा कर लगाने से कण्ठमाला, कुष्ठ, दद्रु, कील-मुंहासे-झाई, श्लीपद आदि समाप्त होते हैं। —वनौ० चन्द्रो०

(च) खट्टे अनार का रस (गूदा सहित निचोडें) १२० ग्राम में इसके छिलके को पकाएं और मल कर छान लें। फिर शुद्ध सिरका ६ ग्राम, रोगन कुंदुर ३ ग्राम मिलाकर पकायें। जब पानी जल जाय और तैल मात्र शेष रह जाय, इस तैल को छानकर सुरक्षित रखें। यह यूनानी योग है। इसे रोगनसयाअत कुशा कहते हैं। दिन में दो-तीन बार इसके सुहाते गरम बिन्दु कान में डालने से बाधिर्य का निवारण होता है। —यू० सि० यो० सं०

२०. दाडिमादि दन्त मञ्जन—दाडिम के फूल की कलियां सूखी हुई १० ग्राम, मौलश्री की छाल १० ग्राम, बबूल की छाल १० ग्राम, अखरोट की छाल १० ग्राम, फिटकरी सफेद भूनी हुई १० ग्राम, दालचीनी १० ग्राम, लौंग १० ग्राम सभी दवाओं को अलग-अलग कूट पीस कपड़छन करके मिलालें। इसे प्रतिदिन मञ्जन के रूप में प्रयोग करें। इसके सेवन से जहां दांत मोतियों की तरह चमकने लगते हैं, वहां पायोरिया का नाम निशान भी नहीं रहता। —चम० ओष०

२१. दाडिमादि अञ्जन—(क) दाडिम के नये पत्तों का रस आधा किलो के साथ शुद्ध काला सुर्मा २४ ग्राम धीरे-धीरे खूब खरल करें। शुष्क हो जाने पर शीशी में भर रखें। इसे सलाई से आंजने से आंखों का दुखना, खुजली, लाली, मन्दापन, नेत्रस्राव, दृष्टि की कमजोरी पलकों की खराबी आदि दूर होती हैं।

२२. उसारा अनार—अनार की कली जो खिली न हो ताजी लेकर खूब कूटकर और निचोड़कर फोक फेंक दें, और रस को धूप या पानी की भाप पर शुष्क करलें। आंख, दुखने पर सुर्मा जैसा लगावें। आंख के कुकरों पर इसे बुरक दिया करें। जख्मों या छोटी फुंसियों पर बुरकने या मलने से लाभकारी है।

२३. मतबूख अनार—अनार की जड़ की छाल १२० ग्राम जौकुट कर १ लीटर पानी में पकावें। ६२५ मि० मि० शेष रहने पर नीचे उतार लें। ठण्डा हो जाने पर छान कर काम में लावें। यह पान में कृमिहर तो है ही इसके अतिरिक्त बाह्य प्रयोग के रूप में भी यह उपयोग में लाया जा सकता है। आंखों के कुकरों में इस क्वाथ से नेत्रों को बार-बार धोवें। आंख आने पर इसकी बूंद दिन में कई बार डालनी चाहिए। नाक, कान में व्रण हो या शूल हो तो इसे डालने या पिचकारी देने से लाभ होता है। मुख और मसूड़ों के विकारों में इसके गण्डूष करना हितकर है। अर्श और गुदभ्रंश में इससे गुदप्रक्षालन करना या वस्ति देना हितकारी है। स्त्री के प्रदररोग में भी इसकी उत्तम वस्ति लाभदायक है। खुजली या गर्मी की पित्ती में इसे मलना चाहिए।

२४. दाडिम की उत्तर वस्ति (गर्भाशय शोधनार्थ)—अनार की छाल, खैर छाल और बबूल की छाल २४-२४ ग्राम, माजूफल और हरड १२० ग्राम लेवें। सबको मिला जौकुट चूर्ण करें। उसमें से २४-२४ ग्राम चूर्ण को १ लीटर ५०० मि० लि० जल में मिलाकर उबालें। ४-६ उफान आने पर उतार कर ढंक देवें। निवाया रहने पर छानकर ६ ग्राम बोरिक एसिड और ३ ग्राम कच्ची फिटकरी मिलाकर गर्भाशय में वस्ति (डूश) देवें। यह प्रयोग रोज सुबह एक एक बार ही करें। चार दिन प्रयोग करने पर गर्भाशय का जीर्ण शोथ दूर होकर क्षत स्थान शुद्ध होकर भर जाता है। दूषित दुर्गन्धयुक्त स्राव बन्द हो जाता है। गर्भाशय शिथिल हो गया हो तो आकुंचित हो जाता है, एवं योनिपथ दृढ़ हो जाने से गर्भाशय मुख का अधः पतन बन्द हो जाता है। इस तरह यह वस्ति गर्भाशय को शुद्ध, सुदृढ, सबल और नीरोगी बना देती है। —सि० प्र० स० २

२५. दडिमादि लेप—दाडिम के ताजा फूल ४० ग्राम, हरी मैथी १०० ग्राम दोनों को पानी की सहायता से बारीक पीस लें और दूसरे पानी में डाल कर पकावें। जब लेही सी तैयार हो जावे तब पात्र को नीचे उतार कर शीतल करलें। इसका बालों पर लेप कर दें और दो घण्टे बाद स्नान करलें। इसे एक मास तक लगाने से बाल घुंघराले और महीन हो जाते हैं। —धन्व० नव० ४६

पेटेण्ट प्रयोगों में दाडिम—भांति-भांति के रोचन चूर्णों का अनारदाना मुख्य घटक बनता है। त्रिमूर्ति फार्मेसी बीकानेर के द्वारा "क्षुधावर्धक" स्वादिष्ट रुचिकर बनाया जाता है। इसमें अनारदाना, काला-नमक, कालीमिर्च, निम्बू सत्व, अजवायन, हींग आदि डाले जाते हैं। ३-६ ग्राम चूर्ण भोजनोपरान्त लेने से अजीर्ण, आध्मान, अरुचि, मन्दाग्नि आदि रोगों का नाश होता है। देशरक्षक औषधालय कनखल भी एक "स्वादिष्ट चूर्ण" बनाता है। इसमें भी अनारदाना, धनिया, सैन्धव, जीरा आदि होते हैं। यह अजीर्ण, अरुचि के लिये लाभदायक है।

चूर्ण की भांति इसकी गोलियां भी बनाई जाती हैं। रोचक, पाचक तथा अग्निवर्धक स्वादिष्ट गोलियां हैं—"गुलमैक्स टेबलेट।" जिसका निर्माण भारतीय महौषधि संस्थान करता है। इसमें अनारदाना, सौंठ, सौंफ, अकरकरा, कालानमक आदि होते हैं। फिल्मा-केम इन्दौर गैस व पाचन के लिये "गैसहर टेबलेट" बनाती है। इसमें अनारदाना, दालचीनी, सैन्धव, कालीमिर्च, जीरा, चित्रक, आदि हैं। १-२ गोली भोजन के पश्चात् लेना लाभप्रद है। "गेस्ट्रीन" (आर्य० औ० फा० व०) नामक गोलियां भी अग्नि प्रदीपक, पाचक, गैसहर, सारक एवं वातानुलोमक हैं। इसमें अनारदाना, सोंठ, कालानमक, जीरा, गन्धक, सैन्धव आदि होते हैं।

निर्मल आयुर्वेद संस्थान अलीगढ द्वारा भी "गैसारि कैपसूल" का निर्माण किया जाता है। इसमें अनारदाना, लहसुन, सैंधानमक, सौंठ, जीरा, विडङ्ग आदि हैं। उदर विकारों की यह प्रभावशाली औषधि है। "रुचिरा कैपसूल" धर्मा केमिकल्स द्वारा तैयार किया जाता है। ये कैपसूल रुचिवर्धक, अग्निवर्धक एवं पाचक है। श्री त्रिमूर्ति फार्मेसी का "त्रिमोटोन" अवलेह (चटनी) भी मधुराम्ल, स्वादिष्ट व अग्निवर्धक है। गर्भवती स्त्रियों के लिये यह विशेष रूप से तैयार की गई है। इसमें अनारदाना, गुलकन्द, नीम्बू सत्व, अदरक स्वरस आदि हैं। इसी प्रकार का स्वादिष्ट पौष्टिक प्रयोग है—"पौष्टिक मिश्रण" जिसका निर्माण साण्डू फार्मेसी द्वारा किया जाता है। इस मिश्रण में च्यवनप्राश, दाडिमफल स्वरस, द्राक्षा, ब्राह्मी, बिल्व, चातुर्जात होते हैं, [illegible] को सभी अवस्थाओं में दिया जा सकता है। गर्भिणी के लिये पौष्टिक मिश्रण है।

साण्डू द्वारा ही "बर्बेन्टेरोन कम्पाउण्ड" का निर्माण किया जाता है जो अतिसार, प्रवाहिका की चिकित्सा में प्रयुक्त होता है। वैसे इसका मुख्य घटक दारुहरिद्रा है किन्तु दाडिमफल की छाल, जायफल, कुटज आदि भी इसके अन्य घटक हैं। बालकों के लिये "बर्बेन्टेरोन पेडियाट्रिक सस्पेन्शन" तैयार किया जाता है। इसमें उक्त द्रव्यों के अतिरिक्त बालरोगोपयोगी अतीस, विडङ्ग, मुस्ता आदि का भी मिश्रण किया जाता है। यह बालकों के पाचन संस्थान की विकृतियों को मिटाने में श्रेष्ठ है। लाभप्रद होने के साथ यह रुचिकर भी है, जिससे बालकों को सुखपूर्वक दिया जा सकता है।

हिमालया ड्रग कम्पनी का एक उत्कृष्ट उत्पादन है—"डायरेक्स" टिकिया। यह सामान्य अतिसार में हितावह है। जीर्ण प्रवाहिका भी इससे नष्ट होती है। इसमें कुटज, लोध्र, मरोडफली, शालनिर्यास, ईसबगोल के अतिरिक्त दाडिमफल त्वक् भी होता है। अतिसार के ५०० रोगियों की इससे चिकित्सा की गई जिनमें ४३२ रोगी लाभान्वित हुये। चरकफार्मा, द्वारा विनिर्मित "डायाडिन सीरप" में दाडिम बीज, अतीस, कुटज, आमछाल, जामुनछाल आदि डाले जाते हैं। यह विविध अतिसारों में लाभदायक है।

दाडिम के मूल की छाल को कृमिहर कहा गया है, अतः जनहित फार्मेस्युटिकल्स हापुड द्वारा जो "वोर्मोल कैपसूल" तैयार किये जाते हैं, उनमे विडग, चोकामाली, कबीला आदि कृमिरोगोपयोगी द्रव्य दाडिममूल छाल क्वाथ, मुस्तादि क्वाथ आदि से भावित कर डाले जाते है।

प्रदररोग का निवारण करने वाली "विकोपिल्स" के सुधालोह घटको मे दाडिम के छिलको के स्वरस की भावना दी जाती है। इन गोलियो का निर्माण देशरक्षक औषधालय द्वारा किया जाता है। चरक फार्मा० द्वारा विनिर्मित रक्तस्रावरोधक "पोजेक्स" नामक गोलियों मे भी बहुत से द्रव्यो के साथ दाडिम छाल का घनसत्व डाला जाता है। इसी प्रकार दन्तरोगो मे शीतादि आदि के निवारणार्थ भी मंजन रूप मे इसका उपयोग किया जाता है। नवशक्ति के मन्दार टूथ पाउडर मे एव चरक के ममटोन पाउडर मे दाडिम छाल का मिश्रण किया जाता है।

धन्वन्तरि आयुर्वेदिक सूचिकाभरणाक के विशेष सम्पादक वैद्यरत्न श्री डा० जयनारायण गिरि "इन्दु" ने आयुर्वेद के प्रसिद्ध इञ्जक्शन शीर्षक से सर्वप्रथम "अनार" नामक इञ्जेक्शन के विषय मे वर्णन किया है—

पाश्चात्य चिकित्सक अनार से निर्मित शक्तिशाली योगों का प्रयोग कृमिघ्न कार्यो के लिये सफलतापूर्वक किया करते है। बुन्देलखण्ड फार्मेस्युटिकल्स द्वारा निर्मित "अनार" सूचिकाभरण उस अवस्था मे अतीव उपयोगी सिद्ध हुआ है जब कि मल के साथ चपटे या सूक्ष्म कीड़े गिरते हो, मल रुकने के कारण ज्वर आता हो, भोजन के बाद अथवा प्रातःकाल पेट मे जलन होती हो तथा वायु नलिका मे दाह हो। यह १ या २ सी. सी. × ६ एम्पुल के बक्स मे आती है। १ से २ सी. सी. चिकित्सक के मतानुसार सप्ताह मे दो या अधिक बार मांसपेश्यान्तर्गत प्रयोग किया जाता है।

इसके एक एम्पुल मे ०·५ मि० ग्रा० अनार क्षार होता है।

अनुभूत प्रयोग—

१. कास नाशक योग—अनार का छिलका ४८ ग्राम, काली मिर्च १२ ग्राम, एक वर्ष पुराना गुड ९६ ग्राम, पिप्पली, जवाखार ६-६ ग्राम। गुड खरल मे डाल ले और उसमे उपर्युक्त औषधियो के चूर्ण डालकर १८५-१८५ मि० ग्राम की वटी बनालें। असाध्य कास भी इससे ठीक हो जाती है।

—वैद्य श्री जगदीश चन्द्र शर्मा
(धन्व० दिस० ५४)

२. बालकों की पिड़िकाओं पर प्रयोग—अनार पत्र, नीम पत्र, रसौत समान भाग लें। पत्र ताजे साफ लेकर उन तीनो औषधियों को अर्क अनन्तमूल मे पीसकर मटर समान गोली बना लें।

सेवन विधि—१-१ गोली दिन मे तीन बार ताजे पानी से दें। छोटे बच्चे को आधी गोली की मात्रा दें।

गुण—इससे सिर मे होने वाली पिडिका या सर्वाङ्ग पिडिका नष्ट होकर देह कान्तिमय होती है।

—श्रीमती वैद्या शान्तिदेवी आत्रेय
(धन्व० गु० सि० प्र० भा० ३)

३. उदर कृमिहर प्रयोग—अनार की जड़ की ताजी छाल के टुकड़े कूटे हुए ५० ग्राम, पलास बीज का चूर्ण ६ ग्राम, वायविडङ्ग का चूर्ण १० ग्राम तथा जल १०० ग्राम लें। सबको मिलाकर ढक्कनदार कलई के बर्तन में १॥ घण्टे तक आधा जल शेष रहने तक उबाल लें। फिर शीतल होने पर छानकर बोतलो मे भर ले। इसमें से बच्चे की आयु के अनुसार १० से १५ ग्राम तक शहद थोड़ा मिलाकर दिन मे ३-४ बार पिलावें तो आतों में चिपके हुए कृमि भी बाहर निकल आते हैं। —श्री गोपालशरण गर्ग
(सुधा० प्र० स० भा० ३)

४. अतिसारहर प्रयोग—अनार की कली बबूल के फूल, आम की गुठली, बंसलोचन, मिरच, फिटकरी, आम के फूल, माजूफल, लोध, मोचरस, जायफल, इन्द्रजौ, रूमीमस्तगी सबका चूर्ण कर खशखश या पोस्त के डोडे के क्वाथ मे घोटकर २-२ माशे की गोलियां बना लें।

मात्रा—१-२ गोली चावलों के धोवन के साथ दें।

गुण—सब प्रकार के अतिसार दूर होते हैं।

—वैद्य श्री बन्सरीलाल साहनी
(सरल सि० यो० स०)

५. नेत्रोपयोगी प्रयोग—अनारदाना, इमली, रसौत तीनो ६०-६० ग्राम, लाल फिटकरी २४ ग्राम, अफीम ६ ग्राम।

विधि—इमली, अनारदाना और रसौत को रात को अलग-अलग बर्तनों मे भिगो दें। प्रात. उनका पानी निथार कर छान ले और मिला लें। उसे लोहे की कढ़ाही मे आग पर रखें और फिटकरी तथा अफीम मिला दें। जब गाढ़ा हो जावे तब उतार लें और शीशी में रख ले। इसे गुलाबजल में रगड़ कर आख पर लेप करें। आख की सुर्खी दूर होगी। उसका कीचड दूर होगा।

—कविराज श्रीहरि कृष्ण सहगल
(धन्व० अक्टू० ४८)

६. कासहर प्रयोग—अनार फल की छाल २४ ग्राम, काली मिर्च १२ ग्राम, पीपल छोटी २४ ग्राम, जवाखार ६ ग्राम—इन सब चीजों का चूर्ण करके इसमे ९६ ग्राम गुड मिलाकर ३-३ ग्राम की गोलिया बनावे। एक गोली मुह में रखने से सर्व प्रकार की खासी दूर होती है। —प० श्री जयशकर मिश्र
(धन्व० मई ५४)

७. तुण्डिकेरीहर प्रयोग (टासिल बढ़ जाने पर प्रयोग)—अनार का छिलका २४ ग्राम, मुलहठी ६ ग्राम, छोटी पीपल ४ ग्राम, शीतल चीनी ३ ग्राम, सेधा नमक १॥ ग्राम, अकरकरा ४ ग्राम। इन छः चीजो को मैदावत घोटकर शीशी मे रख लें, रोगी इस चूर्ण को अगुलियो से गाठों पर दिन में ३-४ बार तक लगावे, इस दवा के लगाने के बाद रोगी को चाहिए कि वह मुह को नीचा करके लार टपकने दे, इस प्रयोग के करने से टासिलों में प्रथम दिन मे ही लाभ प्रतीत होने लगेगा।

—वैद्य प० श्री चन्द्रशेखर जैन शास्त्री
(अनु० यो० मा० जन० ७४)

८. प्रवाहिका नाशक योग—अनार की ताजी पत्ती १२ ग्राम, बबूल की ताजी पत्ती १२ ग्राम, धनिया पुराना ४ ग्राम, जीरा सफेद ३ ग्राम, शक्कर सफेद ३० ग्राम। उपरोक्त पाचो चीजें शाम को मिट्टी के कोरे पात्र मे पावभर जल के साथ भिगो दें। सुबह सिल पर पीस लें और कपडे मे छानकर पीलें।

गुण—इस प्रयोग से अतिसार सग्रहणी तक के रोगी अच्छे हो जातेहैं। प्रवाहिका के लिए तोअमोघास्त्र है।

अपथ्य—बादी तथा गरिष्ट और गर्म पदार्थो से से परहेज करना आवश्यक है।—श्री रमाकान्त शर्मा
(धन्व० मार्च ५५)

९. भगसंकोचक प्रयोग-(क) अनार का पचाग, सफेद गुजा का पचांग ५०-५० ग्राम, माजूफल २० ग्राम, केशर ५ ग्राम। सभी को पीसकर गाय का घी तथा आवले का रस मिलाकर मरहम बनावे। इसे लगातार ४० दिन लगवायें।

—वैद्य श्री भागचन्द जैन
(धन्व० जन० ७७)

(ख) मीठे अनार के छिलके, माजूफल, नागरमोथा, कपूर, कचरी, धाय के फूल, छार-छरीला, फिटकरी, सफेद भुनी ६-६ ग्राम लें और इनको कूट कर कपड़े से छान ले और इसमे से ६ या १२-१२ ग्राम की पोटलिया बना लें। इन पोटलियों मे से एक-एक पोटली सबेरे साय स्त्री भग मे रखवावें। इन पोटलियो के तीन चार दिन के रखने से भग मे शक्ति उत्पन्न होगी और उसकी रूक्षता समाप्त होकर सकोचन होता है। —श्री तुलसीप्रसाद अग्रवाल
(तुलसी अनुभव सार)

१०. शोणितावरोधक प्रयोग—अनार की पत्ती २५ ग्राम, काली मिर्च ७ नग, पीपल की लाख १० ग्राम, गुलाबी फिटकरी १.५ ग्राम। सबको पानी में पीसकर २५० मि० लि० जल में छान लें और २५ ग्राम मिश्री मिलाकर रोगी को पिलादें तो रक्तपित्त के कारण होने वाली रक्त वमन में लाभ होता है।

११. उष्णवातहर क्षारद्रव—अनार (हरा-कच्चा) १, सोड़ा (खाने का) ३० ग्राम । अनार को छिलका सहित कुचल कर आधा लीटर पानी मे भिगोकर उसमे सोड़ा डाल दीजिए। २४ घन्टे के बाद इसको हाथ से खूब मसल कर मोटे स्वच्छ कपड़े से छान लें। यह एक बार पीने की दवा है। इसमें दस बूंद त्रिविक्रम तैल (विधि वैद्य सहचर मे देखें) डालकर पिला दें। इसके सेवन से पेशाब खुलकर अधिक मात्रा मे आता है और जलन मिट जाती है तथा पखाना भी खुलकर आता है।

—प० श्री विश्वनाथ द्विवेदी
(वैद्य सहचर)

१२. अतिसारहर तक्र-पुष्पारिष्ट—अनार के फूल, धाय के फूल, कीकर के फूल, कुड़े के फूल सब सूखे फूल लेवें। अजवायन, आमला, हरड़, काली मिर्च, पाचों नमक प्रत्येक १०-१० ग्राम लेकर चूर्ण करें। इन्हे २ किलो तक्र मे डालकर पुराने मटके मे या मर्तबान मे डालकर ऊपर कपड़ा बाध दे और कड़ी धूप मे रख दें। तीन सप्ताह के पश्चात् निकाल कर उपयोग में लावें। यह सब प्रकार के अतिसार, प्रवाहिका तथा ग्रहणी रोग मे लाभदायक है।

—डा० के० पी० वर्धन
(सचित्र आयु० जन० ८९

१३. अजीर्णहर स्वादिष्ट चूर्ण प्रयोग—अनारदाना ७२ ग्राम, सोठ १२ ग्राम, कालीमिर्च ३६ ग्राम, पोदीना ७२ ग्राम, काला जीरा २४ ग्राम, सफेदजीरा २४ ग्राम, छोटी पीपल २४ ग्राम, इलायची बीज २४ ग्राम, नींम्बूसत्व ३६ ग्राम, काला नमक १९२ ग्राम, पिपरमेण्ट ६ ग्राम और चीनी ६०० ग्राम। सबको पीसकर चूर्ण बनावें। ६ ग्राम चूर्ण भोजन के बाद सेवन करें इससे अजीर्ण, मन्दाग्नि आदि रोग नष्ट होकर भूख बढ़ती है।

—वैद्य पं प्रह्लादराय शर्मा
(योगरत्नसार)

१४. बहुमूत्रहर प्रयोग

दाडिम चन्दन जम्बुफल फलमज्जा सहकार।
वशज धान्यक मेथिका किकिरात घनसार ॥
दाडिम रस मर्दनकृता वटी सखे कमनीय।
तृषा मूत्र की बहुलता मिटै सङ्ग पानीय ॥

अनार की कली १० ग्राम, श्वेत चन्दन चूरा १० ग्राम, जामुन की गुठली २५ ग्राम, आम की गुठली २५ ग्राम, वंशलोचन १० ग्राम, धनिया १५ ग्राम, मेथी दाना १५ ग्राम, बबूल का गोंद १० ग्राम, देशी कपूर ५ ग्राम लेकर चूर्ण बना अनार के रस में घोटकर जगली बेर के बराबर गोलियां बनालें २-२ गोली पानी के साथ सेवन करने से बहुमूत्र, अधिक प्यास आदि मधुमेह के उपद्रवो मे शान्ति मिलती है। इसका नियमित सेवन (पथ्यपूर्वक) लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

—वैद्य श्री रघुनाथप्रसाद पारीक
(व० र० हेतुप्रदत्त प्रयोग)

द्राक्षा

(Vitis Vinifera)



"अस्त्यौषध स्वादु हित च दुर्लभम्" के अनुसार द्राक्षा वह औषधि है जो स्वादु एव हितकारी है। पण्डितराज जगन्नाथ ने कुछ मधुर द्रव्यो के वर्णन मे द्राक्षा को प्राथमिकता दी है—

माधुर्यैरपि धुर्यैद्राक्षाक्षीरेक्षुमाक्षिकादीनाम्।
वन्द्यैवमाधुरीयपण्डितराजस्य कविताया ॥

भगवान् चरक ने जिन हिततम द्रव्यो का उल्लेख किया है, उनमे द्राक्षा भी एक है—मृद्वीका फलानाम्—चरक० सू० २५/३८ शरीर की पुष्टि एव समुचित वृद्धि मे अन्यान्य कारणो की अपेक्षा हिताहार की विशेष प्राधान्यता है। अत सिद्ध है कि द्राक्षा स्वादु, हितकारी द्रव्य है।

महर्षि सुश्रुत ने कहा है कि दोष, धातु, मल, में किसी के भी क्षीण हो जाने पर व्यक्ति अपनी-अपनी क्षीण हुई वस्तु वृद्धि के लिए तद्-तद् वस्तु वर्धक अन्नपान को लेने की इच्छा करता है। जब किसी कारणवश व्यक्ति का रक्त क्षीण हो जाता है तो वह द्राक्षा दाडिम आदि रक्तवर्धक द्रव्यों को पाने की अभिलाषा करता है—

द्राक्षादाडिमयुक्तानि सस्नेहलवणानि च।
रक्तसिद्धानि मासानि रक्तक्षीणोऽभिकाक्षति ॥

और इन्हे प्राप्त कर रोगी स्वास्थ्यलाभ प्राप्त करता है। आज भी पाश्चात्य चिकित्सालयो मे इन द्रव्यो के द्वारा रोगी के रसक्षय, रक्तक्षय की पूर्ति की जाती है—"आज क्या हो रहा है। रसक्षय और रक्तक्षय में जो बल्हण कहता है, उससे आगे आज का युग बढ गया है क्या? केवल थोड़ा अन्तर आया है। वह जिन पदार्थों को मुख द्वारा सेवन करता है वही थोड़ा रूप बदलकर शिरा द्वारा सेवन कराये जा रहे हैं। ईख का रस ग्लूकोज या डेक्स्ट्रोज सोल्यूशन हो गया है। द्राक्षा स्वरस शुद्ध ग्लूकोज है ही, दाडिम स्वरस डालने से ग्लूकोज + विटामिन सी + विटामिन के हो जाता है, नमक पडा द्राक्षा स्वरस और दाडिम रस का परिष्कृत रूप विटामिन युक्त सैलाइन ग्लूकोज ही होता है" —(सुधानिधि सुश्रुतशल्य चिकित्साक)।

तब ही तो ऐसे रक्तवर्धक हितकारी द्रव्यो को नित्य से सेवन करते रहने के लिये कहा, जिससे रक्तक्षय की स्थिति निज कारणो से उपस्थित न होने पावे—

शीलयेच्छालिगोधूमयवषष्टिक जागलम्।
पथ्यामलकमृद्वीकापटोलीमुद्गशर्करा. ॥
घृतदिव्योदकक्षीरक्षौद्रदाडिमसैन्धवम् ।

इनमे भी विशेषतः द्राक्षादाडिमखर्जूरशर्करामधु हितावह है—

द्राक्षादाडिमखर्जूरैर्सर्दिताम्बु सशर्करम्।
लाजचूर्णं सुमध्वाढ्य सतर्पणमुदाहृतम् ॥
तर्पण शीतल पाने वेश्वरोगविनाशनम्।
बल्य रसायन हृद्य वीर्यवृद्धिकर परम् ॥

भगवान् चरक ने द्राक्षा को श्रमहर द्रव्यो मे प्रमुख कहा है। दशेमानि श्रमहाराणि द्रव्यो को वृद्ध वाग्भट ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

दाडिमफगुलपरूपकप्रियलयवषष्टिकेक्षुबदराणि।
श्रमनाशनानि विद्याद् द्राक्षाखर्जूरसहितानि ॥

इसके अतिरिक्त कासहर, ज्वरहर, विरेचनोपग एव स्नेहोपग द्रव्यो के अन्तर्गत भी चरकसहिता में द्राक्षा की गणना की गई है। महर्षि सुश्रुत ने द्राक्षा का काकोल्यादि एव परूषकादि गणो मे उल्लेख किया है।



द्राक्षा [VitisVinifera]

विभिन्न नाम : स०—द्राक्षा, मृद्वीका, हारहूरा । हिं०—दाख, मुनक्का । गुज०—द्राख, मुद्रक । म०—द्राक्ष, मुनक्का । अं०—रेजिन्स । लै०—वीटिस वेनिफेरा ।

प्राप्ति स्थान : कश्मीर, पंजाब, दक्षिणी भारत आदि ।

उपयोगी अङ्ग : फल । **दोषशमन** : वातपित्तशामक ।

उपयोग : तृष्णा, दाह, ज्वर, रक्तपित्त, शोष आदि ।

मुख्य योग : द्राक्षावलेह, द्राक्षारिष्ट आदि ।

द्राक्षा, द्राक्षाकुल (वाइटेसी–Vitaceae) का द्रव्य है। भावप्रकाशनिघण्टु के फलादिवर्ग में इसका वर्णन मिलता है। आचार्य श्री प्रियव्रतशर्मा ने स्नेहोपग द्रव्यो में द्राक्षा का सर्वप्रथम वर्णन किया है। स्नेहोपग द्रव्य वे कहे जाते हैं जो घृत तैल आदि स्नेहन द्रव्यो के साथ पान आदि में प्रयुक्त किये जाने पर उनकी स्नेहन शक्ति को बढ़ाते हैं—"स्नेहनस्य सर्पिरादे स्नेहनक्रियाया सहायत्वेनोपगच्छतीति स्नेहोपगम् । मृद्वीकादिस्नेहोपलयुक्तस्य सर्पिरादेः स्नेहने प्रकर्षवती शक्तिर्भवतीत्यर्थ."—चक्र.।

नाम—

संस्कृत—द्राक्षा, मृद्वीका, गोस्तनी।

"द्राक्षा मृद्वी मधुफला" —हृदयदीपकनिघण्टु

"मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा स्वादुपूरा फलोत्तमा।"

—षड्रस निघण्टु

मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा स्वाद्वी मधुरसेति च।

—अमरकोष

हिन्दी—दाख, अंगूर।

गुजराती—द्राख, मुद्रक।

मराठी—द्राक्ष।

बंगला—द्राख्या।

राजस्थानी—अंगूर, दाख, मिनका।

पंजाबी—दाख।

तेलगू—द्राक्षपेड।

तामिल—द्राक्षपण्डु।

कन्नड़—दीपद्राक्षि।

फारसी—अंगूर, रज, ताक।

अरबी—इनब।

अंग्रेजी—ग्रेप्स, रेजिन्स।

लैटिन—लता का नाम–वीटिस वेनफेरा (Vitis Vinifera)।

प्राप्ति स्थान—काबुल, अफगानिस्तान, फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेन, आदि देशो के अतिरिक्त भारत मे भी बहुतायत से पाया जाता है। पश्चिमोत्तर हिमालय प्रदेश, पंजाब, काश्मीर आदि स्थानो में इसे उगाया जाता है। भारत में इसका आयात मुख्यतः अफगानिस्तान व फारस से होता है।

पाकिस्तान बनने से पहले सारा अंगूर भारत के उत्तर पश्चिम प्रदेशों, खासकर क्वेटा चमन के इलाके से आता था। अब यहाँ प्रायः सर्वत्र इसकी खेती का विस्तार हो रहा है।

रासायनिक संघटन—ताजे द्राक्षाफल का संघटन निम्नांकित है—

आर्द्रता— ७२ ८ से ७७ २ प्रतिशत।
भस्म — ० ३६ से ० ६४ प्रतिशत।
अम्लता— ०'२३ से ० ५३ प्रतिशत।
शर्करा —१५ ६६ से १८ ६० प्रतिशत।

फलो में द्राक्षशर्करा (ग्लुकोज), गोंद कषायद्रव्य टार्टरिक साइट्रिक, रैसेमिक और मौलिक अम्ल, सोडियम और पोटाशियम क्लोराइड, पोटाशियम सल्फेट, टार्टरेक ऑफ लाइम, मैग्नीशियम, फिटोरगे, लोह कुछ अल्व्युमिन और एसिड टार्टरिक ऑफ पोटाशियम रहते हैं। टार्टरिक एसिड फलों में मुख्यतः होता है किन्तु कच्चे फलो में ऑक्जालिक एसिड भी होता है। मुनक्के मे कैल्शियम मैग्नीशियम पोटाशियम, फास्फोरस और लोह होते हैं। इसके अतिरिक्त, गोंद और शर्करा भी होती है।—बीजो मे स्थिर तैल तथा कषायाम्ल ५ प्रतिशत होता है। ऊपर के छिलके में टैनिन तथा लता और पल्लव मे टकणाम्ल होता है। —द्र० गु० वि०

वानस्पतिक परिचय—इसकी आरोही लता होती है।

पत्र—६ ८ इञ्च लम्बे-चौड़े, प्रायः हृद्वत् ३ ७ कोणीय या खण्डित रोमश होते हैं।

पुष्पदण्ड—छोटे होते हैं जिन पर तन्तुसूत्र नहीं होते हैं।

पुष्प—हरित वर्ण, गुच्छो मे लगते हैं।

अन्तर्दल—अग्रभाग पर संयुक्त होते हैं। योनिसूत्र बहुत छोटा तथा स्थूल होता है।

फल—गोस्तनाकार गुच्छों में लगते हैं जिनमे ३-५ बीज होते हैं।

भेद—द्राक्षा देश अवस्था एवं आकृति के भेद से अनेक प्रकार की होती है। भावमिश्र ने आमा द्राक्षा (कच्चा अगूर) खट्टा अगूर, गोस्तनी द्राक्षा किसमिश (अबीजा), पर्वतीय द्राक्षा एवं करमर्दिका के पृथक्-पृथक् गुण कहे हैं।

अंगूर कच्चे रहने पर हरे, पकने पर श्वेत, हरित पीत हो जाते हैं। सूखने पर यही मुनक्का हो जाते हैं। छोटे किस्म का अगूर सूखकर किसमिस हो जाता है। ये बडे, छोटे, काले और वेदाना आदि कई प्रकार के होते हैं। इनमे काले अगूर या पिटारी का अगूर (गोस्तनी द्राक्षा) ये दोनों श्रेष्ठ गिने जाते हैं। इसके अतिरिक्त अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान और सिन्ध में कई तरह के और बहुत अंगूर होते हैं। हेटा, किसमिस, कलकम, हुसैनी आदि इसके मुख्य भेद हैं। कदहार वाले हेटा अगूर को चूना और सज्जीक्षार के साथ गरम पानी में डुबोकर "आब्रजोश" नामक मुनक्के बनाते हैं। ये ही विशेषत आजकल बाजारों मे पाये जाते हैं।

इतिहास—आयुर्वेद के प्राचीन सहिताग्रन्थों मे इसका वर्णन बहुतायत से मिलता है। इसके पश्चात् निघण्टु ग्रन्थो में तो इसका अच्छा वर्णन किया गया है। भावमिश्र ने इसके भेदों का सम्यक् वर्णन किया है। यूनानी और अरबी ग्रन्थो मे अगूर, अनब, हमरम आदि नामो से इसका वर्णन हुआ है। इससे मालूम होता है कि इसकी खेती एवं इसके उपयोग का ज्ञान प्राचीन काल से ही था। इसके द्वारा बनाया गया मद्य से सभी परिचित थे। आचार्य भेल ने वसत ऋतु मे इसके मद्य को अधिक उपयोगी कहा है। इसके पश्चात् वृद्ध वाग्भट एव वाग्भट ने तो इसका विपुल एव काव्यमय वर्णन किया है जो उस समय की विलासिता का परिचायक है।

इसके पश्चाद् कुछ समय के लिए इसके उत्पादन मे कमी आई। जिससे उपयोग भी कम रहा किन्तु मुगल साम्राज्य में इसका पुन अधिक प्रचार प्रसार हुआ। अगूरी शराब का प्रचार मुगलकाल मे ही अधिक हुआ। आजकल कश्मीर में अगूरो का अधिक उत्पादन होने से वहा इसकी शराब और सिरका बहुतायत से तैयार किया जाता है।

विभाजन के पश्चात् भारत मे इसकी खेती का विस्तार तेजी से हो रहा है। आयुर्वेद और यूनानी की शक्तिप्रद औषधो के निर्माण मे ताजे अगूर एव मुनक्का खूब वरते जाते हैं। आसव, सिरका और मद्य मे ताजा रस उपयोग में लाया जाता है। एवं अन्य रोगो में इसका शुष्कफल मुनक्का या किसमिस उपयोग मे लाया जाता है। इसके बीजो में सोलह प्रतिशत तैल निकलता है।

साहित्य मे द्राक्षा—महाराज रघु की दिग्विजय के पश्चात् युद्ध मे मरने से बचे हुये राजा लोग अपने अपने टोपों को उतार कर जब रघु महाराज के पास आते हैं तो वे उन्हे गोलाकार द्राक्षा की लताओं से वेष्टित भूभाग मे द्राक्षा फलो से बने हुये मद्य पिलाकर थकावट मिटाते हैं—

विनयन्ते स्म तद्योधा
मधुभिर्विजय श्रमम्।
आस्तीर्णा जिनरत्नासु
द्राक्षावलयभूमिषु ॥
—रघुवंश० ४/६५

जगद्विनोद में कविवर पद्माकर ने ग्रीष्म ऋतु-वर्णन मे कहा है—

फहरे फुहार नीर नहर नदी सी बहै
छहरै छबीन छाम छीटिन की छाटी है।
कहै पद्माकर त्यों जेठ की जलाकै तहां
पावै क्यों प्रवेश वेसवेलिन की बाटी है।
वारहू दरीन बीच चारहू तरफ तैसो
बरफ बिछाय तापै शीतल सु पाटी है॥
गजक अंगूर की अगूर छे ऊचो है कुच
आसव अगूर को अगूर ही की टाटी है॥

इसके अतिरिक्त बहुत सी उक्तियों में भी इसका उल्लेख मिलता है। संस्कृत की एक उक्ति "यद्यपि न भवति हानि परकीयां चरति रासभे द्राक्षाम्" को लेकर ही हिन्दी के एक कवि ने कहा है—

'समन' पराये बाग में,
दाख तोड़ खर खात।
नहीं हमारी हानि पर
ऐसी सही न जात।।

इसी प्रकार के बहुत से काव्यमय वर्णन साहित्य ग्रन्थों में मिलते हैं। जिज्ञासुओं को ये काव्य देखने चाहिए।

रस—मधुर।
गुण—स्निग्ध, गुरु, मृदु।
वीर्य—शीत।
विपाक—मधुर।
प्रभाव—सर (विवेचन), बृंहण।

दन्ती रसाद्यैस्तुल्यापि चित्रकस्य विरेचनी।
मधुकस्य च मृद्वीका घृतं क्षीरस्य दीपनम्।।

वीर्यकालावधि—मुनक्का एक वर्ष।

दोष कर्म—स्निग्ध, गुरु, मृदु, मधुर होने से वात का तथा मधुर और शीत होने से पित्त का शमन करती है।

प्रयोज्य अङ्ग—फल।

मात्रा—पाचनशक्ति के अनुसार।

गुण प्रकाशक संज्ञा—द्राक्षा (मन को प्रिय लगने वाली), मृद्वीका (शरीर को मृदु-स्निग्ध बनाने वाली)

अपमिश्रण—यह जगली एवं खेती वाला दोनों प्रकार के पाये जाते हैं। इनमे जगली की मिलावट कर दी जाती है। अत. उनकी सम्यक् परीक्षा कर लेनी चाहिए।

परीक्षा—अगूर रूपरङ्ग में गोल्साकार रसदार फल होता है। सर्वोत्तम अगूर वह है, जो गर्मी ऋतु का ही जिसका दाना बड़ा एवं परिपुष्ट हो और छिलका पतला तथा बीज छोटे हों। मुनक्का या दाख मोटा, मीठा तथा कम बीजों वाला जो बहुत सूखा न हो ऐसा उत्तम होता है।

प्रतिनिधि—अगूर के लिये इमली और नीबू का तेजाब और किशमिश के स्थान पर आलूबुखारा और शीरखिस्त या गम्भारी फल हैं, अत इनके अभाव में ये लेने चाहिए।

गुणधर्म विवेचन—

तृष्णा दाहज्वर श्वास रक्त पित्त क्षतक्षयान्।
वात पित्त मुदावर्त्त स्वरभेद मदात्ययम्।।
तिक्तास्यतामास्यशोष कासं चाशु व्यपोहति।
मृद्वीका बृंहणी वृष्या मधुरा स्निग्धशीतला।।
—चरक संहिता

तेषां द्राक्षा सरा स्वर्या मधुरा स्निग्धशीतला।
रक्तपित्तज्वरश्वासतृष्णा दाह क्षयापहा।।
—सुश्रुत संहिता

द्राक्षा पक्वा सरा शीता चक्षुष्या बृंहणी गुरु।
स्वादुपाकरसा स्वर्या तुवरा सृष्ट मूत्रविट्।।
कोष्ठ मारुतहृद् वृष्या कफ पुष्टिरुचिप्रदा।
हन्ति तृष्णाज्वरश्वासवातवातास्रकामला।।
कृच्छ्रास्रपित्तसम्मोदाह शोषमदात्ययान्।
—भा० प्र० नि०

द्राक्षा तु मधुराऽम्ला च शीता पित्तार्त्तिदाहजित्।
मूत्रदोषहरा रुच्या वृष्या सन्तर्पणी परा।।
—रा० नि०

द्राक्षा फलोतमा वृष्या चक्षुष्या सृष्टमूत्रविट्।
स्वादुपाकरसा स्निग्धा सकषाया हिमागुरु।।
निहन्त्यनिल पित्तास्रतिक्तास्यत्वमदात्यान्।
तृष्णा कासश्रमश्वास स्वर भेद क्षतक्षयान्।।
—अ० हृदय

द्राक्षाबालफल कटूष्णविशदं पित्तास्र दोषप्रदं
मध्य चाम्लरस रसान्तरगत रुच्यातिवह्निप्रदम्।
पक्वं चेन्मधुर तथाऽम्लरस हित तृष्णास्रपित्तापह
पक्व शुष्कतम श्रमार्तिशमन सतर्पण पुष्टिदम्।।
—सो० र०

शिशिरमधुरा गुर्वी नेत्र्या सरा बहुबृंहिणी,
ज्वरमरुदसृक् पित्त श्वासक्षयार्तितृप क्षिपेत्।
दवथुमदरुङ्मूर्च्छामूत्रापदोऽपि च गोस्तनी
प्रविलसदसृक्तिपत्तोष्णाऽऽमा मताऽम्लरसाधिका ॥
—सि० भै० म० मा०

द्राक्षा पक्वा स्वादुशीता बृंहणी च बलप्रदा।
सरा रुच्या हन्ति तृष्णाज्वरकासक्षतक्षयान् ॥

यह जीवनीय, बल्य और बृंहण होने से सामान्य दौर्बल्य, कृशता, शोथ आदि मे हितावह है। राजयक्ष्मा चिकित्सा मे कविराज-श्री जयदेव ने "अमृतास्वाद" नामक अवलेह का वर्णन किया है। इसमें द्राक्षा प्रधान घटक है यह वस्तुतः जीवनीय, बल्य, बृंहण अवलेह है—

द्राक्षासितोपलावाशीचपलाद्राविडीत्वचः ।
अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणिता ग्रहीतव्या भिषक्तमैः ॥
द्राक्षासितोपले पक्त्वा तत्रान्याश्चूर्णितान्क्षिपेत्।
क्षय लेहोऽमृतास्वाद. शोषयेच्छोषमप्यरम् ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

चरक संहिता में सामान्यतः राजयक्ष्मा के तीन लक्षण कहे हैं—

अंसपार्श्वाभितापश्च सन्ताप करपादयोः।
ज्वरः सर्वाङ्गगश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥

आचार्य भोज ने इन तीन रूपों का उल्लेख किया है—"कासो ज्वरो रक्तपित्तं त्रिरूपे राजयक्ष्मणि"। इसी प्रकार महर्षि सुश्रुत ने राजयक्ष्मा के मुख्यतः षड् रूपो का उल्लेख किया है—

भक्तद्वेषो ज्वर श्वास कास शोणितदर्शनम्।
स्वरभेदश्च जायेत षड्रूप राजयक्ष्मणि ॥

द्राक्षा इन सभी रूपो को समाप्त करने में सहायक होने के कारण श्रेष्ठ है। इनमे द्राक्षा की उपादेयता इस प्रकार की गई है—

द्राक्षापर्पटकारूषकुनटीधात्रीहिमशीलयेत् ।
पित्तास्रज्वरदाहशोकषतृषानाश चिकीर्षुर्नर.॥
—सि० भै० मञ्जूषा

द्राक्षामिषि वलीतकला वनप्सा
गम्भाकपोटा सुमकन्दसिद्धः।
सितासहाय कुरुते कषाय.
पित्तज्वरान्दाहविदाहहानिम् ॥
—सि० भै० म० मा०

मधुरसा मधुरा मधुपर्णिका
मरिचकं मधुक च महौषधम्।
मगधजेति च सप्तमकारका
ज्वरहराः खलुदीपनपाचनाः ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

द्राक्षा चैव गुडूची च मुस्ता पर्पटक तथा।
कटुका च समैः क्वाथः पित्तज्वरविनाशनः ॥
—यो० र०

क्षुधि मृदुफलमादेय पक्वमथाशोदक पयः पेयम्।
लवणोषणसंसृष्ट भृष्टाश्चापीह मृद्वीकाः ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

द्राक्षारग्वधयो. क्वाथः पीतः पित्तज्वरापह.।
—वै० च० चिन्ता०

अपहरति रक्तपित्त कण्डू गुल्म च पैत्तिकं हृक्ष्व।
जीर्णज्वर शमयति मृद्वीकासंयुता पथ्या ॥
—यो० चिन्ता०

मधुरफलाया रचितमरिष्टम्।
शमयति सद्यः कसनजकष्टम् ॥
श्वसननिमित्त द्यति कफपित्तम्।
हरति च चित्त शशिवदनेव ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

द्राक्षामलकखर्जूर पिप्पलीमरिचान्वितम्।
पित्तकासापह ह्येतल्लिह्यान्माक्षिकसर्पिषा ॥
—च० द०

कण्ठरोगे—

द्राक्षापरूषकक्वाथौ हितौ च कवलग्रहे।
—सु० चि० २२

द्राक्षापरूषकृतमालयवासभूमि—
निम्बैः श्रृतं मधयुजेन युतैः पयो यः।

दोषत्रयेण जनितेऽपि पिवेज्ज्वरेऽसौ
तत्कालमाशु लभते बलमत्युदारम् ॥
—रा० मा०

उपर्युक्त उद्धरणो से यह सिद्ध होता है कि द्राक्षा फुफ्फुस बलदायक, सन्धानकारक, कफनिसारक, रक्तपित्त शामक एव शीत मधुर है। शीत मधुर होने के साथ यह स्निग्ध होने से तृष्णानिग्रहण, स्नेहन एव अनुलोमन है। यह मृदु शोधक होने से पित्त का सरण कर तृष्णा का निग्रहण करने में श्रेष्ठ है—

द्राक्षामलयजोशीर पद्ममूलाम्भसा सह।
क्षौद्रान्विता जीवनीय तृष्णा पित्तभवा हरेत् ॥
द्राक्षादिक्वाथमेत्यासौ सार्द्धं स्वेनशुभानने।
तृष्णा दाह तथा मूर्च्छामपि सहरते ध्रुवम् ॥
—सजी० साम्राज्यम्

पैत्ते द्राक्षाचन्दनखर्जूरोशीरमधुयुत तोयम्।
—चरक० चि० २२।४१

पैत्ते इत्यत्र तर्षे इति शेष. —चक्र.

यह अनुलोमन होने विबन्ध, उदावर्त, कामला आदि में हितकर है। पैतिक रोगो मे यह विरेचन के लिए उपयुक्त कहा गया है—

द्राक्षा पयश्चाम्बु घृत च पित्ते।

उदावर्त में मणिमालाकार ने द्राक्षापिण्ड, सुखमोदक, हारहूरादि वटी और द्राक्षारिष्ट आदि द्राक्षा प्रयोगों का वर्णन किया है। कामला के लिए द्राक्षाघृत कहा गया है—

पुराण सर्पिष' प्रस्थो द्राक्षार्द्धप्रस्थसाधित.।
कामला गुल्मपाण्डर्वाति ज्वरमेहोदरापह ॥
—चरक० चि०

अवरोधजन्य पुराण कामला ही हलीमक के नाम से जाना जाता है। सुश्रुत संहिता मे इसे लाघवक भी कहा गया है। इसमे भी द्राक्षादिघृत को उपयोगी कहा है—

द्राक्षागुडूच्यामलकीरसैश्च
सिद्धं घृत लाघवके हित च।

इसके अतिरिक्त यह अर्श, अतिसार, ग्रहणी, कृमिरोग, शूलरोग, गुल्मरोग एव अम्लपित्त आदि पाचसस्थानगत रोगो को नष्ट करने मे सहायक है—

अर्श मे —

ससे दुर्नामदु खानि दूरीकर्तु यदीच्छसि।
तदा वृष्य विबन्धघ्न मृद्वीकापायस पिब ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

अतिसार मे—

सबीजा सप्त मृद्वीका एकमाशा्रिय चोत्तकम्।
माषप्रमहिफेनस्य सर्व सक्षुद्य यत्नतः ॥
सप्त तस्य वटीर्बद्ध्वा गातरेका निषेवयेत्।
एता सप्तैव शक्ता स्युर्गतानामतरोधने ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

ग्रहणी के लिये आचार्य शार्ङ्गधर ने द्राक्षासव को उपयोगी कहा है।

कृमिरोग मे—

विडङ्गगर्भमृद्वीका भुक्ता कीटावपातनी।
—सि० भै० मञ्जूषा

शूलरोगे—

द्राक्षाप्लुषयो. क्वाथः श्लेष्मपितरुज जयेत्।
—यो० र०

पित्तजन्य गुल्म मे द्राक्षाद्य घृत (चरक) को लाभप्रद कहा गया है। आहार मे द्राक्षा को प्रमुख स्थान देने का निर्देश है—

खर्जूरामलक द्राक्षा दाडिम सपरूषकम्।
आहारार्थ प्रयोक्तव्यम् ॥
द्राक्षाभयारसं गुल्मे पैत्तिके सगुड पिबेत्।
—चरक० चि० ५

द्राक्षा पयस्या मधुक चन्दन पद्मक मधु।
पिबेत्तण्डुलतोयेन पित्तगुल्मोपशान्तये ॥
—भ० हृ० चि० १४

द्राक्षावलेह (वै० सा० स०), द्राक्षाद्य घृत (च०द०) अम्लपित्त के लिये प्रशस्त प्रयोग है। इसके अतिरिक्त द्राक्षादिगुटिका भी व्यवहृत की जाती है—

द्राक्षापथ्ये समेकृत्वा तयोस्तुल्या सिता क्षिपेत् ।
सकुट्याक्षद्वयमिता तान्पिण्डीं कारयेद्भिषक् ॥
ता खादेदम्लपित्तार्तो हृद्वत्कण्ठदहनापहाम् ॥
—सि० यो० स०

यह हृदय के लिये बल्य एव रक्तप्रसादन होने से हृदयदौर्बल्य एव वातरक्तादि रक्तविकारों मे उपयोगी है। पित्तजहृद्रोग मे यह चूर्ण लाभप्रद कहा गया है—

हारहूराहरीतक्योस्तुल्य शर्करयारज ।
पीत हिमाम्बुना हन्ति पित्तहृद्रोगमञ्जसा ॥

यह हृच्छूल (वातिक हृदयरोग) मे भी लाभप्रद है। —यो०र०

शीत मधुर होने से यह मूत्रल है, सुतरा मूत्रकृच्छ्रादि मे लाभदायक है—

द्राक्षाशरीवलायष्टिक्वाथं चन्दनसयुतम् ।
वैक्रान्तभस्म सपीत्वा कृच्छ्र हति त्रिदोषजम् ॥
—वसवराजीयम्

द्राक्षासितोपलाकल्क कृच्छ्रघ्न मस्तुना युतम् ।
—यो० र०

द्राक्षापाक (यो० र०) भी मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह, नेत्ररोग आदि के लिये हितावह है। प्रमेह के लिये एक क्वाथ को भी उपयोग मे लिया जाता है—

फलत्रिकारग्वधमूलमूर्वा-
शोभाञ्जनारिष्टदलानि मोचा ।
द्राक्षान्वितो वा क्वथित कषाय-
सर्व प्रमेहस्य निवारणाय ॥
—वृ० म० मा०

यह वृष्य होने से शुक्रदौर्बल्य मे एव गर्भस्थापन होने से गर्भाशय की निर्बलता मे अति लाभप्रद है। इस निमित्त उक्त द्राक्षापाक उपयोगी है। गर्भस्थापना के पश्चात् भी यह बल्य, बृहण होने से उपयोगी है। गर्भिणी के अन्य रोगो मे भी यह हितकारक है—

द्राक्षादाडिमखर्जूर क्षीरं तक्रं घृतान्वितम् ।
लघु पथ्य च यद्द्रव्य गर्भिण्या हितमुच्यते ॥
—वसव०

यह मन को प्रसन्न करने के कारण सौमनस्यजनन कहा गया है। इसके अतिरिक्त मेध्य होने से मस्तिष्क दौर्बल्य मे भी लाभदायक है। मदात्यय की भी यह प्रसिद्ध औषधि है—

द्राक्षाकपित्थफलदाडिमपानकं यत् ।
तत् पानविभ्रमहर मधुशर्कराढ्यम् ॥
—सुश्रुत० उ० त० ४७

द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकभव शृतः ।
पानात्ययादिनाशाय देयोऽत्र पथ्ययासह ॥
—वृ० म० मा०

पटूषणद्राक्षा हृत्कम्पे नैर्बल्ये भ्रमे-
हरति भ्रम पटूषणरजोभिरङ्गारवर्तिता द्राक्षा ।
—सि० भै० म० मा०

"रजः पित्तानिलाद्भ्रम." के अनुसार भ्रमरोग के कारण रज मानसदोष एवं पित्त व वायु शारीर दोष है। द्राक्षा इन कारणो को समाप्त कर भ्रम को मिटाती है। इसी प्रकार प्राणवायु के पित्त से आवृत होने पर वमन, दाह होते हैं। उदान के पित्तावृत होने पर दाह, मूर्च्छा, भ्रम होते हैं। समानवायु के पित्तावृत होने पर स्वेदाधिक्य, दाह, मूर्च्छा होते हैं। अपानवायु के पित्त से आवृत होने पर दाह, उष्णता के साथ-साथ मूत्र मे रक्त आने लगता है। व्यानवायु के पित्तावृत होने पर दाह, अङ्गविक्षेप, क्लम् (अनायास श्रम) आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। द्राक्षा उक्त पित्त के आवरणजन्य लक्षणो को शान्त करने मे सहायक सिद्ध हो सकता है। महर्षि सुश्रुत ने पित्त की प्रबलता मे महावातव्याधि चिकित्सित प्रकरण में कहा है—

"पित्तप्रबले द्राक्षारेवतकट्फलपयस्यामधुकचन्दनकाश्मर्यकषाय शर्करामधुमधुर पाययेत्"।
—सुश्रुत० चि० ५/८

पूर्व मे कहा गया है कि वह ज्वरघ्न है, तापक्रम को कम करती है, तृष्णा, दाह आदि ज्वर के उपद्रव शान्त करती है—

द्राक्षारग्वधयोश्चापि काश्मर्यस्याथवा पुन ।
स्वादुतिक्तकषायाणा कषायं. शर्करायुतं. ।।
सुशीतं शमयेतृष्णा प्रवृद्धा दाहमेव च ।।
—सुश्रुत उ० त० ३६

सुशीतैरिति शीतकषायैरेवेति कार्तिककुण्डाचार्य. जेज्जटाचार्यस्तु पूर्वं क्वथितैः पश्चाच्छीतीकृतैरिति मन्यते । —डल्हण

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ता
क्वाथ सशम्पाकफलं विदध्यात् ।
प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहशोष
तृष्णान्विते पित्तभवे ज्वरे तु ।।
—च० द०

मृद्वीका मधुकं निम्ब कटुकीरोहिणी समा ।
अवश्यायस्थित पाक्यमेतत् पित्तज्वरापहम् ।।
—च० द०

द्राक्षागुडूचीकाश्मर्यत्रायमाणा. सशारिवाः ।
निष्क्वाथ्य सगुड क्वाथ पिबेद्वातज्वरापहम् ।।
—सुश्रुत० उ० त० ३६

द्राक्षामृता श्रुटी शृङ्गी मुस्तक रक्तचन्दनम् ।
नागर कटुका पाठा भूनिम्ब. सदुरालभ. ।।
उशीरं पद्मकं धान्य वालक कण्टकारिका ।
पुष्कर पिचुमन्द च दशाष्टाङ्गमिद स्मृतम् ।
जीर्णज्वरारुचि, श्वासकासश्वयथुनाशनम् ।।
—यो० र०

पैत्तिक मसूरिका में—

द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः ।
लाजामलकदु.स्पर्शं सितायुतैश्च पैत्तिके ।।
—च० द०

महर्षि सुश्रुत ने एक द्राक्षादि अगद (कल्प स्थान ५) का भी उल्लेख किया है जो विशेषत मण्डली सर्प विष को नष्ट करता है।

उक्त अन्त. परिमार्जन औषध के रूप में प्रयुक्त होने के अतिरिक्त यह कतिपय बहि परिमार्जन औषध के रूप में भी प्रयुक्त होती है। नेत्ररोगों में इसका निम्नलिखित विधि के अनुसार उपयोग किया जाना चाहिए—

द्राक्षामधुकमञ्जिष्ठा जीवनीयं, श्रृत पय ।
प्रातराश्च्योतन पथ्य शोथशूलाक्षिरोगिणाम् ।।
—च० द०

द्राक्षया नलदरोध्रयष्टिभि
शङ्खताम्रहिमपद्मपद्मकैः ।
सोत्पलैश्छगलदुग्धवर्तितैः—
रसज तिमिरमाशु नश्यति ।।
—अ० हृ० उ० स्था० १४

दारुण नामक शिरोरोग मे निम्नलिखित द्राक्षादि लेप उपयोगी कहा गया है—

द्राक्षा पथ्या वृष कण्टगिरिकर्णसमन्वितः ।
रसालास्थिशिवाचूर्णं पूर्णं नीरेण सत्वरम् ।
प्रलेपै. सप्तभिर्मूर्ध्नोदारुण-दारुण जयेत् ।।
—वै० च० चि०

उपर्युक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि यह औषधि के साथ उत्तम पथ्य भी है। फलो में श्रेष्ठ फल है। भगवान् चरक ने फलादिवर्ग मे इसका सर्व प्रथम वर्णन किया है। यह शरीर मे रोगक्षमता बढ़ा कर रोगों से आक्रान्त मनुष्यों की रक्षा करती है। इसकी प्रशस्ति मे आचार्य प्रवर ने एक सुन्दर श्लोक प्रस्तुत किया है—

द्राक्षा रक्षति मानवान् परिगतान् रोग व्रजेभ्य. पर
शक्ति चापि वितीर्य देहमनसोर्व्याधिक्षमत्वात्मिकाम् ।
रोगाश्चापनयत्यशेषमलजान् धातुक्षयोत्थांस्तथा
तृष्णादाहविसर्पपाण्डुप्रभृतीन् सा वातपित्तोद्भवान् ।।
—प्रि० निघण्टु

फलाहार में द्राक्षा की उपयोगिता—फलाहार में अगूर, मुनक्का और किशमिश का विशेष महत्व है। शरीर में पुष्टि के लिये यह परम हितकारी फल है। अगूर मे वे सब उपादान मौजूद हैं जिनकी आवश्यकता शरीर की पुष्टि के लिये आवश्यक है। कई प्राकृतिक चिकित्सकों ने इसके द्वारा पाचनशक्ति को

ठीक किया है। अंगूरो के कल्प के द्वारा खोई शक्ति को पुन. प्राप्त किया जा सकता है।

बहुत से डाक्टरों ने भी अंगूर व दूध को अच्छा समझा है। ये उन व्यक्तियो के लिये उपयोगी हैं जो किसी बीमारी के कारण कमजोर अधिक हो गये हों। उनको बीमारी के नष्ट हो जाने के बाद कमजोरी को दूर करने के लिए इसे प्रयोग में लाया जाता है। इससे पाचक रसों मे वृद्धि होकर चित्त मे प्रसन्नता रहती है।

दन्तोद्भेद के समय अजीर्ण अपचन जन्य विकारों को दूर करने में भी यह श्रेष्ठ समझा गया है। अत. उन बालकों के लिये यह हितकारी है। अपस्मार, मुख व गले के रोगो पर भी यह अच्छा कार्य करता है।

उन माताओ के लिये भी उपयोगी है जिनके दूध की कमी हो। दूध के साथ इसका संयोग गुणकारी है।

उपवास के पश्चात् मुनक्का, किशमिश एव ताजे अंगूरो का रस परम उपयोगी है। राजयक्ष्मा के रोगी के लिये यह परम हितकारी है।

किशमिश में दूध के सभी तत्व मौजूद हैं। दूध के अभाव मे इसे उपयोग मे लाया जा सकता है। जिन व्यक्तियो को दूध पचता नहीं है, वायु करता है उन्हें इसका उपयोग करना चाहिए। आरोग्य प्राप्ति के लिये यह सर्वोत्तम फल है। अत इसे फलाहार मे उचित स्थान देना चाहिए।

यूनानी मत—यूनानी हकीम इसको दूसरे दर्जे में गर्म व तर मानते हैं। कच्चे अंगूर को पहले में ठण्डा और दूसरे दर्जे में रुक्ष मानते हैं। यह स्निग्ध आमाशय व प्लीहा को नुकसान पहुंचाने वाले तथा वायुजनक हैं। इसके पत्ते बवासीर मे उपयोगी हैं। इनके रस से सिर दर्द, उपदश, बवासीर और तिल्ली दर्द दूर होता है। ये मूत्र निस्सारक, वमन को दबाने वाले, मुह से गिरने वाले खून को बन्द करने वाले और खुजली को लाभ पहुचाने वाले हैं। इसकी लकडी की राख जोडों के दर्द मे फायदेमन्द है। इसकी डाली मूत्राशय, अण्डकोष की सूजन व बवासीर में लाभ पहुचाने वाली है इसका फल कफ को ढीलाकर निकालने वाला, स्त्रियों के मासिकधर्म को नियमित करने वाला, खून बढ़ाने वाला, पौष्टिक वायुनलियों के प्रदाह मे लाभ पहुचाने वाला और कब्जियत को दूर करने वाला है। यह खट्टा, मीठा, पाचक, अग्नि दीपक तथा फेफडे, यकृत्, मूत्राशय व जीर्णज्वर की बीमारी में उत्तम है। इसके बीज ठण्डे कामोद्दीपक और अतड़ियों का सकोचन करने वाले हैं। इन बीजो की राख सूजन कम करने के लिये लगाई जाती है। इसकी लकडी की राख वस्ति की पथरी में गुणकारी और बवासीर की सूजन को दूर करने वाली होती है।

नव्य मत—कर्नल चोपडा के मतानुसार यह शान्तिदायक रेचक और अग्निदीपक है। यह कमजोरी को दूर करने वाला और क्षयरोग मे लाभकारी है। बिच्छू के डक मे भी यह लाभ पहुचाता है। फलो के अन्दर यह सबसे उत्तम व निर्दोष फल है। औषधि की भाति पथ्य के अन्दर भी यह अधिक काम आता है।

डा० खोरी के अनुसार यह सौम्य रेचन है। विविध रोगो में जहा साधारण रेचन की आवश्यकता समझी जाती हो इसे औषधियो के संयोग से या पथ्य रूप में सेवन कराया जा सकता है।

सामान्य प्रयोग—बाह्यप्रयोग

१. शिरःशूल—(क) मुनक्का, मिश्री तथा मुलहठी एकत्र पीस नस्य देने से पित्त एव रक्त विकृतिजन्य शिर शूल मिटता है।

(ख) मुनक्का, केसर और मिश्री को समभाग लेकर पीस ले। इसमें मक्खन मिलाकर नस्य देने से सूर्यावंत, अर्धावभेदक, वातपित्तजन्य शिर शूल मिटते हैं।

२. भगन्दर—द्राक्षा २ ग्राम, एलवा ६ ग्राम, अफीम ६ ग्राम पानी में पीसकर टिकिया बनाकर बांधने से भगन्दर की संन्धि फूट जाती हैं।

३. श्वानविष—द्राक्षा की लकडी की भस्म का इसके सिरके मे मिला दंश स्थान पर कई वार लगाना चाहिए।

४. अण्डवृद्धि—इसकी लता के पत्तों पर घृत चुपड कर गरम कर वाधने से लाभ होता है।

अन्तःप्रयोग—

१. पित्तज्वर—(क) मुनक्का अमलतास के गूदे का क्वाथ पिलावें।

(ख) मुनक्का मुलहठी का क्वाथ पिलावें।

(ग) द्राक्षा, हरड, मोंथा, कुटकी, अमलतास, और पित्तपापडा का क्वाथ भी उपयोगी है।

२. तृष्णा—(क) द्राक्षा, श्वेतचन्दन, खस को चावलो के पानी में घोटकर ठडाई की तरह बनाकर मधु मिलाकर पिलाने से पित्तज तृष्णा का शमन होता है।

(ख) मुनक्का, मुलहठी, नीलोफर को गन्ने के रस के साथ सेवन करने से कफज तृष्णा मिटती है।

(ग) द्राक्षा, श्वेतचन्दन, खस, और पद्माख के शीत कषाय से भी तृष्णा मिटती है।

३. वातज्वर—(क) द्राक्षा, अमृता, गूलर, अनन्तमूल के क्वाथ मे गुड मिलाकर सेवन करने से वातज्वर नष्ट होता है।

(ख) द्राक्षा, पीपल, अनन्तमूल और सोये के बीजो का क्वाथ भी वातज्वर में लाभप्रद है।

४. रक्तपित्त—(क) द्राक्षा ११ नग, मुलहठी ३ ग्राम को पीसकर इनके बराबर मिश्री मिलाकर दूध की लस्सी में मिलाकर पीने से उभयमार्ग का रक्तपित्त मिटता है।

(ख) द्राक्षा २ भाग, हरड एक भाग कूटकर गोलियां बनाकर सेवन करने से रक्तपित्त, विबन्ध अरुचि आदि नष्ट होते हैं।

(ग) मुनक्का, मुलहठी, गिलोय १०-१० ग्राम लेकर क्वाथ बनाकर सेवन करना भी हितकारी है।

(घ) मुनक्का १० ग्राम, गूलर की जड १० ग्राम या धमासा १० ग्राम का क्वाथ भी रक्तपित्त, दाह, मुख शोष, तृष्णा आदि में लाभप्रद है।

(ङ) द्राक्षा स्वरस में घृत शर्करा मिलाकर पीने से भी रक्तपित्त का शमन होता है।

(च) द्राक्षा व पका हुआ गूलर का फल समभाग लेकर पीसकर शहद के साथ चाटने से भी रक्तपित्त मिटता है।

५. श्वास—(क) द्राक्षा, खजूर, भारङ्गी, मरिच और पिप्पली चूर्ण को मिला गोली बनाकर सेवन करने से श्वास मे लाभ होता है।

(ख) द्राक्षा, हरीतकी, वासापत्र क्वाथ मे मधु एव मिश्री मिलाकर पीने से श्वास, कास और रक्त-पित्त आदि रोग मिटते हैं।

६. स्वरभेद—द्राक्षा, पिप्पली चूर्ण, कट्फल चूर्ण और मुलहठी चूर्ण का कुछ समय सेवन करने से स्वर-भेद मिटता है। इसके नियमित सेवन से कंठ सुरीले हो जाते हैं।

७. हृदयरोग—(क) द्राक्षा, वडी हरड के छिलके का चूर्ण शर्करा तीनो समभाग लेकर घोटकर ३-६ ग्राम को ठडे पानी से सेवन करने से पित्तजन्य हृदयरोग मिटता है।

(ख) सिल पर घिसा मुनक्का ३ भाग में शहद २ भाग, गोघृत १ भाग मिलाकर सेवन करने से वातजन्य हृदयरोग (हृदय शूल) में लाभ होता है।

८. गुल्म—द्राक्षा, दूर्वा मुलहठी, लालचन्दन, पद्माख व मधु को चावल के पानी के साथ सेवन करने से पित्तजगुल्म मिटता है।

९ भ्रम—१-१ ग्राम सैन्धव व कालीमिर्च के चूर्ण में बीज निकाले हुये मुनक्का १५-१५ ग्राम को लपेट कर एक शलाका में पिरोवें तथा अङ्गारो पर सेकें। इस प्रकार भुने हुये मुनक्का खिलाने से भ्रम, आंखो के आगे अंधेरी आना, ज्वर आदि मिटते हैं।

१०. कास—(क) द्राक्षा, वासा, खरेंटी, बड़ी कण्टकारी, छोटी कण्टकारी समानभाग लेकर क्वाथ

बनाकर मिश्री मिलाकर सेवन करने से पित्तजन्य कास मिटता है।

(ख) द्राक्षा, आंवला, पिण्डखजूर, पिप्पली, कालीमिर्च का चूर्ण घृत मधु के साथ सेवन करना हितकारी है।

(ग) द्राक्षा [मुनक्का] के बीज निकालकर इसमें ३ कालीमिर्च रखकर चबायें और मुख मे रखकर सो जाय। ५-७ दिन में इस प्रकार करने से पित्तज कास में आराम होता है।

(घ) मुनक्का १ नग, काकडासिंगी ३०० मि० ग्राम, दालचीनी ५० मि० ग्राम मिलाकर मधु संग चटाने से बालकों का कास मिटता है।

(ङ) द्राक्षा, पिप्पली और सोंठ चूर्ण का घृत-मधु के साथ सेवन भी कास को मिटाता है।

(च) द्राक्षा, पिप्पली व वासा चूर्ण भी कासहर कहा गया है।

(छ) द्राक्षा, कत्था और मिश्री पीसकर मुख में धारण करने से भी लाभ होता है।

(ज) द्राक्षा ५ नग, टकणभस्म १८० मि० ग्राम, सैन्धव १ ग्राम, कालीमिर्च नग ४ एकत्र मिला चटनी बनाकर चटावें।

११. दाह—द्राक्षा, पित्तपापडा, वासा, धनियां, समभाग से २५ ग्राम को रात्रि मे जल में भिगो दें प्रात मल छानकर मिश्री मिलाकर पीने से दाह दूर होता है।

१२. मूत्रकृच्छ्र—(क) रात्रि के समय द्राक्षा को जल मे भिगो दें और सवेरे मलकर छानकर उसमें जीरा मिलाकर पीने से मूत्र खुलकर आने लगता है।

(ख) द्राक्षा और मिश्री पीस दही के पानी में मिलाकर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

(ग) द्राक्षा, हरिद्रा और गोक्षुर चूर्ण गोक्षुर क्वाथ से सेवन करना हितकारक है।

१३. सर्वसर—द्राक्षा को मधु में घोटकर सेवन करावें।

१४. विषम ज्वर—(क) चूने के पानी में द्राक्षा को भिगोकर खाना उपयोगी है।

(ख) द्राक्षा, परवल, नीम की छाल, नागरमोथा, इन्द्रजौ, त्रिफला का क्वाथ बनाकर ठंडा कर प्रात पीने से अन्येद्यु ज्वर (दिन रात मे एक बार चढ़ने वाला) दूर होता है।

१५. मसूरिका—मुनक्का २ दाने, खूबकला ३ ग्राम, उन्नाव ३ दाने, अंजीर ३ और शक्कर ५० ग्राम को १२५ मि० लि० जल में उबालें आधा जल शेष रहने पर छानकर पिलाने से चेचक में लाभ होता है।

१६. जिह्वाजाड्य—(क) मुनक्का, घी, मधु में पीसकर जीभ पर लेप करने से जीभ मुलायम हो जाती है।

(ख) मुनक्का, पिप्पली को मधु में मिलाकर सेवन करना भी लाभप्रद है।

१७. गर्भिणी ज्वर—द्राक्षा, लोध्र, सारिवा, लालचन्दन के क्वाथ मे मिश्री मिलाकर पिलाना हितावह है।

१८. अम्लपित्त—(क) द्राक्षा, हरड, पीपल, धनिया, जवासा व मिश्री चूर्ण को मधु में मिलाकर सेवन करना चाहिये।

(ख) मुनक्का २५ ग्राम, सौंफ २५ ग्राम को कुचलकर २५० मि० लि० जल में भिगोकर सुबह मसल छानकर १२ ग्राम मिश्री मिलाकर पान करने से अम्लपित्त मे लाभ होता है।

१९. प्रमेह—मुनक्का, त्रिफला, अमलतासमूल, मूर्वा, सहिजने की छाल, नीम की पत्ती और मोचरस का क्वाथ पीने से प्रमेह मिटता है।

२०. विबन्ध—(क) दूध में मुनक्का औटाकर लेने से दस्त साफ होता है।

(ख) सैन्धव चूर्ण के साथ मुनक्का खाना भी लाभप्रद है।

२१ अजीर्ण—मुनक्का मिश्री पीसकर शहद मिलाकर चाटना हितकर है।

२२. स्तन्याभाव—द्राक्षास्वरस पान से दुग्ध वृद्धि होती है।

२३. धत्तूर विष—अगूर का सिरका दूध में मिलाकर पीने से धतूरे का विष समाप्त होता है।

२४ हरताल विष—रोगी को वमन कराकर द्राक्षा १०-२० ग्राम को २५० मि० लि० दूध में पकाकर पिलाना हितकारी है।

२५. भांग के अति सेवन पर—मुनक्का ६० ग्राम को १२५ मि० लि० जल में आधा घण्टे भिगोकर मसलकर छान लें। फिर इसमें सैन्धानमक व जीरा चूर्ण १-१ ग्राम तथा थोड़ी कालीमिर्च मिलाकर बार-बार पिलाने से भाग, गाजे के अति सेवन से उत्पन्न उपद्रव शान्त होते हैं।

२६ मूर्च्छा (क) मुनक्का १२ ग्राम, आमलकी ६ ग्राम, सोंठ २ ग्राम को पीसकर मधु के साथ चटावें।

(ख) मुनक्का २० ग्राम, मिश्री २० ग्राम, अनार की छाल १० ग्राम और खस १० ग्राम को जौकुट कर पानी में मिलाकर रात मे रख दें। प्रात मल छानकर दिन में ३ बार पिलावें।

२७ मुखवैरस्य—द्राक्षा, मिश्री, अनारदाना, सैन्धव को मधु मे मिलाकर चाटने से मुख विरसता नष्ट होती है।

२८ छर्दि—द्राक्षा और विदारी चूर्ण को इक्षु रस से सेवन करना चाहिये। इससे पित्तजन्य छर्दि का सहार होता है।

२९ मदात्यय—द्राक्षा, कैथफल, धनिया, अनारदाना और इमली को पीसकर पिलाना चाहिये।

३०. उदावर्त—मुनक्का ४० ग्राम, जल २५० मि० लि० एकत्र रात्रि मे भिगोकर प्रात पीस छानकर थोड़ा जीरे का चूर्ण और शक्कर मिलाकर पीने से उदावर्त जन्य पीडा दूर होती है।

३१ दौर्बल्य—जितना पच सके उतने मुनक्का खाकर पानी या दूध पीने से दुर्बलता दूर होकर धीरे-धीरे वजन बढ़ने लगता है।

विविध कल्पना—

१. द्राक्षादि क्वाथ—(क) मुनक्का, रक्तचन्दन, पद्मकाठ, नागरमोथा, कुटकी, गुरुच, आवला, सुगन्धवाला, खश, लोध, इन्द्रजो, पित्तपापडा, फालसा, फूलप्रियगु, जवासा, अडूसा, मुलहठी, परपल, चिरायता और धनिया से बनाया हुआ क्वाथ पित्तज्वर के उपद्रव भूत प्यास, दाह, प्रलाप, रक्तपित्त, श्रम थकावट, मूर्च्छा, वमन शूल, मुख का सूखना, अरोचक कास, श्वास और जी मचलाना आदि को दूर करता है। इसमे सन्देह नही। —क्वा० म० मा०

(ख) मुनक्का, हरीतकी (हरड), नागरमोथा, कुटकी, अमलतास और पित्तपापडा—इन ६ द्रव्यो का क्वाथ पित्तज्वर नाशक है। यह क्वाथ पिपासा (प्यास), मूर्च्छा (बेहोशी), दाह, जलन और रक्तपित्त को भी शान्त करता है। यह क्वाथ विरेचक क्वाथ भी कहलाता है। मात्रा ४८ मि० लीटर। —श० स०

(ग) मुनक्का, अडूसा, अमलतास, जवासा, चिरायता, सफेद चन्दन, इनको समान भाग लेकर क्वाथ सिद्ध करें, इस क्वाथ के सेवन करने से तीनो दोषों का उत्पन्न हुआ ज्वर शीघ्र दूर होता है। —रा० मा०

(घ) मुनक्का, छोहारा सोठ, पीपर, छोटी सौंफ, दालचीनी, इलायची, लवङ्ग, नीलकमल, खश, कमल का पुष्प (रक्त), नागरमोंथा, गम्भारी, लोध तथा कूठ इन द्रव्यो का मधु मिलाकर लेने से—पित्तज, प्यास मूर्च्छा, दाह, ज्वर, वमन और ऊपर से आने वाला रक्तपित्त दूर होता है। —क्वा० म० मा०

(ङ) मुनक्का, सौंफ, मुलहठी, खूबकला, बनफ्शा, अमलतास, मकोय, गुलाब का गुलकन्द तथा मिश्री इनको समभाग लेकर जौकुट करें तथा १०-२० ग्राम लेकर क्वाथ बनावें। इस प्रकार प्रात-साय दोनो समय देवें। यह सभी प्रकार के ज्वर, विशेषतथा पित्त ज्वर का नाशक है। यह क्वाथ विविध पित्तज विकारो का नाशक है तथा सारक है। —सि० भै० म० मा०

(च) मुनक्का अनन्तमूल, श्वेतचन्दन, नागरमोथा, बेर की गिरी सब ६६ ग्राम, धानो की खीलें सबके बराबर, सबसे सोलह गुना पानी चढ़ाकर काढा करें आधा रहने पर उतार ले मल छानकर उसमे मिश्री और शहद मिलाकर रोगी को पिलाने से सब प्रकार की तृष्णा छर्दि दूर होती है। —मे० विनोद

(छ) मुनक्का, हरड (बडी), पित्तपापडा, नागरमोथा, कुटकी, अमलतास के गूदे का क्वाथ पीने से प्रलाप, मूर्च्छा चक्कर आना, जलन, मुख सूखना तथा प्यास इनके सहित पित्त ज्वर को नष्ट करता है। —च० द०

(ज) मुनक्का २० नग, अजीर ५ नग तथा सौंफ, सनाय अमलतास का गूदा तथा गुलाब के फूल ३-३ ग्राम सबका क्वाथ कर तथा १२ ग्राम गुलकन्द मिला प्रात पीने से कोष्ठ साफ होता है। —ध० व० वि०

(झ) मुनक्का, खम्मार के फल, खजूर, परवल के पत्र, नीम की छाल अडूसे की छाल, धान का लावा आवला तथा यवासा इनका क्वाथ चीनी मिला कर सेवन करने से पैत्तिक मसूरिका नष्ट होती है। —च० द०

(ञ) बीज निकाले हुये मुनक्का २५ नग, सनाय की पत्ती ३ ग्राम, दस बडी हरड के ऊपर का वक्कल, उन्नाव ५ दाने, अन्जीर ३ दाने, गुलाब के फूल, सौंफ की जड, कासनी तथा कासनी की जड यह पांचो चीजें ३-३ ग्राम छोटी इलायची ५ दाने तथा मिश्री ८ ग्राम लें। इन्हें अधकचरा कर ७५० ग्राम पानी मे रात्रि को भीगने दें और क्वाथ करें। जब २५० ग्राम जल शेष रहे तब आग से नीचे उतार कर कपड़े से नीचे उतार कर कपडे से छान लें और पिला दें। इसके सेवन से गुल्म रोग के कारण उत्पन्न संचित मल इससे फूल जाता है और सुगमता से निकल जाता है गुल्म के अलावा अन्य प्रकार के मलावरोध मे भी लाभकारी है। —रसायनसार भा० २

(ट) मुनक्का १२ ग्राम, पाषाणभेद, धमासा, पुनर्नवा, तथा अमलतास का गूदा ६-६ ग्राम सबको जौकुट कर ५०० मि० लीटर जल मे अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र एव तज्जन्य उदावर्त रोग भी दूर हो जाता है।

२ शीतकषाय —(क) मुनक्का १५ ग्राम, अजीर देशी, पिण्ड खजूर १०-१० ग्राम, मजीठ ८ ग्राम, सनाय ५ ग्राम कूट छानकर एक सकोरे मे भिगो दें पुन मल-छानकर इस शीत कषाय को पिला दें तो १-२ दस्त खुलकर हो जाते हैं। —धन्व० (अप्रैल ४१)

(ख) मुनक्का, सफेद चन्दन, खश, सारिवा और बालछड को शीत कषाय पीने से दाह, ज्वर दूर होता है। शाम को दवा को कूटकर जल मे भिगो दें और सुबह हाथ से मलकर छान लें, वही छना हुआ जल शीत कषाय कहा जाता है। —वना० म० मा०

(ग)—मुनक्का, लालचन्दन, पिण्ड खजूर तथा खस का शीत कषाय बनाकर मधु डालकर पीने से पित्त जन्य तृष्णा शान्त होती है। —च० द०

३. द्राक्षादि चूर्ण —(क) मुनक्का, धान का लावा (खील) श्वेतकमल, मुलैठी गुठली निकली हुयी, छुहारा, अनन्तमूल, वशलोचन, खश, आवला, नागरमोथा, सफेद चन्दन, तगर, कबाबचीनी (शीतलमिर्च), जायफल, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, छोटी पीपल और धानया सब समान भाग तथा मिश्री सबके बराबर लेकर कपड़छन चूर्ण करें।

मात्रा—१ से ३ ग्राम तक।

अनुपान—ठण्डा जल। ३-४ घण्टे के अन्तर से दिन मे ३-४ बार लें।

उपयोग—अन्न के विदाह से होने वाली छाती और कण्ठ की जलन, पैत्तिक अतिसार, मूर्च्छा, वमन, अन्न पर अरुचि, मद (नशा सा रहना), चक्कर आना, अधिक प्यास लगना, रक्तार्श, और पेशाब में खून आना इत्यादि पैत्तिक व्याधियों के लिए यह उत्तम योग है। —सि० यो० स०

२ से ४ ग्राम की गोलियां बना लें। प्रातः १ गोली पका कर शीत किये हुये गो दुग्ध से लेवें। प्रमेह तथा कब्ज नष्ट होता है। गुड़, मिर्च, तैल, खटाई, उडद की दाल भारी पदार्थ तथा किसी प्रकार का मीठा न लें अथवा शास्त्रोक्त "द्राक्षापाक" प्रमेह आदि पर बहुत उत्तम है।

५. द्राक्षादिघृत—(क) पुराना घी ७६८ ग्राम, मुनक्का का कल्क ३८४ ग्राम लेकर चौगुने जल मे पकाकर घृत सिद्ध करें। इसे मात्रानुसार सेवन करने से कामला, गुल्म, पाण्डु, ज्वर, प्रमेह तथा उदर रोग दूर होता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम तक।

(ख) मुनक्का, मुलहठी, पिण्डखजूर (या छुहारा), विदारीकन्द, शतावर, फालसा तथा त्रिफला इनके ४८-४८ ग्राम क्वाथ लेकर ३ किलो ७२ ग्राम जल मे पकाना चाहिए। चतुर्थांशावशेष उतार कर छान लें। आंवला का स्वरस ७६८ ग्राम घी तथा ईख का रस प्रत्येक ८६८ ग्राम, हरड़ का कल्क, घृत का चतुर्थांश लेकर घृत पाक करें। सिद्ध हो जाने पर घृत का चौथाई मिलित मधु और शक्कर डालकर रख लेना चाहिए। इसको सेवन करने से पित्तगुल्म दूर होता है। तथा सब प्रकार के पित्तजन्य विकार शान्त होते हैं। —चरक संहिता

(ग) मुनक्का, गुडूची, इन्द्रयव, परवल के पत्र, आंवला, खस, नागरमोथा, लाल चन्दन, त्रायमाण, कमल के फूल, चिरायता तथा धनिया इनके कल्क के साथ घृत पाक करना चाहिए। (पाकार्थ दाख आदि का कल्क १ किलो, गोघृत ४ किलो, जल १६ किलो लेवें) इसको खान-पान के रूप में सेवन करने से कफपित्त, ग्रहणी, कास, अग्निमांद्य, ज्वर और अम्लपित्त ये सब शीघ्र दूर होते हैं। मात्रानुसार भली भांति सेवन करने से यह घृत अमृत के समान लाभदायक है। इसकी मात्रा ३ ग्राम से ६ ग्राम है।

—च० द०

६. द्राक्षापाक—(क) उत्तम बडा मुनक्का लेकर, धोकर, बीज निकालकर एक किलो तोल लें और बादाम की गिरी आधा किलो लेकर दूध मे भिगोकर लाल छिलका दूर कर दें। फिर मुनक्का और बादाम को दूध का छींटा दे-दे कर थोडा-थोड़ा पीसें और महीन पिट्ठी बना, उत्तम घृत मे भून लें। वैसे ही लहसुन छीलकर उनके अन्दर के अकुर निकाल उसे भी सूक्ष्म पीसकर २५० ग्राम पिट्ठी कर लें और इस लहसुन की पिट्ठी को २ किलो गोदूध में औटाकर अच्छा कडा खोवा बना लें, तथा इसे भी घृत मे भून लें, तथा इन दोनो घृत पक्व पिट्ठियो को एकत्र मिला उसमे—जायफल, जायपत्री, वंशलोचन, लौंग, खस, सोंठ, स्याह जीरा, पीपली, नागकेशर, कमलगट्टा की गिरी, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची क बीज, कपूर, भीमसैनी केशर, जटामासी, नीलोफर, नेत्रवाला, शीतलचीनी प्रत्येक १२-१२ ग्राम महीन चूर्ण कर अच्छी तरह मिला दें।

पश्चात् २॥ किलो मिश्री की चाशनी मे डालकर और अच्छी तरह मिलाकर उत्तम स्वच्छ थाली मे जमा दें तथा कतलियां काटकर काच या चीनी के पात्र मे सुरक्षित रक्खें।

मात्रा और गुण—१२ से ३६ ग्राम की मात्रा मे इसका सेवन करने से किसी भी दीर्घ रोग के कारण से हुई मस्तिष्क, नेत्रादि की तथा सर्व प्रकार की निर्बलता अवश्य दूर हो जाती है। यह पौष्टिक है पाचन क्रिया को सुधारता एव बल को शुद्ध करता है। क्षयादि दीर्घ रोगो की निर्बलता को मिटाने के लिए इस पाक को कभी नही भूलना चाहिए। लगभग सभी प्रकार की प्रकृति के लिए यह लाभकारी है। —बृ० पा० स०

(ख) दाख ८ किलो लेकर, बीज निकाल, जल से धोकर, छाया शुष्ककर, थोडे से दूध के साथ सिल पर पीस पिट्ठी करें। फिर ८ किलो गोदुग्ध मे पकावें, करछी से चलाते रहे, खोवा जैसा हो जाने पर, उसमे पित्तपापड़ा अतीस, मूर्वा परवल, नागरमोथा, नेत्रबाला, बिदारीकन्द और हरड़ का महीन चूर्ण ४८-

४८ ग्राम मिला देवें। पश्चात सबके सम खांड की चासनी मे पाक जमादें या मोदक बना लेवे।

मात्रा और गुण—१२ से ६० ग्राम तक प्रात-साय सेवन करने से पित्त–विकार, नेत्र-विकार एव दाह की शाति होती है। —वृ० पा० म०

७. **द्राक्षारिष्ट**—मुनक्का ४ किलो को एक कलईदार शुद्ध पात्र मे डालकर उसमें इतना जल डालें कि द्राक्षा डूब जाने के बाद ४-५ अंगुल जल ऊपर रहे। २-३ दिन के बाद उस द्राक्षा को उस ही जल मे हाथ से भली प्रकार मर्दित करके उस पात्र को अग्नि पर चढा दे। जब द्रवीयांश जल बच जाय तो उसे कपडे से छान लें। इस द्रव को तौलकर उसका अष्टमांश शहद उक्त क्वाथ मे मिलावें तथा सोंठ, दालचीनी, लवङ्ग ४-४ ग्राम, केशर ६ ग्राम, इलायची,दाना ६ ग्राम इन सबकी एक पोटली बनाकर उक्त द्रव में डाल दें तथा पुन अग्नि पर चढावें, जब शहद के तोल का द्रवांश जल जाय तो उसे नीचे उतार कर पोटली को निकालकर भली प्रकार निष्पीडित करके बचे हुए भाकस को फेंक देवें अब इस द्रव को काच या चीनी की बरनी मे भरकर १०० दिन तक सन्धान होने के लिये रख दें, तदनन्तर पुन. छानकर बोतलो मे भर लें।

मात्रा—१० से २० मि० लीटर दूना जल मिलाकर पिलाइये। इससे विबन्ध अध्मान, उदरशूल आदि सभी पीडायें शान्त होती हैं।

८. **द्राक्षावलेह**–(क) मुलहठी, रक्तचन्दन, रसौत, पीपल की लाख, लाल कमल के पुष्प, कुश की जड, वीरण (खश) की जड, खरैंटी की जड, अडूसे की जड, बेर की गुठली की मिगी, मोंया, मोचरस, बेलगिरी, दारुहल्दी, धाय के फूल, अशोक की छाल, मुनक्का, जयाकुसुम (गुडहर) की फली, कमल के पत्ते, आम की कोंपल, जामुन की कोंपल, शतावर, विदारीकन्द, रौप्यभस्म, लौहभस्म और अभ्रकभस्म ये २६ चीजें २४-२४ ग्राम लें। मिश्री ३ किलो ४८ ग्राम, शतावर का स्वरस ७८८ मि० लि० और शहद ९६ ग्राम लें। प्रथम मुलहठी से लेकर विदारीकन्द तक सब औषधियो को अलग-अलग कूटकर कपडे से छान लें तीनों भस्मे खरल कर मिला लें। फिर शतावर के स्वरस को कडाही मे डालकर पकावें, उसमें मिश्री मिलाकर चाशनी करें, फिर भस्म मिश्रित चूर्ण मिला लें, शीतल होने पर शहद मिलाकर काच के बर्त्तन मे रख दें।

मात्रा—६-६ ग्राम, दिन में दो बार। खिलाकर अशोकारिष्ट पिलावें।

उपयोग—यह अवलेह प्रदर, वेदनायुक्त कक्षिशूल, दुसह बस्तिशूल और योनिशूल आदि रोगो को दूर करता है स्त्रियों के लिए यह अमृत के सदृश हितकारी है। जीर्ण रक्तपित्त, रक्तातिसार, रक्तार्श, मूत्ररोग, दाह, वमन, भ्रम (चक्कर आना) आदि इस अवलेह के सेवन से दूर हो जाते हैं। —वै० सा० स०

(ख) दालचीनी १० ग्राम, छोटी इलायची के बीज २० ग्राम, पिप्पली ४० ग्राम, वंशलोचन ८० ग्राम, मिश्री १६० ग्राम, द्राक्षा ३२० ग्राम। द्राक्षा और मिश्री को योग्य पात्र मे दोनो को साथ डालकर कुछ पानी मिलाकर मन्द अग्नि से पकावें। इसके बाद अन्य द्रव्यों के चूर्ण को डालकर अवलेह सिद्ध कर लें। यह अमृतास्वाद नामक अवलेह राजयक्ष्मा मे लाभप्रद है। —सि० भै० मञ्जूषा

(ग) किसमिस, गुठली रहित आलू बुखारा, गुठली रहित खजूर, अमलतास की फली का गूदा, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, दालचीनी, भुनी हींग, भुना जीरा, कालानमक, सेंधानमक और लहसुन (साफ किया हुआ) ये १३ औषधिया ६०-६० ग्राम, नीबू का रस ३६० ग्राम और गुड ४६८ ग्राम लेवें।

अमलतास की फली के गूदे को नीबू के रस मे भिगो दें। फिर मसल छान ले। किसमिस, आलू बुखारा, खजूर और लहसुन पहले अच्छी तरह शिल पर पीसकर कल्क बना लेवें। शेष औषधियो को कूटकर कपडछन चूर्ण कर लें। फिर कल्क चूर्ण, गुड और अमलतास मिश्रित नीबू का रस मिला अवलेह

के सदृश बना लेवें। ४-६ ग्राम दिन मे २-३ बार देवें।

उपयोग—द्राक्षादि चाटण रुचिकर, कीटाणु नाशक, उदरकृमिहर, दीपन, पाचन, उदरवातहर और सारक है। उदर शुद्धि के लिये यह निर्भय औषधि है। कोमल स्वभाव वाली स्त्रियों, सगर्भा और बच्चो को भी दे सकते हैं। पुराने मलावरोध, से पीड़ित और ज्वर पीडित रोगी के लिये यह उपयोगी है।

--र० त० सा० (भा० २)

(घ) हरा आवला और दाख (निर्बीज) को पीसकर छोटी इलायची के बीज का तडका देकर समभाग गोघृत में भूनकर मिश्री छोडकर हलुवा बनाकर दिन में ३ बार सेवन करना चाहिए।

(ङ) मुनक्का ७ नग, कालीमिर्च ५ नग, भुना जीरा १२ ग्राम, सेंधानमक ६ ग्राम और टाटरी (इमली का सत्त) ५०० मि० ग्राम एकत्र पीसकर चटनी बनाकर चाटने से कब्ज, अरुचि दूर होती है।

(च) मुनक्का ९६ ग्राम, लौंग २४ ग्राम, पीपली ४८ ग्राम बड़ी इलायची ७२ ग्राम, चिरायता ३६ ग्राम, खांड ९६ ग्राम, शहद २४० ग्राम सब चीजो को कूटकर शहद मे मिलाकर चटनी बनावें। ३-३ ग्राम रात-दिन में ३-७ बार चटाने से प्रसूत ज्वर, सरदी और बाई दूर होती है। भूख अधिक लगती है और वायु के रोग ठीक होते हैं।

९. माजून (जीर्णबद्धकोष्ठहर)—मुनक्का निर्बीज ९०० ग्राम, गुलकन्द ९०० ग्राम, सनायपत्र ६५ ग्राम, हरीतकी गुठली रहित ६० ग्राम, उन्नाव वेर का छिलका २५ ग्राम, अजीर पीली २५ ग्राम. बादाम गिरी ५० ग्राम।

निर्माण विधि—सनाय के तिनके चुनकर फेंक दें और स्वच्छ नवीन पत्तों को बारीक कूटकर कपडछान कर लें, इसी प्रकार हरीतकी छाल, उन्नाव वेर का छिलका पृथक्-पृथक् कूटकर कपडछान कर लें फिर बादाम तथा अजीर जुदा-जुदा कूटकर बारीक करके मिला दें अन्त मे मुनक्का गरम पानी से धोकर साफ करके खरल मे रगड कर गुलकन्द मिला दें तत्पश्चात् शेष चीजें मिलाकर माजून बनाकर काच के पात्र मे रखें।

मात्रा—१२ ग्राम के लगभग रात्रि को सोते समय सेवन कराकर ऊपर से गरम दूध पिलाना चाहिए।

उपयोग—यह माजून हमारा सहस्रों रोगियो पर अनुभूत है। इसके से ऐसे रोगी जिन्हें तीसरे चौथे दिन थोडा सा शुष्क मल आता हो उन्हे इसे नियमित सेवन कराने मे आतो मे स्निग्धता आकर नियमित मल निष्कासन होने लगता है।

—सुधानिधि प्र० स० भा० ३

१०. द्राक्षापानक—(क) बडे बीज वाला मुनक्का नया ४८० ग्राम, गुलाबजल १ किलो, मिश्री ४८० ग्राम। ५०० ग्राम गुलाबजल मे मुनक्को को पकाकर उसका रस निकालिये और शुद्ध वस्त्र से छानकर गर्म रहते ही बाकी गुलाबजल व मिश्री का चूर्ण डालकर हिलाइये, मिलाकर पकने दीजिये तथा चाशनी तैयार होने पर बोतलो मे भर लीजिये।

मात्रा—२४ मि० लि० से ४८ मि० लि० तक दूध के साथ।

लाभदायक अपूर्व बलदायक शक्तिप्रद थकावट दूर करने वाला और मल साफ लाता है। रक्तवर्धक है। —धन्व० भै० क० वि०

(ख) मुनक्का १२ (निर्बीज), अदरक ३० ग्राम, सैन्धानमक ३ ग्राम, १० छोटी इलायची के बीज, कालीमिर्च २०, मिश्री ६० ग्राम, भुना जीरा १२ ग्राम सबको १२० ग्राम सौंफ अर्क, ६० ग्राम अर्क गुलाब, ६० ग्राम अर्क केवडा मे पीस-छानकर रखें। ६०-६० ग्राम की मात्रा मे ४ बार २-२ घण्टे पर पिलावें। —चिकित्सादर्श

११. द्राक्षादिलेप—मुनक्का, हरड, अडूसा, गोखरू, घोडा का खुर, आम की गुठली, आमला

इनके चूर्ण को पानी में पीसकर शिर में लगाने से भीषण दारुणक नामक शिरोरोग शान्त हो जाता है।

—वै० चम० चिन्ता०

१२. द्राक्षादि आश्च्योतन—मुनक्का, मुलहठी, मजीठ तथा जीवनीयगण की औषधियों से दूध सिद्ध कर प्रातः आंखों में छोडने से नेत्राभिष्यन्द नष्ट होता है।

—च० द०

१३. पेटेण्ट प्रयोगों में द्राक्षा—गर्ग वनौषधि भण्डार विजयगढ़ के दो पेटेण्ट प्रयोग हैं। प्रथम "गर्ग बालविट" और दूसरा "जुकामहारी" गर्ग बालविट बालकों के समस्त रोगों को दूर करने वाला पौष्टिक पेय है तो जुकामहारी जुकाम, नजला और उनसे होने वाली खांसी की प्रसिद्ध दवा है। दोनों प्रयोगों का द्राक्षा मुख्य घटक है। लक्ष्मी कैमीकल इण्ड० मथुरा का एक पौष्टिक पेय है—"पालविटोन।" इसमें खजूर, अंजीर, असगन्ध, शतावरी आदि के साथ द्राक्षा है जो कमजोरी को दूर कर शरीर में स्फूर्ति लाता है। इसी प्रकार का श्री रुद्रदेव आयुर्वेद भवन का "माल्टोफेगल" है जिसमें द्राक्षा के अतिरिक्त असगन्ध, शतावरी, आंवला, मूशली आदि हैं। यह बलवर्धक एवं दुर्बलता नाशक लौह युक्त पौष्टिक पेय है। इसका ही एक "माधुरी" नामक कफघ्न पेय है जिसमें द्राक्षा, जूफा, मुलहठी, तुलसी, वासा आदि हैं। "वाइलेरिन सीरप" का निर्माण भारतीय महौषधि संस्थान अनूपशहर के द्वारा किया जाता है। यह यकृत्प्लीहा रोगों में सुमधुर बल्य पेय है। इसमें द्राक्षा, पुनर्नवा, कुमारी, अमृता आदि हैं। आर्य औषधि फार्मा० के "आल्वीट ड्राप्स" में अनेक बालोपयोगी द्रव्यों के साथ द्राक्षा भी है। शिशुओं के शारीरिक विकास एवं दन्तोद्भेद रोगों के विनाश में यह श्रेष्ठ है। कौशिक आयुर्वेद भवन सालासर के "लेडीटोन सीरप" में अशोक, अनारदाना, लोध्र, नागकेशर आदि स्त्रीरोगोपयोगी द्रव्यों के साथ द्राक्षा का भी सम्मिश्रण किया जाता है। यह गर्भाशयिक विकारों के लिए स्वास्थ्यवर्धक पौष्टिक पेय है। इसी प्रकार का एक प्रयोग झंडू का है—"जेस्टोन।" इसमें द्राक्षा, शतावरी, नागकेशर, यष्टिमधु, बलामूल, प्रवाल, वङ्ग आदि हैं। यह गर्भस्राव, गर्भपात को रोककर गर्भाशय को बल देने वाली औषधि है। सभी प्रकार के फलासवों में इसकी भी योजना की जाती है। श्री मोहता रसायनशाला हाथरस, श्री मोहता आयुर्वेदिक रसायनशाला बीकानेर, कृष्णगोपाल कालेडा आदि द्वारा निर्मित फलासव उपयोगी सिद्ध हुये हैं। मेडिकल इथिक्स के "सेक्सटोन सीरप" में भी सर्वाधिक मात्रा में द्राक्षा है। इसके अतिरिक्त अकरकरा, तालमखाना, गोखरू, कौंच, असगन्ध आदि पौरुषवर्धक द्रव्य भी हैं। यह पुरुषों के अतिरिक्त स्त्रियों में भी कामशक्ति बढ़ाने वाला वृष्य प्रयोग है। पाचनसंस्थान एवं रक्तवहसंस्थान को भी यह उत्तेजित करता है। नवशक्ति का "बालकडू" नामक पेय में विडङ्ग, इन्द्रयव, सोंठ, सौंफ, अजवायन आदि के साथ द्राक्षा डाली जाती है जिससे यह बच्चों के अजीर्ण, विबन्ध, कृमि, ज्वर, उदरशूल नादि रोगों को नष्ट करता है। बच्चों को कुछ बूंदें ही लाभप्रद होती हैं।

देशरक्षक औषधालय के "कफकेसरी" सीरप में एवं "शोधक" सीरप में भी द्राक्षा है। कफकेसरी कास में एवं शोधक रक्तविकारों में उपयोगी है। शोधक की भांति त्रिमूर्ति फार्मेसी का "सारिको" पेय भी है जो रक्तविकार को दूर करने में श्रेष्ठ है। रक्त शोधक द्रव्यों के साथ द्राक्षा रक्तशोधन में सहायक बनती है एवं अनुलोमन कर रोगी को स्वास्थ्य प्रदान करती है। अरुचि, अग्निमांद्य को दूर करने वाला इसी फार्मेसी का एक प्रयोग है—"त्रिमोटोन।" यह एक खट्टी-मिट्ठी चटनी है जिसमें मुनक्का के साथ अनारदाना, अकरकरा, चित्रक, गुलकन्द आदि का मिश्रण किया जाता है।

शिलपाकेम के "आयुफल सायरप" (जनबल टानिक), "गैसहरसायरप" (गैसहर पाचक), "इम्प्रोटोन सायरप" (दौर्बल्यहर पाचक), एवं "मल्टीमाल्ट"

(जनरल टानिक) आदि मे भी द्राक्षा का सम्मिश्रण किया जाता है। यह औषधि निर्माणशाला ही "माधुर्य मुनक्का" नामक वटी का भी नि र्माण करती है। इसकी प्रत्येक गोली मे मुनक्का ४५, भाग १५, कालानमक ५, त्रिफला चूर्ण ५, सेंधानमक ८ कालीमिर्च ६, लवङ्ग ३ एव इमली सत्व ३ प्रतिशत होता है। यह कब्जनाशक, अरुचिनाशक अग्निवर्धक एव कामोत्तेजक कल्प है।-

साण्डू रसायनशाला के "आरोग्य मिश्रण" नामक पेय में द्राक्षा, खजूर, दशमूल, मण्डूर आदि का मिश्रण किया जाता है। "पौष्टिक मिश्रण" में च्यवनप्राश के साथ द्राक्षा, ब्राह्मी, दाडिमफल स्वरस आदि का सम्मिश्रण होता है। साण्डू के द्वारा "द्राक्षासव मिश्रण" नामक एक और मिश्रण तैयार किया जाता है। जिसमे द्राक्षासव में प्रवालभस्म एव गुडूचीसत्व भी मिलाया जाता है जिससे यह अधिक सौम्य बन जाता है।

चरक फार्मा० के "पेडिनेक्स सीरप" (बच्चो के लिये रेचक औषधि), "ओजस सीरप" (पाचक, अनुलोमक, दौर्बल्यहर), एव "केरीटोन" नामक गोलियों में भी द्राक्षा का सम्मिश्रण किया जाता है। केरीटोन गोलिया गर्भ को पूरी अवधि तक सुरक्षित और बरकरार रखने तथा किसी भी गडबडी को रोकने के लिये खासतौर से बनाई गई हैं।

अनुभूत प्रयोग—

१. यक्ष्मा के लिए उत्तम प्रयोग मुनक्का (द्राक्षा) बीज रहित १२५ ग्राम, मिश्री १२५ ग्राम, वंसलोचन २४ ग्राम, सौंठ २४ ग्राम, इलायची (छोटी) १२ ग्राम, कालीमिर्च १२ ग्राम, दालचीनी (असली) ३६ ग्राम, पीपल १२ ग्राम, शहद ६० ग्राम।

प्रथम वंसलोचन से लेकर पीपल तक की औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् मुनक्का, मिश्री को अलग-अलग कूट लें। अब सबको मिलाकर कूट मसल ६० ग्राम शहद मिलाकर १२-१२ ग्राम की गोली बना सुरक्षित रख लें। बच्चों को १/४ से १/२ गोली तक दिन मे ३ बार। ऊपर से थोड़ा हो सके तो शहद चटा दें।

गुण —भयंकर सूखी गीली खांसी, श्वास, कफ, ब्राकाइटस, डिपथीरिया, गले एव फेफडो के तमाम रोग, रक्त की कमी, हृदयशूल, पसली दर्द, जुकाम, बच्चो का डब्बारोग, राजयक्ष्मा, नाक, गला, मुख, शिरोरोग मे उत्तम है। ३-४ वर्ष से पीडित ब्राकाइटस के रोगियों तथा यक्ष्मा के अनेक रोगियो पर अनेक बार परीक्षित है। —श्री शंकरदास

(धन्व० मई० ६८)

२ हृदयबलप्रद प्रयोग—हरी किशमिश बड़ी-बड़ी छाट कर ४० नग लें और उनको तिनकों से साफ करके १२० ग्राम उत्तम अर्क गुलाब और अर्क बेद मुश्क में रात को चादी वा कलई की छोटी सी कटोरी में भिगोदें और बाहर चादनी में सावधानी के साथ रख दें। सबेरे शौचादि से निवृत्त होकर एक-एक किशमिश सुई की नोंक से उठा-उठाकर खावें और फिर ऊपर से सारा अर्क पीलें, इसी प्रकार कुछ दिन निरन्तर खावें। इस नुस्खे के एक सप्ताह के सेवन से हृदय मे बल व तेज उत्पन्न होता और दिल का धड़कना बिलकुल बन्द हो जाता है। परीक्षित प्रयोग है।

—श्री तुलसीप्रसाद अग्रवाल

(तुलसी अनुभवसार)

३. गर्मी और मन्दाग्नि की दवा—मुनक्का १९२ ग्राम, काली मिर्च १२ ग्राम, पीपर ८ ग्राम, जीरा सफेद ९ ग्राम, साभर नमक १२ ग्राम, सेंधा नमक १२ नमक। पहले मुनक्का के बीज निकाल कर पीसें फिर सब चीजें मिलाकर कूट आंच पर सेक के झाड़ी बेर के समान गोली बना लें। एक दिन में तीन चार गोली खायें तो गरमी की खामी और पित्तज्वर आदि नष्ट होते हैं। —श्री महन्त सुन्दरामदास जी

(बूटी प्रचार)

४ जीर्ण प्रतिश्याय नाशक योग—मुनक्का उत्तम बीज निकाले हुए १२० ग्राम, काले धतूरे के बीज शुद्ध १५ ग्राम, खुरासानी अजवायन ८ ग्राम।

सर्व प्रथम एक कलईदार देगची में २ किलो पानी भरकर उसमे मुनक्का डाल दें और धतूरे के बीज शुद्ध और अजवायन एक साफ कपड़े मे पोटली बाधकर देगची मे दोलायन्त्र समान लटका दें और देगची को चूल्हे पर रखकर धीरे-धीरे अग्नि जलावें, किसी कलछी से मुनक्को को हिलाते रहे ताकि वे देगची के पैंदे मे लगकर जल न जायें तब मुनक्को को निकाल लें और धतूर बीजो को सावधानी से फेंक दें। उन निकले हुए मुनक्को को खरल कर लें उसमे— केसर, लौंग, दालचीनी प्रत्येक ३-३ ग्राम और वंशलोचन, छोटी इलायची के दाने, कालीमिर्च तीनों ६-६ ग्राम—सब मिलाकर मर्दन करें और चने बराबर गोलियां बना लें।

१ गोली से २ गोली तक, दिन मे दो बार गर्म पानी के साथ सेवन करावें।

इस औषधि के सेवन से पुराना जुकाम जो निरन्तर बना रहता हो, नाक और मुह से कफ निकलता रहता हो, जरा ठण्ड लगने पर जुकाम का असर हो जाता हो, सर भारी बना रहता हो या नजला गले पर गिरकर छाती पर जम जाता हो, या श्वास की नली मे कफ का जमाव होकर श्वास मे कुछ अवरोध मालूम होता हो या श्वास की प्रथम अवस्था हुई हो तो ऐसी दशा में यह औषधि अपना आश्चर्यजनक चमत्कार दिखाती है।

मैं इस औषधि को सन् १९२३ से व्यवहार मे ला रहा हू, मगर ध्यान रहे यह औषधि केवल कफप्रधान वाले रोगियो पर ही व्यवहार करें। यदि औषधि से कुछ खुश्की प्रतीत हो तो मात्रा बलाबल देखकर कम कर दें।

पथ्य मे—घी, गाय का दूध, दाल रोटी आदि दें और बादाम पानी में भिगोकर छील-पीसकर शहद या शर्बत बनफ्शा मे मिलाकर चटायें इससे भी खुश्की दूर हो जाती है। खटाई, तैल, मिर्च, गुड़ आदि का परहेज करावें।

—स्वर्गीय श्री राजवैद्य प० रामलाल जैन
(सुधानिधि हृदयरोग चि०)

५. कास संहारिणी लेहिका—मुनक्का ७२ ग्राम, पिप्पली ६० ग्राम, वंशलोचन ३६ ग्राम, काकड़ासिंगी २४ ग्राम। मुनक्का को पानी मे भिगोकर दो घण्टे पड़ा रहने दें। फिर निकालकर पत्थर पर पीस लें और शेष द्रव्यो का सूक्ष्म चूर्ण तथा मधु मिलाकर अवलेह बना लें। इसे दिन मे ४ ५ बार चाटें तो सब प्रकार के कास नष्ट हो जाते हैं।

—सरल चि० यो० संग्रह

६ स्त्रीरोगोपयोगी चन्द्रप्रभा मोदक—द्राक्षा बीज रहित बादाम मींग तथा मिश्री कुजे की तीनों ५०-५० ग्राम, वंशलोचन असली १० ग्राम, सत्वगिलोय १० ग्राम, पीपर ६ ग्राम, छोटी इलायची के बीज ६ ग्राम।

बादाम भिगोकर छिलका साफ कर सिल पर बारीक पीस लें। बीज रहित द्राक्षा की अलग चटनी कर लें और मिश्री आदि द्रव्यो को अलग एकत्र कर कूट-पीस कर अति सूक्ष्म कर लें यहा तक कि खरल की मूसली से चुपकने लगे इतना घोटे तत्पश्चात् सबको एक कर घोटें। एकजीव हो जाने पर १०-१० ग्राम प्रमाण मोदक बना लेवें और चांदी के वर्क लपेटते जावें। यह चन्द्रप्रभा मोदक है।

प्रातः सायं एक-एक मोदक मिश्री युक्त दुग्ध के साथ सेवन कराना चाहिये। स्त्रियों की किसी भी प्रकार की दुर्बलता के लिये अति उपयोगी योग है। गर्भावस्था प्रसूतावस्था मे जब स्त्री अत्यन्त दुर्बल हो जाती है तो इसका सेवन बहुत लाभ पहुचाता है इसको पुरुष भी सेवन कर बल वीर्य प्राप्त कर सकता है।

—श्री गनेशीलाल जैन
(धन्व० समन्वयाक)



वनौषधि रत्नाकर

[चतुर्थ भाग] में संकलित

प्रयोगों की रोगानुसार अनुक्रमणिका

[अकारादि क्रम से]

(नम्बर पृष्ठ संख्या के सूचक हैं)

